राजनीति-विज्ञान में अनुसंधान-प्रविधि

(Research-Methodology in Political-Science)

लेखक
डॉ० एस० एल० वर्मा
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी
जयपुर

प्रकाशकीय भूमिका

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी अपनी स्थापना के 18 वर्ष पूरे करके 15 जुलाई, 1987 को 19वें वर्ष मे प्रवेश कर चुकी है। इस अवधि मे विश्व-साहित्य के विभिन्न विषयो के उत्कृष्ट ग्रन्थो के हिन्दी अनुवाद तथा विश्वविद्यालय के शैक्षणिक स्तर के मौलिक ग्रन्थो को हिन्दी मे प्रकाशित कर अकादमी ने हिन्दी जगत् के शिक्षको, छात्रो एव अन्य पाठको की सेवा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और इस प्रकार विश्वविद्यालय स्तर पर हिन्दी मे शिक्षण के मार्ग को सुगम बनाया है।

अकादमी की नीति हिन्दी मे ऐसे ग्रन्थो का प्रकाशन करने की रही है जो विश्वविद्यालय के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमो के अनुकूल हो। विश्वविद्यालय स्तर के ऐसे उत्कृष्ट मानक ग्रन्थ जो उपयोगी होते हुए भी पुस्तक प्रकाशन की व्यावसायिकता की दौड मे अपना समुचित स्थान नही पा सकते हो और ऐसे ग्रन्थ भी जो अग्रेजी की प्रतियोगिता के सामने टिक नहीं पाते हो, अकादमी प्रकाशित करती है। इस प्रकार अकादमी ज्ञान-विज्ञान के हर विषय म उन दुर्लभ मानक ग्रन्थो को प्रकाशित करती रही है और करेगी, जिनको पाकर हिन्दी के पाठक लाभान्वित ही नही, गौरवान्वित भी हो सकें। हमे यह कहते हुए हर्ष होता है कि अकादमी ने 330 से भी अधिक ऐसे दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रकाशन किया है जिनमे से एकाधिक केन्द्र, राज्यो के बोर्डो एव अन्य सस्थाओ द्वारा पुरस्कृत किये गए हैं तथा अनेक विभिन्न विश्वविद्यालयो द्वारा अनुशसित।

राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी को अपने स्थापना काल से ही भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय से प्रेरणा और सहयोग प्राप्त होता रहा है तथा राजस्थान सरकार ने इसके पल्लवन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, अत. अकादमी अपने लक्ष्यो की प्राप्ति मे उक्त सरकारो की भूमिका के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है।

हमे राजनीति विज्ञान मे अनुसधान प्रविधि पुस्तक का सशोधित सस्करण प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता हो रही है। पुस्तक स्नातकोत्तर स्तर के छात्रो और अध्यापको के लिए अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है। आशा है अपने सशोधित रूप मे यह और भी अधिक उपादेय रहेगी। विद्वानो की प्रतिक्रिया अपेक्षित है।

हम पुस्तक के लेखक डॉ एस. एल वर्मा के प्रति आभारी हैं।

रणजीतसिंह कूमट	डॉ राघव प्रकाश
शिक्षा सचिव, राजस्थान सरकार एव	निदेशक
अध्यक्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर	राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

भूमिका

प्रस्तुत ग्रन्थ मेरे राजनीति विज्ञान मे शोध विषयक समस्याओ, पद्धतियो और प्रविधियो के दीर्घकालीन अध्ययन अध्यापन एव अनुसधान का परिणाम है। इसे मैने राजनीति के अध्ययन अनुसधान तथा विश्लेषण मे रुचि रखने वाले अध्येताओ, शोध-कर्त्ताओ, विद्यार्थियो एव शिक्षको के लिए विशेष रूप से लिखा है। इसके द्वारा मैने उन्हे अन्य विषयो की शोध-पद्धतियो का आँख मूदकर अनुसरण करने से बचाने का प्रयत्न किया है। यही स्थिति मेरे लिए इस पुस्तक को लिखने का मूल प्रेरणा-स्रोत रही है।

मेरी यह दृढ धारणा है कि विकासशील देशो मे 'राजनीति' की केन्द्रीय एव निर्णायक भूमिका होती है। इसलिए राजनैतिक विषयो मे कतिपय विशिष्ट व्यक्तियो एव प्राधिकारियो के व्यक्तिनिष्ठ ज्ञान और अनुभव पर निर्भर रहना लोकतन्त्र के स्वस्थ विकास के लिए हितकर नही है। विकासमान राजव्यवस्था मे राजनीति के ज्ञान को अनुभवपरक, वैज्ञानिक, सार्वजनिक एव सचरणीय बनाया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक व्यक्ति राजनैतिक समाज की प्रक्रियाओ मे सक्रिय भागीदार बन सके। मेरी यह मान्यता है कि राजनीति इस जीवन और जगत् की सामुदायिक गतिविधि है तथा इसके द्वारा मानव की सभी समस्याओ का ज्ञान और समाधान लौकिक आधार पर किया जा सकता है। लौकिक जीवन तथा समाज की अन्तर्क्रिया मे जो विचार सिद्धान्त, नियम और निष्कर्ष निकलते है उनमे तथा धर्म, दर्शन और नैतिकता सम्बन्धी विवादपूर्ण किन्तु व्यापक धारणाओ मे बहुत कम अन्तर रह जाता है। विवादास्पद अमूर्त्त चिन्तन मे उलझकर पारस्परिक कटुता बढाने के बजाय लौकिक दृष्टि से वास्तविकता के दर्शन करना अधिक श्रेयस्कर है। लौकिक आयामो के भीतर राजनीति-विषयक शोध करने के लिए मैने व्यवहारवादी परिप्रेक्ष्य (Behavioural Perspective) को तथा मूल्यो के विषय मे वैज्ञानिक-मूल्य सापेक्षवाद (Scientific value-relativism) को अपनाया है। इस नवीन दृष्टिकोण के अनुसार सामाजिक मूल्यो, आदर्शों एव लक्ष्यो का निर्धारण लौकिक सन्दर्भ मे ही किया जाना चाहिए। ऐसा करके व्यक्ति अपना निजत्व को बनाये रखते हुए भी लोकतान्त्रिक ढग से श्रेष्ठतर सामूहिक जीवन बिता सकता है।

भारत अन्य विकासशील देशो की तरह सास्कृतिक, धार्मिक सामाजिक एव वैचारिक विविधताओ का देश है। ऐसी स्थिति मे राजनीति का चिन्तन, अन्वेषण तथा विश्लेषण लौकिक दृष्टि से करना और भी अधिक आवश्यक है। इससे सामान्य नागरिक राजनीति के यथार्थ स्वरूप को समझ सकेगा तथा नये-पुराने नेताओ की नारेबाजी के पीछे विद्यमान वास्तविकता को जान सकेगा। परम्परावादी राजनीतिक विचारधारा के अन्तर्गत राजनीति के चिन्तन, प्रसार और सचालन का कार्य एकाधिकार बनकर उच्च एव अभिजात-वर्ग के हाथो मे चला जाता है। इस अभिजात-वर्ग के साथ निहित स्वार्थ जुड कर 'राजनीतिक ब्राह्मणवाद' या 'शासक-शासित वर्गवाद' को जन्म देते है। उक्त एकाधिकार तथा वर्गभेद को

तोड़ने के लिए यह आवश्यक है कि राजनीति को जनसामान्य के बोध का विश्वसनीय, प्रामाणिक एवं सार्वजनिक विषय बनाया जाये। प्रस्तुत ग्रन्थ का यही वास्तविक उद्देश्य है।

यह सत्य है कि राजनीति विज्ञान में अभी तक अपनी शोध-पद्धतियाँ, प्रविधियाँ, उपकरण आदि विकसित नहीं किए हैं और वह अपनी समस्याओं के अध्ययन के लिए उपयोगी पद्धतियों एवं प्रविधियों को समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि से उधार लेकर काम चला रहा है, किन्तु मेरी यह मान्यता है कि राजनीति का विश्वसनीय, प्रामाणिक एवं सम्प्रेषणीय अध्ययन करने के लिए उसके अपने विशिष्ट उपकरण एवं प्रविधियाँ होंगी और वे सभी अन्य समाजशास्त्रों एवं प्राकृतिक विज्ञानों से काफी भिन्न होंगी। राजनैतिक तथ्य एवं गतिविधियाँ सामान्य सामाजिक अन्तर्क्रियाओं की तुलना में अधिक सूक्ष्म, क्षिप्र, अमूर्त, प्रभावी तथा परिवर्तनशील होती हैं। उनका यथार्थ प्रचलित प्रणालियों द्वारा सम्भव नहीं है। अतएव यह वांछनीय है कि राजनीति के लिए उपयुक्त शोध-पद्धतियों, युक्तियों एवं प्रविधियों का विवेचन एवं विकास किया जाय। इस दिशा में प्रस्तुत कृति एक प्रारम्भिक प्रयास है।

इस पुस्तक को चार खण्डों तथा सत्रह अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम खण्ड राजनीति विज्ञान में शोध सम्बन्धी 'परिप्रेक्ष्य' (Perspective) को प्रस्तुत करता है। इसमें कुल छः अध्याय हैं, जिनमें 'राजनीति के शास्त्र', राजनीतिक सिद्धान्त, वैज्ञानिक पद्धति, शोध-सम्बन्धी भाषा आदि का विवेचन किया गया है। द्वितीय खण्ड में सम्पूर्ण 'तथ्य-संकलन' (Data-collection) की प्रक्रिया का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। इस खण्ड में कुल सात अध्याय हैं, जो राजनीतिक शोध-समस्या, तथ्यों के स्रोत, संकलन की सामान्य एवं गहन प्रविधियों आदि पर अति सूक्ष्म ढंग से विचार करते हैं। तृतीय खण्ड 'विश्लेषण' (Analysis) में तीन अध्याय हैं जो राजनीतिक तथ्यों के परिमाणन, वर्गीकरण, सारणीयन, व्याख्या आदि का विवेचन करते हैं। चतुर्थ खण्ड में एक अध्याय है।

इस ग्रन्थ के निर्माण की प्रेरणा मुझे राजनीति विज्ञान के विद्यार्थियों तथा अनेक मर्मज्ञ एवं मूर्धन्य विद्वानों से मिली है। इनमें प्रोफेसर अटल बिहारी माथुर, शिक्षा निदेशक, राजस्थान तथा प्रोफेसर इकबाल नारायण, कुलपति, राजस्थान विश्वविद्यालय का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन सभी का मैं हृदय से बड़ा आभारी हूँ और आशा करता हूँ कि वे भविष्य में भी मार्गदर्शन देते रहेंगे। मैं उनका भी बड़ा कृतज्ञ रहूँगा जो इस ग्रन्थ के विषय में अपने रचनात्मक सुझावों, टिप्पणियों तथा आलोचनाओं से मुझे लाभान्वित करेंगे।

एस० एस० वर्मा

राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

विषय-सूची

खण्ड-एक

परिप्रेक्ष्य (Perspective)

खण्ड-दो

तथ्य संकलन (Data Collection)

खण्ड-तीन

विश्लेषण (Analysis)

खण्ड-चार

परिमाणन (Quantification)

□□□

अध्याय 1

प्रस्तावना
(Introduction)

प्रत्येक विषय या अनुशासन (Discipline) के विकास मे उसके अपने पद्धति-शास्त्र, अनुसधान-प्रविधि अथवा शोध-पद्धति-विज्ञान (Research Methodology) की केन्द्रीय भूमिका होती है। इसे एक ऐसी महान् 'खोज' (Discovery) माना गया है जिसने समस्त समाज विज्ञानो म क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिये है। समाज-विज्ञानो का मूल लक्ष्य मानव-व्यवहार के बारे मे निश्चित व्याख्याएँ तथा पूर्वकथन (Prediction) करना माना गया है। ज्यो-ज्यो मनुष्य-समाज की जटिलताएँ, कठिनाइयाँ एव समस्याएँ बढती जाती है, त्यो त्यो ऐसी व्याख्याओ अथवा पूर्वकथनो की और भी अधिक आवश्यकता बढती जाती है।[1] वस्तुत एक उपयुक्त अनुसधान-प्रविधि[2] के अभाव के कारण ही समाज-विज्ञान प्राकृतिक विज्ञानो से पिछड गए हैं। इसके अभाव मे मानव अनेक समस्याओ से घिर गया है तथा प्राकृतिक विज्ञानो की प्रगति से उत्पन्न तकनीकी क्रान्ति का शिकार हो गया है। ऐसा लगता है कि तकनीकी प्रगति स्वय मानव को ही खा जायगी। इसलिए मानव को बचाना आवश्यक है।

राजनीति एव राजनीति-विज्ञान या राज-विज्ञान को अनुसधान-प्रविधि की सर्वाधिक आवश्यकता है। विशेष रूप से विकासशील देशो मे राजनीति का प्रभाव जीवन तथा समाज के सभी क्षेत्रो मे सबसे अधिक मात्रा मे पाया जाता है। उन देशो मे अर्थ-व्यवस्था, जाति, शिक्षा, सस्कृति, धर्म आदि सभी बहुत गहरी मात्रा मे राजनीति से प्रभावित होते हैं। अतएव यह आवश्यक है कि वे अपना चहुँमुखी विकास विश्वसनीय एव शीघ्रातिशीघ्र करने के लिए राजनीति का वैज्ञानिक अध्ययन करें, अन्यथा, कतिपय स्वार्थी राजनेता वहाँ की जनता को लुभावने नारेबाजी के माध्यम से लूटते-खसोटते रहेगे। ऐसा ही खतरा स्वय राजनीति-विज्ञान के शिक्षको एव शोधकर्ताओ से भी है। ज्यो-ज्यो राजनीति अधिकाधिक व्यापक-जटिल और प्रभावपूर्ण होती जाती है, एक सुविकसित अनुसधान-प्रविधि की आवश्यकता बढती जाती है। 'राजनैतिक' तथ्यो, घटनाओ, कारको आदि को समझने तथा एक व्याख्यात्मक 'सिद्धान्त' का विकास करने के लिए एक उपयोगी पद्धति विज्ञान का होना जरूरी है। उस पर ही वैज्ञानिक अनुसधान, सर्वेक्षण तथा राजनीति का यथार्थ ज्ञान निर्भर है। इन सबका उद्देश्य 'तत्काल या दीर्घकाल मे, सामाजिक जीवन को समझकर उस पर पहले से अधिक नियन्त्रण प्राप्त करना है।'[3] इस नियन्त्रण के द्वारा सभी क्षेत्रो मे मानव-जीवन को उच्च लक्ष्यो की ओर ले जाया जा सकता है। राजवैज्ञानिक शोध के द्वारा प्राचीन राजनीतिक धारणाओ तथा वर्तमान वास्तविकताओ (Realities) के मध्य चौडी खायी को पाटा जा सकता है। इसी के सहारे 'राजनीति शास्त्र' को 'राजनीति-विज्ञान' बनाया जा सकता है।

राजनीति विज्ञान एवं अनुसंधान प्रविधि
(Political Science and Methodology)

पद्धति-विज्ञान के विकास की दृष्टि से, स्वयं संयुक्त राज्य के राजविज्ञानी या राज-वैज्ञानिक (Political Scientist) भी अन्धकार-युग में रहे हैं। वहाँ भी पद्धति-विज्ञान का तीव्र गति[4] से विकास करने की आवश्यकता को अनुभव किया जाता है। मीहान ने लिखा है कि किसी भी अच्छे राजवैज्ञानिक के लिए राजनीतिक व्याख्या की प्रकृति और रूप, वैज्ञानिक पद्धतियों के अर्थ एवं प्रयोग तथा वैज्ञानिक गवेषणा के अन्य पक्षों का ज्ञान आवश्यक है। इनके प्रशिक्षण की आवश्यकता भविष्य में और भी अधिक बढ़ जायेगी।[5] सारटोरी के अनुसार, 'पद्धति-वैज्ञानिक (Methodological) असावधानी के कारण समस्त अनुशासन ही क्षतिग्रस्त हो गया है।'[6] स्वयं व्यवहारवादियों (Behaviouralists) ने भी इस दिशा में कोई विशेष योगदान नहीं किया है। अन्य व्यवहार विज्ञानों से अत्यधिक उधार लेने की प्रवृत्ति के कारण राजनीति के मूल विषयों में उसकी अपनी खोजें दूसरे विषयों की तुलना में काफी पिछड़ गयी हैं।[7] एक उपयुक्त अनुसंधान-प्रविधि के अभाव में राजशास्त्र (राजनीति शास्त्र) को अनेक दृष्टियों से नीचा देखना पड़ता है, क्योंकि—

(i) यद्यपि राजनीतिशास्त्र की विषयवस्तु (राजनीति) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती है, फिर भी उसे अपने महत्त्व तथा स्तर के अनुरूप स्थान नहीं दिया जाता,

(ii) दूसरे समाज-विज्ञानों की तुलना में उसे पिछड़ा हुआ माना जाता है,

(iii) उसके निष्कर्ष अविश्वसनीय तथा अपूर्वकथनीय माने जाते हैं,

(iv) राजनीति-विज्ञान के विज्ञानों के मध्य विभिन्न राजनैतिक तथ्यों, वस्तुओं, प्रक्रियाओं आदि का स्वरूप एवं बोध निश्चित नहीं होने के कारण वैज्ञानिक शब्दावली का विकास नहीं हो पाया है। इस कारण उनमें परस्पर आदान-प्रदान अथवा सम्प्रेषण (Communication) नहीं हो पाता और वे निरर्थक आरोप-प्रत्यारोप करते रहते हैं,

(v) एक सर्वमान्य जाँचनीय (Testable) ज्ञान का विकास न कर पाने के कारण राजशास्त्र लोकतन्त्र एवं मानवता की समुचित सहायता करने में असमर्थ बना रहता है।

विकासशील देशों में स्थिति : भारत
(Situation in Developing Countries : India)

विकासशील देशों, विशेषतः भारत, की दृष्टि से स्थिति और भी दयनीय है। पहले, तो इन देशों में राजनीति को आम जनता का विषय ही नहीं माना जाता है। दूसरे, इसे धर्म, नैतिकता और दर्शनशास्त्र के अधीन कर दिया गया है। तीसरे, इसे एक संकुचित शासक वर्ग एवं पुरोहित वर्ग के हाथों में सौंप दिया गया है। ये लोग अपनी संकुचित दृष्टि स्वार्थ या समझ के अनुसार राजनीति के साथ खिलवाड़ करते रहे हैं। परिणाम यह हुआ है कि भारत जैसे उत्कृष्ट संस्कृति वाले देशों को शताब्दियों तक गुलामी की जंजीरों में जकड़े रहना पड़ा और वे यूरोपीय देशों की तुलना में काफी पिछड़ गये। वर्तमान काल में ये देश राजनीतिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और इनके पास भौतिक संसाधनों (Resources) तथा

तक्नीक (Technology) का अभाव है। सामाजिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पीछे रह जाने के कारण इन्हें विभिन्न अभिजनो (Elites) अथवा उच्च वर्गों द्वारा बहकाया और भड़काया जाता है। इन्हें नागरिकता का समुचित प्रशिक्षण पाने का अवसर नहीं दिया जाता। अतीत मे जहा पारलौकिक धर्म ने इन्हें सांसारिक तथा सामाजिक समस्याओ की ओर झाकने की आज्ञा नहीं दी, वहा अब धर्म, जाति, दल और भाषा के आवरण उन्हें अपने वास्तविक हित नहीं देखन देते। इन सभी बाधाओ को दूर करने तथा अयुक्त सीमाओ को तोडने के लिये यह आवश्यक है कि एक सार्वजनिक तथा वैज्ञानिक पद्धतिशास्त्र (Methodology) का विकास किया जाय, जिससे राजनीति का यथार्थ अध्ययन एव विश्लेषण करने मे सहायता मिले।

अनुसधान-प्रविधि के अभाव म, एशिया और अफ्रीका के देशो म राजशास्त्र के अध्ययन अध्यापन तथा शोध की स्थिति बडी शोचनीय पायी जाती है। भारत, पाकिस्तान, बर्मा, श्रीलका, सयुक्त अरब गणराज्य, नाइजीरिया आदि देशो म राजशास्त्र को एक स्वतन्त्र एव सम्मानित अनुशासन (Discipline) नही माना जाता। इन देशो की राजनीति का विश्लेषण भी प्राय: विदेशी राजविज्ञानियो (Political Scientists) द्वारा ही किया गया है। भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयो मे निर्धारित राजनीतिशास्त्र के पाठ्यक्रमो से ज्ञात होता है कि उनमे वैज्ञानिक अध्ययन पद्धतियो, शोध प्रविधियो आदि को नगण्य स्थान दिया गया है।[8] इस विषय के व्याख्याता और अध्येता दोनो को एक विचित्र नीरसता, दैन्य तथा अवास्तविकता का सामना करना पडता है।[9] अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा मानवशास्त्र जैसे समाज-विज्ञानो की तुलना मे यह 'विज्ञान' कहा जाने वाला अनुशासन काफी पिछडा हुआ है।[10]

इन देशो मे सभी का ध्यान कतिपय अस्पष्ट मूल्यो, आदर्शों अथवा धारणाओ की ओर बना रहता है। ये सभी न्यूनाधिक मात्रा मे विभिन्न विचारविदो (Ideologies) के साथ घुले-मिले रहते हैं। शोध-प्रविधियो के अभाव मे उनका तथा उनकी क्रियान्विति से सबधित विश्लेषण एव विचार-विनिमय नहीं हो पाता। वास्तव मे देखा जाय तो यहा शोध के प्रति सही दृष्टिकोण तथा वातावरण का ही अभाव पाया जाता है। शोधकर्त्ताओ पर न तो विश्वास किया जाता है और न ही उन्हे सहयोग दिया जाता है। सर्वज्ञात तथ्यो को भी सरकारी स्तर पर गोपनीय मानकर नही बताया जाता। छोटी-मोटी बातें भी गुप्तता के आवरण मे छिपा दी जाती है। इन बातो या तथ्यो को भारतीय शोधक या शोधकर्त्ता (Researcher) के लिये जितना जानना कठिन है, एक विदेशी शोधकर्ता के लिये उन्हे जानना उतना ही सरल एव सुलभ है। एक निर्धन देश का शोधक होने के नाते भारतीय शोधक या अनुसधान कर्त्ता के साधन बडे सीमित होते हैं। वह अधिकाशत राज्य की सहायता पर निर्भर रहता है। इस सहायता से उसे कभी भी वचित किया जा सकता है।

शासको की राजनीति—सत्ता, प्रभाव शक्ति आदि का अनुसधान करना भी खतरे से खाली नही है। यदि किसी तरह अनुसधान कार्य कर भी लिया जाय तो उनका सचारण (Communication) तथा प्रकाशन करना तो और भी अधिक सकटपूर्ण होता है। एक ओर राष्ट्र, समाज तथा स्वय शासको के हित म उनकी अभिव्यक्ति आवश्यक होती है, दूसरी ओर इस कार्य के लिये शोधक को विभिन्न तरीको म दण्डित भी किया जा सकता है। शोध-कार्य के लिये उसकी कानूनी, सामाजिक तथा भौतिक सुरक्षा प्रदान करने की कोई भी

व्यवस्था नहीं है। इन देशों के अधिकांश सूचनादाता या उत्तरदाता (Respondents) अशिक्षित होते हैं। उनसे लिखित उत्तर प्राप्त करने का प्रश्न ही नहीं उठता। शिक्षित उत्तरदाताओं का दृष्टिकोण प्रायः असहयोगपूर्ण रहता है। शासक एवं प्रशासक राजनीति या शासन को अपना सुरक्षा-भण्डार मानकर उसमें किसी शोधकर्त्ता की ताक-झाँक को पसंद नहीं करते और उसे हर प्रकार से निरुत्साहित कर देते हैं। 'राजनीति का ज्ञान' शासकों का एकाधिकार बना रहता है।

यह सब कुछ होने पर भी राजनीतिशास्त्र को वैज्ञानिकता एवं विश्वसनीयता की ओर ले जाने के लिये यह आवश्यक है कि इन सभी बाधाओं का सामना किया जाय। इसके लिए अपरिमित त्याग और बलिदान करना पड़ेगा। प्रत्येक व्यक्ति को एक नागरिक तथा निष्ठावान राजवेत्ता होने के नाते यह दायित्व पूरा करना ही होगा। अन्यथा राजनीति को अतीतकाल की तरह कतिपय मुट्ठीभर शासक अपनी निजी पूँजी मानते रहेंगे और सारे देश को पतन की ओर धकेलते रहेंगे। जब राजनीति सभी को तथा सभी क्षेत्रों में प्रभावित करती है तो यह आवश्यक है कि उस विषय को खुला और आम जनता का विषय बनाया जाय तथा सभी को उसकी निर्णयन-प्रक्रियाओं में भाग लेने तथा योगदान करने का अवसर दिया जाय। *पिछले युगों में राजव्यवस्था क्षत्रियवर्ग तथा ब्राह्मणवर्ग के हाथों में सौंप दी* गयी थी। इसका परिणाम यह हुआ कि शेष किसान, वैश्य, शूद्र तथा अन्य निम्न वर्ग सदा-सर्वदा के लिये दास बन कर रह गये, और वे आज तक अपनी स्थिति से ऊपर नहीं उठ सके। शासक-वर्ग अपनी एकाधिकारवादी स्थिति के कारण भ्रष्ट और दुर्बल हो गया जिसका भार राजनीति से वियुक्त वर्गों को सहना पड़ा। एक उत्कृष्ट संस्कृति होते हुए भी देश को आने वाले मुट्ठीभर आक्रमणकारियों के सम्मुख बार-बार बुरी तरह से पराजित होना पड़ा। इन आक्रमणकारियों ने देश की मौलिक एवं परम्परागत संस्कृति को चूर-चूर कर दिया। उसके बाद नये विजयी शासकों ने पराजित देश पर अपनी व्यवस्था, सभ्यता और संस्कृति थोप दी। आम जनता के पास न्यूनाधिक मात्रा में, राजनीति एवं संस्कृति से विलग बने रहने के कारण, नयी स्थिति को स्वीकार करने के अलावा और कोई उपाय शेष नहीं रहा। एक के बाद एक आक्रान्ता शासक इस प्रकार विविधताएँ उत्पन्न करते रहे हैं। ये विविधताएँ ही विभाजन, विघटन, विरोध आदि का कारण बनती गयी। निष्कर्ष यह है कि वर्तमान एवं भविष्य में राजनीति का एकाधिकार जब तक राजनेताओं और शासकों के पास बना रहेगा तथा सामान्य जनता को उससे दूर रखा जायेगा तब तक वे उसका अपने स्वार्थों के लिए उपयोग तथा आम जनता के हितों को हानि करते रहेंगे। इस एकाधिकार को एक सशक्त अनुसंधान प्रविधि विज्ञान तथा प्रबुद्ध अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा ही तोड़ा जा सकता है। यद्यपि उसके भी सफल होने के लिये लोकतन्त्र के सन्दर्भ में, आम जनता के सक्रिय समर्थन की आवश्यकता पड़ेगी। किन्तु यह कार्य आम जनता के समक्ष राजनीति के रहस्यों का वैज्ञानिक एवं सार्वजनिक ढंग से रखे बिना सम्भव नहीं है।

नवीन दिशाएं (New Directions)

राजनीति के महत्त्व को देखते हुए यह आवश्यक है कि राजशास्त्र को एक उपयुक्त अनुसंधान प्रविधि के द्वारा नवीन दिशाएँ—एकता, सृजनात्मकता, अनुभवपरकता, विश्वसनीयता तथा प्रतिष्ठा प्रदान की जाय। इसके लिए उसके अध्ययन-अध्यापन को कक्षा तथा पुस्तकालय की चारदीवारी से बाहर निकाला जाना चाहिए। उन्हें अवलोकन या प्रेक्षण (Observation) के माध्यम से आनुभविक बना दिया जाये। इसके लिये

पद्धति-विज्ञान तथा अनुसधान-प्रविधियो का प्रशिक्षण एव प्रयोग अनिवार्य होना चाहिए। अब्राहम कैपलन ने कहा है कि 'मूल्य, चाहे वे सामान्य प्रश्नो से सम्बन्धित हो या विशिष्ट समस्याओ से, अतुलनीय रूप से अधिक अन्वेषण की माँग करते हैं।[11] यह कथन शेष विषयो पर भी लागू होता है।

यद्यपि अनेक विश्वविद्यालयो ने नवीन एम फिल, पीएच डी आदि शोध कार्यक्रमो मे अनुभवपरकता को स्थान देना प्रारम्भ कर दिया है, किन्तु ये सभी उपाधि प्राप्त करने, सुगमता आदि सीमित लक्ष्यों के इर्द गिर्द ही अपनाये जा रहे हैं। उनमे विषयवस्तु, गुणात्मकता आदि की दृष्टि से काफी कमियाँ पायी जाती है। इस दिशा म भारतीय सामाजिकविज्ञान-अनुसधान-परिषद् (Indian Council of Social Science Research—ICSSR), विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग (University Grants Commission—UGC) तथा कतिपय निजीशोध-सस्थान काफी कार्य कर रहे है। भारतीय सामाजिक अनुसन्धान परिषद् ने एक राष्ट्रीय अनुसधान नीति बनायी है।[12] उसने अनक शोध क्षेत्रो मे कार्य करना शुरू कर दिया है। वह अनेक विषयो मे अनेक प्रकार के शोध-पत्र निकालती है। उसने भारतीय समाज व्यवस्था के साख्यिकीय आँकडे तथा सकेतक (Indices) बनाने की व्यापक योजना भी तैयार कर ली है।[13] इस तरह से राजशास्त्र का ऐसा विकास किया जा सकता है जिससे मौलिक शोध तथा अन्य अनुशासनो के साथ सहयोग को बढावा मिले। ऐसा करने से राजशास्त्र के 'विज्ञान' बन जाने की काफी सम्भावनाएँ है। अनुसधान-प्रविधि पर आधारित राजशास्त्र राजनेता, नागरिक, शासक एव प्रशासक के लिये मार्गदर्शक का काम करेगा। स्वय राजशास्त्रियो तथा राजविज्ञानियो के लिए अध्यापन के अलावा अनेक नये व्यावसायिक मार्ग खुल जायेंगे। उसे राजनीति का विशेषज्ञ, परामर्शदाता, अभियन्ता, राजनैतिक[14] सरचनाओ का निर्माता, मूल्य-निर्धारण का सहायक आदि विविध रूपो म स्वीकार किया जायगा। अभी उसे केवल एक ही पद या काय प्राप्त है—'अध्यापन' जिसके द्वारा वह अपने जैसे 'व्यक्ति' या 'शिक्षक' बनाता और ढालता रहता है। राजविज्ञानी (Political Scientist) बन जाने के बाद, समय पडने पर वह कतिपय मानव मूल्यो की रक्षा के लिये स्वय भी राजनीति के मैदान मे कूद सकता है। वह अपने वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर शक्तिधारियो के लक्ष्यो, कार्यों तथा उनके प्रभावो का उद्घाटन नागरिको तथा अन्य राजनताओं के सामने कर सकता है, और नवीन जनमत का निर्माण कर सकता है। उसे लोकतन्त्र एव मानवता का सच्चा सिपाही मानना चाहिए।

कठिनाइया एव विरोध (Difficulties and Opposition)

राजवैज्ञानिक अनुसन्धान प्रविधि के विकास के मार्ग म अनेक कठिनाइयाँ है। ये कठिनाइयाँ स्वय विचारको की अपनी मान्यताओ, मानव स्वभाव, समाजशास्त्रीय प्रविधियो की अपूर्णता, लोकमत आदि से सम्बन्ध रखती हैं। अनेक भारतीय एव विदेशी विद्वानो की यह दृढ धारणा है कि राजनीति शास्त्र का वैज्ञानिक अनुसधान प्रविधिया जैसी कोई चीज नहीं है और न ही उसे 'विज्ञान' बनाया जा सकता है। वे राजनीति के वैज्ञानिक अध्ययन करने के सभी प्रयासो का विरोध करते है। उनके अनुसार, स्वय मनुष्य का स्वभाव तथा सामाजिक एव राजनैतिक घटनाएँ (Phenomena) बडा जटिल तथा अमूर्त होती हैं। उन्हें पूर्ण रूप म समझना अत्यन्त कठिन होता है। यह बताना सुगम नहीं है कि भारत का स्वतन्त्रता किन किन प्रमुख कारणो म मिली अथवा सरकारे न पाल के लिये

किस को उत्तरदायी माना जाय ? मानवीय घटनाओं की जड़ में भावनाएं, विचार, आदर्श, मूल्य परम्पराएं आदि होती हैं, उनके स्वरूप एवं मात्रा को सही ढंग से जानने का कोई वस्तुपरक साधन नहीं है। उन्हें केवल आंशिक रूप में ही जाना जा सकता है तथा स्वयं जानने का प्रयास करने वाला व्यक्ति भी घटनाओं, तथ्यों, वस्तुओं आदि को निजी दृष्टि से देखता है। यह निजी दृष्टि भी भावनाओं, मूल्यों आदि से प्रभावित होती है। राजनैतिक घटनाएं, गुणात्मक (Quantitative) तथा व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) होती हैं। जैसे, मिजो या नागा जाति के लोगों की राष्ट्रीयता का विश्लेषण गुणात्मक ही होगा। विभिन्न राजनैतिक तथा सामाजिक घटनाएं (Homogeneous), समान (Like), तथा एकरूप (Uniform) नहीं होतीं। प्रत्येक राजनैतिक इकाई (Unit) में निजी विशिष्टता (Uniqueness) पायी जाती है। वैसी ही घटनाएं सभी जगह घटित नहीं होतीं। उनमें सार्वभौमिकता का अभाव होता है। यही कारण है कि फ्रांस (1789) या रूस (1917) जैसी क्रान्तियां भारत में नहीं होतीं। राजनैतिक घटनाएं बड़ी गतिशील (Dynamic) प्रकृति की होती हैं। उनमें स्थिरता या स्थैतिकता नहीं होती। स्थिर या स्थायी दिखने वाली राजनैतिक स्थिति भी निरन्तर बदलती रहती है। इसी कारण यह बार-बार कहा जाता है कि राजनैतिक घटनाओं का पूर्वकथन (Prediction) नहीं किया जा सकता। उनके अनुसार राजनीति में 'पुत्र न पुत्री' वाली भविष्यवाणियाँ ही होती हैं।

मानव प्राणी अपने विवेक तथा इच्छा शक्ति से प्रेरित होने के कारण कतिपय वैज्ञानिक नियमों के अनुसार आचरण नहीं करता। उसके व्यवहार विशेष अवस्था, सामाजिक-*आर्थिक-सांस्कृतिक परिवेश तथा अमूर्त मूल्यों या भावनाओं से बंधा हुआ होता है।* इनके बदल जाने पर उसका व्यवहार भी बदल जाता है। वह सामान्य रूप में सम्भावित होने वाले परिणाम या पूर्वकथन का अनुमान करके भी अपने व्यवहार का परिवर्तन कर लेता है। यह तर्क यह भी दिया जाता है[15] कि मानव-व्यवहार का विज्ञान विकसित करना तथा उसे लागू करना ही अनैतिक है। मानव मूल्य अथवा वस्तु या यन्त्र नहीं है जिसके साथ कतिपय नियमों के आधार पर व्यवहार किया जाए। उसके ऊपर प्रयोग (Experiment) करना तो और भी अधिक अनैतिक है।

वर्तमान अनुसंधान-प्रविधियां (Research Techniques) भी पूर्ण विकसित तथा विषय सामग्री के अनुकूल नहीं हैं। उन्हें या तो अन्य विज्ञानों से जैसे-तैसे उधार ले लिया गया है या मनमाने ढंग से उपयोग किया गया है। उदाहरण के लिए, साक्षात्कार-प्रविधि या सर्वेक्षण-पद्धति के स्वरूप में कोई खास विकास नहीं हुआ है। इसी तरह दलों तथा समूहों के भीतर राजनीति का पता लगाने का अभी तक कोई भी साधन या उपकरण नहीं है। कतिपय प्रविधियां देश काल सापेक्ष हैं। यदि वे संयुक्त राज्य में उपयुक्त सिद्ध हुई हैं तो इसका अर्थ यह नहीं है कि वे भारत, रूस आदि देशों में भी उपयोगी सिद्ध होंगी। मतदान व आंकड़े सरकार की स्थिरता का पूर्वकथन नहीं कर पाते। किन्तु कुछ लोगों का विचार है कि इन प्रविधियों की आवश्यकता ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सामान्य ज्ञान तथा अन्तर्दर्शन (Introspection) के आधार पर राजनैतिक घटनाओं की अच्छी से अच्छी जानकारी प्राप्त कर सकता है। प्रायः जो अनुसंधान या गवेषणा के पश्चात् बताया जाता है, वह पहले से ही ज्ञात होता है। सामने दिखायी देने वाले हाथी का वर्णन या प्रमाणित करने के लिए, इनके अनुसार, किसी दूरदर्शक यन्त्र या अन्य साधन इकट्ठे करने की आव-

श्यकता नहीं है। ऐसा करना केवल समय, धन तथा ऊर्जा (Energy) का अपव्यय करना मात्र है। आधुनिक अनुसंधान सम्बन्धी गतिविधियों के कारण राजशास्त्र एक कठिन, अनुपयोगी तथा जनजीवन से परे का विषय बनता जा रहा है।

लोकमत भी अनुसंधान प्रविधियों के (उनकी अपूर्णता के कारण) विपरीत है। आम आदमी यह समझता है कि अनुसंधानकर्त्ताओं (Researchers) द्वारा निकाले गये निष्कर्ष उन्हें पहले से ही मालूम थे तथा उनमें कोई नयी बात नहीं है। उनके अनुसार वे निष्कर्ष यथार्थता से दूरस्थ आरामगाहों में बैठे विद्वानों द्वारा निकाले गये हैं तथा उनका निष्कर्षों के भले-बुरे परिणामों से कोई सम्बन्ध नहीं है। वे किसी विशेष देश काल में सही होंगे परन्तु आज लागू नहीं होते।

राजनीतिक अनुसंधान की स्थिति (Condition of Political Science Research)

भारत में राजनीति अनुसंधान की स्थिति अति शोचनीय है। वर्तमान दशक से पूर्व भारत में राजनीतिक अनुसंधान के नाम पर कतिपय पुस्तकालयी अध्ययन ऐतिहासिक नायकों की आत्मकथाएं तथा कुछ समाजशास्त्रीय एकवृत (Case Studies) अथवा सर्वेक्षण (Survey) मात्र पाये जाते थे। भारत में समाजशास्त्र ने ही शोध परम्परा की नींव डाली है। ब्रिटिशकाल में जनगणना (Census) कार्य प्रारम्भ किया तथा विभिन्न क्षेत्रों में आयोगों के प्रतिवेदन प्रकाशित किये गये। सामाजिक शोध के क्षेत्र में रिजले, एस० सी० राय, जे० एस० मिल, इन्द्रजीतसिंह आदि ने कार्य किया। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् उक्त दिशाओं में अनुसंधान कार्य का और भी विस्तार किया गया। योजना आयोग, भारतीय कृषि संस्थान, भारतीय सामुदायिक विकास संस्थान, नेशनल सैम्पल सर्वे निदेशालय आदि संस्थाएं भारी मात्रा में शोध करती तथा करवाती है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission U G C) आर्थिक सहायता देकर शोध-कार्यों में विशेष योगदान कर रहा है। विभिन्न विश्वविद्यालय, स्वतन्त्र शोध संस्थान तथा अनेक राज्य सहायता प्राप्त संस्थाएं पूरी तरह से इसी कार्य में लगी हुई है। इनमें कुछ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—यथा टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेज, बम्बई, दिल्ली स्कूल ऑफ सोशल वर्क, दिल्ली, इण्डियन इन्स्टीट्यूट ऑफ पब्लिक ओपीनियन दिल्ली, जनजातीय शोध संस्थान, भोपाल आदि। व्यक्तिगत रूप से अनुसंधान करने वाले समाजशास्त्रियों में घुरिए, श्रीनिवास, श्यामचरण दुबे, देसाई, कार्वे, योगेश अटल, योगेन्द्रसिंह, रामआहूजा आदि के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं।

किन्तु राजविज्ञान एवं लोकप्रशासन के क्षेत्र में अनुसंधान करने वाले शोधकों की संख्या बड़ी सीमित है। स्वाधीनता प्राप्ति के तुरन्त पश्चात् यह आशा की गयी थी कि विभिन्न विश्वविद्यालय तथा अनुसंधान संस्थाएं इस ओर विशेष ध्यान देंगी, किन्तु सरकारी स्तर पर किये गये प्रयत्नों के अलावा अन्यत्र बहुत कम कार्य हो पाया है। संविधान निर्माण, आयोग-प्रतिवेदन, जाच-आयोग आदि सरकारी दिशा में ही किये गये कार्य हैं। निजी तौर पर अनुसंधान-कार्य को प्रोत्साहित करने वाली संस्थाओं में इण्डियन कौंसिल ऑफ सोशल साइन्स रिसर्च (Indian Council of Social Science Research I C S S R) इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (Indian Institute of Public Administration), दिल्ली आदि महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। राजनीतिक अनुसंधान के क्षेत्र

में उल्लेखनीय राजविज्ञानियों (Political scientists) में रजनी कोठारी, सिरसीकर, इकबाल नारायण, एम० पी० राना आदि प्रमुख हैं। लोकप्रशासन के क्षेत्र में एस० आर० माहेश्वरी, प्रभुदत्त शर्मा, कुलदीप मायुर, एम० पी० वर्मा आदि उल्लेखनीय हैं। भारत के अधिकांश राजशास्त्री प्लेटो और अरस्तू की शास्त्रीय परम्पराओं से सम्बद्ध हैं। इन्हें आधुनिक राजनीति विज्ञान, व्यवहारवाद आदि से चिढ़ लगती है। वे राजनीतिशास्त्र के परम्परागत स्वरूप को आधुनिकता एवं वैज्ञानिकता के पक्षपातियों से बचाना चाहते हैं। उनके अनुसार चिन्तन, मनन, अध्यापन, लेखन आदि ही पर्याप्त हैं।

वास्तविकता (Reality)

वास्तविकता यह है कि स्वयं परम्परावादी राजशास्त्री उतने मूल्य या आदर्शवादी नहीं हैं। वे मूल्यों, आदर्शों, भावनाओं तथा अमूर्त विचारों के महत्त्व की बातें तो करते हैं, किन्तु इन्हें अच्छा उपयोगी एवं श्रेष्ठ बताने के लिये तथ्यों, अनुभवपरक घटनाओं तथा उपलब्ध सामग्री का सहारा लेते हैं। वे येन-केन प्रकारेण मानव समाज तथा राजनैतिक तथ्यों के सन्दर्भ में ही अपना चिन्तन प्रस्तुत करते हैं। किसी भी मूल्य या धारणा को स्वतः श्रेष्ठ बताने के लिये भी यह सिद्ध करना आवश्यक है कि वह अन्य मूल्यों से श्रेष्ठ क्यों है? ऐसा अनुभवों, घटनाओं, सम्बन्धों, यथार्थ सम्भावनाओं आदि को सामने रखे बिना श्रेष्ठता का दावा करना सम्भव नहीं है। राजनीति तथा सामाजिक जीवन इहलौकिक है तथा इसी लोक से सम्बन्ध रखते हैं। नैतिकता, धर्म, दर्शन आदि को भी इहलौकिक कल्याण, सामाजिक अस्तित्व अथवा भौतिक जगत् की दृष्टि से देखा, परखा और समझा जाना चाहिए। राजनीति सामूहिक जीवन की देन है और सामूहिकता, वाह्यतापरक, पारस्परिक, भौतिक तथा समाजोन्मुख होती है। उन्हें अतीन्द्रिय, पारलौकिक, स्वर्गीय एवं मरणोपरान्त लोक में ले जाने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा करने का अर्थ वास्तविक जीवन को अवास्तविकता पर बलि चढ़ाने के बराबर है। यह 'अवास्तविकता' विभिन्न विचारकों की अमूर्त धारणाओं, कल्पनाओं, विचित्रताओं तथा अनिश्चितताओं से बनी हुई होती है। शोध इस 'अवास्तविकता' की वास्तविकता को जानने का प्रयास है।

मानव स्वतन्त्र इच्छा शक्ति, विवेक आदि से सम्पन्न होते हुए भी कतिपय स्थितियों दशाओं तथा सीमाओं के अन्दर रहकर ही कार्य करता है। उसकी विभिन्नताओं तथा विशिष्टताओं में भी न्यूनाधिक समानताएं होती हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो राज्य सरकार, कानून, सामाजिक जीवन, परम्परागत भाषा आदि का होना सम्भव नहीं होता। वस्तुस्थिति यह है कि मानव समाज में समानताओं की मात्रा अधिक है और असमानताओं की मात्रा कम। यद्यपि ये असमानताएं अपने आप में कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, फिर भी, सामूहिक अथवा राजनैतिक जीवन के सन्दर्भ में उनमें कुछ प्रतिमान (Patterns), अनुक्रम (Sequences) तथा क्रम (Order) होते हैं। इन समानताओं एवं असमानताओं के अनेक प्रकार, स्तर और अवस्थाएं हो सकती हैं। किन्तु इनका पता लगातार निर्दिष्ट अवस्थाओं में (Under Given Conditions) मानव-व्यवहार का व्यवस्थित, नियमित तथा विश्वसनीय अध्ययन के द्वारा किया जा सकता है। जब साधारण आदमी अपनी सामान्य बुद्धि एवं अनुभव के आधार पर अनेक सामाजिक घटनाओं की व्याख्या एवं भविष्य कथन कर सकता है तो व्यवस्थित अध्ययन करने वाले समाजवैज्ञानिक (Social Scientists) क्यों नहीं कर सकते?[16] राजनैतिक घटनाओं की जटिलता हमारे अज्ञान के बने रहने तक ही होती है।

इसी प्रकार, मनुष्य को प्रेरित करने वाले मूल्यों, आदर्शों आदि को भी उनके प्रकटीकरण या अभिव्यक्त स्वरूप के आधार पर ज्ञात किया तथा परिणामों का अनुमान लगाया जा सकता है। शोधक या राजवैज्ञानिक भी एक सामाजिक प्राणी है, अतएव वस्तुपरक घटनाओं के आधार पर वह अपने अनुमान को प्रामाणिक बना सकता है। गांधी के कार्यों से उसकी अहिंसा सम्बन्धी धारणा का पता लग जाता है। शोधक स्वयं अपने मूल्यों या धारणाओं का स्पष्ट परिचय दे सकता है अथवा उन्हें पृथक रख कर अपना अध्ययन प्रस्तुत कर सकता है। लुण्डबर्ग के अनुसार, प्रथा, परम्परा, विचार, अनुभव आदि सभी किसी-न-किसी प्रकार के प्रेक्षण योग्य मानव—व्यवहार (Observable human behaviour) ही हैं। इनका अन्य व्यवहारों की भांति अध्ययन किया जा सकता है। विज्ञान और तकनीक (Technology) के प्रतिदिन बढ़ते हुए विकास के सन्दर्भ में इन व्यवहारों का अध्ययन और भी अधिक सरल एवं सुगम होता जा रहा है। मानव व्यवहार के क्षण प्रतिक्षण परिवर्तनशील होते हुए भी उसके परिवर्तन की कुछ दशाएँ और दिशाएं हैं। इन्हें विकासमान पद्धतिशास्त्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

हम निश्चित रूप से तथा वर्तमान स्थिति में राजनैतिक घटनाओं की गुणात्मकता का मापन भौतिक विज्ञान की तरह तो नहीं कर सकते, किन्तु उनका मात्रात्मक संकेतीकरण अवश्य कर सकते हैं। विभिन्न स्तर या क्षेत्रों के निवासियों की राष्ट्रीयता अथवा चरित्र का अनुभव-आधारित विश्लेषण किया जा सकता है। विकसित प्रविधियां गुणात्मक तथ्यों का मात्रात्मक विवरण दे सकती हैं। कई बार गुणात्मक इकाइयों का गणनात्मक विवेचन आवश्यक भी नहीं होता। राजनैतिक घटनाओं (Phenomena) में समानताएं एवं असमानताएं दोनों ही पायी जाती हैं। दोनों का अध्ययन-विश्लेषण महत्त्वपूर्ण होता है। उनकी समानताओं में भी विभिन्नताएं तथा विभिन्नताओं में कतिपय समानताएं पायी जाती हैं। वस्तुतः मानव की नित नूतन बदलती हुई विभिन्नताएं ही उसकी चेतना, मानवता, विवेक-बुद्धि तथा संकल्प शक्ति का परिचायक है। उन विभिन्नताओं में ही समानता के प्रतिमान पाये जाते हैं। किन्तु ये प्रतिमान भी बदलते रहते हैं। इनका उनकी निर्दिष्ट दशाओं के अन्तर्गत अवलोकन करके अध्ययन किया जा सकता है। उनके निष्कर्ष हमें क्रमशः व्यापक नियमों, उपनियमों एवं सिद्धान्तों की ओर ले जा सकते हैं।

राजनैतिक घटनाएँ गतिशील प्रकृति की होती हैं।[17] विकासशील समाजों में यह परिवर्तन और भी अधिक तेजी से होता है। मनुष्य अन्य सामाजिक बलों (Forces), अपने अनुभव, शिक्षण, प्रशिक्षण आदि के कारण बराबर सीखता तथा अपने व्यवहार में परिवर्तन करता रहता है। आकस्मिक घटनाएँ, संकट आदि भी उसके व्यवहार में रातों-रात परिवर्तन कर सकते हैं। इन कारणों से राजविज्ञानी के अवलोकन निष्कर्ष आदि भी बदलते रहते हैं। किन्तु ऐसा होना राजनीतिक अनुसन्धान के क्षेत्र में स्वाभाविक है। बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार राजवेत्ता को अपने निष्कर्षों में फेर-बदल करते रहना चाहिए। परिवर्तनशीलता के होते हुए भी राजनैतिक घटनाओं में निश्चितता, क्रमबद्धता, नियमितता, आवर्तनशीलता आदि विशेषताएँ भी होती हैं। यद्यपि उनके आधार पर प्राकृतिक विज्ञानों की तरह पूर्वकथन (Prediction) नहीं किया जा सकता, फिर भी सम्भावना (Probability) तो बतायी जा सकती है। वैज्ञानिक पूर्वकथन 'यदि अन्य दशाएँ बनी रहीं' (Other conditions remaining the same) की शर्त के साथ जुड़ा रहता है। यह शर्त प्राकृतिक विज्ञानों के निष्कर्षों या उपलब्धियों (Findings) के साथ भी जुड़ी रहती है।

राजविज्ञानी विभिन्न शोध-सम्बन्धी उपायों से अपने पूर्वाग्रहों को नियन्त्रित करके अपने अध्ययन में वस्तुपरकता या वैषयिकता (Objectivity) ला सकता है। ऐसे अनेक निष्कर्ष समाज विज्ञानियों द्वारा निकाले जा चुके हैं।[18] ये निष्कर्ष कतिपय मूल्यों, आदर्शों एवं विचारों तथा उनको कार्य रूप में परिणत करने के साधनों और परिणामों से सम्बन्धित हो सकते हैं। भले ही उनमें प्रयोगशालाओं की तरह नियन्त्रित प्रयोग न किये जा सकें, किन्तु समाज, राज्य एवं सरकारें निरन्तर राजनैतिक प्रकार के प्रयोग करती रहती हैं। लोकतन्त्र, संघात्मक शासन, निर्वाचन-प्रणाली आदि ऐसे ही खुले प्रयोग हैं।

राजनीतिक अनुसन्धान : अर्थ एवं व्याख्या (Political Science Research : Meaning and Explanation)

अनुसन्धान या शोध (Research) एक लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित शब्द है। वेब्स्टर शब्दकोष के अनुसार शोध एक सतर्क खोज, एक गहन खोज, श्रमसाध्य किन्तु आलोचनात्मक जांच एवं व्यापक खोज, अथवा स्वीकृत निष्कर्ष के पुनरावलोकन, या नये खोजे गये तथ्यों के प्रकाश में किया गया प्रयोग होती है। जॉन सी मेरियम के अनुसार, शोध में 'प्राप्त किये गये ज्ञान को एकत्र एवं संगठित करके, उसकी व्याख्या की जाती है और उस ज्ञान के भण्डार में शामिल किया जाता है।' रेडमैन तथा मोरे की दृष्टि से, 'जब नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित प्रयास किया जाता है, तो वह शोध बन जाता है।' लुण्डबर्ग के मतानुसार, वैज्ञानिक शोध पद्धतिपूर्वक की जाती है, अर्थात् वह पर्याप्त रूप में व्यवस्थित तथा वस्तुनिष्ठ होती है। ऐसा करने पर ही प्रेक्षित तथ्यों का वर्गीकरण, सामान्यीकरण (Generalisation) तथा सत्यापन (Verification) सम्भव होता है, वाल्टर ई स्पार एवं राइनहार्ट स्वेन्सन के शब्दों में, सत्य, तथ्य तथा निश्चितता की खोज ही गवेषणा कहलाती है। सरल शब्दों में, तथ्यों की खोज एवं जांच के लिए सावधानीपूर्वक किये गये प्रयास को ही अनुसन्धान या शोध कहते हैं। ऐसा अनुसन्धान कार्य व्यवस्थित, निश्चित एवं सार्वजनिक ढंग से किया जाता है। नये ज्ञान की प्राप्ति के लिए किये गये व्यवस्थित प्रयास ही अनुसन्धान कहलाते हैं। 'नये ज्ञान की प्राप्ति' में पुराने ज्ञान का परीक्षण एवं निर्वचन भी शामिल है।

अनुसन्धान कार्य अनेक क्षेत्रों में किया जा सकता है, जैसे भौतिक एवं प्राकृतिक जगत्, नैतिकता और धर्म, अध्यात्म विद्या आदि। यहाँ हमारा सम्बन्ध केवल सामाजिक (Social) क्षेत्र से है। सामाजिक क्षेत्र में भी हम 'राजनैतिक' क्षेत्र में ही विशेष सम्बन्ध रखते हैं। सी ए मोजर के अनुसार, 'सामाजिक घटना के बारे में, गवेषणों तथा नये ज्ञान प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित प्रयास' को ही शोध कहते हैं।[19] पालिन यंग के अनुसार, सामाजिक अनुसन्धान एक वैज्ञानिक उद्यम है जो तार्किक एवं व्यवस्थित पद्धतियों द्वारा, नए या पुराने तथ्यों को खोजने का कार्य करता है, तथा उनके अनुक्रमों, अन्तःसम्बन्धों, कारणात्मक व्याख्याओं एवं उन पर लागू होने वाली प्राकृतिक विधियों का विश्लेषण करता है।[20] सामाजिक घटनाओं तथा समस्याओं के विषय में नया ज्ञान पाने के लिए व्यवस्थित गवेषणा या जांच को ही सामाजिक शोध कहा जाता है। बोगार्डस सामाजिक शोध में व्यक्तियों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों को महत्त्व देता है। उसके अनुसार, सामाजिक अनुसन्धान किसी समुदाय में रहने वाले व्यक्तियों में सदैव विद्यमान प्रक्रियाओं की जांच है।' ऐसी जांच का उद्देश्य मानव-व्यवहार तथा सामाजिक जीवन

का विश्लेषण करना होता है, ताकि उस ज्ञान के आधार पर अधिक अनुकूल सामाजिक नियन्त्रण प्राप्त किया जा सके तथा विभिन्न समस्याओ का समाधान हो सके।

राजनीतिक अनुसन्धान—राजनैतिक विषयो एव समस्याओ से सम्बन्ध रखते है। जब व्यवस्थित ढग तथा नियमित विधियो के द्वारा राजनैतिक घटनाओ का अन्वेषण एव विश्लेषण किया जाता है, तो उसे 'राजनीतिक अनुसधान' कहा जाता है। प्रत्यक्ष मतदान प्रणाली के प्रभावो अथवा किसी राजनैतिक दल मे विभाजन के कारको की जाँच करना राजनीतिक अनुसधान का विषय होगा। यह राजनीतिक वास्तविकता या सत्य की खोज है। इसका उद्देश्य है – (अ) नये तथ्यो की गवेषणा करना अथवा पुराने तथ्यो की जाच एव सत्यापन करना, (ब) एक सैद्धान्तिक विचार-बंध (Frame of Reference) के अन्तर्गत तथ्यो के अनुक्रमो, अन्त सम्बन्धो तथा कारणात्मक व्याख्याओ का विश्लेषण करना, तथा (स) ऐसे नवीन वैज्ञानिक उपकरणो, अवधारणाओ तथा सिद्धान्तो का विकास करना जिनसे मानव-व्यवहार का विश्वसनीय एव प्रमाणिक अध्ययन सुगम हो सके। अनुसधान का विषयवस्तु की प्रकृति के अनुकूल होना जरूरी है।

पद्धतिविज्ञान या अनुसंधान प्रविधि (Research Methodology) ऐसी शोध या सर्वेक्षण की पद्धतियो एव प्रविधियो का अध्ययन करती है। उसमे ज्ञान-प्राप्ति के साधनो, स्रोतो या युक्तियो की उपयुक्तता पर विचार किया जाता है। इनका प्रयोग करके प्रत्येक व्यक्ति समान निष्कर्षों को प्राप्त कर सकता है। एक जागरूक व्यक्ति एक अच्छा पद्धतिवैज्ञानिक (Methodologist) होता है। इसका अर्थ यह है कि वह अपने परिणामो को इस प्रकार प्रमाणपूर्वक ढग से देखता है कि लोग उसके कथन पर विश्वास कर लें। यदि किसी को उसके कथन पर शक हो तो उन प्रमाणो के आधार पर कोई भी व्यक्ति उसकी जाँच कर सकता है। ये प्रमाण निर्धारित पद्धतियो एव प्रविधियो द्वारा प्राप्त किये जाते है। इनको अधिक से अधिक वैज्ञानिक' बनाने से निष्कर्ष भी उसी मात्रा मे वैज्ञानिक हो जाते है।

'पद्धतिविज्ञान' की बात करना एक आम 'फैशन' बन गया है। किन्तु बहुत कम लोग उसके वास्तविक अर्थों को समझते हैं। हॉल्ट एव टर्नर ने बताया है कि 'अनुसधान-प्रविधि' शब्द अनेकार्थक एव भ्रान्तिजनक है। इसे विद्वानो ने राजनैतिक-व्यवहार, पद्धति, शोध-प्रविधि आदि के पर्यायवाची शब्द के रूप मे प्रयोग किया है। उनके अनुसार, विवेचन (Interpretation) के नियमो तथा व्याख्या के मानदण्डो (Criteria) को पद्धति विज्ञान म शामिल किया जाता है। इन्ही मे शोध-प्ररचना (Research Design), सामग्री सकलन की प्रविधियो आदि निकलती है।'[1] कॉफमैन के अनुसार, 'यह वैज्ञानिक कार्यविधि का विश्लेषण है।'[2]

एवरी लीसरसन ने अनुसधान प्रविधि अथवा शोधशास्त्र के अन्तर्गत तीन प्रकार की समस्याओ को रखा है—(i) अनुसधानकर्ता का अभिमुखन (Orientation), उसका व्यक्तित्व एव प्रयोजन, (ii) अवधारणीकरण (Conceptualization), तथा (iii) आधार-सामग्री या समको (Data) के सग्रह, सगठन एव प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित पद्धतियो एव प्रविधियॉं। फिर्कड्रिक के अनुसार, केवल पद्धतियो या प्रविधियो पर विचार-विमर्श करना ही पद्धतिविज्ञान नही है। ग्राहमफील्ड एव गोल्डबर्ग की दृष्टि मे एक पद्धतिविज्ञानी अपनी विषय-सामग्री के प्रति भी विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण रखता है। वह दूसरे अध्येताओ (Scholars) को यह बताता है कि उसने अपनी कृतियो मे क्या किया है तथा वह क्या कर सकता था?

किन्तु वह न्हें यह भी कहता है कि उन्हें क्या करना चाहिए ?[23] ग्राहम के मत में, अनुसंधान-शास्त्र नियमों के उस समूह का नामकरण है, जिनमे जगत् विषयक ज्ञान का सुविधाजनक ढग मे निर्माण होता है, तथा यह जानने के लिये कि वह ज्ञान सत्य है कि नहीं, परीक्षण किया जाता है।[24] उसके अनुसार ये एक दूसरे को समझाने अथवा 'सम्प्रेषण के नियम' हैं। किन्तु वे सुस्थिर और जड न होकर विकासशील हैं। किसी भी वस्तु या विषय को सत्य सिद्ध करने के लिये यह बताना आवश्यक है कि वह वस्तु सत्य क्यों और किस प्रकार है ? इस कार्य के लिये प्रमाण, साक्ष्य और प्रविधियों की आवश्यकता होती है। अनुसधान सदैव स्वत शोधात्मक (Hewristic) या नवीन तथ्यों की दिशा की ओर स्थित होता है तथा श्रेष्ठ साक्ष्य (Evidence) पर निर्भर रहता है। उसमे प्रत्येक प्रश्न समाधान चाहता है, और प्रत्येक समाधान नये प्रश्न उत्पन्न कर देता है।

पद्धतिविज्ञान को 'सम्प्रेषण के नियम' कहने का अर्थ यह है कि उससे राजनैतिक घटनाओं के बोध का विकास होता है। उससे बोध निश्चयात्मकता, विश्वसनीयता, ज्ञान के सुधार के अवसरों में वृद्धि, तथा व्यक्तियों के लिये उसी घटना को दोबारा समझने की उपयोगिता का लाभ होता है। उसके नियम राजनीति विषयक ज्ञान की मात्रा और गुणों मे वृद्धि करने के साधन हैं। उनके अनुसरण से एक शोधकर्ता या अध्येता की उपलब्धियों का दूसरे के द्वारा उपयोग किया जा सकता है। सूचनाओं को पहले आगमनात्मक प्रक्रिया के सहारे एकत्रित किया जाता है, फिर निगमनात्मक प्रक्रिया द्वारा व्यापक बनाया अर्थात् अन्य तथ्यों पर लागू किया जाता है। ज्ञान के इन तर्कपूर्ण निष्कर्षों को पुन जाँच, व्याख्या अथवा पूर्वकथन के उपयोग मे लाया जाता है। ऐसा करते समय शब्दों को निश्चित अर्थ प्रदान करके तकनीकी या विशिष्ट बना दिया जाता है ताकि सभी लोग उसका एक ही निश्चित अर्थ ग्रहण करें। पद्धतिविज्ञान निजी निश्चित ज्ञान को सार्वजनिक तथा सचारणीय ज्ञान बनाने का आधार प्रदान करता है। उसकी उपयोगिता ज्ञान का परिशुद्ध सचारण एव सत्यापन है। उसी से ज्ञानशास्त्र (Epistemology)— 'व्यक्ति कैसे जानता है' तथा सत्ता मीमांसा (Ontology) 'व्यक्ति क्या जानता है ?' सम्बन्धित है। ज्ञानशास्त्र एव सत्ता मीमांसा को जानना अनुसधान तथा विश्लेषण के लिये आवश्यक नहीं है। पद्धतिविज्ञान का मूल लक्ष्य निष्कर्षों का मान्य सचारण तथा यथार्थ जगत् के विषय मे ज्ञान के दावों का सत्यापन (Verification) है। उसमे शोधक की पूर्वमान्यताएँ, तथ्य-सकलन की प्रविधियों एव कार्यप्रणालियों, अवधारणाओं, सैद्धान्तिक सन्दर्भ, विश्लेषण के आधार आदि सभी पर छानबीनपूर्ण दृष्टि डाली जाती है। स्वय पद्धति विज्ञान की अपनी मान्यताएं होती हैं। इनकी छानबीन नहीं की जाती। उनको केवल मान लिया जाता है। उनका शोध प्रक्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पडता। वे व्यक्तिनिष्ठ या निजी मूल्य नहीं होते।

राजनीतिक अनुसधानशास्त्र की मूल मान्यताएं अनेक हैं—यथा, राजनैतिक घटनाओं मे कार्य कारण सम्बन्ध (Cause and Effect Relationship) होता है। अतएव कारणों का पता लगाया जा सकता है और उनसे उत्पन्न होने वाले परिणामों को रोका या बढाया किया जा सकता है। (i) राजनैतिक घटनाओं मे अनुक्रम या नियमितता पायी जाती है। (ii) इस अनुक्रम को ज्ञात करके आगे होने वाली घटना का पूर्व कथन किया जा सकता है। (iii) राजनैतिक घटनाओं में कतिपय सामान्य रूप से पायी जाने वाली समानताएं एवं असमानताएं होती हैं। उनके आधार पर घटनाओं के आदर्श प्रारूप (Ideal-type) तैयार किये जा सकते है। उनकी सहायता से यथार्थ घटनाओं का वस्तुपरक अध्ययन

सम्भव हो सकता है। (iv) यह देखा गया है कि विभिन्न समूहो या घटनाओ मे से कुछ ऐसी इकाइया चुनी जा सकती है जो उनके सदस्यो या घटनाओ की मूलभूत विशेषताओ का प्रतिनिधित्व कर सकती हो। दूसरे शब्दो मे, प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन (Sample) या न्यादर्श सम्भव है। (v) मूल्य सापेक्षवाद के सन्दर्भ मे यह मान लिया गया है कि तटस्थ अध्ययन सम्भव है, और अनुसधान मे पूर्वाग्रहो, निजी मूल्यो के प्रभाव आदि से बचा जा सकता है।

हीज यूलाउ ने समाजविज्ञान के पद्धति-विज्ञानो का विश्लेषण करते हुए उन्हे दो वर्गों मे विभाजित किया है—प्रथम वर्ग, सभी समाजविज्ञानो तथा प्राकृतिक विज्ञानो के लिये एक ही प्रकार के पद्धति-विज्ञान का प्रतिपादन करता है, तथा दूसरा वर्ग, समाजविज्ञानो के लिये पृथक् तथा विशिष्ट पद्धति-विज्ञान विकसित करने का आग्रह करता है।[5] इस दूसरे वर्ग मे भी एक नया वर्ग उभरा है जो राजविज्ञान के लिये अपना पद्धति-विज्ञान विकसित करने का समर्थन करता है। वास्तव मे, राजनीति के अध्ययन-विश्लेषण का अपना पद्धति-विज्ञान होना चाहिए। मीहान ने लिखा है कि 'कोई भी प्रविधि और कोई भी पद्धति इसीलिए अनुशासन 'ब' के लिये उपयोगी नही मानी जा सकती है कि वह अनुशासन 'अ' के लिये उपयोगी सिद्ध हुई है।'[26]

लगभग एक दो दशक पूर्व पद्धति-विज्ञान मे केवल तथ्यो के परीक्षण एव सग्रह की चर्चा की जाती थी किन्तु अब उसके क्षेत्र मे पर्याप्त विस्तार हो गया है। राजनीति के पद्धतिशास्त्र मे, (i) ज्ञानशास्त्र एव विज्ञान की धारणा, (ii) वैज्ञानिक पद्धति तथा उसका स्वरूप, (iii) मूल्यो की स्थिति, (iv) विषय-वस्तु की प्रकृति तथा, (v) प्रविधिया शामिल की गयी हैं। इनम से प्रथम दो दर्शनशास्त्र तथा विज्ञान के दर्शन विषयो से सम्बन्ध रखते हैं। शेष का विवेचन यथास्थान किया गया है। ड्रिस्कोल एव हायनेमैन ने अनुसधान-प्रविधि शास्त्र मे अनेक विषयो को शामिल किया है, यथा, ज्ञान की समस्या, विज्ञान का इतिहास, ज्ञान का समाजशास्त्र, समाजविज्ञान मे पद्धतिया, तथा राजविज्ञान मे पद्धतिया—इसमे प्रविधियो एव सिद्धान्त का विवेचन शामिल हैं। उसमे औपचारिक व्याख्याओ तथा सैद्धान्तिक दावो के प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित नियमो का विश्लेषण तथा प्रविधियो का प्रयोग का कलात्मक एव दक्षता सम्बन्धी पक्ष, दोनो शामिल हैं।

पद्धतियो एव प्रविधियो (Methods and Techniques) का, अभिमुखन, उपागम (Approach), एव सिद्धान्त[27] से सीधा सम्बन्ध होता हैं। इनका आगे विवेचन किया गया हैं। पद्धति (Method) तथ्यो को प्राप्त करने की सम्पूर्ण प्रक्रिया को कहते हैं। उसमे *प्रक्रिया की वैज्ञानिकता, औचित्य, पर्याप्तता, सगति (Relevance) आदि का विचार किया* जाता हैं। प्रविधियो (Techniques) का स्वरूप नैत्यिक (Routine), दक्षता प्रधान (Skill), क्रिया कौशलपूर्ण (Manipulative), तथा तकनीकी होती हैं। ये सम्बन्द्ध तथ्यो को कुशलतापूर्वक उपलब्ध करने तथा प्रस्तुतीकरण के उपकरण हैं। पद्धति और प्रविधि मे व्यापकता, स्तर, कार्यप्रधानता, नैत्यिकता, गुण एव मात्रा का अन्तर होता हैं। प्राय. प्रत्येक विज्ञान के पास अपनी अनेक क्रियात्मक प्रविधिया होती हैं। लेकिन कोरी प्रविधिया किसी पद्धतिविज्ञान का निर्माण नही करती। यद्यपि इन दोनो का घनिष्ठ सम्बन्ध होना है। प्रविधियो के विकास मे सामाजिक-आर्थिक प्रगति, तकनीकी विकास तथा सास्कृतिक उन्नति का पर्याप्त हाथ होता है। प्रविधिया शोध या सिद्धान्त का महत्त्वपूर्ण उपकरण होती हैं। किन्तु पद्धतिविज्ञान से किसी प्रविधि को ऊपर या श्रेष्ठ नही माना जा

सकता। इसी प्रकार पद्धतिशास्त्र को भी विषय या अनुशासन से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं मानना चाहिए। राजनीति पद्धतिशास्त्र राजनीति-विज्ञान का पर्यायवाची या समकक्ष नहीं है।

राजनीतिक अनुसंधान-प्रविधि या पद्धतिविज्ञान को व्यापक एवं संकुचित, दो दृष्टियों से समझाया जा सकता है। व्यापक दृष्टिकोण से, यह अनुभवपरक सिद्धान्त, शोध-प्ररूपना (Research design) तथा उनसे सम्बद्ध शोध प्रविधियों का निकाय है।[8] संकुचित दृष्टिकोण से उस विशेष तौर पर, परिमाणात्मक विषय-सामग्री के विश्लेषण से प्रयुक्त शोध-प्रविधियों तथा विश्लेषण क्रियाओं से सम्बन्धित माना जाता है। मेंगा एवं वाटसन के अनुसार पद्धतिविज्ञान उन प्रक्रियाओं को कहते हैं जिनके द्वारा शोधक घटनाओं का वर्णन व्याख्या एवं पूर्वकथन करते हैं। शोध-पद्धतिविज्ञान में अनुसंधान करने से सम्बन्धित विभिन्न पद्धतियों का वर्णन, स्पष्टीकरण एवं मूल्यांकन किया जाता है। राजनीतिशास्त्र को भी समाजशास्त्र एवं अर्थशास्त्र की तरह अपनी सुविकसित मापन (Measurement) प्रविधियाँ तथा अन्य पद्धतिशास्त्रीय रूपरेखा बनानी पड़ती है। राजनीतिक तथ्य अपनी प्रकृति, प्रभाव एवं व्यवहार में विशिष्ट होते हैं। उनका अध्ययन करने से सम्बन्धित शोध-प्रक्रियाएं पद्धतियाँ तथा प्रविधियाँ अन्य समाजशास्त्रों के समान नहीं हो सकती। इनका स्वतन्त्र रूप में विकास करना राजविज्ञान को एक सुविकसित अनुशासन बनाने के लिये आवश्यक है। राजविज्ञान के पद्धतिशास्त्र का मूल लक्ष्य एवं प्रामाणिक, परिशुद्ध तथा सत्यापित सामान्य सिद्धान्त विकसित करना है। इसके लिये यह आवश्यक है कि पद्धतिशास्त्र में निर्वचन के नियम, व्याख्या को स्वीकार्य बनाने के लिये समुचित आधार, शोध प्ररूपनाएं, तथ्य संग्रह की प्रविधियां आदि विकसित की जाय।

पद्धतिशास्त्र के प्रकार एवं उद्देश्य (Objectives and Kinds of Methodology)

शोध पद्धति शास्त्र के दो प्रकार पाये जाते हैं—(i) अनुभवपरक (Empirical), तथा, (ii) आदर्शात्मक (Normative) अनुभवपरक या यथार्थ शोध पद्धति शोधकर्ताओं के वास्तविक व्यवहार का विवेचन एवं विश्लेषण करती है। आदर्शात्मक शोधशास्त्र यह बताता है कि अनुसंधानकर्ताओं को सही शोध करने के लिए क्या करना चाहिए। इसमें शोध के मानदण्ड स्थापित किए जाते हैं जिनके आधार पर शोध-कार्यों का मूल्यांकन किया जा सके। प्रस्तुत ग्रन्थ में दोनों स्वरूपों को ध्यान में रखकर पद्धतिशास्त्र का विवेचन किया है। पद्धतिशास्त्र के 'वैज्ञानिक' या अनुभवपरक पक्ष को 'पद्धतिविज्ञान' (Methodology) या 'पद्धतियों का विज्ञान' (Science of Methods) कहा गया है।

इसके अन्तर्गत अनुसंधान-कर्त्ता शोध करते हैं। उनके शोध-कार्यों को तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है—(i) मौलिक या विशुद्ध शोध (Fundamental or Pure Research), (ii) प्रयोगात्मक शोध (Applied Research) तथा (iii) क्रियात्मक शोध (Action Research)। मौलिक शोध का उद्देश्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति, शुद्धि एवं वृद्धि होती है। इसमें शोधक का ध्यान मौलिक सिद्धान्तों व नियमों की प्राप्ति की ओर रहता है। यह नवीन घटनाओं एवं तथ्यों का अध्ययन करके पुराने ज्ञान या सिद्धान्त को चुनौती देता है। उसका उद्देश्य राजनैतिक जीवन, राजनैतिक बलों, गतियों (Dynamics) तथा सम्बन्धों का अध्ययन करके ज्ञान के सिद्धान्त में योगदान करना होता है। इससे राजनैतिक व्यवहार का सिद्धान्त निर्माण करने में सहायता मिलती है।

प्रयोगात्मक शोध राजनीति सम्बन्धी निर्णय लेने तथा उसका सही मूल्यांकन करने में सहायता देता है। इससे राजनेताओं, प्रशासकों, अध्येताओं तथा नागरिकों को लाभ होता है। इसमें विभिन्न सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है तथा उनके समाधान हेतु सुझाव दिये जाते हैं। निर्दिष्ट मूल्यों, लक्ष्यों तथा आदर्शों के सन्दर्भ में ऐसे समाधान रखे जा सकते है। इनसे एक तरफ शासकों को अपनी शक्ति बनाये रखने या बढ़ाने की दिशा मिलती है तो दूसरी ओर यथास्थिति को बदलने की प्रेरणा मिलती है। ऐसे अनुसंधानों से तात्कालिक समस्याओं का समाधान करने म सहायता मिलती है, चाहे वे युद्ध, अकाल या विघटन से सम्बन्धित हों, अथवा संविधान निर्माण, संगठन बनाने या लोकतन्त्रात्मक-विकेन्द्रीकरण का प्रयोग करने म।

किन्तु दोनों ही प्रकार के शोध एक दूसरे से सर्वथा पृथक् नहीं होते। सिद्धान्त और व्यवहार आगे चलकर एक-दूसरे म मिल जाते हैं। विशुद्ध शोध से जो सिद्धान्त या नियम निकलते हैं वे राजनीति के प्रयोग एवं व्यवहार को प्रभावित करते है। उसी प्रकार, प्रयोगात्मक शोध यद्यपि तात्कालिक समस्याओं के समाधान में सहायक होती है, फिर भी उससे जो निष्कर्ष या नियम निकलते हैं वे सिद्धान्त के स्वरूप को अवश्य प्रभावित करते है। प्रयोगात्मक शोध मे शोध के उन्हीं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है जिनका कि विशुद्ध शोध में। प्रयोगात्मक शोध राजनैतिक जीवन को समझने तथा उस पर नियन्त्रण प्राप्त करने में सहायक होती है। वह विश्वसनीय प्रमाणों एवं तथ्यों को प्रस्तुत करती है तथा उपयोगी प्रविधियों का विकास करके मौलिक शोध को उपकरण प्रदान करती है। क्रियात्मक शोध प्रयोगात्मक शोध से मिलता-जुलता होता है। इसका भी सम्बन्ध राजनैतिक जीवन की समस्याओं एवं घटनाओं से होता है। राजनैतिक शोध के निष्कर्षों को जब किसी तात्कालिक या भावी समस्या के समाधान में प्रयुक्त करने के लिये शोध किया जाता है तो उसे क्रियात्मक शोध कहा जाता है। गुड एवं हैट के अनुसार 'क्रियात्मक शोध उस कार्यक्रम का भाग होती है जिसका लक्ष्य वर्तमान अवस्थाओं को बदलना होता है।' प्रजातीय तनाव में कमी लाने या निर्वाचन-प्रणाली में सुधार लाने के लिये शोध करना क्रियात्मक शोध कहलायेगी। इसमें घटना या समस्या के क्रिया पक्ष पर ध्यान दिया जाता है तथा अधिकाधिक सहयोग लेने पर जोर दिया जाता है। वस्तुतः राजनीति-विज्ञान के विकास, महत्त्व एवं उपयोगिता को बढ़ाने के लिए दोनों ही पक्षों पर जोर दिया जाना चाहिए। दोनों प्रकार के शोध एक-दूसरे के लिये सहायक एवं पूरक होते हैं। यंग के शब्दों में, 'इन दो प्रकार की शोध के मध्य कठोर विभाजन-रेखा नहीं खींची जा सकती। प्रत्येक का विकास और सत्यापन एक-दूसरे पर निर्भर है।'

प्रयोगात्मक एवं क्रियात्मक शोध भी नये तथ्य प्रदान कर सकते हैं। वह सिद्धान्त के आनुभविक परीक्षण तथा अवधारणाओं के स्पष्टीकरण में सहायक होते हैं। उसके द्वारा विभिन्न सिद्धान्तों तथा निष्कर्षों को समन्वित (Integrate) तथा नवीन धारणाओं का विकास भी किया जा सकता है। उधर विशुद्ध शोध का लक्ष्य व्यापक होता है किन्तु उसका स्वरूप सामान्य ज्ञान की तुलना में उच्चतर होता है। उससे अन्य शोधकार्यों के लिये व्यापक एवं प्रामाणिक आधार मिल जाता है।

शोध कार्यों को (i) तथ्यों की खोज (ii) पहले से ही उपलब्ध सूचनाओं के निर्वचन, तथा, (iii) सिद्धान्त निर्माण के आधार पर भी विभाजित किया गया है। शिवेली ने उन्हें दो आधारों पर विभक्त किया है यथा, (i) लक्ष्य, जिसकी प्राप्ति के लिये शोध का उपयोग किया जायगा, तथा (ii) विशिष्ट दृष्टि जिसके द्वारा वास्तविकता (Reality) का अवलो-

वन किया जाता है। इन्हें वहा (i) प्रयोगात्मक एव (ii) मनोरंजनात्मक (Recreational) कहता है।[29] इन दोनों का पुन उपवर्गीकरण और किया जा सकता है। जैसे, (i) अनुभव आधारित, तथा, (ii) अनुभवातीत। आदर्शात्मक दर्शन से सम्बन्धित शोध प्रयोगात्मक किन्तु अनुभवातीत (Non-empirical) हो सकती है, किन्तु अभियान्त्रिक-शोध-अनुभवात्मक तथा प्रयोगात्मक होती है। एक औपचारिक (Formal) सिद्धान्त मनोरंजनात्मक किन्तु आनुभविकता-विहीन होता है। किन्तु सिद्धान्त-उन्मुख शोध मनोरंजनात्मक तथा आनुभविक दोनों ही होती है। आदर्शात्मक शोध 'चाहिए' के इर्द-गिर्द कार्य करती है। प्रयोगात्मक शोध समस्या समाधान की ओर झुकी हुई होती है। किन्तु राजनैतिक अभियान्त्रिकी (Political Engineering) बिल्कुल नहीं सिखायी जाती। इसी से राजविज्ञान की उपयोगिता घट जाती है।

इसके अतिरिक्त दो और महत्त्वपूर्ण परिप्रेक्ष्य (Perspectives) पाये जाते हैं—(अ) विधेयवाद या प्रत्यक्षवाद (Positivisim), तथा, (ब) घटना-क्रिया-विज्ञानवाद (Phenomenologism) प्रत्यक्षवाद का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। ऑगस्त कॉम्त, एमाइल दुर्खीम आदि इसके प्रतिनिधि माने जा सकते हैं। इसमें राजनैतिक घटनाओं व तथ्यों और कारणों का देखा जाता है और व्यक्तियों की मनोदशा की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। घटना क्रिया विज्ञानवादी परिप्रेक्ष्य की शुरुआत मैक्स वेबर से हुई है। इसका सम्बन्ध कर्ता के दृष्टिकोण से मानव-व्यवहार को समझने से है। घटना-क्रिया विज्ञानवादी यह जाँच करता है कि विश्व का किस तरह अनुभव किया जाता है। उसके लिए यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि लोग उसको क्या समझते हैं?

प्रत्यक्षवाद एव घटना-क्रिया विज्ञानवाद दोनों की समस्याएँ, समाधान एव परिप्रेक्ष्य भिन्न हैं। इस कारण दोनों की गवेषणा-पद्धतियाँ भी अलग-अलग हैं। प्रत्यक्षवाद उन 'तथ्यों' एवं 'कारकों' को ढूँढता है, जिन्हें सर्वेक्षण, प्रश्नावलियों, जनसांख्यिकीय (Demographic) विवरण आदि में जाना जाता है। ये मात्र स्पष्ट आँकड़े या समंक (Data) प्रस्तुत कर सकते हैं। घटना क्रिया-विज्ञानवादी सहभागी अवलोकन, मुक्त-साक्षात्कार, तथा वैयक्तिक लेखों जैसी गुणात्मक पद्धतियों के द्वारा बोध (Understanding) प्राप्त करना चाहते हैं। आदर्शात्मक दर्शन एव शोध तथा औपचारिक सिद्धान्त आनुभविकता विहीन (Non empirical) होते हैं तथा वे केवल अप्रत्यक्ष रूप से ही तथ्यों से सम्बन्ध रखते हैं। वे प्राय राजनीति की प्रचलित मान्यताओं के अनुसार ही होते हैं। इस कारण, वे कोई नई सूचना नहीं देते। सिद्धान्त-उन्मुख तथा प्रत्यक्षवादी शोध राजनैतिक घटनाओं के 'क्या' और 'क्यों' से सम्बन्ध रखती है। यह क्रियात्मक शोध की तरह आनुभविक होती है। उसकी दृष्टि या तो नये सिद्धान्त विकसित करने अथवा पुराने सिद्धान्तों को बदलने या पुष्ट करने की ओर रहती है। परन्तु वास्तविक व्यवहार में दोनों मिश्रित रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति शोध में तथ्यों के साथ-साथ दूसरे सिद्धान्तों के साथ उनके तालमेल एव सगति की ओर देखता है।

उपयोगिता (Utility)

पर्सग्लिवर एव बाट्ज के अनुसार प्रत्येक विषय का विकास उसके अनुरूप पद्धतियों के विकास पर निर्भर रहता है।[30] विशेष विषय के लिये विशेष प्रविधियों की आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से राजवैज्ञानिक उपयुक्त पद्धतियों के अभाव में अपनी विषय-सामग्री को समझने में सक्षम नहीं हो पाते। अतः विषय के अध्ययन हेतु उपयुक्त उपकरणों एव प्रविधियों का प्रभाव हमें यह बताता है कि हम अपनी विषय-सामग्री को ठीक से समझने में

असमर्थ हैं। वास्तविक समस्या यह नहीं है कि ये प्रविधियां अनुशासन की सामग्री के अनुकूल नहीं बनायी जा सकती, बल्कि यह है कि इनको ज्यों का त्यों अपनाने में अनेक आपत्तियां हैं। अन्य अनुशासनों से उधार ली गयी पद्धतियों एवं प्रविधियों के साथ उन्हीं के क्षेत्र सम्बन्धी विचार जुड़े रहते हैं। उन्हें राजविज्ञान में अपनाने से पूर्व राजवैज्ञानिक विचारबंध का आधार प्रदान किया जाना चाहिए। अन्यथा हम अपनी केन्द्रीय रुचि के सिद्धान्तों को छोड़कर अन्य वस्तुओं का परीक्षण करने लग जायेंगे। शोध के परिणाम पद्धतियों से अधिक श्रेष्ठ नहीं हो सकते।[31] पद्धतियां एवं प्रविधियां साधन होते हुए भी साध्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

अब तक राजविज्ञान के अध्येता एवं शोधक दूसरे विषयों के पद्धतिविज्ञानों के अध प्राप्तकर्ता रहे हैं। उन्होंने उन पद्धति विज्ञानों के मूलाधारों को अपने विषय के सन्दर्भ में कभी कोई चुनौती नहीं दी है। परिणाम यह हुआ है कि अनुसंधान प्रविधि एक बोझा या शिष्टाचार मात्र बनकर रह गयी है। उसे डिग्री या नौकरी पाने का सहायक उपकरण बना दिया है। जिस पद्धतिशास्त्र को एक खेल, एक आवश्यकता, एक आनन्द तथा एक अनिवार्यता मानना चाहिए था, एवं जिसके बिना राजविज्ञानी को कुछ भी बोलना या लिखना नहीं चाहिए, उसके साथ ऐसी दयनीय स्थिति एक दुर्भाग्य ही कहा जाएगा। न्यूकोम्ब के मतानुसार, पद्धति वैज्ञानिक अस्त्र-शस्त्र सैनिक शस्त्रों की तरह देश, काल और परिस्थितियों की उपज होते हैं। किन्तु शैक्षिक हार-जीत एवं मान्यता का प्रश्न हथियारों की श्रेष्ठता पर ही निर्भर होता है। किसी भी अनुशासन की परिपक्वता उसके पद्धति-वैज्ञानिक (Me hodological) परिष्करण (Sophistication) पर आधारित मानी जाती है।

इसके विपरीत, पद्धतिविज्ञान के विषय में राजवैज्ञानिकों की चुप्पी ने नयी पद्धतियों एवं प्रविधियों को विकसित करने एवं सीखने से रोक दिया है। अधिकांश राजविज्ञानी उधार ली हुई, जड़ एवं अनुपयोगी पद्धतियों के जाल में जकड़ गये हैं। इसका नतीजा यह हुआ है कि विषय-सामग्री तथा प्रविधियों के बीच में एक चौड़ी खाई बन गयी है। अतएव यह आवश्यक है परम्परागत पद्धतियों एवं प्रविधियों की समीक्षा की जाय तथा उन्हें आलोचना की कसौटी पर कसा जाय। सामान्य भाषा और शोध की खगोय बोली (Jargon) में जो अन्तर आ गया है उसे मिटाया जाय। प्राइस ने आह्वान किया है कि पद्धतियों एवं प्रविधियों को शोधविज्ञान के अनुकूल बनाया जाय अन्यथा तथाकथित राजविज्ञानी सृजनात्मक कार्य करने के बजाय राजनीति का कोरा विश्लेषण मात्र करते रहेंगे। यह कार्य सरल नहीं है। इसको करने के लिये बड़े भारी त्याग एवं कष्टसहन की आवश्यकता है, क्योंकि कोई भी शासक राजनेता या प्रशासक नहीं चाहता है कि उसके शक्ति, प्रभाव या सत्ता के रहस्य को खोलकर आम जनता अथवा उसके विरोधियों के समक्ष रख दिया जाय। जो भी ऐसा करेगा उसे सदैव जान माल का खतरा मोल लेना होगा। उसे कानून, नैतिकता, जनता आदि के द्वारा भी नहीं बचाया जा सकेगा।[32] हो सकता है कि उसके शोध-परिणामों के प्रकाशित होने से पूर्व ही उसको नष्ट कर दिया जाय। निस्सन्देह बहुत कम 'सुकरात' जैसे व्यक्ति मिलेंगे जो राजविज्ञान की बलिवेदी पर प्राणों की आहुति देने के लिये तैयार हो जाय।

किन्तु राजविज्ञानियों को उक्त दायित्व वहन करना ही होगा। विकासशील देशों, विशेषकर भारत में, ऐसा करना और भी अधिक आवश्यक है। मनुष्य एक विवेकशील राजनैतिक प्राणी है। वह अपनी राजनैतिक व्यवस्था को जानना और समझना चाहता है

ताकि वह उसमे वाछनीय परिवर्तन करने म सक्षम हो सके । कई बार अनेक नवीन एव अप्रत्याशित राजनैतिक घटनाएँ सामने आ जाती हैं और शासक एव प्रशासक दोनो ही उन्हें नही समझ पाते । उनके तात्कालिक एव दीर्घगामी समाधान विभिन्न विकल्पो के साथ सामने रखे जाने चाहिए । ऐसा करने मे राजनैतिक अज्ञान का नाश होगा तथा वर्तमान व्यवस्था को दैव और भाग्य का चक्र मानने से बचाया जा सकेगा । राजविज्ञान का पद्धतिशास्त्र समाज एव राजव्यवस्था की समस्याओ का वस्तुपरक अध्ययन करने का आधार बन सकेगा तथा क्रियात्मक समाधान तैयार कर सकेगा । इससे राजनैतिक प्रगति होगी तथा राजनीति पर समाज के प्रगतिशील तत्त्वो द्वारा नियन्त्रण रखा जा सकेगा । शैक्षिक दृष्टि से एक व्यापक व्याख्यात्मक सिद्धान्त का निर्माण किया जा सकेगा । इससे राजविज्ञान को अन्य विज्ञानो की तुलना मे स्वामी-विज्ञान (Master Science) बनाने मे सहायता मिलेगी । ऐसा विज्ञान, प्रयोगात्मक स्तर पर, विभिन्न क्षेत्रो म मानव-समाज की समस्याओ का समाधान करने मे सहायक होगा ।

ऐसे पद्धतिशास्त्र का विवेचन करने से पूर्व यह आवश्यक है कि पहले 'राजनीति' को ठीक तरह स समझा जाय, ताकि विषय-सामग्री के अनुकूल पद्धति एव प्रविधियों का विकास किया जा सके । 'राजनीति' का विवेचन अगले अध्याय मे किया गया है ।

सन्दर्भ

1 Bernard S Phillips Social Research Strategy and Tactics (New-York Macmillan Company, 1966), p 3

2. इस ग्रन्थ म पद्धति शास्त्र, पद्धति-विज्ञान, अनुसधान प्रविधि, शोध विज्ञान, शोध-पद्धतिविज्ञान आदि शब्दो को पर्यायवाची माना गया है । ये सभी सज्ञाएँ अग्रेजी के 'रिसर्च मैथेडोलॉजी' (Research Methodology) के समकक्ष हैं । लघु रूप होने के कारण यहाँ 'अनुसधान प्रविधि' शब्द को अपनाया गया है ।

3 Pauline V young, Scientific Social Surveys and Research, New Delhi, Prentice-Hall of India, 1973, p 44

4 Robert T Golembiewski, William A Welsh, and William J Crotty, A Methodological Primer for Political Scientists, Chicago, Rand Mcnally & Co, 1962, p 2

5 Eugene J Meehan, The Theory and Method of Political Analysis, Homewood Illinois, Dorsey Press, 1965, p 8

6 Giovanni Sartori, 'Concept Misformation in Comparative Politics', American Political Science Review, Vol LXIV, No 4, 1970, 1033

7 Heinz Eulau, 'Political Behaviour', Vol 12, International Encyclopaedia of Social Sciences 1968, 203-14

8 C P Bhambhri, 'Teaching of Political Science in Indian Universities Some Observations', Political Science Review, 9, 3-4, July Dec 1970, pp 337-46, P E Temu 'Some Reflections on the Role of Social Scientists in Africa,' Newsletter, V,

3–4 July 74, Feb 75, 9–14, ICSSR, Report on Asian Conference on Teaching and Research in Social Sciences, 21–26 May, 1973, Gerald Hursh Cesar, adso, Third World Surveys, Delhi, Macmillan Co of India, 1976 Chap 1

9 श्यामलाल वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1977 द्वितीय सस्करण, पृ 15–17

10 Andre Beteille, 'The Problem', SEMINAR, 157–The Social Sciences– Sept 1972, pp 10–14

11 Abraham Kaplan, **The Conduct of Inquiry Methodology of Behavioural Science**, New York Chandler Publishing Co , 1963, p. 397

12 J P Naik, 'Development of Social Science Research in India—A *Draft Statement of Policy*', ICSSR, *Newsletter*, II (1), Jan 1971, pp 3–7, K K Singh, The Growth of Social science Research in India—Issues and Prospects', ICSSR , Newsletter, III (2), March 1972, pp 3–8

13 M Mukherjee, 'On a system of social statistics and social Indicator for India, ICSSR, Newsletter, VII (1 and 2), April-Sept. 1976, pp 1-20

14 इस पुस्तक मे सर्वत्र 'राजनैतिक' एव 'राजनीतिक' शब्दो मे अन्तर रखा गया है। अंग्रेजी मे दोनो के लिए एक ही शब्द 'पॉलिटिकल' (Political) का प्रयोग किया जाता है। लेकिन यहाँ शक्ति, सघर्ष प्रभाव, प्रतियोगिता आदि यथार्थ गतिविधियो का प्रसग होने पर 'राजनैतिक', तथा उनका वैचारिक, विश्लेषणात्मक या सैद्धातिक प्रयोग होने पर 'राजनीतिक' विशेषण का प्रयोग किया गया है।

15 Phillips, op cit, p 64

16 'scientist' के लिए 'विज्ञानी' एव 'वैज्ञानिक' दोनो शब्दो का प्रयोग किया गया है। किन्तु सक्षेप एव सुरुचि की दृष्टि से 'Political scientist' के लिए 'राजनीति-विज्ञानी' की जगह 'राजविज्ञानी' अथवा 'राजवैज्ञानिक' शब्द को अपनाया गया है। इसी प्रकार 'राजनीति-विज्ञान' तथा 'राजनीति शास्त्र' के लिए क्रमश 'राजविज्ञान' तथा 'राजशास्त्र' शब्दों का प्रयोग किया गया है। विषय के आधुनिक स्वरूप को 'राजविज्ञान' तथा परम्परागत पक्ष को 'राजशास्त्र' शब्द से सम्बोधित किया गया है।

17 Preface, Political change, Vol II, 1 (January-June, 1979) IX-X, वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, वही अध्याय 6।

18 Bernard Berelson and Gary A Steinir, **Human Behaviour : An Inventory of Scientific Findings** NewYork, Harcourt, Brace & World, 1965

19 C A Moser and G Galton Survey Methods in Social Investigation London Heinemann Educational 1971 p 3

20 Pauline V Young Scientific Social Survey and Research Indian 6th edition Prentice Hall of India New Delhi 1979 p 44

21 Robert T Holt and John E Turner (eds) The Methodology of Comparative Research NewYork Free Press 1970 p 2

22 Felix Kaufman Methodology of the Social Sciences New York Oxford University Press 1944 p VII

23 P F Lazarsfeld and M Rosenberg eds The Language of Social Research Glencoe Illinois Free Press 1955 p 4

24 George J Graham Methodological Foundations for Political Analysis Massachusetts Xerox College Publishing House 1971 p 24

25 Jean M Driscoll and Charles S Hyneman Methodology for Political Scientists in Eulau et al Political Behaviour New Delhi Amerind Publishing Co (1956) 1972 pp 405 21

26 Engene J Mechan The Theory and Method of Political Analysis Illinois Dorsey Press 1965 p 188

27 Theory के लिए सिद्धान्त शब्द का प्रयोग किया गया है। किन्तु Principle के लिए भी हिन्दी में सिद्धान्त शब्द को काम में लाया जाता है। इससे भ्रान्ति उत्पन्न होना स्वाभाविक है। दोनों के मध्य मौलिक अन्तर को बनाये रखने के लिए Principle को हिन्दी शब्द कार्यसिद्धान्त या विचार सिद्धान्त या नियम से सम्बोधित किया गया है।

28 Dickinson Mcgaw and George Watson Political and Social Inquiry New York John Wiley and Sons Inc 1976

29 त्रिवेदी ने मौलिक या आधारभूत के स्थान पर मनोरंजनात्मक शब्द का प्रयोग किया है। उसमें दो तरह के अर्थ या मनोरंजन ध्वनित होते हैं (1) बुद्धि के प्रयोग का आनन्द ( ) वस्तुओं को समझने की दृष्टि से उत्पन्न सुख।

30 Leon Festinger and Daniel Katz eds Research Methods in Behavioural Sciences New Delhi Amerind Publishing Co (1950) 1976 pp VI–VIII

31 Theodore M New Comb The Interdependence of Social Psychological Theory and Methods A Brief Overview in Festinger and Katz op cit p 1

32 Gideon Sjoberg ed Ethics Politics and Social Research London Routledge & Kegan Paul 1967

□ — □

अध्याय 2

राजनीति : प्रकृति एवं परिप्रेक्ष्य

(Politics : Nature and Perspectives)

प्राचीन काल में हुए अनेक युद्धों तथा बीसवीं शताब्दी के दो विश्व-युद्धों की भयानकता से राजनीति' के महत्त्व का पता चलता है। तृतीय विश्व युद्ध का भय इस विषय पर और भी अधिक गम्भीरता से विचार करने को विवश करता है। राजनीति की केन्द्रीय भूमिका राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलनों एवं तृतीय विश्व के विकास के साथ जुड़ी हुई है। राजनीति की अवहेलना करके कोई भी चिन्तन या व्यवस्था स्थायी नहीं बन सकती। चाहे प्लेटो, अरस्तू या मार्क्स ने ऐसा किया हो या अतीत काल के धर्म एवं चर्च के समर्थकों ने।[1] कोई भी शासक या तानाशाह 'राजनीति' को सशस्त्र पहरे में बिठाकर सुख की नींद नहीं सो सकता। कोई चाहे या न चाहे, उसके प्रभाव को माने या न माने, घर और बाहर राजनीति सब को प्रभावित करती है। समाज में रहने वाला व्यक्ति राजनीति के प्रभाव से बच नहीं सकता।

कुछ लोग राजनीति से घृणा करते हैं। उसे मानव का दुर्भाग्य समझते हैं। वे राजनीति से उत्पन्न अराजकता, गन्दगी और गड़बड़ी को कोसते हैं, लेकिन वे भूल जाते हैं कि उनका इलाज भी राजनीति ही है। राजनीति ही मूल्यों, लक्ष्यों और आदर्शों को साकार करा सकने वाली बाह्य परिस्थितियाँ प्रदान करती है। कोई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत जीवन या अन्तःकरण में कतिपय सद्गुणों को भले ही प्राप्त कर ले, किन्तु उन गुणों का सामुदायिक तथा सामाजिक स्वरूप राजनीति के माध्यम से ही प्राप्त होता है। अच्छे शासन द्वारा लाखों व्यक्तियों का कल्याण किया जा सकता है जबकि एक सन्त केवल अपना या अपने शिष्यों का ही भला कर पाता है।

'राजनीति' के दो पहलू पाये जाते हैं—प्रथम, व्यावहारिक या क्रियात्मक, जिसमें सत्ता, शक्ति या प्रभाव प्राप्त करने में रुचि रखने वाले व्यक्ति गतिविधियाँ करते हैं तथा संगठन बनाते हैं। अपना प्रभुत्व बनाये रखने के लिए विचारवाद (Ideology) का सहारा लेते हैं तथा बाहुबल, प्रचार आदि साधनों का प्रयोग करते हैं। वे ही राजनीति की वास्तविक सामग्री प्रस्तुत करते हैं। द्वितीय, राजनीति के व्यावहारिक या क्रियात्मक रूप का अध्ययन तथा ऐसे अध्ययनों का अध्ययन। यह वास्तविक राजनीति का शैक्षिक या विश्लेषणात्मक स्वरूप है। इस क्षेत्र में भी 'राजनीति' के तत्त्व को पूरी तरह नहीं समझने जाने के दुष्परिणाम सामने आये हैं। कभी राजनीति को व्यापक बना दिया गया, तो कभी संकुचित। उसे अन्य विषयों के अधीन मानने तथा औपचारिक राजनैतिक संस्थाओं तक सीमित कर दिये जाने से 'राजनीति' का एक बड़ा भाग राजविज्ञान के अध्ययन-क्षेत्र से पृथक् हो जाता है। 'राजनीति विज्ञान' को 'राज्य-विज्ञान' मात्र बना देने से कई हजार वर्षों की राजनीति, राजविज्ञान के द्वारा अध्ययन नहीं की जा सकी, और अब वही मानवशास्त्र (Anthropology) की विषय-सामग्री बन गयी है। राजनीति का कई गुणा अधिक प्रभाव और प्रसार 'राज्य और उसकी संस्थाओं' के बाहर भी रहता है। 'राज्यों के

बाहर राजनीति' (Politics without States) का अध्ययन पिछले दो दशकों से ही किया जाने लगा है। राज्यविहीन समाज और संगठनों में तथा राज्य के अतिरिक्त अन्य औपचारिक-अनौपचारिक संगठनों में भी राजनीति का निवास होता है। उसका यथावत् अध्ययन किया जाना चाहिए। राजनीति के अध्ययन के विषय में दो दृष्टिकोण पाये जाते हैं–प्राचीन तथा आधुनिक। पहले प्राचीन दृष्टिकोण का विवेचन किया जायेगा।

'राजनीति' की अवधारणा : प्राचीन दृष्टिकोण (Concept of 'Politics' : Traditional View)

'पॉलिटिक्स' प्राचीन यूनानी भाषा से लिया गया अंग्रेजी शब्द है। 'राजनीति'[2] अंग्रेजी शब्द 'Politics' का हिन्दी अनुवाद है। यह यूनानी 'पॉलिस' (Polis) से निकला है। इसका त्रुटिपूर्ण अनुवाद 'नगर-राज्य' (City-State) है, किन्तु वास्तविक भावानुवाद 'नगर-समुदाय' होना चाहिए। यह नगर-समुदाय राजनैतिक दृष्टि से 'सर्वोच्च एवं अन्तर्भावी (Inclusive) संघ' था जिसका उद्देश्य एक आत्म-निर्भर, सुसंगठित समुदाय में 'अच्छे जीवन' की प्राप्ति था। सभी दृष्टियों से उसमें अन्तर्राष्ट्रीय सन्दर्भ का अभाव था। इस प्रकार यूनानी दृष्टि से 'राजनीति' की तीन मौलिक धारणाएं थी– (i) यह सत्ता (Authority) से सम्बन्धित थी, (ii) वहां के राजनैतिक जीवन में नैतिकता तथा उसके माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति द्वारा आत्म-साक्षात्कार का बड़ा महत्त्व था। इन अर्थों में राजनीति-विज्ञान राजनैतिक मूल्यों का तथा उन्हें प्राप्त करने के साधनों का अध्ययन था। एक योग्य राजनीतिज्ञ मुख्यतः एक राजदार्शनिक था, तथा (iii) राजनीति का क्षेत्र असाधारण रूप से व्यापक था। उसकी धारणा पूरी तरह संस्कृति-बद्ध (Culture bound) थी। यह जीवन के सभी क्षेत्रों – शिक्षा, धर्म, समाज आदि तक व्याप्त थी।

प्राचीन भारत की शास्त्रीय दृष्टि से 'राजनीति' शब्द संस्कृत के दो शब्दों से मिलकर बना है—'राज' और 'नीति'। 'राज' का अभिप्राय 'राजा' है और 'नीति' का अभिप्राय 'ले जाना' है। 'राजा राज्यमपि प्रकृति सर्वेष' के अनुसार 'राजा' और 'राज' में अभेद है। 'राजनीति' का अर्थ राजा द्वारा राज्य के बुद्धिपूर्वक संचालन से था। इस विषय को प्राचीनकाल में 'नृपशास्त्र' या 'राजशास्त्र' भी कहते थे। यह राजा को व्यावहारिक आदर्श सिखाने वाला तथा उनका क्रियान्वित कराने वाला शास्त्र था।[3] राजनीति या दण्डनीति वेद धर्म, आश्रम, लोक-व्यवस्था आदि का मूलाधार माना गया था।[1] वर्तमान समय में 'राज' का अर्थ 'राजा' मान होकर 'राजनीति' या शासन नियन्त्रण से लिया जाता है।

यूनानी 'नगर-राज्य' के पश्चात् आज तक मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुके हैं। राष्ट्र, राज्य, प्रजातन्त्र, प्रतिनिधित्व, संघात्मक एवं स्थानीय शासन, संविधान, राजनैतिक दल, निर्वाचन आदि नवीन राजनैतिक विकासों के कारण राजनीति का अर्थ पूरी तरह से बदल चुका है।

राजनीति की आधुनिक धारणा (Modern View of 'Politics')

आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार, 'राजनीति' एक गतिविधि है अथवा एक विशिष्ट गतिविधि का अध्ययन है। उसका अर्थ समाज-व्यवस्था में अवस्थित उस प्रक्रिया या गतिविधि के रूप में लिया जाता है, जिसके द्वारा व्यवस्था के लक्ष्यों का चयन एवं क्रियान्वयन होता है। इस प्रक्रिया के आधार पर, किन्तु अस्थायी रूप से पुनराभिव्यक्त एवं क्रियान्वित

किया जाता है। उसमें सहयोग तथा द्वन्द्वों, दोनों ओर यदि आवश्यकता पड़े तो सत्ता के द्वारा विधि का प्रवर्तन एवं दमन भी निहित रहता है। राजनीति में विभिन्न प्रकार के समूह जैसे राजनैतिक दल, दबाव समूह आदि तथा व्यक्ति भाग लेते हैं। उसके स्वरूप समाज में रहने वाले मनुष्यों और समूहों के अन्त सम्बन्धों पर निर्भर रहता है। ये अन्त सम्बन्ध अन्य सामाजिक, आर्थिक सांस्कृतिक, जातीय आदि कारकों से भी प्रभावित होते हैं तथा सभी संगठित और असंगठित मानव-समाजों में पाये जाते हैं। 'राजनीति विशिष्ट प्रकार के अन्त सम्बन्धों का नाम है। ऊपरी तौर पर वह विशिष्ट मनुष्यों और समुदायों या समूहों द्वारा संचालित होती है, पर वास्तव में वह सर्वत्र विद्यमान है।

किन्तु बहुत कम राजविज्ञानियों ने राजनीति का व्यापक या सम्पूर्ण विचार चित्र (Paradigm) ग्रहण किया है। अधिकांश विचारकों ने राजनीति के एक विशिष्ट या संकुचित दृष्टिकोण को ग्रहण किया है। यहां ऐसे कतिपय दृष्टिकोणों का संक्षेप में उल्लेख किया गया है, ताकि राजनीति का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत किया जा सके।

राजनीति की धारणा (Concept) के विषय में ओरेन आर० यंग (Oran R. Young) ने विभिन्न दृष्टिकोणों का सामयिकता के आधार पर दो उपागमों (Approches) में विभाजित किया है[5]

(1) *परम्परागत जिसमें राज्य एवं उसकी संरचनाओं, इकाइयों आदि का संस्थात्मक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाता है तथा*

(2) *आधुनिक—जिसमें राजनीति के अनेक रूपों का प्रेक्षण (Observation) किया जाता है, जैसे (क) शक्ति, उसकी प्रकृति, अधिष्ठान (Locus), और प्रयोग (Utilization), (ख) एक इकाई के रूप में राजनैतिक व्यक्ति; (ग) मूल्यों के उत्पादन, वितरण और कार्यान्वयन, तथा (घ) नीतियाँ और नीति-निर्माण।*

यंग आगे चलकर 'राजनीति' की विभिन्नताओं को विचारकों की दृष्टियों से वर्गीकृत करता है·

(1) कुछ विचारक राजनीति को एक गतिविधि (Activity) या प्रक्रिया (Process) मानते हैं, जो सर्वत्र पायी जाती है किन्तु अंशकालिक (Part-Time) होती है। वह मानव-गतिविधियों का एक अंश होती है। इस व्यापक दृष्टि (Broadview) की तुलना में संकुचित दृष्टि वाले (Narrow view) विचारक राजनीति की पूर्णकालिक (Full-Time) संरचनाओं, जैसे-सरकार तथा तथा उसकी उप-इकाइयों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं।

(2) वैज्ञानिक पद्धति के समर्थक उसके वर्णनात्मक (Descriptive) स्वरूप को प्रधानता देते हैं, जबकि विज्ञानेत्तर विचारक मूल्यांकनात्मक (Evaluative) दृष्टि अपनाते हैं। इसे घटना-क्रिया विज्ञानवादी (Phenomenologist) *अथवा परिप्रेक्ष्यवादी (Perspectivism) दृष्टिकोण भी कहते हैं।*

(3) कुछ राजविज्ञानी राजनैतिक तथ्यों का चयन समानान्तर या क्षैतिज (Horizontal) धरातल पर, जैसे *सवदीय या असंसदीय सरकारों*, प्रशासन प्रणालियों आदि के रूप में करते हैं। *अन्य विश्लेषक लम्बवत् या उदग्र* (Vertical) वर्गीकरण, यथा, किसी एक देश विशेष की सरकार का सत्तात्मक

संगठन के रूप में विश्लेषण करते हैं। यह क्षैतिज अनेक तथा उदग्र एक का भेद है।

(4) राजविज्ञानियों का एक वर्ग,व्यवस्थाओं की आन्तरिक(Internal)संरचनाओं, प्रक्रियाओं, एकीकरण (Integration) आदि के स्तरों को अपना अध्ययन विषय बनाता है। दूसरा वर्ग, अन्त व्यवस्थात्मक प्रतिमानों (Intra-System Patterns) को दृष्टिगत रखता है जैसे समाजवादी व्यवस्थाओं की राजनीति का प्रतिमान।

(5) कतिपय अध्येता व्यवस्थाओं के प्रतिमान संधारण अर्थात् व्यवस्थाओं को बनाये रखने की समस्या को लेकर चलते हैं तथा उनके सन्तुलन और स्थायित्व जैसे प्रश्नों से जुड़ते हैं।

(6) अध्ययन की एक नयी धारा नियन्त्रण प्रतिमानों (Patterns of Control) तथा शक्ति और नियन्त्रण से सम्बन्ध रखती है। इसमें शक्ति, प्रभाव, विशिष्ट वर्ग (Elite) या अभिजन आदि की गवेषणा का विषय बनाया जाता है।

(7) कुछ विशेषक लक्ष्यों, प्रयोजनों आदि की उपलब्धि की दृष्टि से व्यवस्थाओं का अध्ययन करते हैं।

(8) अनेक राजविज्ञानी विभिन्न प्राथमिकताओं (Priorities) नीतियों, नीति-निर्णयों आदि को अपना विषय बनाते हैं।

(9) इस वर्ग का विकासशील देशों की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके द्वारा उद्भव या उद्विकास (Evolution), संक्रमण (Transition), विस्तार (Expension), वर्धन (Growth), आधुनिकीकरण या अधुनीकरण (Modernization), विभंग (Breakdown), क्रान्ति (Revolution), क्षय (Decay), अवनति (Decline) आदि स्थितियों पर अनुभवात्मक शोध किए जाते हैं।

(10) इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले विचारक विशिष्ट आंशिक राजनीतिक इकाइयों, जैसे विनिश्चयन या निर्णयन (Decision-making) समूह (Groups) आदि को अपना अध्ययन विषय बनाते हैं।

इस प्रकार, राजनीति के विषय में दो दृष्टिकोण हैं। परम्परावादी या पूर्व-व्यवहारवादी वर्ग के अनुसार, राजनीति का सामान्य अर्थ विशिष्ट मूल्यों की प्राप्ति के लिए राजनैतिक संरचनाओं—राज्य सरकार, दल, समूह, विभिन्न इकाइयां, शासन-प्रणालियों आदि का अध्ययन-विश्लेषण करना है। इसे संस्थात्मक दृष्टिकोण भी कह सकते हैं। इसमें गतिविधियों तथा प्रक्रियाओं की सतत (Persistent) व्यवस्थाओं या किसी समूह-व्यवहार के स्थायी प्रतिमानों का अध्ययन किया जाता है।[9] इसमें दर्शन, नैतिकता और राजनीति के मध्य प्रतिष्ठा पायी जाती है। अर्नेस्ट बार्कर ने एक प्रतिनिधि वाक्य में लिखा है कि 'राजनीति नैतिकता का ही व्यापक रूप है।' राजनीति को प्रायः एक कला, कुशल व्यवहार आदि के रूप में चित्रित किया जाता है। जैसे, 'राजनीति सम्भावना की कला है।' (बिस्मार्क) आदि। मैकाइवर ने उदारवादी राजनीति को प्रतिरोधी हितों के बीच अहमनात्मक समझौता (Adjustments) की विशिष्ट कला के रूप में वर्णित किया है। गेटल सीरॉक, स्ट्रांग, बर्गेस, पॉल जैनट, गार्नर, विलोबी, सिजविक, सीले आदि राजनीति के सीमित

तथा परम्परावादी रूप को ही ग्रहण करते हैं। इनके अनुसार, राजनीति राज्य, सरकार सम्प्रभुता आदि मे निवास करती है। उनके हाथो मे यूनानियो की राजनीति सम्बन्धी व्यापक धारणा सिकुड कर रह गयी है।

आधुनिक दृष्टिकोण राजनीति को व्यापक एव विविध रूपो मे देखता है। व्यवहारवाद (Behaviouralism) ने राजनीति के स्वरूप को व्यापक बनाने मे विशेष योगदान दिया है। मोटे तोर पर, राजनीति के वर्तमान रूपो को पाच शीर्षको के अन्तर्गत रखा जा सकता है प्रथम *शक्ति के अधिष्ठान, उपयोग तथा प्रतियोगिता के रूप* मे–इसमें शक्ति के सभी रूप सत्ता, प्रभाव, सघर्ष, द्वन्द्व युद्ध आदि आ जाते है। रॉब्सन के शब्दो मे, 'शक्ति को प्राप्त करना या बनाये रखना, उसका प्रयोग करना या दूसरो को प्रभावित करना, या उसके प्रयोग को रोकना' इस धारणा म शामिल है। द्वितीय, *एक व्यक्ति या लघु समूह* या अभिजन (Elite) की गतिविधिया। तृतीय, मूल्या का उत्पादन, निर्माण, चयन, वितरण आदि। ईस्टन का व्यवस्था दृष्टिकोण इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है। चतुर्थ, नीतियो तथा नीति निर्माण अथवा विनिश्चयन (Decision making) प्रक्रिया के रूप मे है। पचम, इसमे अन्य सभी दृष्टिकोणो को रखा जा सकता है, जैसे राजनीति को विश्व-शान्ति, विश्व राज्य की स्थापना, मानवता के विकास आदि के रूप मे अध्ययन करना। आधुनिक दृष्टिकोण की मूल बात यह है कि वह राजनीति को एक विशिष्ट गतिविधि, क्रिया, प्रक्रिया या अन्त क्रिया (Interaction) मानता है। राजनीति के अन्तिम आदर्शवादी रूप को, जिसे भविष्यवादी (Futurises) धारणा भी कहा जा सकता है, छोडकर शेष का सक्षिप्त विवेचन किया जायगा। इन सभी रूपो पर व्यवहारवादी आन्दोलन का गहरा प्रभाव पडा है, *अतएव इनका विवेचन व्यवहारवाद के बाद किया जाएगा।*

व्यवहारवादी क्रान्ति (Behavioural Revolution)

राजविज्ञान के इतिहास म व्यवहारवाद या व्यवहारपरकतावाद (Behaviouralism) का *बडा महत्त्व है। उसे एक महान क्रांति माना गया है। इस व्यवहारवादी* क्रान्ति ने राजविज्ञान के लक्ष्य, स्वरूप, विषय-क्षेत्र, पद्धति-विज्ञान आदि सभी को बदल दिया है। इसके प्रभाव से परम्परागत राजशास्त्र न केवल 'राजनीति विज्ञान' बन गया है, अपितु वह 'राजनीति का विज्ञान' (Science of Politics) भी बन रहा है।

एक दृष्टि से हम सभी व्यवहारवादी हैं। हम एक दूसरे के व्यवहार को देखते और सोचते हैं तथा उसी के अनुरूप अपना व्यवहार करते हैं। हमने विशेष व्यवहारो के विशेष नाम रख लिये हैं, जैसे—शिष्टाचार, लडाई, नेतागिरी, मुकदमेबाजी, दल-बदल आदि। इन सभी व्यवहारो से हम सुपरिचित हैं। इस दृष्टि स मानव पहले भी व्यहारवादी था, और भविष्य म भी ऐसा ही बना रहेगा। प्राचीन काल के राजशास्त्री किसी न किसी रूप मे व्यवहारवादी थे। उन्होंने अपना राजनीतिक चिन्तन मानव के व्यवहार को दृष्टिगत रखकर विकसित किया है। वस्तुत. *मनुष्य जन्म स ही व्यवहारवादी होता है*–प्रेम देखकर आकर्षित होता है और घृणापूर्ण व्यवहार से दूर भागता है।

स्वय व्यवहारवाद के अर्थ सुनिश्चित एव एक से नही है। डेविड ईस्टन के अनुसार, *जितने व्यवहारवादी हैं उतने ही व्यवहारवाद के अर्थ हैं। व्यवहार (Behaviour) से* मिलते-जुलते बहुत से शब्द हैं, जैसे, आचरण, कार्य क्रिया आदि। इन शब्दो मे मूल्य एव नैतिक धारणाएँ निहित मानी गयी हैं। 'व्यवहार' शब्द को मूल्य निरपेक्ष या तटस्थ माना

गया है। 'मानव के व्यवहार को अपने अध्ययन, अवलोकन, व्याख्या, निष्कर्षण आदि का आधार मानने की प्रवृत्तियाँ दृष्टिकोण को व्यवहारवाद (Behaviouralism) कहा जाता है। व्यवहारवाद शब्द अपने आप में बहुत व्यापक है। व्यापक दृष्टि से, व्यवहारवाद के अन्तर्गत मानव-व्यवहार के वैज्ञानिक बोध से सम्बन्धित प्रत्येक प्रकार का सामाजिक अनुसंधान आ जाता है, चाहे उसे किसी भी अनुशासन की छत्रछाया में किया जाय। संक्षेप में, व्यवहारवाद, मानव व्यवहार के अवलोकन पर आधारित अध्ययन करने वाली विचारधारा, आन्दोलन या पद्धति है। डेविड ट्रूमैन के अनुसार, यह एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसका उद्देश्य शासन के समस्त तथ्यों को, मनुष्य के प्रेक्षित एवं प्रेक्षणीय व्यवहार की शब्दावली में वर्णन करना है। 'बैरलसन' के मत में, व्यवहारवादी का वैज्ञानिक लक्ष्य 'मानव-व्यवहार के विषय में ऐसे सामान्यीकरण (Generalizations) प्राप्त करना है, जिन्हें निष्पक्ष और वस्तुपरक ढंग से एकत्रित आनुभाविक प्रमाणों द्वारा पुष्ट किया गया हो।'[7] उसका लक्ष्य मानव-व्यवहार को, उसी प्रकार से समझना, व्याख्या करना तथा उसका पूर्वकथन करना है, जिस प्रकार से वैज्ञानिक लोग भौतिक या प्राणिशास्त्रीय तथ्यों एवं घटनाओं के विषय में करते हैं।

मानव-व्यवहारवाद किसी, प्रेक्षणीय या अवलोकनीय गतिविधि के 'क्या-कहाँ-कैसे-कब का यथावत निरूपण' है। इस प्रक्रिया में 'क्यों' अर्थात् कर्ता के उद्देश्य एवं प्रयोजन का अवलोकन नहीं किया जा सकता। उसका अन्य गतिविधियों के आधार पर अनुमान ही लगाया जा सकता है। ऐसे अनुमान को अन्य प्रमाणों एवं तथ्यों से पुष्ट किया जा सकता है। डहल (Robert A Dahl) के शब्दों में, 'व्यवहारवाद शासन के समस्त तथ्यों का मानव के प्रेक्षित एवं प्रेक्षणीय व्यवहार की शब्दावली में वर्णन करता है। इसका उद्देश्य प्राकृतिक विज्ञानों की पद्धतिवैज्ञानिक (Methadological) मान्यताओं के अनुरूप 'राजनीति के विज्ञान' का निर्माण करना है।

किर्कपैट्रिक (Kirkpatrick) ने व्यवहारवादी अध्ययन की विशेषताएं बतायी हैं–(1) यह शोध में राजनैतिक संस्थाओं को मौलिक इकाई के रूप में अस्वीकार करता है, और राजनैतिक परिस्थितियों में स्थित व्यक्तियों के 'व्यवहार' को विश्लेषण की मौलिक इकाई के रूप में स्वीकार करता है। (2) यह सामाजिक विज्ञानों को 'व्यवहारवादी विज्ञानों' के रूप में देखता है, तथा राजनीति-विज्ञान की अन्य सामाजिक विज्ञानों के साथ एकता पर जोर देता है। (3) यह तथ्यों के पर्यवेक्षण, वर्गीकरण व मापन के अधिक परिशुद्ध (Precise) प्रविधियों के विकास और उपयोग पर बल देता है, और जहां भी सम्भव हो, सांख्यिकीय या परिमाणात्मक सूत्रीकरणों के उपयोग का आग्रह करता है, तथा (4) राजनीति-विज्ञान के लक्ष्य को एक व्यवस्थित आनुभविक सिद्धान्त (Theory) के रूप में परिभाषित करता है।[8] सिबली (Sibley) के मत में, वैज्ञानिक व्यवहारवाद, परीक्षणीय 'वैज्ञानिक' सिद्धान्त तथा उसकी सत्यापन (Verification) प्रक्रिया, दोनों के निर्माण पर जोर देता है।

पहले व्यवहारवाद निरा भौतिकवादी था अर्थात् वह मानव के व्यवहार के भौतिक एवं बाह्य स्वरूप का ही देखता था। उसमें विचारों, भावनाओं, इच्छाओं, आदि अमूर्त प्रेरकों का कोई स्थान नहीं था। ऐसे प्रारम्भिक व्यवहारवाद को, 'व्यवहारितावाद' (Behaviourism) कहा गया है।[9] उसमें केवल प्रेरक (Stimulus) व अनुक्रिया (Response) के मध्य सम्बन्धों को ही देखा जाता था और 'व्यक्ति' या 'अवयवी' को बिलकुल हटा दिया

गया था। ऐसे व्यवहारितावाद को शीघ्र ही घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। व्यवहारवाद अपने सशोधित रूप 'व्यवहारितावाद' से सर्वथा पृथक हो गया है। वह मनुष्य की केवल वाह्य क्रियाओ या गतिविधियो से ही सम्बन्धित न होकर मानव की भावनात्मक (Affective), ज्ञानात्मक (Cognitive) तथा मूल्याकनात्मक (Evaluative) प्रक्रियाओ से भी सम्बद्ध हो गया है। वर्तमान व्यवहारवाद व्यक्तियो के व्यवहार मे निहित प्रेरक विचारो, भावनाओ विवेक, नैतिक धारणाओ आदि का भी विश्लेषण करता है। लेकिन वह ऐसा उक्त व्यवहार के सन्दर्भ मे ही करता है। तब व्यवहार मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप पर्यवेक्षणीय गतिविधियो के अतिरिक्त उससे सम्बद्ध प्रत्यक्षणात्मक (Perceptual), अभिप्रेरणात्मक (Motivational) तथा अभिवृत्यात्मक (Attitudinal) घटक (Component) भी आ जाते है। अर्थात् वे सभी व्यवहारात्मक प्रक्रियाए, जो मनुष्य के राजनैतिक बोध, मांगो, अभिलाषाओ और उसके लक्ष्यो, मूल्यो और राजनैतिक विश्वासो की व्यवस्थाओ (systems) का निर्माण करती हैं व्यवहारवाद का अध्ययन क्षेत्र बन जाती है। ये अध्ययन विभिन्न स्तरो-वैयक्तिक, समाज व्यवस्थात्मक, सास्कृतिक आदि पर किये जा सकते हैं। व्यवहारवाद मे व्यवहार को प्रेरित एव सचालित करने वाले कारको तथा सम्बद्ध तत्त्वो को भी शामिल किया जाता है।

डेविड ईस्टन ने 'व्यवहारवाद का वर्तमान अर्थ' लेख मे व्यवहारवाद की आठ मान्यताए या विशेषताए बतायी है।[10] इनका सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है—

(1) **नियमितताए** (Regularities)—मानव व्यवहार मे नियमितताए, बारम्बारताए या सामान्यताए पायी जाती है। इनका विधिवत् अवलोकन करके पता लगाया एव अभिव्यक्त किया जा सकता है।

(2) **सत्यापन** (Verification) उन नियमितताओं को ज्ञात करके मानव-व्यवहार सम्बन्धी सामान्यीकरण प्राप्त किये जाते हैं तथा सिद्धान्त विकसित किये जाते हैं। इन सभी को पुन मानव व्यवहार को अवलोकन करके सत्यापन या जाच की जा सकती है। व्यवहारवादी निष्कर्ष जाच किये जाने योग्य या सत्यापनीय होने चाहिए।

(3) **प्रविधिया** (Techniques)—मानव-व्यवहार को अध्ययन करने की कतिपय निश्चित प्रविधिया, युक्तिया या साधन है। ये प्रविधिया स्वीकार्य एव मान्य है। इन्हीं के द्वारा तथ्य एव आंकड़े प्राप्त किये जाने चाहिए। उन प्रविधिया को भी लगातार शुद्ध एव परिष्कृत किया जाना चाहिए।

(4) **परिमाणन** (Quantification)—अपने अध्ययन सम्बन्धी निष्कर्षों को यथातथ्य (Precise) बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उनका मापन (Measurement) एव परिमाणन (Quantification) किया जाय। इससे अध्ययन म सूक्ष्मता, प्रामाणिकता तथा तुलनात्मकता आ जाती है।

(5) **मूल्य** (Values)—व्यवहारवाद म राजविज्ञानी अपने निजी मूल्यो, आदर्शों, भावनाओ आदि को अपने अध्ययन से पृथक रखता है। अर्थात् मूल्यात्मक दृष्टि म वह तटस्थ (Neutral) या निरपेक्ष होता है। उसकी दृष्टि से कोई भी वस्तु अपने आप म अच्छी या बुरी नहीं होती। वह मूल्यो एव तथ्यो को भी पृथक रखता है। यदि वह अपने या किसी के मूल्यो को अपनाकर अध्ययन करता है, तो वह उन्हें पहले मे ही स्पष्ट रूप से बता देता है।

(6) **क्रमबद्धता** (Systematization)—व्यवहारवादी अध्ययन क्रमबद्ध तरीकों, चरणों, अवस्थाओं या प्रक्रियाओं के अनुसार किया जाता है। इसमें तथ्यों और सिद्धान्त के मध्य निकटता पायी जाती है। 'बिना सिद्धान्त निर्देशन के शोध नगण्य, तथा बिना तथ्यों के सिद्धान्त निरर्थक हो जाता है।' इसका अर्थ यह है कि विचार बद्ध या सिद्धान्त के प्रकाश में तथ्य एकत्रित किये जाते हैं तथा एकत्रित तथ्यों का विश्लेषण सिद्धान्त-निर्माण की दिशा में ले जाता है।

(7) **विशुद्ध विज्ञान** (Pure Science)—व्यवहारवाद मानव व्यवहार का एक 'विशुद्ध विज्ञान' विकसित करने में विश्वास रखता है। किसी प्रयोग या व्यवहार से पहले उसका बोध, व्याख्या या सिद्धान्त पहले आते हैं। इस कारण पहले व्यवहार सम्बन्धी मौलिक एवं विशुद्ध शोध का कार्य हाथ में लिया जाना चाहिए। मानव-समाज की समस्याओं के समाधान, विश्लेषण आदि के बारे में बाद में सोचा जाना चाहिए।

(8) **एकीकरण** (Integration)—राजनीतिक व्यवहारवाद एकांगी नहीं है और अन्य सभी विषयों या अनुशासनों से सम्बन्ध रखता है। मानव व्यवहार समस्त सामाजिक परिस्थितियों से सम्बन्ध रखता है। राजनीतिक अनुसंधान के निष्कर्ष तभी प्रामाणिक माने जायेंगे जब कि उनको व्यापक सामाजिक संदर्भ में प्राप्त किया जायेगा। राजविज्ञान एक मौलिक एवं उच्च सामाजिक विज्ञान अन्त अनुशासनात्मक होने पर ही बन सकता है।

ईस्टन के द्वारा बताये गये लक्षणों में, व्यवहारवाद का प्रारम्भिक एवं बाद का स्वरूप दोनों ही शामिल कर दिये गये हैं। प्रारम्भिक व्यवहारवाद मूल्यों (Values) एवं आदर्शों से बिल्कुल दूर रहता था तथा व्यक्ति-केन्द्रित था। बाद में विकसित व्यवहारवाद ने मूल्यों को तटस्थ रखकर या अभिव्यक्त करके व्यवहारवादी अध्ययन करना सम्भव मान लिया। उसके व्यक्ति तथा उसके बाह्य व्यवहार के साथ-साथ अन्त क्रिया (Interaction), अन्त सम्बन्ध (Inter-Relation), एवं प्रत्यक्षण (perception) जैसी धारणाओं को अपना लिया है। दूसरे शब्दों में, वह व्यष्टि (Micro) से समष्टि (Macro) अध्ययनों की ओर बढ़ गया है। डेविड सिनार ने आधुनिक व्यवहारवाद की चार विशेषताएँ बतायी हैं कि वह (i) तथ्यों और मूल्यों के पूर्ण पृथक्करण पर बल देता है, (ii) वैज्ञानिक पद्धतियों को समाज विज्ञानों पर लागू करना चाहता है (iii) अनुसन्धान में परिशुद्ध इकाइयों, लघु स्तरों तथा अवधारणाओं का उपयोग करता है, तथा, (iv) आनुभविक व्यवस्था सिद्धान्त पर जोर देता है।

वस्तुत व्यवहारवाद के अनेक रूप हैं एक 'वाद' या विचारधारा, एक 'क्रान्ति', एक सुधार आन्दोलन, एक उपागम या पद्धति, एक मनोदशा या प्रकृति आदि। अनेक राजविज्ञानियों ने इसे राजशास्त्र के स्वरूप को पूरी तरह से बदल देने वाली विचारधारा, क्रान्ति या प्रभावशाली सुधार-आन्दोलन माना है। ईस्टन इसे एक 'क्रान्ति' मानता है। उसके अनुसार, 'यह विज्ञान की शुद्ध प्रविधियों तथा वैज्ञानिक जाँच के प्रति बढ़ती हुई जागरूकता से कहीं और आगे है। पहली बार यह वैज्ञानिक ज्ञान की व्यापक एवं आवश्यक मांगों के प्रति निष्ठा का प्रतिनिधित्व करती है।'[11] किर्कपैट्रिक के अनुसार, इस व्यवहारवादी उपागम (Approach), के समर्थक मानना चाहते या साधन सम्बन्धी की पूर्ति करना है। उसका लक्ष्य 'राजनीति का विज्ञान' बनाना है। उपागम, पद्धतियाँ आदि तो केवल

साधन हैं। पद्धतियाँ शून्य में पैदा नहीं होती। वे राजनैतिक प्रक्रिया (Process) और व्यवस्था (System) की धारणा के साथ स्वत: आ जाती है। वास्वी के अनुसार, 'व्यवहारवाद कई लोगों के लिए एक व्यक्तिगत दर्शन या जीवन प्रणाली है।'[1] यह राजविज्ञान के सभी क्षेत्रों में एक नया उभार (Ferment) है।

दूसरा दृष्टिकोण इसे एक पद्धति, उपागम या प्रविधियों का समूह मानता है। इसका प्रतिनिधित्व रॉबर्ट डहल करता है। वह इसे राजविज्ञान का प्रतिरोध (Protest) आन्दोलन मानता है। इस आन्दोलन की दो विशेषताएँ हैं—प्रथम, परम्परागत राजशास्त्र की उपलब्धियों के प्रति असन्तोष, तथा द्वितीय, ऐसी अतिरिक्त पद्धतियों एवं उपागमों की आवश्यकता का अनुभव जो राजविज्ञान को अनुभव-आधारित प्रस्तावनाएँ (Propositions) एवं सिद्धान्त के विकास में सहायता कर सकें। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप राजशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के समीप आ गया है। व्यवहारवाद का उद्देश्य राजविज्ञान के आनुभाविक भागों को और अधिक वैज्ञानिक बनाना है। इसे एक उपागम मानने में रॉबर्ट डहल डेविड ट्रूमैन का अनुगमन करता है। किन्तु वह व्यवहारवाद को 'व्यवहारवादी मनोदशा' (Mood) कहना अधिक पसन्द करता है। इसे 'वैज्ञानिक दृष्टिकोण' या राजशास्त्र का 'विज्ञानीकरण' भी कहा जा सकता है।

किन्तु व्यवहारवाद का सभी अध्येताओं ने स्वागत नहीं किया है। व्यवहारवाद को लेकर राजवेत्ताओं में दो धड़े या गुट बन गये हैं।[13] परम्परावादी एवं व्यवहारवादी। इन दो वर्गों में कई वर्षों तक शीत युद्ध चला। अब कुछ समन्वयवादी अथवा समझौतावादी विचारक भी उभरने लगे हैं। फिर भी यह मानना पड़ेगा कि व्यवहारवाद ने परम्परागत राजशास्त्र पर भारी प्रभाव डाला है और उसे राजनीति विज्ञान बनने पर मजबूर कर दिया है। स्वयं व्यवहारवाद ने भी परम्परावादियों के आरोप-प्रत्यारोप के सन्दर्भ में अपने आप में काफी सुधार एवं संशोधन किये हैं। व्यवहारवादी अध्येता अपने कट्टरपन की सीमाएँ भी समझने एवं मानने लगे हैं।[14] व्यवहारवाद के प्रमुख प्रवक्ता डेविड ईस्टन ने स्वयं व्यवहारवादी जातियों के विरुद्ध विद्रोह का नारा बुलन्द किया है। इसे 'उत्तर-व्यवहारवाद' कहा जाता है।

उत्तर-व्यवहारवाद (Post Behaviouralism)

उत्तर-व्यवहारवाद, व्यवहारवाद का अगला चरण, एक प्रतिक्रिया, सुधार-आंदोलन तथा नवीन दिशा है। इसे उत्तर-व्यवहारवादी क्रांति भी कहा गया है। किन्तु यह 'प्रति क्रान्ति (Counter Revolution) नहीं है। इसे पुन: परम्परावाद या शास्त्रीय चिन्तन की विचारधारा की क्षमायाचना पूर्ण स्वीकृति नहीं कहा जा सकता। डेविड ईस्टन ने सन् 1969 में अपने अध्यक्षीय भाषण में उत्तर-व्यवहारवाद (Post Behaviouralism) की व्याख्या की है।[15] यह उत्तर-व्यवहारवाद विकासमान व्यवहारवाद का सूचक है। उत्तर-व्यवहारवाद के दो नारे हैं—'कर्म' (Action) तथा 'संगीन' (Relevance)। यह व्यवहारवादी राजविज्ञानियों से समाज की तत्कालिक समस्याओं, संकटों और चुनौतियों का अध्ययन करने तथा उनके समाधान ढूंढने की मांग करता है। अनुसंधान-कार्य समाज की आवश्यकताओं के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए, अर्थात् यह संगीनपूर्ण' (Relevant) होना चाहिये। मूल्य निरपेक्ष या तटस्थ भाव से अलग रहकर अध्ययन करने के बजाय,

उत्तर-व्यवहारवाद राजविज्ञानियों से समाज की रक्षार्थ स्वयं आगे आने के लिए आह्वान करता है। ईस्टन ने मानव-मूल्यों की रक्षार्थ व्यवहार वैज्ञानिकों को 'कर्म' (Action) करने का मन्त्र दिया है।

ईस्टन ने अपनी पुस्तक (The Political System) 'दी पॉलिटिकल सिस्टम' के संशोधित संस्करण में उत्तर-व्यवहारवाद के तीन स्रोत बताये हैं—

(क) राजविज्ञान को प्राकृतिक विज्ञान बनाने के प्रयत्नों के प्रति असन्तोष,

(ख) भावी समस्याओं का समाधान ढूँढने की उत्कट इच्छा, तथा

(ग) एक बौद्धिक प्रवृत्ति तथा एक समूह के रूप स्वयं राजविज्ञानियों द्वारा आन्दोलन का संचालन।

उत्तर व्यवहारवादी आन्दोलन में शुद्ध राजविज्ञानी एवं शास्त्रीय विचारक दोनों ही शामिल हैं। किन्तु इसे 'परम्परावाद का पुनरुत्थान' नहीं समझ लेना चाहिये। यद्यपि परम्परावाद तथा उत्तर-व्यवहारवाद दोनों ही व्यवहारवाद के कटु आलोचक हैं, लेकिन उत्तर-व्यवहारवाद व्यवहारवाद की उपलब्धियों और विशेषताओं को बनाये रखना चाहता है। वह व्यवहारवाद को यथास्थिति से उठाकर आगे ले जाना चाहता है। ईस्टन ने कहा है कि 'यह प्रतिक्रिया न होकर क्रान्ति है। इसमें यथास्थिति नहीं है, वरन् एक नया स्वरूप उभर रहा है। यह सुधार है, प्रति-सुधार नहीं।' उत्तर व्यवहारवाद को व्यवहारवाद का ही एक भाग माना जाना चाहिए। निस्सन्देह, व्यवहारवाद ने राजविज्ञान के परम्परागत स्वरूप को बदलकर उसे 'आधुनिक' बना दिया है। अब राजनीति की विषय-सामग्री का अध्ययन, अवलोकन एवं विश्लेषण व्यवहारवादी दृष्टिकोण के अनुसार किया जाता है। इस विषय-सामग्री में शक्ति, प्रभाव, निर्णयन आदि का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(A) शक्ति (Power)

राजनीति के विविध रूपों में शक्ति का सर्वोच्च स्थान है। वेबर के अनुसार, राजनीति शक्ति से अपृथक्करणीय है। कैटलिन ने राज-विज्ञान को 'शक्ति का विज्ञान' माना है। आर. एम. मैकाइवर ने बताया है कि 'समस्त गति, सभी सम्बन्ध, सभी प्रक्रियाएँ, समस्त-व्यवस्था और प्रकृति में घटने वाली प्रत्येक घटना-शक्ति की अभिव्यक्ति है।' ब्हाटकिन्स के अनुसार, 'राजविज्ञान केवल राज्य या विशिष्ट संस्थाओं मात्र का ही अध्ययन नहीं है अपितु शक्ति की समस्या में अन्तर्ग्रस्त सभी समुदायों की गवेषणा है।' रॉब्सन ने भी राजविज्ञान को समाज में शक्ति, उसकी प्रकृति, आधार, प्रक्रियाओं, विषय विस्तार तथा निष्कर्षों से सम्बन्धित माना है। वायरस्टेड ने बताया है कि 'शक्ति समाज की आधारभूत सुव्यवस्था (Order) का सहारा है। जहाँ कहीं सुव्यवस्था है, वहाँ शक्ति का अस्तित्व अवश्य पाया जाता है। शक्ति प्रत्येक संगठन के पीछे है, और वह प्रत्येक संरचना को बनाये रखती है। बिना शक्ति के कोई संगठन नहीं हो सकता, तथा बिना शक्ति के कोई सुव्यवस्था नहीं हो सकती।'[16] मैक्स वैबर ने लिखा है कि एक अनिवार्य राजनैतिक संघ को राज्य' कहा जायगा, यदि अपनी सुव्यवस्था के प्रवर्तन में उसका प्रशासनिक संगठन, भौतिक बल के औचित्यपूर्ण (Legitimate) प्रयोग पर एकाधिकार बनाये रखने के दावे को सफलतापूर्वक स्थापित कर सकता है।[17]

'शक्ति का अर्थ : प्रभावित करने की क्षमता
('Power' : Capacity to Influence)

रॉबर्ट बायर्सटड के अनुसार, 'शक्ति बल-प्रयोग कर सकने की योग्यता है, न कि उसका वास्तविक प्रयोग।' मैकाइवर ने कहा है कि शक्ति होने से हमारा अर्थ व्यक्तियों या व्यवहार को नियन्त्रित करने, विनियमित करने या निर्देशित करने की क्षमता से है।' पिफनर एव शेरवुड उसे आदेश देने की क्षमता मानते हैं। ड्यूबिन के अनुसार, सगठित अन्त क्रियाओं की व्यवस्थाओं के पीछे निहित तत्व को शक्ति समझना चाहिये। मार्गेन्थो ने शक्ति मे उस प्रत्येक वस्तु को शामिल किया है जिसके द्वारा मनुष्य के ऊपर नियन्त्रण स्थापित किया तथा बनाये रखा जाता है। शक्ति चाहे उसका प्रयोग किया गया हो अथवा नही किया गया हो किन्तु एक सम्भावना के रूप मे स्थित, नियन्त्रण तथा अपने सकल्प को कार्यान्वित करने मे स्वतन्त्र होने की वर्तमान योग्यता होती है। वेबर के दृष्टिकोण से वह एक 'ऐसी सम्भावना है जिसमे एक कर्त्ता सामाजिक सम्बन्धों मे अवस्थित होकर, बिना उस सम्भावना के आधार पर निर्भर हुए, किन्तु प्रतिरोध के रहते हुए भी स्वय के सकल्प को पूरा करने की स्थिति मे होगा।'

शक्ति की पृष्ठभूमि मे शास्तियाँ (Sanctions) रहती हैं। ये शास्तियाँ बल-प्रयोग अथवा अवपीडन (Coercion) मे सम्बन्धित होती हैं। जब सत्ता अथवा प्रभाव सफल होते दिखायी नही पडते, तब इन बल प्रयोगात्मक (Coercive) शास्तियों का प्रयोग किया जाता है। शक्ति, भय या विशेष प्रकार की शास्तियो के आरोपण की सम्भावना द्वारा, विशिष्ट रीतियों से दूसरे व्यक्तियों और समूहों के व्यवहार को प्रभावित करने की योग्यता है। शक्ति के अनेक मिलते-जुलते रूप पाये जाते हैं, बल (Force), प्रभाव (Influence) सत्ता (Authority) आदि। शक्ति, विरोध के होते हुए भी, किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे के व्यवहार पर अपनी इच्छा को आरोपित करने की सम्भावना का नाम है। यह प्रभावपूर्ण क्रिया कर सकने की अन्तर्निहित (Potential) शक्ति है। बल (Force) स्थायी नियन्त्रण प्रदान करने वाली शक्ति है। हिंसा बुरा समझे जाने वाला बल है। प्रभुत्व (Domination) शक्ति का एक प्रकार है। दमन बल के वास्तविक प्रयोग को कहते हैं। किन्तु सभी नियन्त्रण बल (Force) नही कहलाते। समस्त शक्तियाँ भी बल-प्रयोगात्मक अथवा दमनात्मक नही होती। फिर भी शक्ति और बल प्रयोग निकट सम्बन्ध रखते हैं।

मोटे तौर पर शक्ति के दो कार्यकारी रूप माने गये हैं- (i) व्यापक-जिसमे सभी प्रकार के शक्ति सम्बन्ध आ जाते हैं यथा, बल, दमन, बल प्रयोग, प्रभाव सत्ता आदि, तथा, (ii) सकुचित - इसमे उसे केवल बल प्रयोगात्मक (Coercive) या दण्डात्मक माना जाता है। सामान्य अर्थों मे शक्ति का बल प्रयोगात्मक रूप ही शक्ति समझा जाता है। यह दण्डात्मक शास्तियो पर निर्भर होता है। तानाशाही एव निरकुश शासन इन्ही पर आधारित होता है। शक्ति का एक दूसरा प्रमुख रूप प्रभाव (Influence) होता है। यह शक्ति मूलत अ-बल प्रयोगात्मक (Non Coercive) होती है। शक्ति का यह रूप सहमति, स्वीकृति, सत्ता आदि पर आधारित होता है।

बायर्सटेड के अनुसार, शक्ति सदैव प्रच्छन्न रहती है और कभी कभी प्रगट होती है। उसके प्रगट रूप बल Force) तथा सत्ता (Authority) हैं। यह एक समाजशास्त्रीय

एव सम्बन्धात्मक विचार हैं। व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में विभिन्न तत्त्व, परिस्थितियाँ, साधन आदि होते हैं। शक्ति का उद्देश्य या उपयोग रचनात्मक अथवा ध्वंसात्मक हो सकता है। वह एक व्यक्ति या समूह से दूसरे व्यक्ति या समूह में आती जाती रहती है। उसका रूप विस्तृत (Diffuse) या सकेन्द्रित (Concentrated) हो सकता है। शक्ति के प्रयोग में पुरस्कार एव दण्ड, या दोनों, अथवा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आर्थिक लाभ स्वीकार करना या रोके रखना, पद और प्रस्थिति (Status) के चिन्ह आदि रूप अन्तर्ग्रस्त होते हैं। शक्ति के पीछे शास्तियाँ होती हैं। ये शास्तियाँ बल-प्रयोग से सम्बन्धित होती हैं। बल प्रयोग और शास्तियों का अर्थ, व्यक्ति और व्यक्ति, समाज और समाज, तथा सस्कृति और सस्कृति में अलग-अलग हो सकता है। सक्षेप में शक्ति (i) प्रतिरोध करने पर भी सफल, (ii) सम्बन्धात्मक, (iii) लक्ष्य युक्त, (iv) स्थिति सम्बद्ध, (v) विविधरूपा, (vi) सर्वत्र पायी जाने वाली, तथा (vii) शास्तियों समेत मानवीय क्षमता का नाम है। किन्तु प्रचलित एव सकुचित दृष्टिकोण के अनुसार वह मूलत: बल-प्रयोगात्मक एव कठोर शास्तियों से युक्त मानी जाती है। कभी-कभी उसे हिंसा, भय आतक, दमन आदि का पर्याय मान लिया जाता है। किन्तु ये शक्ति के अभिव्यक्त एव प्रयोगात्मक रूप हैं।

शक्ति का व्यवहारवादी अध्ययन (Behavioural Study of Power)

[18]शक्ति का व्यवहारवादी अध्ययन किया जाना चाहिए। सामान्यत: इसका सरल अर्थ यह लगाया जाता है कि उसका (शक्ति धारक) सम्बन्ध दूसरों पर प्रभुत्व या नियन्त्रण रखने में है। डहल ने अधिक परिशुद्ध व्याख्या करने का प्रयास किया है कि— 'क' उस सीमा तक 'ख' पर शक्ति रखता है, जिस सीमा तक वह 'ख' से वे कार्य करा लेता है, जिन्हें वह अन्यथा नहीं करता। गोल्डहेमर एव शील्स ने भी ऐसी ही परिभाषा दी है कि 'एक व्यक्ति उस सीमा तक शक्ति-युक्त माना जा सकता है, जिस सीमा तक वह अपने अभिप्रायों के अनुकूल दूसरों का व्यवहार प्रभावित कर सकता है।' केवल डहल की परिभाषा समस्या के मूल तक पहुँचने का प्रयास करती है। परन्तु उसकी परिभाषा को राजकर्त्ताओं के व्यवहार पर पूरी तरह से लागू नहीं किया जा सकता। इसके लिए उनके अभिप्रायों का ज्ञान होना आवश्यक है। उसकी परिभाषा क्रिय-कौशल (Manipulation), प्रचार आदि की अवहेलना कर देती है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रभाव में आकर कार्य करते हुए भी यह दावा कर सकता है कि उसने अपनी इच्छा के अनुसार ही कार्य किया है दबाव में आकर नहीं। इसलिए गोल्डहेमर एव शील्स की परिभाषा अधिक आकर्षक एव उपयोगी दिखायी पड़ती है। उसका वाक्यांश 'अपने अभिप्रायों के अनुकूल' प्रभावित करने की इच्छा के विरोध या अनुकूलता की धारणा को अनावश्यक बना देता है। किन्तु इस अन्तर को भुला देने पर यह प्रश्न पैदा होता है कि क्या प्रत्येक इच्छा-पूर्ति हो जाने का शक्ति मान लिया जाय? एक लघु राष्ट्र का पृथकता और तटस्थता से रहने की इच्छा-पूर्ण कर लेना क्या शक्ति का परिचायक है? आदि। इसलिए ईजाक के अनुसार, (i) व्यवहार की क्रिया प्रभावक और प्रभावित दोनों द्वारा निष्पादित होनी चाहिये, तथा, (ii) वर्तमान शक्ति-सम्बन्धों के अवस्थित होने से पूर्व दोनों पक्षों में कुछ सम्पर्क अथवा सचार होना चाहिये। शक्ति का अस्तित्व होने के लिए दोनों पक्षों के मध्य किसी न किसी प्रकार का सम्पर्क होना चाहिये।

शक्ति की उक्त व्यवहारवादी परिभाषा के अनुसार, शक्ति व्यवहार में एक राजकर्त्ता

अपने अभिप्रायों के अनुसार दूसरों का प्रभावित करता है। किन्तु इससे एक समस्या और उत्पन्न हो जाती है। शक्ति-सम्बन्धों में इकतरफा कारणात्मक सम्बन्ध नहीं होते। राजनैतिक शक्ति के अध्ययन के लिए यह बात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अनेक शक्ति क्रियाएँ प्रतिसम्भरण (Feedback) या पारस्परिक क्रिया-अनुक्रिया को जन्म देती है। इसे पारस्परिक प्रभाव भी कहा जा सकता है, यदि 'क' राष्ट्र 'ख' के व्यवहार को प्रभावित करता है। तो इस बात के लिये पर्याप्त अवसर है कि 'ख' भी 'क' के व्यवहार को प्रभावित करे। निस्सदेह इससे शक्ति-तुलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाती है। फिर भी, यदि समय का अन्तराल हो जाता है, तो कर्त्ता का व्यक्तिगत रूप से अवलोकन किया जाना चाहिए। शक्ति की मात्रा और दिशा का अन्तर बता देगा कि कौन-सा पक्ष सर्वाधिक शक्ति रखता है?[10]

शक्ति की उपर्युक्त परिभाषा के अनुसार, राजकर्त्ताओं की क्रियाओं में प्रकट प्रभाव को शक्ति के अवलोकन एवं मापन की मुख्य इकाई माना जा सकता है। इस अवधारणा (Concept) का और भी परिष्कार किया जा सकता है। राजनैतिक क्रियाओं के अनेक प्रकार हैं, जिनके द्वारा कर्त्ता दूसरों को प्रभावित कर सकता है। इन्हें तीन शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है—(1) बल (Force), (2) प्रभुत्व (Domination), तथा (3) क्रियाकौशल (Manupulation)। बल में भौतिक गतिविधि या दिखायी देने वाली भौतिक शक्तियों का प्रयोग होता है। प्रभुत्व की स्थिति उस समय होती है जब वह दूसरों पर यह अभिव्यक्त कर देता है कि वह क्या चाहता है, और उसे उपलब्ध कर लेता है। बल और प्रभुत्व प्रायः साथ साथ चलते हैं। प्रभुत्व को प्रभावशाली बनाने के लिये बल का उपयोग किया जाता है। क्रियाकौशल व्यवहार को प्रभावित करने का एक ऐसा साधन है जिसमें वांछित व्यवहार या शक्ति-प्रयोग के उद्देश्यों को नहीं बताया जाता। इसमें ऐसी क्रियाएं आती हैं जिनको समझना और देखना सरल नहीं होता। फिर भी, इन प्रच्छन्न प्रभावों को देखने और मापने की प्रविधियां विकसित की जा सकती हैं अन्यथा, अन्य क्रियाएं खुली और प्रकट होती हैं।

वर्णन, व्याख्या एवं मापन (Description, Explanation and Measurement)

शक्ति का वर्णन, व्याख्या एवं मापन तीनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। डहल ने शक्ति की कुछ विशेषताओं का वर्णन करना सम्भव बताया है। उसके अनुसार शक्ति का—(1) विस्तार (Magnitude), (2) वितरण, (3) क्षेत्र, (4) व्यापकता तथा अन्य कई प्रकार से वर्णन किया जा सकता है। विस्तार विभिन्न व्यक्तियों, समूहों अथवा वर्गों के द्वारा राज्य के ऊपर प्रयुक्त शक्ति की मात्रा का कहा जाता है। शक्ति का वितरण संख्या, प्रकार, विस्तार-क्षेत्र आदि की दृष्टि से हो सकता है। क्षेत्र सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता है। इसका वर्णन शक्ति द्वारा प्रभावित व्यक्तियों की दृष्टि से किया जाना चाहिए। व्यापकता में शक्ति द्वारा प्रभावित व्यक्तियों की विशेषताओं या क्षेत्रों का परिचय दिया जाता है। राजविज्ञानियों द्वारा शक्ति के वर्णन हेतु अनेक शैलियाँ, विधियां तथा संकेतक (Indicators) विकसित किये गये हैं।

शक्ति की व्याख्या एवं मापन करना सरल नहीं है। आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण में शक्ति की व्याख्या करने के लिये—(1) साधनों, (2) कुशलताओं, (3) अभिप्रेरणाओं, तथा (4) कीमत (Costs) जैसे वर्गीकरण किये जाते हैं। मापन का विषय, शक्ति के संदर्भ में अत्यन्त कठिन माना जाता है। रॉबर्ट डहल ने शक्ति सम्बन्धों के मापन की चार मुख्य

विधियां बतायी हैं— (1) कर्त्ता अथवा उसके शासकीय या अर्धशासकीय पद से सम्बन्धित शक्तियो के आधार पर शक्तियो का मापन हो सकता है। किन्तु यह औपचारिक आधार सदैव विश्वसनीय नही होता। (2) प्रेक्षकों के विभिन्न समूहों के पर्यवेक्षण के सन्दर्भ में शक्ति का मूल्यांकन किया जा सकता है। (3) विनिश्चयो के निर्माण (Decision making) मे भाग लेकर औपचारिक तथा उच्चस्तरीय शक्ति की वास्तविकता को देखा जा सकता है। किन्तु इस प्रकार भाग लेना प्राय सम्भव नही होता। साथ ही, भाग लेना मात्र शक्ति नही होता। (4) अन्तिम उपाय, विभिन्न भाग लेने वालो की गतिविधियो की तुलना के आधार पर हो सकता है। उस तुलना के आधार पर कोई एक मानदण्ड बनाया जा सकता है। किन्तु इन समस्त विधियो को पूर्णाश म विश्वसनीय नही माना जा सकता है। इसलिए शक्ति मापन की अन्यान्य विधियो का प्रयोग करने के लिये अन्वेषक को तैयार रहना चाहिए। शक्ति प्रयोग की सीमाओ को भी समझना एव ध्यान मे रखना चाहिए।

(B) प्रभाव (Influence)

वैसे तो प्रभाव शक्ति का ही एक रूप है, किन्तु शक्ति को प्रचलित अर्थों मे बल-प्रयोग, दमन, हिंसा आदि से सयुक्त कर दिये जाने के कारण प्रभाव का पृथक् निरूपण करना आवश्यक है। रॉबर्ट डहल ने राजनीतिक विश्लेषण मे शक्ति और प्रभाव को केन्द्रीय अवधारणाएं बनाया है।[20] क्रियात्मक राजनीति तथा सामान्य सामाजिक जीवन मे भी दोनों का प्रभाव अद्वितीय है। किन्तु मानव-सस्कृति की प्रगति के साथ-साथ, शक्ति की तुलना मे प्रभाव (Influence) का महत्त्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। प्रजातन्त्र मे शासन का रथ प्रभाव के घोड़े खींचते हैं। प्रत्येक व्यक्ति, समुदाय या सस्था अपना प्रभाव बढ़ाने में लगी रहती है। राजनेताओ, उम्मीदवारो आदि के लिये तो ये जीवन मरण के प्रश्न हैं। प्रभाव, प्रभावक एव प्रभावितो का गत्यात्मक सम्बन्ध ही राजनीति है। सत्ता, नेतृत्व, राजनैतिक दल आदि उसी के विभिन्न रूप हैं। राजनीतिक व्यवस्था या राजव्यवस्था (Political system) अन्ततोगत्वा प्रभाव व्यवस्था ही है।

शक्ति की तरह प्रभाव भी 'दूसरो का व्यवहार परिवर्तित करने की क्षमता' रखता है। इसी कारण प्रभाव शक्ति का एक प्रकार है। किन्तु यह बल प्रयोग एव शास्तियो पर आधारित व्यवहार-परिवर्तन कर सकने की क्षमता से भिन्न है। क्राश के अनुसार एक व्यक्ति एक निर्दिष्ट क्षेत्र म उस सीमा तक दूसरे पर प्रभाव रखता है कि पहला व्यक्ति, प्रकट या अप्रकट, उग्र रूप से शक्ति कर देने का डर दिखाये बिना, दूसरे व्यक्ति को अपना कार्य-मार्ग परिवर्तित करने को विवश कर दे।'[21] डहल प्रभाव का कर्त्ताओ (Actors) के मध्य सम्बन्ध को कहता है। उसके अनुसार, 'यह व्यक्तियो,समूहो, सघो, सगठनो, राज्यो के मध्य सम्बन्ध है ....एक ऐसा सम्बन्ध है जिसम एक कर्ता दूसरे कर्ताओ से वह करने के लिये प्रेरित करता है जिसे वह पहले न ी करता।'[22] सामर्वल ने भी प्रभाव की ऐसी (।ही व्याख्या की है।

प्रभाव एक स्वतन्त्र कारक, परिवर्त्य या चर (Variable) है। प्रयोजन एव व्यवहार परिवर्तन की विधियों की दृष्टि से शक्ति और प्रभाव अलग अलग होते हैं। कैटलिन ने प्रभाव को मानसिक नियन्त्रण बताया है। वायर्सटेड ने प्रभाव को अनुनयात्मक (Persuasive) माना है। मनुष्य प्रभाव के सम्मुख स्वेच्छापूर्वक झुक जाते हैं, जबकि शक्ति झुकने को विवश करती है। कार्ल मार्क्स एव महात्मा गाधी के पास प्रभाव था,शक्ति नहीं।

प्रभाव को शक्ति की आवश्यकता नही होती तथा शक्ति प्रभाव के बिना रह सकती है। किन्तु ये दोनो राजनैतिक सगठनो मे न्यूनाधिक मात्रा मे मिश्रित रहते है। प्रभाव की भी शक्ति होती है और शक्ति का भी प्रभाव होता है। किन्तु दोनो के लक्ष्य,साधन और दिशाएँ अलग-अलग होती है। प्रभाव आवश्यक रूप से तथा सदैव अबलप्रयोगात्मक (Non-coercive) नहीं होता। उसके पीछे भी शास्तियां होती है किन्तु वे मृदु एव मानसिक होती हैं।

प्रभाव और शक्ति में अन्तर (Distinction Between Power and Influence)

प्रभाव और शक्ति मे समानताएं एव असमानताएं दोनो पायी जाती है। इनका विश्लेपण करते समय पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। इन दोनो के मध्य पर्याप्त अन्तर पाया जाता है—

(1) शक्ति बल-प्रयोगात्मक होती है तथा उसके पीछे कठोर भौतिक एव सम्भाव्य शास्तियाँ रहती हैं। शक्ति से प्रभावित होने वाले व्यक्ति या समूह के पास उसे स्वीकार करने (या अपने आपको मिटा देने) के अलावा और कोई विकल्प नही होता। प्रभाव अनुनयात्मक स्वेच्छापूर्ण, तथा मनोवैज्ञानिक होता है। प्रभावित होने वाले व्यक्ति या समूह के पास सदैव उसके अनुपालन के विषय मे अनेक विकल्प वर्तमान रहते हैं।

(2) शक्ति शक्तिधारक के पास प्राय. एक स्वतन्त्र परिवर्त्य के रूप मे रहती है। उसका प्रयोग शक्तिधारक द्वारा दूसरो की इच्छा के विरुद्ध एव प्रतिरोध के रहते हुए भी किया जा सकता है। प्रभाव सम्बन्धात्मक तथा द्विपक्षात्मक होता है। उसकी सफलता का आधार प्रभावित व्यक्ति की सहमति या स्वीकृति होती है। प्रभाव प्रभावित व्यक्ति की स्वेच्छा पर निर्भर होता है।

(3) शक्ति को अलोकतन्त्रात्मक माना जाता है। वह प्रति-शक्ति (Counter-Power) को आमन्त्रित करती है तथा भय पर आधारित है। इसके विपरीत प्रभाव पूर्णत लोकतन्त्रात्मक माना जाता है। प्रभाव का प्रभाव स्वेच्छा, विचारवादी समानताओ तथा मूल्यो की समानता के कारण होता है।

(4) जब शक्ति का प्रयोग किया जाता है तो प्रभाव समाप्त हो जाता है। शक्ति का कभी भी प्रभूत मात्रा मे प्रयोग नही किया जा सकता। उस पर अनेक सीमाएँ लगी हुई होती है। शक्ति कितनी भी अधिक क्यो न हो उसे किसी न किसी तरह प्रभाव के सहारे की आवश्यकता पड़ती है। अन्यथा शक्ति के दुर्बल होते ही या शास्तियो के अभाव मे उसका अनुपालन नही किया जायेगा। प्रभाव की सीमा और शक्ति असीम होती है। प्रभाव अर्जित कर लेने पर उसका खुलकर लाभ उठाया जा सकता है। प्रभावक और प्रभावित के मध्य एक मनोभावात्मक समानता स्थापित हो जाती है। प्रभाव स्थापित हो जाने के पश्चात् शक्ति अनावश्यक हो जाती है।

(5) शक्ति को सभ्यता और संस्कृति के बाह्य तत्त्व के रूप मे माना जाता है। आधुनिक युग म शक्ति का प्रयोग निश्चित, सीमित और विशिष्ट प्रकार से ही किया जाता है। उसका प्रयोगकर्त्ता भी सुनिश्चित कर दिया जाता है। प्रभाव प्राय व्यक्तिगत, अमूर्त, अस्पष्ट और व्यापक होता है। बन्दूक के डर से अनिच्छापूर्वक किया जाने वाला काम बन्दूकधारी की उपस्थिति एव

धमकी रहने तक ही किया जाता है। किन्तु प्रभावित व्यक्ति स्वेच्छापूर्वक प्रभावक की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में, प्रभावक के निर्देशानुसार, कार्य करता रहता है। एक लोकनेता के इशारे पर अनुयायी जेल चले जाते, लाठियाँ खाते या प्राण गवा देते हैं।

(6) ऊर्जा, समय, धन, मानव-शक्ति तथा प्रतिक्रिया या विरोध की सम्भावना की दृष्टि से शक्ति या बल-प्रयोग की बहुत ऊँची कीमत चुकानी पड़ती है। उसकी तुलना में प्रभाव बहुत सस्ता, उपयोगी एवं लाभदायक रहता है। एक प्रभावित व्यक्ति मात्र सूचनाओं, सुझावों एवं प्रत्याशित प्रतिक्रियाओं (Anticipated Reactions) के आधार पर उत्साहपूर्वक कार्य करता रहता है।

(7) संख्या में शक्तिधारक कम किन्तु प्रभावक अधिक होते हैं। संख्या अधिक होना प्रभाव और शक्ति का परिचायक नहीं होता। प्रभाव के बल पर ही अल्पसंख्या में होते हुए भी अभिजन-वर्ग राजव्यवस्थाओं में नीति निर्धारण प्रशासन आदि में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। विशाल कृषक-वर्ग, निर्धन जनता आदि बहुसंख्या में होते हुए भी प्रभावशाली नहीं समझे जाते। लासवेल ने प्रभाव और प्रभावक के अध्ययन को ही राजनीति का अध्ययन स्वीकार किया है।

उक्त असमानताओं के होते हुए भी दोनों अवधारणाओं में कतिपय समानताएँ भी पायी जाती हैं। बकाश एवं बरराज के अनुसार, दोनों एक सम्बन्धात्मक हैं तथा एक-दूसरे को प्रबलीकृत (Renforce) करती हैं। शक्ति की अपर्याप्तता, प्रभाव की आवश्यकता को अभिव्यक्त करती हैं। दोनों औचित्यपूर्ण हो जाने के पश्चात् प्रभावशाली हो जाती हैं। प्रभाव शक्ति उत्पन्न करता है तथा शक्ति प्रभाव को। दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता रहती है। कभी-कभी यह जानना कठिन हो जाता है कि प्रभावित व्यक्ति में व्यवहार-परिवर्तन शक्ति के कारण हुआ है या प्रभाव के कारण? इसका निर्णय तो 'क' और 'ख' के पारस्परिक सम्बन्धों के अनुभवात्मक अन्वेषण करने पर ही पता चल सकता है।

प्रभाव का मापन (Measurement of Influence)

राजनीति में प्रभाव का मापन एक कठिन समस्या है। प्रभावों के स्रोत प्रायः गुप्त संश्लिष्ट एवं अस्पष्ट होते हैं। लोकतन्त्र में खुली प्रतियोगिता, स्वतन्त्रता, लोकानुमोदित कानून, जनमत पर आधारित शासन-व्यवस्था होने के कारण प्रभाव का मापन आवश्यक होता है। जिस व्यक्ति या समूह का प्रभाव होता है वही शासन के स्वरूप का निर्धारण, स्थापन, नियन्त्रण एवं निर्देशन करता है। प्रभाव व्यक्तियों, समूहों, संघों, दलों आदि के मध्य एक पारस्परिक किन्तु बदलता हुआ सम्बन्ध है। इनके बीच में अवस्थित प्रभाव के अस्तित्व, मात्रा, दिशा, घनत्व आदि को जाना जा सकता है। राजनैतिक जीवन के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन सदैव महत्वपूर्ण होता है। रॉबर्ट डहल ने प्रभाव की एक सामान्य परिभाषा दी है जो तुलना की सम्भावनाओं को बताती है। यदि 'क' 'ख' को प्रभावित करता है और उसकी मात्रा 'म' है तो हम 'क' का 'ख' पर 'म'[1] प्रभाव कहेंगे। यदि प्रभाव की मात्रा 'म' है तो हम कहेंगे कि प्रभाव की मात्रा अधिक बढ़ गयी है। इस आधार पर या समान मानक स्थापित करके सभी प्रभावों की तुलना की जा सकती है।

प्रभाव मापन के सन्दर्भ मे, डहल ने कुछ निर्देश दिये हैं—(1) प्रभावित (Influenice) की स्थिति मे जो परिवर्तन आता है उसके आधार पर हम प्रभाव की मात्रा की तुलना कर सकते हैं। यदि 'क' 'ख' को चार विभिन्न अवसरो पर प्रभावित करता है तो हम उन मात्राओ को का सकते हैं। इसी प्रकार 'क' के अ, ब, स, द आदि व्यक्तियो पर होने वाली प्रभाव की मात्रा को भी देखा जा सकता है। उदाहरण के लिये, सयुक्त राज्य अमरिका को ग्रेट ब्रिटेन, पाकिस्तान, भारत, रूस और चीन पर इजरायल के मामले पर अलग-अलग प्रभाव है। (2) प्रभाव की मात्रा को, उसके अनुपालन मे खर्च की जाने वाली मनोवैज्ञानिक कीमत की दृष्टि से भी ज्ञात किया जा सकता है। जब कोई हडताल होती है तो हडताल मे भाग लेने वाले सभी व्यक्तियो को मानसिक प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। (3) प्रभाव के अनुपालन की सम्भावना (Probability) मे भिन्नता की मात्रा होती है। व्यवस्थापिकाओ मे किसी विधेयक पर प्राप्त होने वाले पक्ष और विपक्ष मे मतो का अनुमान इसी प्रकार लगाया जाता है। (4) अनुक्रियाओ के विस्तार की भिन्नता से भी प्रभाव का अनुमान अनेक बार लगाया जाता है, जैसे; चुनावो मे खडे होने वाले विभिन्न उम्मीदवार जितनी सख्याओं मे मत प्राप्त करते हैं उनकी सख्याओ को उनके निर्वाचन-क्षेत्र मे पाये जाने वाले प्रभाव के रूप मे देखा जा सकता है। तथा (5) न्यूनाधिक मात्रा की दृष्टि से भी प्रभावो का मापन किया जाता है। अधिकाश निर्वाचनो के समय मे अमरीकी राष्ट्रपति ब्रिटिश अथवा भारतीय दलो के विजय और पराजय की भविष्यवाणिया इन्ही आधारों पर की जाती है।

रॉबर्ट डहल ने प्रभाव-मापन के समय कुछ सावधानियाँ रखने का सकेत दिया है—(क) सापेक्ष प्रभाव को निश्चित करने के लिये जितने मापन सम्भव हो, उनके लिये सभी सूचनाएं एकत्रित की जाय। (ख) उपलब्ध सूचनाओ के अनुसार तुलनात्मक विधि अपनायी जावे। (ग) स्पष्टता एव सूक्ष्मता लाने के लिये एक विचारचित्र (Paradigm) सम्मुख रखा जाय कि·······अधिक प्रभावशाली हैं··· ''की तुलना मे यदि·········उसे·········तथा····· ··· '' विधियो से मापित किया जाय।' (घ) यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि अधिक प्रामाणिक सूचनाए प्राप्त होने पर वर्तमान मापन को छोड देने के लिये तैयार रहना चाहिए।

केनफील्ड का यह कथन सही है कि प्रभाव सिद्धान्त का निर्माण करने की दिशा मे बहुत थोड़े राजविज्ञानियों ने प्रयास किया है।[23] इस विचार का प्रतिपादन मार्च ने भी किया है। इस दिशा मे ठोस प्रयास किये जाने की आवश्यकता है। अब तक किये गये प्रभाव-अध्ययनो से प्रभाव की विषयवस्तु, मात्रा, गहनता आदि का पता नही चलता। उसमे अन्तर्निहित या सम्भाव्य (Potential) प्रभाव की भी अवहेलना की गयी है। फिर भी प्रभाव राजनीति की मूल विषयवस्तु है। नेतृत्व, सत्ता, परिवर्तन आदि उसी के विविध रूप हैं। अतएव प्रभाव का व्यवहारवादी अध्ययन राजसिद्धान्त ((Political Theory) के विकास के लिये अत्यावश्यक है।

(C) मूल्यों का सत्तात्मक विनिधान (Authoritative Allocation of Values)

डेविड ईस्टन ने राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा (Concept) के अन्तर्गत 'राजनीति' को परिभाषित किया है। उनके मतानुसार, 'व्यवस्था' (System) मानवीय अन्तः-सम्बन्धो (Inter relations) के सतत प्रतिमान (Persistent patterns) का नाम है। राज

व्यवस्था दूसरी समाज व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था आदि से भिन्न इस बात में है कि वह केवल उन्हीं अन्त सम्बन्धों से निर्मित है जो बाध्यकारी विनिश्चयों (Binding decisions)[24] या निर्णयों के निर्माण में सम्बद्ध हों। ये बाध्यकारी निर्णय या विनिश्चय समस्त समाज से सम्बन्धित अर्थात् सार्वजनिक होने चाहिए। ऐसे विनिश्चयों को बाध्यकारी, सत्तात्मक या आधिकारिक (Authoritative) इस कारण कहा गया है कि वे वैध या औचित्यपूर्ण होते हैं तथा उनका अनुपालन कानून की दृष्टि से अनिवार्य होता है। उनका अनुपालन न करने वालों को दण्डित किया जा सकता है। कोई भी क्रिया, कार्य, या गतिविधि जो बाध्यकारी विनिश्चयों के निर्माण से सम्बन्धित नहीं है, उसका राजनीतिक व्यवस्था के लिये कोई अर्थ नहीं है। उसे 'राजनैतिक' (Political) नहीं कहा जा सकता तथा वह 'राजनीति' नहीं हो सकती।

प्रत्येक वस्तु, घटना, गतिविधि या सम्बन्ध राजनैतिक नहीं होता। केवल वे ही तत्त्व, अन्त सम्बन्ध या अन्त क्रिया 'राजनैतिक' या 'राजनीति' कहे जा सकते हैं जो किसी न किसी रूप में बाध्यकारक या सत्तात्मक होते हैं। इन बाध्यकारक या सत्तात्मक अन्तर्सम्बन्धों से राजनैतिक व्यवस्था (Political System) या राजव्यवस्था का निर्माण होता है। वैचारिक दृष्टि से यह राजव्यवस्था समस्त सामाजिक व्यवस्था (Societal system) का एक पक्ष मात्र, किन्तु सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है। यह राजव्यवस्था यथार्थ में सामाजी व्यवस्था से सर्वथा पृथक रूप में अस्तित्व नहीं रखती। उसे केवल विश्लेषण या विचार जगत में ही अलग मानकर पहिचाना जाता है। राजव्यवस्था, ईस्टन के लिये एक वैचारिक या विश्लेषणात्मक उपकरण है। उसकी राजव्यवस्था परम्परावादियों की 'राज्य' सम्बन्धी कानूनी एवं संस्थात्मक धारणा से भिन्न है।

'राजनीति' की अर्थ सम्बन्धी स्पष्टता के लिये ईस्टन ने 'सत्ता' 'मूल्यों का विनिधान' (Allocation of values), तथा 'समाज' की अवधारणाओं का सहारा लिया है। उसने इन अवधारणाओं के द्वारा राजनैतिक तथ्यों में अवधारणात्मक समबद्धता तथा सम्बद्धता लाने की योजना बनायी है। ईस्टन के लिये वे समस्त प्रकार की गतिविधियाँ 'राजनीति' हैं जो सामाजी नीति के निर्माण और क्रियान्वयन में अन्तर्ग्रस्त होती है। नीति निर्माण-प्रक्रिया राजनीतिक व्यवस्था को बनाती है। नीति निर्माण, कानूनी और वास्तविक, दोनों रूपों में सम्बद्ध होता है। ईस्टन की 'राजनीति' का सबंध केवल उन्हीं नीतियों या विनिधानों (Allocations) में है जो समस्त समाज के लिये सत्तात्मक (Authoritative) आधार पर किये गये हों।

'सत्ता' की धारणा का भी वह आधुनिक अर्थों में ग्रहण करता है। कोई भी नीति या मूल्य सत्तात्मक तब होता है जबकि उसके साथ आज्ञापालन का भाव जुड़ा हो या उसके साथ सहमति, स्वीकृति या सहकार हो। नीतियाँ अपने आप के लिये नहीं बनायी जाती। नीतियों और सत्ता सबंधी प्रकृति के पश्चात् तीसरी महत्त्वपूर्ण अवधारणा नीतियों की समाज सम्बन्धी प्रकृति है। कोई भी क्रिया 'राजनैतिक' है, यदि उसका सम्बन्ध समाज हेतु सत्तात्मक मूल्यों के विनियोजन से हो। ईस्टन ने राजनीति का सबंध 'समाज के लिये मूल्यों का सत्तात्मक अभिनिधान' से बताया है।

समाज में मूल्यों का सत्तात्मक विनियोजन करने के लिये एक मौलिक संस्कृति और सामाजिक संरचनाओं की आवश्यकता होती है। विभिन्न समूह भी इस कार्य को करते हैं। फिर भी किसी समाज में मूल्यों का सत्तात्मक विनियोजन किया जाता, इस बनाये रखने के

लिये, अत्यावश्यक है। यद्यपि वही सब कुछ नही है। विवादो और सघर्षो के समय मे एक 'सुपरिभाषित सगठन' (जिसे वह सरकार कहना उचित नही समझता) की आवश्यकता होती है। भले ही उसे सरकार, राज्य आदि न कहा जाय। ईस्टन का 'राजनीति' सबधी दृष्टिकोण विश्लेषणात्मक दृष्टि से उपयोगी होते हुए भी पूर्णत सतोषजनक नही है। उसकी विभिन्न क्षेत्रो मे आलोचना की गई है।"[5]

'राजनीति' की प्रकृति एव क्षेत्र के विषय मे विभिन्न विचारको के अलग दृष्टिकोण हैं। किन्तु अनुसधान के लिये, राजनीति, राजनैतिक उद्देश्शो की प्राप्ति के लिये किये गये मानव-व्यवहार को कहते हैं। ये राजनैतिक उद्देश्य शक्ति और प्रभाव की प्राप्ति से सबधित होते हैं। किन्तु अब राजविज्ञानी राजनैतिक व्यवहार के बाहरी स्वरूप तक ही अपने आप को सीमित नही रखते अपितु राजनैतिक व्यवहार के पीछे वर्तमान मनोवैज्ञानिक एव सामाजिक प्रभावो मतवादो मूल्यो, गतिविधियो, पर्यावरण एव परम्पराओ का भी अन्वेषण करते है। सक्षेप म, राजनैतिक शक्ति और प्रभाव सम्बन्धी वह गत्यात्मक गतिविधि है, जिसके द्वारा व्यक्ति या व्यक्ति समूह, सहयोग एव द्वन्द्व के माध्यम से, अपने उद्देश्यो या मूल्यो की प्राप्ति के लिये राजनैतिक सरचनाओ (Structures), प्रक्रियाओ एव क्रिया-विधियो पर नियन्त्रण करते हुए उपयोग करने का प्रयास करते हैं। राजनीतिक (Politician)"[6] व्यक्ति औपचारिक सत्ता-तत्र तथा दूसरे व्यक्तियो पर नियत्रण, प्रभाव आदि का प्रयोग करके अपने उद्देश्य की प्राप्ति करता है। इन उद्देश्यो की ऊपरी घोषणाओ मे तथा वास्तविक स्वरूप म बडा अतर हो सकता है। अतएव वास्तविक व्यवहार के पीछे निहित लक्ष्यो, मूल्यो, एव प्रयोजनो का पता लगाया जाना चाहिए। कोरी घोषणाओ पर विश्वास नही किया जाना चाहिए।

अन्त अनुशासनात्मक दृष्टिकोण (Inter disciplinary Approach)

किन्तु 'राजनीति' का व्यवहारवादी अध्ययन अन्त अनुशासनात्मक या अन्त वैषयिक दृष्टिकोण से ही किया जा सकता है। समाजशास्त्र 'राजनीति' के स्वरूप को समझने मे बडी मदद करता है। राजनीति का समाज, उसके स्वरूप, विकास-अवस्था, परम्पराओ, मूल्यो, परिवर्तनो, तथा अन्य समूहो मे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जाति, धर्म, भाषा, रूढियाँ आदि की राजनीति म प्रधानता होती है। स्वय शक्ति, प्रभाव, नियन्त्रण की इच्छा आदि मनुष्य के मन तथा समूहगत विशेषताओ पर निभर होती है। अत मनोविज्ञान के बिना राजनीति को समझना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि आजकल राजनीति के अध्ययन म समाजशास्त्रीय एव मनोविज्ञानात्मक उपागमो का प्रयोग बढता जा रहा है। राजनीति की समस्त गतिविधियाँ अपना एक ऐतिहासिक परिवेश तथा सास्कृतिक पृष्ठभूमि लिये हुए होती हैं। इतिहास इन्हे समझने मे बडी सहायता करता है। आर्थिक परिप्रेक्ष्य राजनीति के उतार चढाव को समझने का नया प्रकाश-स्तम्भ है। साख्यिकी राजनीति का परिशुद्ध एव सूक्ष्म विश्लेषण करने म सहायता देती है।

दर्शनशास्त्र, जिसका राजनीतिक दर्शन एक भाग है, राजनीति की नैतिकता, तथा मूल्यो के व्यापक, अमूर्त सन्दर्भो से मिला देता है। औपचारिक तथा सत्तात्मक रूप से राजनीति कानून और लोक प्रशासन म ही साकार होती है। अधिकाश राजनैतिक प्रश्न बहुमत द्वारा स्वीकार कर लिये जाने पर प्रशासनिक व्यवस्था की वस्तुएँ बन जाते हैं। राजनीति को विज्ञान एव प्रविधि (Technology) ने भी अत्यधिक प्रभावित किया है।

इसकी अवहेलना करने पर आधुनिक राजनीति और मध्यकालीन राजनीति में कोई अन्तर दिखायी नहीं पड सकता। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति बहुलांश में इन्हीं से प्रभावित एवं संचालित हो रही है। इसी प्रकार, भूगोल—मानवीय एवं प्राकृतिक, दोनों ही, राजनीति को समझने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। एक और विषय, जीवाणुशास्त्र (Genetics) का राजनीति पर प्रभाव पड़ना शेष है। अतएव स्पष्ट है कि राजनीति का यथावत् एवं गहन बोध करने के लिये विभिन्न विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है। इन विभिन्न विषयों के प्रकाश में राजनीति को समझने की प्रवृत्ति को अन्त अनुशासनात्मक (Inter-disciplinary) दृष्टिकोण कहा जाता है। निस्सन्देह इतने विषयों का ज्ञान किसी अरस्तू जैसे प्रभावशाली तथा साधन-सम्पन्न व्यक्ति को ही हो सकता है। आजकल विभिन्न समाज-वैज्ञानिकों या राजवैज्ञानिकों के दलों या समूहों द्वारा 'राजनीति' को समझने का प्रयास किया जा सकता है।

इस अन्त अनुशासनात्मक दृष्टिकोण का यह अर्थ नहीं लिया जाना चाहिए कि 'राजनीति' एवं राजविज्ञान का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। राजनीति किसी भी अनुशासन की विषय-सामग्री का पर्याय नहीं है। राजविज्ञान का मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, विज्ञान आदि किसी भी विषय के साथ पूरा तादात्म्य नहीं है। राजनीति को समझने में इन विषयों की सहायता लेना या इनकी विषय-सामग्री को महत्त्वपूर्ण मानने का अर्थ यह नहीं है कि राजनीति सदा के लिये उनकी अनुगामी या वशवर्ती हो गयी है। वस्तुतः जो लोग इनके राजनीति पर सम्पूर्ण प्रभाव की बात करते हैं, वे 'राजनीति' के विषय के प्रति ही अपनी निष्ठा खो बैठते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि राजनीति के आनुभविक अध्ययन के लिये अपने परिप्रेक्ष्य (Perspectives), विचारबंध (Frame of reference), या उपागम (Approaches) विकसित किये जाय। इनका विकास राज-सिद्धान्त की प्रकृति एवं आवश्यकताओं के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। अपने व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए राजनीतिक तथ्यों का अन्त अनुशासनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया जाना चाहिए।

अन्त अनुशासनात्मक शोध (Interdisciplinary Research)

आधुनिक युग में अन्त अनुशासनात्मक या अन्तर्वैषयिक (Interdisciplinary) शोध पर बहुत ध्यान दिया जा रहा है। इसका सामान्य अर्थ यह कि राजनीतिक विषयों, व्यवहार, शक्ति, मतदान आदि का अध्ययन अनेक सम्बद्ध विषयों के सन्दर्भ में किया जाना चाहिए। ऐसा करना आवश्यक भी है, क्योंकि सामाजिक समस्या या घटना किसी एक विषय में सम्बन्धित न होकर अपने आप में सम्पूर्ण या समग्र (Whole) होती है। उसका विश्लेषण सम्पूर्णता से अर्थात् सभी पक्षों के विषय में किया जाना चाहिए। इसको समग्रतावादी (Holistic) दृष्टिकोण भी कहा जाता है। किन्तु इस विषय में अनेक समस्याएं उठ खड़ी होती हैं। यथा, क्या सभी विषयों के दृष्टिकोणों को समान समझा जाय? ऐसा मानने पर उनमें किस प्रकार तालमेल या एकीकरण (Integration) बिठाया जाय? यही एकीकरण कौन और किस प्रकार लाय? या किसी एक विषय को प्रमुख मानकर अन्य विषयों का सहायक माना जाय। यह विषय कौन सा हो? डेविड ईस्टन ने जनवरी, 29,1980 को राजस्थान विश्वविद्यालय में दिये गये भाषण में बताया था कि शिकागो विश्वविद्यालय में वर्षों तक अन्तर्अनुशासनात्मक शोध करने के प्रयास किये गये थे। ये प्रयास दो तरीके से

किये गये, एक, राजनीतिविज्ञान के विद्वान अनेक विषयों के ज्ञाता हो जांय, तथा दो, विभिन्न विद्वानों का एक समूह नियमित रूप से बैठे और अध्ययन की सामान्य इकाइयों तथा उनके स्वरूप का निर्धारण करे। वास्तव में, ऐसा करने का लगातार प्रयास भी किया गया, किन्तु उसका कोई ठोस परिणाम नहीं निकला। उसका विचार था कि जब एक विषय तथा उसकी शाखाओं की जानकारी रखना कठिन है तो अनेक विषयों का पूर्ण ज्ञान हो सकना और भी अधिक कठिन होगा। इसी प्रकार, विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ मिल कर भी मूल इकाइयों की एकता तथा स्वरूप का निर्धारण नहीं कर सके।

वास्तव में, यदि ऐसा अरस्तू जैसा प्रतिभावान् व्यक्ति मिल भी जाय, तो उसके समक्ष विषयों के दृष्टिकोणों में से किसी एक की प्राथमिकता को स्थापित करना कठिन होगा। ऐसा बहु-विषयी समूह तो शायद अपने उद्देश्य में सफल ही न हो सके। कतिपय विद्वानों ने अन्तर्अनुशासनात्मक के बजाय राजविज्ञान को अधिअनुशासनात्मक (*Trans-disciplinary*) बनाने की बात कही है। *उनका कहना यह है कि विभिन्न अनुशासन अधि-अनुशासन तभी बन सकते हैं जबकि वे उन अनुशासनों को आत्मसात् करने वाली नवीन अवधारणाओं का विकास कर लें। इस प्रकार करने पर तो वस्तुतः एक नये अनुशासन का निर्माण होना अधिक सम्भव है।* फिर भी समस्या यथावत् बनी रहेगी। अवधारणाएं मूलतः कृत्रिम विरचनाएं होती हैं।

फिर भी, राजविज्ञान को अपनी निजता बनाये रखते हुए बहु अनुशासनात्मक या प्रति अनुशासनात्मक या अन्तर्अनुशासनात्मक बनाने की आवश्यकता है। कोई भी विज्ञान, विशेषतः सामाजिक विज्ञान, अपने आप में पूर्ण तथा पृथकनीय नहीं होता। समस्त सामाजिक विज्ञानों का केन्द्र 'व्यक्ति' है। सामाजिक घटनाएं संयुक्त रूप से एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। कोई भी समस्या दूसरे परिप्रेक्ष्य का ध्यान रखे बिना समझी तथा हल नहीं की जा सकती। सामाजिक विज्ञानों के पास अपने-अपने दृष्टिकोण, अवधारणाएं, पद्धतियां, प्रविधियां आदि हैं। इन्हें एक दूसरे के साथ मिश्रित नहीं किया जा सकता। अतएव विभिन्न विषयों के सन्दर्भ में प्रत्येक सामाजिक समस्या का अध्ययन करना आवश्यक है। स्वयं समाज, शासक या सुधारक किसी समस्या के एक पक्ष का ज्ञान और समाधान न चाह कर सम्पूर्ण समस्या का हल चाहता है। अन्यथा उसे डर रहता है कि यदि किसी समस्या के एक पक्ष का ही समाधान किया गया तो अन्य पक्षों की समस्याएं उठ खड़ी होंगी। उदाहरण के लिये, यदि वर्तमान आरक्षण-विरोधी (Anti-reservation) आन्दोलन को पुलिस द्वारा कुचलने का समाधान बनाया गया तो उसके अन्य रूपों में फूट पडने की सम्भावना हो सकती है।

अन्तर्अनुशासनात्मक शोध की समस्याएं

अन्तर्अनुशासनात्मक शोध की वैचारिक समस्याओं का विवेचन ऊपर किया जा चुका है। *उसकी पद्धतिवैज्ञानिक (Methodological) समस्याओं में सर्वप्रथम विभिन्न विषयों तथा शोधकों की प्रकृति सम्बन्धी भिन्नता है। उनमें समन्वय किस प्रकार किया जाय? दूसरी समस्या, शोध में प्रयुक्त अवधारणाओं तथा तथ्यों के संकलन सम्बन्धी प्रविधियों से सम्बन्ध रखती है। दार्शनिक, नीतिशास्त्री, अर्थशास्त्री तथा राजशोधक उक्त विषयों में एकमत नहीं हो सकते। इनके निष्कर्ष, अध्ययन प्रणालियां आदि सभी कुछ भिन्न भिन्न होंगे। तीसरा, इनके सामूहिक अध्ययन का आयोजन करना तथा इनके निष्कर्षों को स्वीकार्य*

बनाना भी कठिन होगा । राजवैज्ञानिक के समाधान अर्थशास्त्री के उपचारों से पृथक् होंगे ।

इन कठिनाइयों के होते हुए भी, राजविज्ञान को अन्तर्विषयिक बनाना जरूरी है । इसके लिये शोधकर्त्ताओं का दृष्टिकोण उदार और विशाल होना चाहिए । उनमें अन्य विषयों को सीखने तथा उनके दृष्टिकोण को अपनाने की भावना होनी चाहिए । विभिन्न विषयों के सिद्धान्तों तथा पद्धतियों को अपनाने से अनेक तथ्यों का ज्ञान हो सकता है । राजनीति के शोधकर्त्ताओं को अन्य विषयों के अनुसंधानों पर निरन्तर दृष्टि गड़ाये रखना चाहिए ।

विकासशील देशों में समस्याओं को बहुपक्षीय दृष्टिकोणों से समझना और भी अधिक आवश्यक है । किसी एक दृष्टिकोण या विशेषज्ञता के परिप्रेक्ष्य में विचार करना अमेरिका जैसे विकसित देशों में भले ही सम्भव हो, किन्तु विकासशील देशों में कोई भी समाधान, कार्यक्रम, सुधार या प्रगति अन्तर्अनुशासनात्मक विश्लेषण के बिना नहीं हो सकती । कोई एक अनुशासन उनकी समस्याओं का समाधान नहीं बना सकता । उनकी शोध के आँकड़े *अन्त:अनुशासनात्मक तथा समस्या-प्रधान होने चाहिए ।* दुर्भाग्य से, इन देशों में विभिन्न अनुशासनों का विकास औपनिवेशिक ढंग से अलग-अलग तरीकों से हुआ है, और वह द्वीपों की तरह अपना अस्तित्व बनाये हुए है । यही कारण है कि क्रियात्मक या व्यावहारिक शोध कार्य प्रायः सरकारी, अन्तर्अनुशासनात्मक शोध संस्थाओं तथा विश्वविद्यालयों के बाहर किया जा रहा है । राजविज्ञान में, अन्य विषयों की तरह, विपरीत घोषणाएं करते हुए भी, सिद्धान्त एवं क्रियात्मक शोध के मध्य चौड़ी खाई बनी हुई है । जब सभी अनुशासनों का लक्ष्य 'सत्य' को जानना, सिद्धान्त एवं सामान्यीकरणों का विकास करना है तो उन्हें एक दूसरे के निकट आना चाहिए । विभिन्न विषयों के दृष्टिकोणों में एकीकरण एवं समन्वयन किया जाना चाहिए । वर्तमान विकासशील देशों की आवश्यकता अनुशासनात्मक अधभत्तों की न होकर अन्तर्अनुशासनात्मक मिश्रों की है ।

सन्दर्भ

1. G. E. G Catlin, Systematic Politics, University of Toronto Press, 1962, pp 48-51
2. 'Politics' तथा 'Political' दोनों शब्दों की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'Polis' से हुई है । मूलतः पोलिस, यूनानियों के अनुसार नगर की काफी ऊँचाई से देखता हुआ आत्मरक्षा की दृष्टि से बनाया गया किलेबन्दी का स्थान था । लगभग 2600 वर्ष पूर्व एथेन्सवासियों ने एक ऐसा ही पहाड़ी किला 'अक्रोपोलिस' का निर्माण किया था । सार्वजनिक मामलों पर विचार-विमर्श के लिये वे वहीं एकत्रित होते थे और यहीं 'पोलिस' (Polis) शब्द धीरे धीरे एक संगठित समाज या एक ऐसी 'शक्ति' के लिये प्रयोग किया जाने लगा जो दूसरी समान 'शक्तियों' या समुदायों से सम्बन्ध स्थापित करने में लगी हो । इस प्रकार पोलिस, नगर और नगर के आस-पास बसे लोगों का ऐसा समूह समझा जाने लगा, जो वास्तविक या काल्पनिक रक्त-सम्बन्धों से बधा, सामूहिक सुरक्षा के लिये संगठित एवं समूह के सदस्यों तथा उनके आश्रितों के मध्य सम्बन्धों को सुव्यवस्थित रखता हो, उसमें धार्मिक पूजन, क्रीड़ा तथा कला की समान सुविधा, तथा वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन में श्रम-विभाजन का भाव

भी निहित था। ऐसे पोलिस (Polis) के सम्बन्ध में, चौथी शताब्दी ईसा पूर्व राजनीति-विज्ञान के पिता, अरस्तू ने, 'Politics' या पोलिस-विषयक भाषण माला दी थी। वही आगे चलकर Politics ग्रंथ बना। —Joseph Dunner, Dictionary of Political Science, 1964, Introduction pp XIII–XIV

3 गोपाल शर्मा, सामाजिक विज्ञानो की पारिभाषिक शब्दावली का समीक्षात्मक अध्ययन, 1968, पृ 1932–36, इस पुस्तक मे 'राजनीति विज्ञान' तथा उसके अन्य समानार्थक शब्दो के लिए 'राजविज्ञान' शब्द को ही प्राथमिकता दी गयी है। अनेक विद्वानो ने 'राजशास्त्र' संज्ञा का भी प्रयोग किया है। 'शास्त्र' शब्द 'शास्' से निकला है, जिसका अर्थ है, शिक्षा देना, शासन करना, आज्ञा देना, निर्देश करना, दण्ड देना, सलाह देना, वशवर्ती करना। शास्त्र का अर्थ बताया गया है—शिष्यतेऽनेन शास् + ष्ट्रन, जन-साधारण के हित के लिए विधान बताने वाला धार्मिक ग्रन्थ। आज्ञा, आदेश, धर्माज्ञा, धर्मशास्त्र की आज्ञा, किसी विशेष विषय का समस्त ज्ञान जो ठीक क्रम से संग्रह करके रखा गया हो—चतुर्वेदी, द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा तारिणीश झा, संस्कृत-शब्दार्थ कौस्तुभ, द्वितीय संस्करण, 1957। 'शास्त्र' का यह अर्थ राजनीति की प्राचीन कृतियो अथवा जैसी ही आधुनिक रचनाओ के लिए उपयुक्त है। प्राचीन कृतियो को हम 'शास्त्रीय-युग' की रचनाएँ कह सकते है। प्राचीन एव अर्वाचीन दृष्टिकोणो को मिलाकर लिखी गयी पुस्तको को भी 'राजशास्त्र' के अन्तर्गत रखा जा सकता है, किन्तु वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर लिखी गयी पुस्तको को 'राजविज्ञान' या 'राजनीति विज्ञान' के अन्तर्गत रखा जायगा।

4. मज्जेत्त्रयी दण्डनीतौ हतायां सर्वे धर्माः प्रक्षयेयुर्विवृद्धाः सर्वे धर्माश्चाश्रमाणां हताः स्युः क्षात्रे त्यक्ते राजधर्मे पुराणे सर्वे त्यागा राजधर्मेषु युक्ताः सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु युक्ता सर्वा विद्या राजधर्मेषु चोक्ताः सर्वे लोका राजधर्मे प्रविष्टाः। —महाभारत, 63/26 29.

5 Oran R Young, Systems of Political Science, New Jersey, Englewood Cliffs, Prentice Hall, 1967, pp 1–4.

6 Vernon Van Dyke, Political Science : A Philosophical Analysis, London, Stevens and Sons, 1960, p 136

7. Bernard Berelson, ed , The Behavioural Sciences Today, New-York, Basic Books, 1963, p 3.

8 Evron M Kirkpatrick 'The Impart of the Behavioural Approach on Traditional Political Science', in Austin Ranney, ed , Essays on the Behavioural Study of Politics, Urban, University of Illinois press, 1962, pp 1–29.

9. श्यामलाल वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, द्वितीय संस्करण, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1977, पृ 79–82

10 David Easton, 'The Current Meaning of Behaviouralism', in James C Charles worth, ed , Contemporary Political Analysis, New York, The Free press, 1967

11. David Easton, A Framework for Political Analysis, New York, prentice Hall, 1960, p. 33
12 Stephen L Wasby, Political Science The Discipline and Its Dimensions, Calcutta, Scientific Book Agency, 1970, pp 207–8.
13. वर्मा, वही, पृ 75-88 C. William and Joyce M. Mitchell, Behaviouralists and Traditionalists : Stereotypes and Self Images, in Wasby, Political Science—The Discipline and Its Dimensions, op cit, pp 231-42.
14 वर्मा, वही, पृ 88-94
15 David Easton, 'The New Revolution in Political Science', Michael Hass and Denry S Kariel, eds, Approaches to the Study of Political Science, Pennsylvania, Chandler Publishing Co, 1970. pp 511-28, and The Political System—An Inquiry into the State of Political Science, Indian Edition, Calcutta, Scientific Book Agency, 1971, pp 233-54.
16. Bierstedt on 'Power', in Human Relations in Administration, edited by Robert Dubin, Indian ed, Bombay, Asia Publishing House, 1961
17. Dahl on 'Power', in International Encyclopaedia of Social Sciences, 1968, 12, p 405.
18 वर्मा, वही, पृ 405-08.
19. Allen C Isaac, Scope and Methods Political Science, New York, Dorsey Press, 1962, Passim.
20. Dahl, Modern Political Analysis, New Delhi, Prentice-Hall, 1965, p. 40.
21. Peter Bachrach and Morton A Baratz, 'Decisions and Non-decisions An Analytical Framework', in Political Power, ed, Roderick Bell, David V Edwards, and R Harrison Wagner, 1969, pp 100-110.
22. Dahl, op cit, pp 39-41.
23. Edward C Banfield, Political Influence, New York, The Free Press of Glencoe, 1961, pp 3-4, James G March, 'An Introduction to the theory and measurement of Influence' in Eulau et al, Political Behaviour, op cit, pp. 385-95.
24 'Judgement' के लिए प्रचलित शब्द 'निर्णय' है इसलिए 'Decision' के लिए सर्वत्र 'विनिश्चय' शब्द का प्रयोग किया गया है।
25. विस्तार के लिए देखिए, वर्मा, वही, अध्याय-छः।

26. लोक–प्रचलन के अनुसार 'राजनीतिज्ञ' का अर्थ 'Politician' अर्थात् सक्रिय राजनीति में भाग लेने वाले व्यक्ति से लिया जाता है। किन्तु इसका वास्तविक अर्थ 'राजनीति को जानने वाला व्यक्ति' है न कि 'राजनीति मे भाग लेने वाला व्यक्ति'। राजनीति मे भाग लेने वाले व्यक्ति को यहा 'राजनीतिक' (Politician) कहा गया है, तथा 'राजनीतिज्ञ' को 'राजवेत्ता' का पर्याय माना गया है।

अध्याय 3

राजनीतिक सिद्धान्त उपागम एवं पद्धतियां

(Political Theory, Approach and Methods)

राजसिद्धान्त की आवश्यकता एवं महत्त्व (Need and Importance of Political theory)

अपने अस्तित्व की रक्षा एवं विषय के विकास की दृष्टि से राजनीति-विज्ञान को एक सामान्य सिद्धान्त (General Theory) की सबसे अधिक आवश्यकता है।[1] केटलिन ने लिखा है कि किसी भी विज्ञान की परिपक्वता उसके सामान्य सिद्धान्त की एकरूपता एवं अमूर्तिकरण (Abstraction) की स्थिति से जानी जाती है।' डेविड ईस्टन ने राज-विज्ञान मे सिद्धान्त की भूमिका (Role) एवं महत्त्व पर सबसे अधिक जोर दिया है। उसी ने सर्व प्रथम राज विज्ञानियों का ध्यान राजनीतिक सिद्धान्त या राजसिद्धान्त (Political Theory) की आवश्यकता की ओर खींचा है। उसके अनुसार किसी भी विज्ञान की अभिवृद्धि, आनुभविक अनुसन्धान एवं सिद्धान्त, दोनों के विकास तथा उनके मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध पर निर्भर करती है।' इसके बिना राजनीति विज्ञान व्यक्तित्वहीन है। तथाकथित राजनीतिक सिद्धान्त की स्थिति बड़ी शोचनीय है। रॉबर्ट डहल ने लिखा है कि आंग्ल भाषी जगत् में, राजनीतिक सिद्धान्त मर चुका है, साम्यवादी देशों मे यह बंदी है और अन्यत्र मर रहा है।' एक व्याख्यात्मक सिद्धान्त के बिना, मीहान के अनुसार, 'अपने वातावरण को, चाहे वह भौतिक अथवा सामाजिक हो, नहीं समझा जा सकता।' उसी के माध्यम से हमे जगत् का यथार्थ, विश्वसनीय सचारणीय एवं सचय-योग्य ज्ञान प्राप्त हो सकता है।[2]

एक वैज्ञानिक राजसिद्धान्त की, व्यावहारिक एवं शैक्षिक, दोनों दृष्टियों से आवश्यकता है। उस पर ही व्यापक मानव मूल्यों की खोज, प्रतिपादन, स्पष्टीकरण एवं प्रतिरक्षा का दायित्व डाला गया है। वही लोकतन्त्र, समाजवाद आदि की दुर्बलताओं का विश्लेषण करके समस्याओं के वास्तविक समाधान रख सकता है। उसके समक्ष नवोदित देशों की राजनीति तथा उनकी विकास सम्बन्धी समस्याओं का क्षेत्र चुनौती बनकर खुला पड़ा है। राजसिद्धान्त तेजी से बदलते हुए मानव समाज का सही दिशा में जाने के लिये मार्ग निर्देशन कर सकता है। शैक्षिक दृष्टि से राजसिद्धान्त बढ़ते हुए अतितथ्यवाद (Hyper factualism) तथा आँकड़ेबाजी से निबटने मे सहायता दे सकता है।[3] राज-सिद्धान्त के विकसित न होने के अनेक कारण वर्तमान रहे हैं, यथा, राजविज्ञानियों को अपनी विषय-वस्तु 'राजनीति' का ज्ञान न होना, वैज्ञानिक राजसिद्धान्त की धारणा का स्पष्ट न होना, 'राजनीतिज्ञों (Politicians) की राजविज्ञान मे अरुचि, उपलब्ध राजविज्ञान का विशिष्ट संस्कृति से प्रभावित होना आदि। एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण राजविज्ञान मे उपयुक्त शोध-पद्धतियों (Methods) तथा प्रविधियों (Techniques) का अभाव होना है। राज-विज्ञानियों को राजनीति का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। न ही पुराने राजवेत्ताओं में

नयी आवश्यकताओं एव परिस्थितियों के अनुसार अपने आपको ढालने की प्रवृत्ति पायी जाती है। अब तक वे कतिपय औपचारिक सस्थाओं, अमूर्त धारणाओं और मूल्यों, तथा आदर्शात्मक सुधारों तक ही सीमित रहे है।

राजसिद्धात : अर्थ एव व्याख्या (Political Theory Meaning and Explanation)

राजनीतिक सिद्धान्त राजनैनिक घटनाओं, तथ्यों एव *अवलोकनों पर आधारित* निष्कर्षों के समूह को कहते हैं। ये निष्कर्ष परस्पर सम्बद्ध होते हैं तथा इनके आधार पर वैसे ही तथ्यों या घटनाओं की व्याख्या एव पूर्व कथन किया जा सकता है। नवीन घटनाओं एव तथ्यों के सन्दर्भ म उक्त निष्कर्षों एव उपलब्धियों मे सुधार और सशोधन किया जाता है। *अनुभव पर आधारित तथ्यों की जांच की जा सकती है तथा उन्हे दूसरे व्यक्तियों तक* सचारित या सम्प्रेषित (Communicate) किया जा सकता है। इस तरह राजसिद्धान्त, राजनीति से सम्बन्धित व्याख्यात्मक निष्कर्षों का समूह होता है। काइडन ने 'सिद्धान्त' को मानव-जाति की प्रगति का आवश्यक उपकरण माना है। वह यथार्थ का प्रतीकात्मक *प्रतिनिधित्व करता है। इसे बौद्धिक आशुलिपि (Shorthand) कहा गया है, जिसके द्वारा* शीघ्र एव प्रभावपूर्ण ढग से विचार-विनिमय किया जा सकता है। एक बार अवलोकन से प्राप्त निष्कर्षों को, सिद्धान्त बनाने के पश्चात्, दुबारा सीखने की आवश्यकता नही रहती। मीहान के कथनानुसार, सिद्धान्त मूल रूप से एक विचारात्मक उपकरण हैं, जिससे राजनैतिक जीवन के तथ्यों को सुव्यवस्थित एव क्रमबद्ध किया जाता है। इसके द्वारा पृथक् दिखने वाली प्रेक्षणीय घटनाएँ एक साथ लायी एव सुव्यवस्थित ढग से परस्पर सम्बद्ध कर दी जाती है।[4] कार्ल पोपर ने सिद्धान्त को एक प्रकार का जाल (net) बताया है जिससे *'जगत्' (Universe) को पकडा जाता है, ताकि उसको समझा जा सके।* उसके अनुसार, सिद्धान्त, 'एक अनुभवपरक व्यवस्था के प्ररूप (Model) की अपने मन की आँख पर बनायी गयी रचना है।[5]

वस्तुत. 'सिद्धान्त' शब्द के अनेक अर्थ है। कोहन के अनुसार, *'यह शब्द एक खाली चैक के समान है, जिसका सम्भावित मूल्य उसके उपयोग-कर्ता एव उसके उपयोग* पर निर्भर है।'[6] आर्नल्ड ब्रेख्त (Arnold Brecht) के अनुसार, वह एक ऐसी प्रस्तावनाओं का सेट है, जो किसी विषय सामग्री (data) के सन्दर्भ म, प्रत्यक्षतः प्रेक्षित या अप्रेक्षित या प्रकट नही होने वाले अन्त सम्बन्धों या किसी वस्तु की व्याख्या करने के लिये निर्मित किया जाता है। केवल वर्णन या प्रस्तावना या लक्ष्यों का प्रस्तुतीकरण, भविष्यकथन या मूल्याकन सिद्धान्त नही कहलाता। सिद्धान्त व्याख्या से निसृत होता है। यह एक विश्लेषणात्मक युक्ति है जिसकी सहायता से तथ्यों की व्याख्या तथा उनके विषय मे पूर्वकथन किया *जा सकता है। इसमे परस्पर सम्बद्ध नियमों या निष्कर्षों का समूहीकरण होता है।* सक्षेप मे, सिद्धान्त सामान्यीकरणों या व्याख्यात्मक नियमों का सुगठित सेट होता है, जो ज्ञान के किसी क्षेत्र की व्याख्या कर सके। उसमे नवीन परिकल्पनाओं या प्राक्कल्पनाओं (Hypotheses), व्याख्याओं तथा नियमों को विकसित करने की क्षमता होती है। वह उपलब्ध व्याख्याओं, नियमों तथा निष्कर्षों का एकीकरण करने की क्षमता भी रखता है।

क्वीन्टन की दृष्टि से, सिद्धान्त 'विभिन्न सश्लिष्ट रीतियों तथा तार्किक ढग से *परस्पर सम्बन्धित विवरणों की व्यवस्था या समुच्चय (Set) होते हैं।'* पोल्स्की ने, वैज्ञानिक

सिद्धान्त को 'सामान्यीकरणो के निगमनात्मक जाल के रूप मे, जिससे ज्ञात घटनाओ के कतिपय प्रकारों की व्याख्या अथवा पूर्वकथन किया जा सकता हो,' कहा है। ऐसी अन्त सम्बन्धित अवधारणाएँ जिन्हे वैज्ञानिको के प्रेक्षण द्वारा सुझायी गयी प्रस्तावनाओ मे संयुक्त कर दिया गया हो, सिद्धान्त का निर्माण करती है। पारसन्स के मतानुसार, ज्ञात तथ्यों के सामान्यीकरण से सिद्धान्त का जन्म होता है। प्रत्येक सिद्धान्त व्यवस्था में आनुभविक सन्दर्भ वाली तर्कसंगत, अन्तर्निर्भर एवं सामान्यीकृत अवधारणाओं का समूह होता है।[7] इस प्रकार, सम्बद्ध तथ्यो के प्रेक्षण एव परीक्षण के आधार पर कतिपय अवधारणाओं का विकास किया जाता है। फिर उन अवधारणाओं को तर्कपूर्ण ढग से संयुक्त करके सम्पूर्ण घटना (Phenomenon) का सामान्यीकरण किया जाता है। ऐसे अनेक सामान्यीकरणो को सम्बद्ध करके सिद्धान्त का निर्माण कर दिया जाता है।

कोहन ने सिद्धान्तो का चार शीर्षकों के अन्तर्गत वर्गीकरण किया है—

(1) विश्लेषणात्मक सिद्धान्त–(Analytical Theories)

(2) आदर्शात्मक सिद्धान्त–(Normative Theories)

(3) वैज्ञानिक सिद्धान्त–(Scientific Theories) तथा

(4) आध्यात्मिक सिद्धान्त–(Metaphysical Theories)

इनमे से राजविज्ञान का निकट सम्बन्ध वैज्ञानिक सिद्धान्तो से है। वैज्ञानिक सिद्धान्त सार्वभौमिक निष्कर्ष या सामान्यीकरण बताता है। वे आनुभविक या प्रयोगसिद्ध होते हैं। ऐसे सिद्धान्त घटनाओं के कारणो एव कारकों के अवलोकन पर आधारित होते हैं। ये ऐसी अन्तःसम्बन्धित एव परीक्षित अवधारणाओं पर आधारित होते हैं जिनके आधार पर राजनैतिक व्यवहार या राजनीतिक व्यवस्था और राजनैतिक परिवर्तन से सम्बन्धित आनुभविक या प्रयोगसिद्ध सामान्यीकरण निकाले जा सकें।

किन्तु यह बात साफ तौर पर स्पष्ट हो जानी चाहिए कि वर्तमान स्थिति मे राजविज्ञान के पास ऐसा कोई वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त नहीं है। सम्भवत. ऐसा राजसिद्धान्त विकसित होने में काफी समय लगेगा। किन्तु समकालीन राजविज्ञानी अब ऐसा राजसिद्धान्त विकसित करने के विषय में जागरूक हो गये हैं। इस दिशा में, डेविड ईस्टन ने सबसे अधिक कार्य किया है।

शोध एवं सिद्धांत (Research and Theory)

शोध एवं पद्धतिविज्ञान की तरह सिद्धान्त तथा शोध भी एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। कारबी के अनुसार सिद्धान्त शोध का अग्रदूत है।' ईस्टन के मत में, सिद्धान्त की भूमिका तथा उसकी सम्भावना के सचेष्ट बोध के बिना, राजनीतिक अनुसन्धान निश्चित् रूप से खण्ड-खण्ड एव विषम बनकर रह जाता है। वह राजविज्ञान को अपना काम सार्थक करने मे सहायता नहीं कर पाता। सिद्धान्त के अतिरिक्त स्वय शोधक तथा उसकी अपनी मान्यताओं का भी अनुसन्धान-कार्य पर प्रभाव पड़ता है,[8] किन्तु सिद्धान्त प्रत्येक अनुसन्धान को आधार एवं प्रारम्भ प्रदान करता है। शोधक एवं उसकी मान्यताओं के विषय में आगे विवेचन किया जायगा। यहाँ इस विरोधाभास को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि सिद्धान्त किस प्रकार अनुसन्धान का आधार एवं गन्तव्य (Destination) है। वस्तुत. जब हम सिद्धान्त को शोध का आधार बनाते हैं उस समय 'सिद्धान्त' शोध या प्रमाणों द्वारा सिद्ध सिद्धान्त नही होता। उसे 'पूर्व सिद्धान्त' (pre-theory) कहा जाना

चाहिए। इसे 'प्रस्तावनाओ का पुज', रूपरेखा, या ईस्टन के शब्दो मे 'अवधारणात्मक विचारबन्ध या रूपरेखा' (Conceptual Framework) कहा जाना चाहिए। ईस्टन का सिद्धात' इन्हीं अर्थों मे प्रयुक्त हुआ है। ऐसा प्रारम्भिक सिद्धात शोध को आधार, सगति, नवीन क्षेत्रो मे अनुसन्धान करने की प्रेरणा, सयम एव सन्तुलन प्रदान करता है। ऐसा सिद्धात शोध किये जाने वाले विषय की पूर्व-जानकारी की तरह होना है ताकि नवीन एव पुराने ज्ञान मे तालमेल बना रहे तथा शोध निरर्थक नही हो जाये। इससे नवीन शोधकार्य सप्रयोजन हो जाता है। पूर्व सिद्धान्त का ज्ञान उसकी कमियों, रिक्तियो (Gaps) तथा पुन जाँच करने की आवश्यकताओ का पता बता देता है। उससे आगे किये जाने वाले अनुसन्धान के क्षेत्र एव विस्तार का अनुमान हो जाता है जिससे निरर्थक श्रम, समय आदि बच जाता है। शोध करने से पूर्व उपलब्ध सिद्धान्त का बोध एक अनिवार्य आवश्यकता है, अन्यथा वह 'भाप की पुन खोज' करने के समान बन जायेगी। ग्रेजेवेस्की एव ट्यूरो ने बताया है कि आधार-सामग्री भी सिद्धान्त के सन्दर्भ मे महत्त्व प्राप्त करती है। प्ररचना (Design), अनुसन्धान प्रविधि आदि उसी पर निर्भर होते हैं।

जिस प्रकार सिद्धात शोध के लिए आवश्यक है उसी प्रकार शोध भी सिद्धात के लिए अनिवार्य है। शोध ही सिद्धात को आनुभविक, प्रामाणिक, सचारणीय एव विश्वसनीय बनाता है। शोध सिद्धात और उसके भागो की जाँच एव विश्लेषण करता है। इसके दौरान कई बार नये तथ्यो का परिज्ञान होता है। अनेक बार स्वय पूर्व-स्थापित सिद्धात मे ही सुधार एव सशोधन करना आवश्यक हो जाता है। अनुसन्धान-कार्य सिद्धात की अवधारणाओ का परिष्कार एव परिशोधन करता है तथा निष्कर्षों को अधिक प्रामाणिक बना देता है। शोध की सीढी पर चढ़कर ही सिद्धात आनुभविकता एव व्यापकता को प्राप्त करता है। रॉबर्ट्स के अनुसार सिद्धांत आनुभविक आकड़ेबाजी से अधिक होता है। वह समस्त शोध प्रक्रिया मे प्रतिभासित होता है।[9] निष्कर्ष यह है कि सिद्धात और शोध मे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, किन्तु वैज्ञानिक ज्ञान का चक्र 'पूर्व सिद्धात-अनुसन्धान सिद्धान्त' के त्रिभुज के इर्द गिर्द चलता है।

अवधारणात्मक विचारबन्ध (Conceptual Framework)

अनुसन्धान की दृष्टि से डेविड ईस्टन की 'अवधारणात्मक विचारबन्ध' (Conceptual Framework) की धारणा बडी महत्त्वपूर्ण है।[10] इसे पूर्व-सिद्धात की तरह प्रयोग किया जा सकता है। उसके अनुसार सिद्धान्त सवर्गों (Categories) का प्रखर अनुभवपरक, सप्रयुक्त एव ऐसा तर्क पूर्ण एकीकृत सैट है जोकि राजनीतिक जीवन का विश्लेषण एक राजनीतिक व्यवहार-व्यवस्था के रूप मे करना सम्भव बनाता है। उसने अपने सिद्धात को 'अवधारणात्मक विचारबन्ध' अथवा वैचारिक रूपरेखा के रूप म रखा है। इसे आगे बताया गया है। इसके अनुसार, समाज के लिए मूल्यो के विनिधान से सम्बन्धित गतिविधियाँ 'राजनीति' हैं। इन मूल्यो के विनिधान या विनियोजन से सम्बन्धित गतिविधियो का विश्लेषण व्यवहारवादी एव वैज्ञानिक पद्धति द्वारा किया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया मे प्राक्कल्पनाएँ या परिकल्पनाएँ (Hypothesis) आयेंगी। ये परिकल्पनाएँ अनुसन्धान के क्षेत्र या परिधि को भी निर्धारित करती हैं। इनसे मूल्यो की प्रकृति एव स्वरूप का पता चलता है। विश्लेषक यह खोज लेता है कि कौन-कौन से मूल्य, किस स्तर तथा कैसे विनिधान किये गये हैं। उनकी प्रक्रियाओ का आनुभविक अवलोकन एव विश्लेषण करने से

परिणामस्वरूप सामान्यीकरण या सिद्धान्त प्राप्त होता है। उसने राजनीति को क्रमबद्ध, समग्र एवं एकीकृत रूप से समझने के लिए 'व्यवस्था' की धारणा दी है। ईस्टन के व्यवस्था-सिद्धान्त का विवेचन आगे के उपागमों के अन्तर्गत किया गया है।

अवधारणात्मक विचारबन्ध, जिसे सरल शब्दों में 'वैचारिक रूपरेखा' भी कहा गया है, शोधक को अनुसंधान की एक अमूर्त परियोजना (Scheme) देता हुआ मार्गदर्शन प्रदान करता है। इसके सहारे शोधक अपनी विषय-सामग्री का अन्वेषण निर्धारण, अवलोकन, वर्गीकरण और एकीकरण करता है। विचारबन्ध के दो प्रकार हो सकते हैं—(क) राजनीतिक इकाइयों सम्बन्धी तथा (ख) राजनीतिक प्रक्रियाओं सम्बन्धी। इकाइयों में व्यक्ति, समूह-संस्कृति, संगठन आदि आ जाते हैं। प्रक्रियाओं में घटनाओं का लम्बे अनुक्रम या सिलसिले का अध्ययन किया जाता है। इकाइयों में, राजनैतिक घटना का किसी निश्चित समय पर अध्ययन किया जाता है। इसमें अवलोकन एवं निष्कर्ष स्थैतिक या जड़ हो जाता है। संचारण (Communications), निर्णयन (Decision-making), शक्ति आदि से सम्बन्धित सिद्धान्त प्रक्रियात्मक होते हैं। ये विचारबन्ध गतिमान (Dynamic) माने जाते हैं।

व्याख्या में, विचारबन्ध की उपयोगिता बताते हुए मीहान ने लिखा है कि सामाजिक वातावरण में निरन्तर परिवर्तन होने के कारण व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। इस उद्देश्य के लिए प्रेक्षक या अध्येता को वातावरण से कतिपय चरों (Variables) या कारकों (Factors) का चयन करना पड़ता है। इनके आधार पर परिवर्तन की व्याख्या की जाती है। होता यह है कि परिवर्तन या घटना का प्रकार उन चरों या परिवर्त्यों के चयन को निर्धारित करता है और चरों का चयन अवधारणात्मक विचारबन्ध का निर्धारण करता है। इसकी सहायता से प्रेक्षक एक ओर संकुचितता के कुएँ तथा दूसरी ओर अनिश्चय व्यापकता की खाई में, गिरने से बच जाता है।[11] ईस्टन ने राजविज्ञान में अनुशासन को व्यवस्थित करने के लिए व्यापक विचारबन्ध की आवश्यकता पर बल दिया है। उसके मतानुसार, राजव्यवस्था के उपयुक्त विश्लेषण के लिए ऐसा विचारबन्ध आवश्यक है। इसके द्वारा राजनीति के चरों को पहचाना तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन किया जा सकता है। इसे शोध का 'मास्टर-प्लान' या 'विश्लेषण परियोजना' माना जा सकता है।

वस्तुतः कोई भी अनुसंधान किसी अवधारणात्मक विचारबन्ध को अपनाये बिना नहीं किया जा सकता। अनुसंधान विचारबन्ध के भीतर रहकर ही किया जाता है। इसका क्रियात्मक अर्थ यह है कि कतिपय तथ्यों का चयन एवं वर्गीकरण बुद्धिपूर्वक किया जावे। फिर, उन वर्गों को अपेक्षाकृत बड़े वर्गों में रखकर 'प्रकारणाएँ' (Typologies) बनायी जायें। यह सब करने से पहले आवश्यक है कि तथ्यों का चयन या वर्गीकरण करने से पूर्व अपनी विषय-सामग्री को स्पष्ट रूप से जान लिया जाय। दूसरे शब्दों में, पहले परिकल्पित (Hypothetical) 'सिद्धान्त' या 'व्यवस्थाएँ' सोच ली जायें।[12] ईस्टन ने इसी रूप में 'व्यवस्था-सिद्धान्त' के अवधारणात्मक विचारबन्ध को अपनाया है। वह उसे एक अवधारणात्मक फ्रेम या सांचे के रूप में प्रस्तावित करता है। किन्तु यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह 'सिद्धान्त' नहीं है। सिद्धान्त की प्राप्ति तो उच्च-स्तरीय शोध के अनन्तर होती है। वास्तविक स्थिति यह है कि राजविज्ञान में अभी तक किसी व्यापक, सामान्य एवं स्वीकृत सिद्धान्त का विकास नहीं हुआ है। सिद्धान्त के नाम पर अभी तक केवल कुछ परिप्रेक्ष्य (Perspective), उपागम (Approach) आदि ही प्राप्त हैं। इनके अन्तर्गत कतिपय वैज्ञानिक अध्ययन भी किये तथा निष्कर्ष निकाले गये हैं। उनका सहज भी वैज्ञानिक राजसिद्धान्त का निर्माण

करता है। अतएव कतिपय प्रमुख उपागमों (Approaches) का परिचय दिया जा रहा है।

उपागम (Approach) या दृष्टिकोण

एक व्यापक राजनीतिक सिद्धान्त के निर्माण से सम्बन्धित प्रयासों को उपागम (Approach), अर्ध-सिद्धांत (*Quasi theory*), प्ररूप (*Model*) आदि कहा गया है। इनमें व्यवस्था-सिद्धांत (Systems-theory), संरचनात्मक-प्रकार्यवादी (Structural functional), उपागम (approach) एवं विनिश्चयन (Decision-making theory) प्रमुख हैं।[13]

'उपागम' को अनेक नामों से पुकारा जाता है, यथा, दृष्टिकोण, परिप्रेक्ष्य दृष्टिबिन्दु, पद्धति आदि। उपागम की धारणा बड़ी सरल है। प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के उपागम से काम लेता रहता है। यह मनुष्य के मन, बुद्धि और आंख की तरह से है। प्रत्येक व्यक्ति विशेष दृष्टि या विचार के अनुसार ही जगत की वस्तुओं एवं व्यक्तियों को देखता है। वह उन्हीं वस्तुओं को देखता है, जो उससे सम्बद्ध होती है। शेष वस्तुओं की ओर वह ध्यान नहीं देता। एक विद्यार्थी द्वारा देखी जाने वाली वस्तुएँ किसी दुकानदार या राजनेता (Political leader) की दृष्टि से भिन्न होती हैं। यह सब उसके उपागम, दृष्टिकोण या परिप्रेक्ष्य की भिन्नता के कारण होता है। राजनैतिक जगत की वस्तुएँ एवं व्यक्तित्व सामाजिक परिवेश में घुले-मिले होते हैं। उन्हें देखने वाले विश्लेषकों या प्रेक्षकों के अपने-अपने उपागम होते हैं। कोई राजनीति को 'शक्ति' की दृष्टि से देखता है, कोई 'समूह' के दृष्टिकोण से, तो कोई 'व्यवस्था' के परिप्रेक्ष्य से। राजनीति का स्वरूप पूर्व-निर्धारित नहीं होने तथा एक सामान्य राजनीतिक सिद्धांत का अभाव होने से अनेक उपागमों का होना स्वाभाविक है। स्वयं डेविड ईस्टन ने न केवल राजनीति-विज्ञान में उपलब्ध किन्तु अन्य अनुशासनों से भी प्राप्य उपागमों को राजनीति सिद्धांत के विकास के लिये उपयोगी माना है।[14]

औरेन आर यंग ने उपागम की धारणा को राजनीतिक विश्लेषण का एक नवीन दृष्टिकोण माना है। ईजाक के अनुसार, उपागम राजनीतिक गवेषणा में, राजनीतिक घटनाओं के अध्ययन के लिये सामान्य रणनीति या व्यूहरचना (Strategy) है। मर्टन के अनुसार, उपागम में सवर्गीकरण (Categorization), वर्गीकरण (Classification) तथा परिभाषा (Definition) को आधार बनाकर राजनीतिक तथ्यों को क्रमबद्ध (Ordering) किया जाता है। उसका उद्देश्य राजनीतिक तथ्यों का विशेष प्रकार में अनुक्रमण करना होता है। उपागम विचारचित्र (Paradigm) की तुलना में अधिक व्यापक होता है। उपागम में, हास एवं कारील के अनुसार, विचारचित्र एवं अवधारणात्मक परियोजना दोनों ही शामिल होते हैं। उपागम पूर्णतः विश्लेषणात्मक होता है। उसमें आनुभविकता सीमित मात्रा में होती है।

उपागमों का निर्माण एवं उपयोग कई कारणों से किया जाता है। ये शोधात्मक (Heuristic) तथा व्याख्यात्मक दोनों स्तरों पर कार्य कर सकते हैं। ये प्ररूप (Model) की तरह एवं अवधारणात्मक परियोजना का रूप धारण कर सकते हैं। साथ ही, इन्हें राजनीति के सिद्धांत के विकास की अभिप्रेरणा के रूप में भी देखा जा सकता है। उपागमों का मूल्यांकन एक व्याख्यात्मक युक्ति के रूप में, उनकी व्याख्यात्मकता का परीक्षण है। वे शोध प्रयोजनात्मक अधिक हैं, व्याख्यात्मक कम। अधिकांशतः उपागमों का उपयोग परीक्षणीय परिकल्पनाओं को सुझाना है। अतः राजनीति के उपागम व्याख्या के बजाय वैज्ञानिक खोज के कार्यक्रम हैं।

किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि उपागमों का कोई व्याख्यात्मक मूल्य नही होता। वे सिद्धान्त निर्माण के उत्प्रेरक होते हैं। वे शोधात्मक कार्य करने के साथ-साथ निम्नस्तरीय व्याख्यात्मक कार्य भी करते चलते हैं। परिकल्पना सुझाते समय, उपागम एक व्याख्यात्मक रूपरेखा (Sketch), या सम्भवत सिद्धान्त की नीव रखे बिना ही सही, किसी राजनीतिक घटना की अशत व्याख्या करने मे सहायक हो सकता है।

उपागम मे राजविज्ञानी अपने विषय-क्षेत्र को एक क्रमबद्ध स्थिति एव विशेष परिप्रेक्ष्य म प्रस्तुत करता है। वह उस क्षत्र की कुछ प्रमुख समस्याओ एव प्रश्नो का विवरण प्रस्तुत करता है। इस कार्यविधि का प्रयोग करते समय वह विश्लेषण सम्बन्धी तथ्यो के चुनाव का आधार तथा उनकी सगति (Relevance) का मापदण्ड खोजना है। वह उन प्रश्नो या समस्याओ तथा तथ्यो के मध्य एक ऐसा पदानुक्रमिक (Hierarchical) तारतम्य रखता है, जो कि विश्लेषण की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो। उपागम समस्याओ तथा सम्बद्ध तथ्यों के चयन का आधार प्रदान करता है और इसी दृष्टि से वह पद्धति (Meth d) तथा प्रविधि (Technique) से भिन्न होता है।[15]

'पद्धति' (Method) को प्राय दो अर्थों मे ग्रहण किया जाता है (1) ज्ञानशास्त्रीय (Epistemogoical) पूर्वधारणाओ के रूप मे, जिन पर ज्ञान का अन्वेषण आधारित होता है, यथा, स्वीकारवादी पद्धति (Positive methods) तथा (2) तथ्यो की उपलब्धि तथा प्रतिपादन मे घटित होने वाली क्रियाएँ। पद्धति प्रचलित अर्थों मे तथ्यो को प्राप्त एव उपलब्ध करने की क्रियाविधि (procedure) है। पद्धति के इस दूसरे अर्थ को प्राय 'प्रविधि' (Technique) का पर्यायवाची भी मान लिया जाता है। फिर भी 'प्रविधि' (Technique) मे यन्त्रवत् प्रयोग एव बारम्बारता (Routine), विशिष्टत्व तथा अकल्पनाशीलता का बोध होता है।[16] इस प्रकार, सामान्यत उपागम विषय निर्धारण का आधार है, जबकि पद्धति तथ्य-सग्रह एव प्रस्तुतिकरण की क्रियाविधि है और प्रविधि उसकी प्रयोग-प्रवीणता।

1 व्यवस्था सिद्धांत (Systems Theory)

राजविज्ञान मे व्यवस्था-सिद्धान्त (Systems Theory) या उपागम का प्रयोग उसके विकास की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका उपयोग न्यूनाधिक मात्रा मे प्राचीनकाल मे भी हुआ था किन्तु वर्तमान समय म उसका स्वरूप सर्वथा नवीन हो गया है। ईस्टन, मीहान आदि उसे प्रकार्यवाद का एक रूप मानते हैं लेकिन अन्य राजवेत्ता इसे स्वीकार नहीं करते। व्यवस्था परिप्रेक्ष्य में, समग्र 'व्यवस्था' तथा आन्तरिक एव बाहरी पर्यावरण (Environment) को ध्यान मे रखा जाता है। प्रकार्यवाद (Functionalism) मे 'प्रकार्यों' पर, अधिक जोर दिया जाता है कि क्या वे व्यवस्था को बनाये रखने मे सहायक है? व्यवस्था-सिद्धान्त का शोध-कार्यों के लिए उपयोग करने वालों मे आमड, एप्टर, कोलमैन, एवरटीन, कैपलन आदि प्रमुख हैं। ईस्टन ने व्यवस्था सिद्धान्त का प्रयोग 'अवधारणात्मक' विचारबंध' के रूप मे किया है। अनुसधान-शास्त्र की दृष्टि से वही अधिक उपयोगी है। उसमे चार प्रमुख अवधारणाओ का प्रयोग हुआ है—(i) व्यवस्था (System), (ii) पर्यावरण (Environment), (iii) अनुक्रिया (Response), तथा (iv) प्रतिसम्भरण (Feedback)।

(1) राजनीतिक व्यवस्था . अर्थ एव व्याख्या (Political System : Meaning and Explanation)

किसी भी महत्वपूर्ण एवं निरन्तर चलने वाली पहचान योग्य प्रक्रिया को 'व्यवस्था'

(System) कहा जाता है। ईस्टन की व्याख्या की मूल इकाई 'अन्त क्रिया' (Inter-action) है। वह व्यवस्था के सदस्यों के व्यवहार में, जब वे व्यवस्था के सदस्यों के नाते कार्य करते हैं, उत्पन्न होती हैं। जब अन्त क्रियाएँ अन्वेषक की दृष्टि में, एक अन्त सम्बन्धों का सेट बन जाती हैं, तो वे 'व्यवस्था' कहलाती हैं। अन्तःक्रिया, व्यक्तियों द्वारा अकेले या एक दूसरे के सदर्भ से, *सामाजिक परिवेश में सम्पादित की जाने वाली गतिविधियों को* कहते हैं।

प्रत्येक व्यवस्था का कोई न कोई प्रयोजन, उद्देश्य या लक्ष्य अवश्य होता है। व्यवस्था मूर्त या अमूर्त, आनुभविक या परानुभविक, तथा प्रेक्षणीय या वैचारिक हो सकती है। यदि रेल या शासन-व्यवस्था मूर्त, आनुभविक और प्रेक्षणीय है तो नैतिक व्यवस्था अमूर्त, परानुभविक एवं वैचारिक है। कुछ व्यवस्थाओं का स्वरूप मिश्रित अथवा अर्धमूर्त *या अर्ध-अमूर्त हो सकता है। व्यवस्थाओं के केन्द्रीय तत्व अथवा कारकों को ज्ञात करना* सरल नहीं होता। उनका ज्ञान उपलब्ध प्रतीकों तथा अन्य अप्रत्यक्ष साधनों से किया जाता है। इनके स्वरूप के विषय में विचार भेद एवं वाद-विवाद पाया जाता है। विभिन्न धर्म एवं नैतिक व्यवस्थाएं इस बात की प्रमाण हैं। प्राय सभी व्यवस्थाएँ एक या अधिक व्यवस्थाओं से कोई न कोई सम्बन्ध अवश्य रखती हैं। राजव्यवस्था का केन्द्रीय तत्व 'औचित्य-पूर्ण भौतिक *बलप्रयोग', 'मूल्यों का सत्तात्मक विनिधान', 'इच्छाओं का नियन्त्रण'* आदि हो सकता है। सभी ने उसके अंगों और प्रक्रियाओं को अलग-अलग नामों से पुकारा है। आमण्ड के लिये, वह न्यूनाधिक रूप से औचित्यपूर्ण भौतिक बल के प्रयोग या प्रयोग किये जाने के भय से, एकीकरण तथा अनुकूलन कार्य निष्पादित करने वाली व्यवस्था है।[17] ईस्टन उनको निवेश या आदा (Inputs) तथा निर्गत या प्रदा (Outputs) वर्गों में रखता है। वह निवेश *या आदा में राजव्यवस्था से की जाने वाली माँगों (Demands) तथा उसके* प्रति समर्थन (Support) को शामिल करता है। निर्गत या प्रदा में वह राजव्यवस्था द्वारा लिये जाने वाले निर्णयों एवं नीतियों को रखता है।

ईस्टन के अनुसार, राजनीतिक व्यवस्था, सामान्यत व्यवस्था की सीमाओं के पार, पर्यावरण से तथा परस्पर, अन्त क्रिया करने वाली संरचनाओं, प्रक्रियाओं तथा संस्थाओं का सेट है। वह समाज के लिये मूल्यों का साधिकार विनिधान, समाज के लक्ष्यों की प्राप्ति तथा राजनैतिक माने जाने वाले कार्यों को निष्पादित करती है। उक्त विचारक के द्वारा *राजव्यवस्थाओं की प्रकृति, दशाओं तथा जीवन-प्रक्रियाओं (Life-processes) का अन्वेषण* किया जा सकता है। 'व्यवस्था' के रूप में राजनीति का अध्ययन राजविज्ञान को परम्परागत, कानूनी, संस्थात्मक एवं औपचारिक सीमाओं से मुक्त हो जाता है। ईस्टन की 'व्यवस्था' सम्बन्धी अवधारणा समन्वयात्मक है। उसमें मूल्य, संस्कृति, सत्ता, शासन, क्रियान्वयन, सहभाग आदि सभी कुछ आ जाता है। इसमें औपचारिक तथा अनौपचारिक प्रक्रियाएँ, अन्त क्रियाएं, प्रकार्य (Functions), संरचनाएं (Structures), मूल्य, आचार आदि समाहित हो जाते हैं। स्वयं राजव्यवस्था में उनकी उपव्यवस्थाएं (Sub Systems) होती हैं। ईस्टन समूहों एवं संगठनों की आन्तरिक राजनीतिक व्यवस्थाओं को सह-राजनीतिक व्यवस्थाएं (Parapolitical Systems) कहता है। ये सभी समाज में निहित राजनैतिक *जीवन की सर्वाधिक व्यापक इकाई अर्थात् राजनीतिक व्यवस्था के भीतर कार्य* करती हैं। उनकी राजनीतिक व्यवस्था मूल रूप में विश्लेषणात्मक अथवा बोध प्रधान है।

यह व्यवस्था के मूर्त संगठन या उसके सदस्यों के साथ एकाकार नही है। समाज मे अन्य व्यवस्थाए भी हैं किन्तु राजव्यवस्था उनसे बाध्यकारी होने तथा सत्तात्मक निर्णयन करने की क्षमता के कारण भिन्न होती है।

समस्त राजव्यवस्थाएँ खुली (Open) तथा अनुकूलन (Adoptive) कर सकने वाली होती हैं। ये अपने पर्यावरण (Environment) के साथ विनिमय (Exchange) तथा लेन देन (Transaction) करती रहती हैं। राजव्यवस्थाए अपने पर्यावरण, उपव्यवस्थाओं तथा अन्य व्यवस्थाओं से प्रभाव या निवेश (Inputs) ग्रहण करती हैं तथा उनको रूपान्तरित करके निर्गतो (Outputs) मे बदल देती हैं। इसी कारण आमंड ने उन्हें औचित्यपूर्ण सुव्यवस्था-संधारण (Order maintaining) अथवा रूपान्तरण करने वाली व्यवस्थाए कहा है। उनका यह कार्य बाध्यकारी एवं अधिकारपूर्ण होता है। किन्तु वे अपने पर्यावरण से भी निरन्तर प्रभावित होती रहती हैं। राजव्यवस्थाए अपने पर्यावरण तथा समाज-उपव्यवस्थाओ से सर्वथा पृथक् स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रखती।

II. पर्यावरण (Environment)

राजव्यवस्था अपने पर्यावरण (Environment) म रहकर कार्य करती हैं। एक मुक्त व्यवस्था (Open system) होने के नाते, राजव्यवस्था के लिये यह आवश्यक है कि वह पर्यावरण के प्रति अनुक्रिया करने की क्षमता रखे, विघ्नो का सामना करे तथा परिस्थितियो के प्रति अपने को अनुकूल बनाये रखे। तब ही वह उत्तरजीवित या सजीवित (Survive) रह सकती है। पर्यावरण दो प्रकार का होता है-(1) समाज-बाह्य (Extra-societal) तथा (2) समाजान्तर (Intra societal)। समाज-बाह्य पर्यावरण म अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी व्यवस्थाए (Ecological systems), अन्य राजव्यवस्थाए गुट, सयुक्त राष्ट्र आदि को शामिल किया गया है। इसमें अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्थाए, जैसे सास्कृतिक, समाज-सरचनात्मक, आर्थिक, जनसंख्यात्मक आदि भी शामिल हैं। समाजान्तर पर्यावरण में परिस्थितिक (Ecological), प्राणिशास्त्रीय, व्यक्तित्वपरक, सामाजिक, सास्कृतिक, समाज सरचनात्मक, जनसंख्यात्मक आदि व्यवस्थाए आती है। इन्हें राजव्यवस्था वाले समाज के अन्दर देखा जा सकता है। पर्यावरण म उत्पन्न विघ्न, बाधाए और परिवर्तन अनुकूल होने पर प्रकार्यात्मक (Functional) तथा प्रतिकूल होने पर विकार्यात्मक (Dysfunctional) हो जाते हैं। इसलिए अपने उत्तरजीवन के लिये राजव्यवस्था में अनुक्रिया करने की सतत् क्षमता (Capacity) होनी चाहिए। ईस्टन राजव्यवस्थाओ की क्षमता पर विशेष जोर देता है।

III अनुक्रिया (Response)

प्रत्येक राजव्यवस्था अपने पर्यावरण के प्रति अनुक्रिया (Response) करती है। वह अपने प्रति आने वाले सकटों, दबावों आदि का सामना करती है। इसके अलावा उसे अपनी ओर स भी कुछ कार्य करने होते हैं, जैसे, समाज म सुव्यवस्था (Order) तथा अपने स्वरूप (Identity) का निरन्तर बनाय रखना। इन समस्त क्रियाओं को 'अनुक्रिया' शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है।

प्रत्येक राजव्यवस्था को दो प्रकार के कार्यों का निष्पादन करना पड़ता है-(1) समाज के लिए, उपलब्ध किन्तु सीमित, मूल्यो का विनिधान करना, तथा (2) अपने अधिकांश

सदस्यो को इन विनिधानो को बाध्यकारी मानने के लिए प्रेरित करने का प्रबन्धन । ये दो कार्य राजनैतिक जीवन के अनिवार्य अग हैं । इनके बिना न तो राजव्यवस्था का अस्तित्व रहता है और न राजव्यवस्था के बिना समाज का । राजव्यवस्था की सततता (Persistence) पर, पर्यावरण द्वारा, विभिन्न दबाव (Stress) डाले जाते हैं । दबाव एक खतरा (Danger) है जिसमे व्यवस्था के अनिवार्य चर उसे-क्रान्तिक सीमान्तर (Critical-range) से परे या सहन कर सकने की क्षमता से बाहर तक धकेल देते हैं । ऐसी अवस्था मे राजव्यवस्था सकटग्रस्त हो जाती है । व्यवस्था इन दबावो का सामना करने के लिए अनेक प्रकार की अनुक्रियाएँ करती हैं । विश्लेषण की दृष्टि से इन्हें निवेश (Inputs) एव निर्गत (Outputs) कहा जाता है ।

निवेश (Inputs)

निवेश पर्यावरण मे उत्पन्न दबावो, प्रभावो सकटो, माँगो, आन्दोलनो, समर्थन आदि को कहते हैं । ये व्यवस्था को किसी न किसी प्रकार से प्रभावित, परिवर्तित, सशोधित एव सचालित करते रहते है । व्यवस्था निवेशो को प्रक्रमित (Process) करके निर्गतो (Outputs) मे रूपान्तरित करती है । ये निर्गत पर्यावरण को तुष्ट करते हैं । उनके तुष्ट होने या न होने की सूचना 'प्रतिसम्भरण या पुनर्निवेशन (Fe dback) कहलाता है । निवेश दो प्रकार के होते हैं—(क) माँगें (Demands), तथा (ख) समर्थन (Support) ।

'माँगें' पर्यावरण द्वारा राजव्यवस्था से कुछ कार्य, दायित्वपूर्ति, विधि-निर्माण, आशापूर्ति, प्रदर्शन आदि कराये जाने वाले निवेशो को कहते हैं । ये प्राय सामूहिक एव सार्वजनिक प्रकृति की होती हैं । ईस्टन के शब्दो मे, इन्हें 'मूल्यो का वितरण या विनिधान' करना कह सकते हैं । अधिक माँगें व्यवस्था पर अधिक दबाव डालती हैं, जिससे अतिभार (Overload) उत्पन्न हो जाता है । इस भार को कम करने के लिए व्यवस्थाएँ नियामक तन्त्रो (Regulatory Mechanism) की रचना करती है । 'समर्थन व्यवस्था तथा पर्यावरण के बीच, माँगो को निकाल देने के पश्चात् बचे हुए निवेश होते है । समर्थन का सरल अर्थ है, निष्ठा, लगाव, भक्ति या अशदान । यह समर्थन, किन्हीं तीनो स्तरो या इनमे से किसी एक या दो पर, दिया जा सकता है—(i) राजनीतिक समुदाय के प्रति, (ii) राजव्यवस्था के आधारभूत मूल्यो, राजनीतिक सरचनाओ तथा मानको (Norms) के प्रति, तथा (iii) राजनीतिक प्राधिकारियो के प्रति । यह समर्थन गुप्त (Covert) या प्रकट (Overt), विधेयात्मक (Positive) या निषेधात्मक (Negative), विस्तृत (diffuse) या विशिष्ट Specific) हो सकता है ।

निर्गत (Outputs)

राजव्यवस्था द्वारा रूपान्तरित निवेशो को निर्गत' कहा जाता है । ईस्टन इन्हें 'मूल्यो का आधिकारिक आवटन' 'बाध्यकारी निर्णय एव क्रियाएँ,' अथवा 'व्यवस्था और पर्यावरण के मध्य आदान प्रदान' कहता है । निर्गत राजव्यवस्था के प्राधिकारियो का उत्पादन है । निर्गत कई रूपो मे प्रकट हो सकते है, जैसे, कर उगाहना, सार्वजनिक व्यवहार एव आचरण का नियमन, सम्मान, वस्तुओ, सेवाओ आदि का विनिधान या वितरण, प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति आदि । निर्गतो से राजव्यवस्था को समर्थन मिलता है ।

(IV) प्रतिसम्भरण पाश (Feedback)

ईस्टन व्यवस्था-विश्लेषण म प्रतिसम्भरण या पुनर्निवेशन पाश (Feedback loop)

का विशेष स्थान है । इसी पर व्यवस्था के बने रहने की क्षमता (Presistence) या सततता टिकी हुई है । यह पर्यावरण तथा निर्गतों के विषय में सूचनाओं को व्यवस्था तक संचारण करने की प्रक्रिया है । वैसे तो सूचनाएँ निवेश (Input) बनकर आती रहती है, किन्तु जब रूपान्तरित निवेशो या निर्गतो (Outputs) के विषय मे सूचनाएँ आती हैं तो सूचनाओं का पुनर्संचारण निवेशो का पुनर्निवेशन हो जाता है । ऐसा करने से राजव्यवस्था को *अपने व्यवहार या रूपान्तरण मे अनुकूल परिवर्तन या सुधार* करने का अवसर मिल जाता है । वह अपने आपको और भी अच्छी तरह से बनाये रख सकती है । 'लूप' या पाश का अर्थ है, सूचनाओं को प्राप्त करना, उन पर अपनी प्रतिक्रिया या अनुक्रिया करना तथा पुन पुन उन्हें प्राप्त करके और अनुक्रिया करके अपनी लक्ष्य पूर्ति के लिए लाभ उठाना । 'प्रतिसम्भरण पाश' सूचनाओं की प्राप्ति, प्रतिक्रिया और परिणाम की निरन्तरता का नाम है । यह निर्गतों के परिणामों को निवेशो के निरन्तर आगम (Inflow) के साथ जोड़ना है ।

ईस्टन का व्यवस्था-विश्लेषण राजव्यवस्थाओ के अलावा अन्य सभी व्यवस्थाओ पर लागू किया जा सकता है । इससे व्यवस्थाओ की गतिशीलता, कार्यशैलियों एवं क्षमता का विश्लेषण किया जा सकता है । ईस्टन केवल व्यवस्था के भीतर ही नही झांकता, अपितु अन्य व्यवस्थाओ, उपव्यवस्थाओ तथा सम्पूर्ण पर्यावरण को भी अपनी विषय-परिधि मे ले आता है । यंग के अनुसार, वह एक राजवैज्ञानिक द्वारा राजनीतिक विश्लेषण के लिए निर्मित अब तक का सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वभावी उपागम है । यद्यपि व्यवस्था-उपागम को 'व्यवस्था-सिद्धान्त' कहने की परम्परा चल पडी है, किन्तु ईस्टन ने स्पष्ट किया है कि *वह एक व्यवस्थित-विश्लेषण-पद्धति है, सिद्धान्त नहीं ।*

2 संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम (Structural Functional Approach)

राजविज्ञान मे प्रकार्यवाद (Functionalism) को एक सामान्य सिद्धान्त के विकास के लिए बहुत उपयोगी माना गया है । प्रकार्यवाद का मूलाधार भी 'व्यवस्था' (System) की धारणा है । उसके अनुसार समाज एक व्यवस्था है । किन्तु यह व्यवस्था के संधारण (Maintenance) या बनाये रखने तथा नियमन (Regulation) को अधिक महत्त्व देता है । प्रारम्भ म इस उपागम म प्रकार्यों (Functions) के अध्ययन पर अधिक बल दिया, किन्तु बाद म संरचनाओं (Structures) को भी महत्त्वपूर्ण मानकर इस उपागम को सन्तुलित बना दिया गया ।

प्रकार्यों की अवधारणा (Concept of 'Functions')

'प्रकार्य' या 'फंक्शन' (Function) को अन्य कई नामो से भी पुकारा जाता है, यथा, क्रिया, कार्य, सक्रिया आदि । 'प्रकार्य' शब्द को अनेक अर्थों में प्रयोग किया जाता है, जैसे, व्यवस्था की दशा, आवश्यकता, मूलभूत आवश्यकता, प्रक्रिया, गतिविधि, गतिविधियों के परिणाम, प्रभाव आदि । रैडक्लिफ ब्राउन ने बताया है कि 'किसी भी बार-*बार होने वाली गतिविधि का प्रकार्य, जैसे अपराध की सजा या दाह संस्कार वह अंश है,* जो वह समग्र-जीवन को प्रदान करता है और इसलिए वह इसकी संरचनात्मक निरन्तरता को बनाये रखने (Maintenance) के लिये योगदान करता है । सामान्य रूप से, प्रकार्य न्यूनाधिक रूप से सुस्पष्ट प्रभाव का कहते हैं । मर्टन के लिए यह 'प्रेक्षित परिणाम' है ।

रैडक्लिफ ब्राउन 'आवर्तक या बार-बार होने वाली क्रियाओं' को परिणाम कहता है। लेवी के अनुसार, प्रकार्य किसी विचाराधीन संरचनाओं के सन्दर्भ में, किसी इकाई के कार्य-परिणाम से निःसृत दशा, क्रियाकलाप की स्थिति या सततता (Persistence) सम्बन्धी सक्रियाएँ (Operations) हैं जिनमें एक या एक से अधिक कर्ता (Actors) सम्बद्ध होते हैं। संक्षेप में, प्रकार्य व्यवस्था की गतिविधियों, क्रियाओं तथा इनके प्रभावों को कहते हैं। मीहान के मतानुसार, स्थायित्व, सन्तुलन (Equilibrium) अथवा सततता (Persistence) की दृष्टि से अनुकूलन (Adaptation) तथा समंजन (Adjustment) लाने वाली गति-विधियों को प्रकार्य कहते हैं।

प्रकार्यवादी व्याख्या या विश्लेषण में कम से कम तीन बातों का होना आवश्यक है—(i) तथ्य या घटना, जिसकी व्याख्या की जाती है, (ii) व्यवस्था, जिसमें वह घटना या तथ्य प्रकट हो रहा है तथा (iii) उस घटना या तथ्य का सम्पूर्ण व्यवस्था के लिए परिणाम का निर्धारण। इस प्रकार, प्रकार्यवादी व्याख्या, व्यवस्था के लिए घटनाओं के परिणामों का विश्लेषण करने वाली प्रस्तावनाओं का सैट या समुच्चय है।[17] प्रकार्यवादी शोधक राजनैतिक क्रियाओं, घटनाओं (Phenomena) आदि को एक 'व्यवस्था' के रूप में देखता है। इस व्यवस्था में संरचनाएँ (Structures) एवं प्रकार्य (Functions) दोनों होते हैं। किन्तु प्रकार्यवादी ढंग से विश्लेषण करते समय वह संरचनाओं की अपेक्षा प्रकार्यों पर अधिक ध्यान देता है।[18] प्रकार्य ही व्यवस्था और उसकी संरचनाओं को बनाये रखते हैं। इसी कारण इन्हें व्यवस्था की आवश्यक शर्तें या दशाएँ भी कहा गया है। प्रकार्यवादियों का लक्ष्य व्यवस्था को बनाये रखने के लिए आवश्यक प्रकार्यों का पता लगाना रहा है। प्रकार्यों का निर्धारण हो चुकने के बाद वे यह देखते हैं कि व्यवस्थाएँ किस प्रकार अपने आपको बनाये रखने का कार्य कर रही हैं।

प्रकार्यों के प्रकार (Kinds of Functions)

टालकॉट पारसन्स ने बताया है कि प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था की कतिपय मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं। इन्हें वह 'प्रकार्यात्मक आवश्यकताएँ' (Functional needs) या 'प्रकार्यात्मक अपेक्षाएँ (Functional requisites) कहता है। व्यवस्था की सततता के लिए इनका होना बहुत जरूरी होता है। इन्हें चार वर्गों में विभाजित किया गया है—

[i] प्रतिमान संधारण तथा तनाव प्रबन्ध (Pattern-maintenance and tension management)–ये प्रकार्य व्यवस्था के सांस्कृतिक स्वरूप को बनाये रखते हैं।

[ii] लक्ष्य प्राप्ति (Goal-attainment)––ये प्रकार्य उन संरचनाओं द्वारा सम्पादित किये जाते हैं जो व्यवस्था के लक्ष्यों, नीतियों आदि की प्राप्ति, चयन एवं क्रियान्वयन से सम्बन्धित होते हैं। राजव्यवस्था मुख्य रूप में व्यवस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लगी रहती है।

[iii] अनुकूलन (Adaptation)—इसके अन्तर्गत आर्थिक उत्पादन के साधनों का वितरण एवं प्रबन्ध किया जाता है। ये प्रकार्य व्यवस्था की क्षमता को बनाये रखने के लिए आवश्यक होते हैं।

[iv] एकीकरण (Integration)—समाज-व्यवस्था की संरचनाएं, व्यक्तिकार्य (Roles) आदि अलग-अलग प्रकार के किन्तु एक दूसरे पर आधारित होते हैं। इन प्रकार्यों द्वारा उनमें एकीकरण स्थापित किया जाता है।

उक्त सभी प्रकार्य प्रत्येक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए अनिवार्य होते हैं, चाहे वह सामाजिक व्यवस्था हो या आर्थिक व्यवस्था अथवा राजनीतिक व्यवस्था।

रॉबर्ट के मर्टन ने व्यवस्था एवं पर्यवेक्षक की दृष्टि से प्रकार्य की परिभाषा की है। उसके अनुसार, प्रकार्य प्रेक्षणीय वस्तुनिष्ठ परिणाम है। व्यवस्था के अनुकूल एवं समजन (Adjustment) की दृष्टि से प्रकार्य तीन प्रकार के होते हैं—(i) सुकार्य (Edufunction), (ii) विकार्य (Dysfunction), तथा (iii) अकार्य (Nonfunction)। व्यवस्था के अनुकूलन एवं समजन में सहायक प्रकार्यों को सुकार्य कहा जाता है। व्यवस्था को बनाये रखने में रुकावट उत्पन्न करने वाले प्रकार्य को 'विकार्य' कहते हैं। यदि वह प्रकार्य न सुकार्य हो और न विकार्य, तो उसे 'अकार्य' कहा जायेगा। मर्टन व्यवस्था या समाज में प्रकार्यात्मक एकत्व की अवधारणा को नहीं मानता। वह व्यवस्था में एकत्व को आनुभविक आधारों पर खोजना चाहता है। वह यह नहीं मानता कि प्रत्येक घटना संस्कृति के लिये प्रकार्य होती है। हो सकता है प्रकार्य में विपरीत परिणाम उत्पन्न हो रहा हो। ये परिणाम अभीष्ट (intended) एवं ज्ञात (recognized) भी हो सकते हैं तथा अनभीष्ट (unintended) तथा अनभिज्ञात (unrecognized) भी हो सकते हैं। मर्टन ने यह भी बताया है कि प्रकार्यों का स्वरूप निश्चित एवं निर्धारित नहीं होता। एक प्रकार्य अनेक विकल्पात्मक तरीकों एवं विधियों से किया जा सकता है। जैसे विधि-निर्माण का कार्य केवल विधानमण्डल ही नहीं करते, अपितु राष्ट्रपति, प्रशासकीय अधिकारीगण, न्यायालय आदि भी करते हैं। इसे 'प्रकार्यात्मक विकल्पों' (Functional alternative) की अवधारणा कहा गया है।

इसी तरह, मेरियन जे लेवी (Marion J. Levy) ने प्रकार्यात्मक अपेक्षाओं (Functional requisites) तथा प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं की धारणाएं रखी हैं। किसी इकाई (Unit) को बनाये रखने की आवश्यक दशा को 'प्रकार्यात्मक अपेक्षा' कहा जायेगा। जैसे प्रखर ज्ञान को बनाये रखने के लिये 'निरन्तर अध्ययन' को 'प्रकार्यात्मक अपेक्षा' कहा जायेगा। *प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षा (Functional pre-requisite) वह प्रकार्य है जो कि एक निर्दिष्ट (Given) इकाई के अस्तित्व में आने के लिए पहले से ही वर्तमान (pre-exist) होना चाहिए।*

इन प्रकार्यों के स्वरूप एवं कार्यशैलियों का उपयुक्त वर्णन करने के लिए पारसन्स ने एक मानक (Standard) शब्दावली प्रस्तुत की है। इनको उसने पाँच विलोम-शब्द-युग्मों अथवा प्रतिमान चरों (Pattern variables) के रूप में रखा है। 'ये आदर्श प्रकार' (Ideal-type) वाली धारणा की तरह हैं —

सन्तुलनपरक चर	असन्तुलनपरक चर
सार्वभौमिक (Universalistic)	एकदेशी (Particularistic)
विसृत (Diffuse)	विशिष्ट (Specific)
उपलब्धि प्रधान (Achievement oriented)	आरोपित (Ascribed)
भाव तटस्थ (Affective neutral)	भावात्मक (Affective)
समूहोन्मुख (Collectivity oriented)	स्वहितोन्मुख (Self oriented)

'इन मानक शब्दों के सहारे प्रकार्यों का तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया जा सकता है।' अवधारणाओं का प्रकार्यवादी विश्लेषण आमण्ड, कोलमैन, डेविड ईस्टन, पॉवेल आदि ने किया है।[11] किन्तु प्रकार्यवादियों ने 'प्रकार्यों' को ही अधिक स्थान देकर असन्तुलन पैदा कर दिया। इनके अनुसंधानकर्ताओं के ध्यान संरचनाओं (Structures) की ओर भी

गया। इन दोनों—प्रकार्यों एव सरचनाओ, को समान महत्त्व देने के परिणामस्वरूप ही सरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम का विकास होना सम्भव हुआ है।

संरचना : अर्थ एवं व्याख्या (Structure Meaning and Explanation)

डब्ल्यू एफ. रिग्स ने लिखा है कि यदि 'प्रकार्यों के विरुद्ध सरचनाओ (Structures) पर जोर नही दिया जाता है, तो विश्लेषण गुमराह करने वाला और अविश्वसनीय हो सकता है।'[20] स्वय आमण्ड कोलमैन को आगे चलकर अपने प्रकार्यवादी परिप्रेक्ष्य मे परिवर्तन करना पडा। इससे अनेक प्रश्न एव कठिनाइयाँ दूर हो जाती हैं।

'सरचना' नियमित रूप से निरन्तर निष्पादित की जाने वाली क्रियाओ, गतिविधियो अथवा सम्बन्धो के प्रतिमान को कहते हैं। बारम्बार घटित होने वाले प्रकार्यों, प्रक्रियाओ अथवा लगातार बनी रहने वाली दशाओ के फलस्वरूप सरचनाओ का जन्म होता है। जैसे, निरन्तर प्रयुक्त होने के कारण ग्रेट ब्रिटेन मे 'विधि का शासन' (Rule of law) बाध्यकारी सरचना बन गया। ऐसी सरचनाएँ शरीर मे हड्डी के ढाँचे की तरह होती हैं। सरचनाएँ धीरे-धीरे स्थापित हो चुकने के बाद प्रकार्यों को सीमित, निर्देशित, प्रतिबन्धित अथवा परिचालित करने लग जाती हैं। इनमे मानकीयता, नियमितता, निरन्तरता, विपुलता, आकार आदि विशेषताएँ आ जाती हैं। पारसन्स के अनुसार, ये 'प्रतिमानित प्रत्याशाओ की व्यवस्थाएँ' होती हैं। सरचनात्मक विश्लेषण उन दशाओ के परिसीमन से जुडा रहता है जिनके भीतर चयन, गतिविधियाँ, क्रियाएँ आदि सम्भव होती हैं। प्रकार्यवादी विश्लेषण मे यह देखा जाता है कि कौनसे चयन किये जा रहे हैं और क्यो किये जा रहे है? किन्तु सरचनात्मक विश्लेषण यह बताता है कि कौनसे चयन, क्रियाएँ आदि सम्भव हैं?

लेवी के अनुसार, सरचना और प्रकार्य घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते हैं।[21] तुलनात्मक एव सापेक्ष दृष्टि से प्रकार्य व्यापक, सामान्य, अनेक, भावनात्मक, विशिष्ट एव परिवर्तनशील होते हैं। सरचनाएँ उक्त प्रकार्यों की दशाएँ, स्थितियाँ या सक्रियाओ (Operations) की प्रेक्षणीय समरूपताएँ (Uniformities) या प्रतिमान (Patterns) हैं। प्रत्येक घटना[22] मे, यदि उसे ध्यान मे देखा जाय, सरचना सकेतक तत्त्व होते हैं। लेवी ने बताया है कि जो एक दृष्टि विशेष मे 'प्रकार्य' है, वह दूसरे दृष्टिबिन्दु से 'सरचना' हो सकती है। कार का उत्पादन, कार का प्रयोग तथा कार मे आना-जाना दृष्टिबिन्दुओ के भेद से सरचना और प्रकार्य बन सकते हैं। सरचनाएँ सश्लेषणात्मक, कालावधि पार (Over *a period of time*), *सम्बन्धक, तथा व्यवस्थाओ के अस्थिरतर स्वरूप होती हैं।* कार्यपालिका, ससद, नौकरशाही आदि इसके अनेक उदाहरण हैं।

दोनो के महत्त्व को देखते हुए, अधिकाश राजविज्ञानी दोनो को मिलाकर एक सन्तुलित उपागम के विकास मे लगे हुए हैं। इसे सरचनात्मक-प्रकार्यवादी उपागम कहा गया है। राजविज्ञान मे इसका प्रथम महत्त्वपूर्ण प्रयोग आमण्ड एव कोलमैन (Gabrial A. Almond and James S. Coleman, The Pclitics of Developing Areas, 1960) ने किया है। इस परिप्रेक्ष्य को अपनाने वाला शोधक सर्वप्रथम अपनी अध्ययन-इकाई को परिभाषित करता है। फिर वह उसके परिवेश की खोजता है कि उसे कौन प्रभावित, सीमित या सचालित करते हैं? उस इकाई को बनाये रखने मे अपेक्षित प्रकार्यों का अवलोकन किया जाता है। यह देखा जाता है कि उन्हे कौन-कौन-सी सरचनाएँ निष्पादित कर रही हैं तथा उनकी कौनसी कार्यशैलियाँ हैं? ऐसा करते हुए सरचना तनक

प्रकार्यवादी शोधक या विज्ञानी एक सुसगत तथा एकीकृत सिद्धान्त विकसित करना चाहता है ।

आमड-कोलमैन द्वारा प्रयोग (Almond Coleman's Contribution)

गैब्रील ए. आमण्ड तथा जेम्स एस. कोलमैन ने विकासशील देशों के तुलनात्मक विश्लेषण तथा एक विकास सिद्धान्त विकसित करने के लिए इसी उपागम का प्रयोग किया है। उन्होने राजव्यवस्था की सात 'प्रकार्यात्मक अपेक्षाएँ' (Functional roquisites) बताई हैं। 'व्यवस्था' से उनका अर्थ है, सीमाओ के अस्तित्व, अन्योन्याश्रय (Interdependence), तथा व्यापकता के लक्षणो से युक्त अन्त क्रियाओ का विशेष सैट। उनके अनुसार राजव्यवस्था 'न्यूनाधिक रूप मे, समाज के अन्तर्गत एक औचित्यपूर्ण, सुव्यवस्था (Order) सन्धारक या रूपान्तरकारी' व्यवस्था होती है। वह अपना कार्य औचित्यपूर्ण भौतिक दबावो के माध्यम से करती है। इसकी सात 'प्रकार्यात्मक अपेक्षाओं' को दो मोटे वर्गों निवेश (Input) तथा निर्गत (Output) मे विभाजित किया गया है।—

(क) निवेश-प्रकार्य (Input functions)

- (i) राजनीतिक समाजीकरण तथा भर्ती (Political Socialization and recruitment).
- (ii) हित स्पष्टीकरण (Interest-articul tion) या हित-स्वरूपण,
- (iii) हित-समूहीकरण (Interest-aggregation) या हित-समूहन,
- (iv) राजनीतिक-संचार (Political communication)

(ख) निर्गत प्रकार्य (Input Functions)

- (v) नियम-निर्माण (Rule-making),
- (vi) नियम-नियुक्ति (Rule-application), तथा
- (vii) नियम-अधिनिर्णयन (Rule adjudication)

निवेश प्रकार्यों का नवोदित एव विकासशील राजव्यवस्थाओ मे अधिक महत्त्व होता है। इन राजव्यवस्थाओं की सस्कृति 'मिश्रित' (Mixed) प्रकार की होती है। इस कारण इनका निष्पादन पश्चिमी राजव्यवस्थाओ की भांति स्पष्ट, निश्चित तथा सुव्यवस्थित रीति से नही होता। इनकी कार्यशैली का विवेचन करने के लिए आमण्ड-कोलमैन ने पारसन्स की मानक शब्दावली का प्रयोग किया है।

निवेश प्रकार्य (Input Func ions)

(1) राजनीतिक समाजीकरण एव भर्ती (Political Socalization and Recruitment)--प्रकार्य का वह वर्ग है जिसके द्वारा राजव्यवस्थाएं राजनीतिक सस्कृति के मूल्य, विन्यास, संवेग वर्तमान एव भावी पीढ़ी को प्रदान किये जाते है। समाजीकरण की प्रक्रिया परिवार, शिक्षा संस्था, चर्च, कर्मसमूह, राजनीतिक दलो आदि के माध्यम से परिचालित होती है। इसके द्वारा आगे चलकर यह निर्धारित होता है कि कौन किस प्रकार के राजनैतिक पदों को धारण करेगा अथवा सक्रिय या निष्क्रिय नागरिक बना रहेगा? राजव्यवस्था मे सक्रिय सदस्य बनने की प्रक्रिया को 'भर्तीकरण' कहा जाता है। इन राजनीतिक सदस्यों के मानस एव मस्तिष्क का निर्माण समाजीकरण के द्वारा होता है। इसी प्रकार हित स्पष्टीकरण का रूप निश्चित होने लगता है।

(2) हित-स्वरूपीकरण (*Interest articulation*)—*व्यवस्था की राजनीतिक* सीमाओ का निर्धारण करता है। राजनीतिक समाजीकरण ही बताया है कि किस प्रकार के व्यक्तिगत हित, मांगें आदि राजनैतिक क्रिया या सामग्री बन जायेंगी ? अनेक प्रकार के समूह, सस्थाएँ, सघ, निकाय आदि अपनी मागें राजव्यवस्था के समक्ष रखती हैं।

(3) हित-समूहीकरण (Interest-Aggregation)—विभिन्न हितो के प्रकट होने पर उन्हे बडे वर्गों या नीतियो के रूप मे वर्गीकृत करना आवश्यक होता है। छोटे-छोटे सैकडो समूहो के लिए अलग-अलग निर्णय नही लिए जा सकते। अतएव राजव्यवस्था विभिन्न हितो, दावो और मांगो का समूहीकरण करके नीति-निर्माण करती है। समूहीकरण का कार्य मुख्य रूप से राजनैतिक दलों, मन्त्रिमण्डल, सेवी वर्ग आदि के द्वारा किया जाता है।

(4) राजनीतिक-संचार (Political Communication)—सूचनाओ के आदान-प्रदान *की प्रक्रिया समस्त प्रकार्यों* को एक-दूसरे से जोडती है। सचार-साधनो के अभाव मे प्रकार्यों का निष्पादन नही हो सकता। सचार मे समरसता, गतिशीलता, मात्रा और दिशा देखी जाती है।

निवेश-प्रकार्यों को राजनीतिक या अशासनिक (Non-governmental) भी कहा जाता है। विकासशील देशो में इनका महत्त्व 'शासनिक' (Governmental) प्रकार्यो से भी अधिक होता है।

निर्गत प्रकार्य (Output Functions)

(5) नियम-निर्माण (Rule-Making)—नियम-प्रयुक्ति तथा नियम-अधिनिर्णयन प्रकार्यों को 'शासनिक' (Governmental) कहा जाता है। ये शासन या सरकार के परम्परागत *कार्य हैं। किन्तु उपागम के अनुसार, ये 'प्रकार्य' किसी विशेष सरचना से, जैसा* कि प्रायः सोचा जाता है, बधे हुए नही हैं। नियम-निर्माण कानून, नियम, उपनियम, अध्यादेश, आदेश आदि से सम्बन्ध रखने वाले प्रकार्य हैं। ये ससद, राज्याध्यक्ष, मन्त्रियो आदि द्वारा निष्पादित किए जाते हैं।

(6 नियम प्रयुक्ति (Rule-Application)—नियमो के बनाये जाने के पश्चात् उन्हें लागू करने का प्रश्न सामने आता है। प्रत्येक राजव्यवस्था उनके क्रियान्वयन या निष्पादन के लिए *विशाल नोकरशाही, सेना तथा कार्यपालिका* रखती है। अपने आदेशो को बलपूर्वक लागू करने के लिए उसके पास सेना, पुलिस, गुप्तचर सस्थाएँ आदि होती हैं। जनता भी क्रियान्वयन मे भाग लेती है।

(7) नियम-अधिनिर्णयन (*Rule-Adjudication*)—नियमो को सामान्य रूप से सभी पर लागू किया जाता है। नियम-अधिनिर्णयन मे उन नियमो को, विवाद उत्पन्न हो जाने के कारण, विशेष अथवा व्यक्तिगत मामलो मे लागू किया जाता है। राजव्यवस्था के उत्तर-जीवन (Survival के लिए यह देखना *आवश्यक है कि उक्त प्रकार्य किस प्रकार तथा* किन लोगों के द्वारा तथा किन-किन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए किये जाते हैं ? परम्परागत भाषा में उन्हें न्याय-व्यवस्था कहा जाता है।

वर्गीकरण सिद्धान्त-निर्माण (Classification and Theory-Building)

उक्त प्रकार्यों के सात वर्गों के अन्तर्गत विकासशील देशो का आनुभविक अध्ययन

लेखकद्वय द्वारा किया गया है। आमण्ड-कोलमैन ने उक्त प्रकार्यों का विवेचन करते हुए उनकी शैलियों (Styles) का पारसन्स की पदावली में उल्लेख किया है। उक्त अवधारणात्मक योजना के अधीन अवलोकन करके उन्होंने विकासशील देशों के पाँच प्रकार या प्ररूप (Models) बताये हैं—(i) राजनीतिक प्रजातन्त्र (Political democracies), (ii) अभिभावक प्रजातन्त्र (Tuletary democracies), (iii) आधुनीकरणशील प्रजातन्त्र (Modernıng olgarchy), (v) सर्वाधिकारवादी अल्पतन्त्र (Totalitarian oligarchy) तथा (v) परम्परात्मक अल्पतन्त्र (Traditional oligarchy)। लेखकद्वय ने बताया है कि उक्त विचारबन्ध के माध्यम से राजव्यवस्थाओं के विश्लेषण में औपचारिक तर्कशास्त्र एवं गणित का प्रयोग किया जा सकता है। इससे अध्ययन में प्रामाणिकता, सूक्ष्मता, निश्चयात्मकता और यथार्थता आ जाती है। उन्होंने अपने आनुभविक अध्ययन द्वारा 'राजतन्त्र के सम्भाव्यता सिद्धान्त' की रूपरेखा बताई है। यह सम्भाव्यता (Probability) सिद्धान्त निवेश और निर्गत प्रकार्यों की विशेष कार्यशैलियों से निःसृत हुआ है। उसमें यह बताया गया है कि विशेष प्रकार के प्रकार्य तथा शैलियाँ, विकासावस्था के निर्दिष्ट स्तर पर, विशेष संरचनाओं द्वारा जुड़ी हुई हैं। ऐसे विश्लेषण के आधार पर, तृतीय विश्व के देशों की विषय-सामग्री का अध्ययन करके उनके विकास की व्याख्या की जा सकती है तथा दिशा बताई जा सकती है। किन्तु उक्त उपागम अपने आप में पूर्ण नहीं है और स्वयं आमण्ड ने पॉवेल के साथ उसमें संशोधन तथा परिवर्तन किये हैं।[23] ऐसा करने में सिद्धान्त निर्माण का कार्य और भी आगे बढ़ा है।

3. विनिश्चयन उपागम (Decision Making Approach)

अंग्रेजी के शब्द 'Decision' का अर्थ प्रायः 'निर्णय' होता है किन्तु उसका प्रयोग न्याय-सम्बन्धी अधिक माना जाता है। इसलिए अनुसन्धान की भाषा में 'विनिश्चय' शब्द को *अपनाया गया है। व्यवस्था-सिद्धान्त या संरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागमों की तुलना में* यह समष्टि (Macro) प्रकृति का न होकर व्यष्टि (Micro) या सूक्ष्म इकाइयों के लिए अधिक लागू होता है। *प्रत्येक क्षेत्र में विनिश्चय निर्माण या विनिश्चयन (Decision-making)* का अत्यधिक महत्त्व होता है। व्यवस्थापिकाएँ, कार्यपालिकाएँ राज्याध्यक्ष, न्यायमण्डल आदि सभी विनिश्चयन कार्य में ही व्यस्त रहते हैं। इसी से नीति निर्माण, द्वन्द्व, सहयोग, मतभेद आदि उत्पन्न होते हैं।

'विनिश्चयन वह प्रक्रियात्मक केन्द्रबिन्दु है, जहाँ योजनाएँ, नीतियाँ तथा सत्य मूर्त क्रियाओं के रूप में कार्यान्वित किए जाते हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण विनिश्चय करने वाला व्यक्ति ही शक्तिशाली माना जाता है। हरबर्ट साइमन ने इसे 'संगठनों का मूलभूत संयत्र' कहा है। यही कारण है कि आजकल 'विनिश्चय' का अधिकाधिक विश्लेषण किया जाता है। विनिश्चयन विश्लेषण के द्वारा समाज में वास्तविक शक्तिधारियों, कारकों, निर्णयात्मक *दुर्बलताओं आदि का पता लगाया जा सकता है। विनिश्चयन उपागम में रुचि रखने वाले* अनेक अनुशासन हैं, यथा, राजविज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, प्रशासनशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि।

हरबर्ट साइमन (Herbert Simon)

हरबर्ट साइमन (Administıative Behaviour, 1947) ने विनिश्चय-निर्माण का आनुभविक प्रतिपादन किया है। वह विनिश्चयन को राजनीतिक प्रक्रियाओं का हृदय या सारभाग (Core) कहता है। उसके अनुसार, सही विनिश्चयन-विश्लेषण के लिए आवश्यक

है कि तथ्य एव मूल्यो को अलग अलग रखा जाय। मूल्यो का विश्लेषण किया जा सकता है। केवल परम, अन्तिम या उच्चतम मूल्यो (Ultimate values) का विश्लेषण सम्भव नही है। किन्तु उन्हे ज्ञात किया जा सकता है। परम मूल्य के ज्ञात हो जाने पर अन्य सहायक मूल्यो, लक्ष्यो, प्रयोजनो आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है।[24] लक्ष्य जब तक दूसरे या उच्च लक्ष्यो के साधन है तब तक उनका तथ्यात्मक परिमापन सम्भव है। किन्तु अन्तिम लक्ष्यो के बारे मे किसी प्रकार का कोई सत्यापन या प्रमाणीकरण सभव नही होता।

विनिश्चय-प्रक्रिया के विश्लेषण हेतु साइमन ने मानवीय बौद्धिकता (Rationality) का प्रारूप (Model) तैयार किया है। उसके अनुसार, मनुष्य सीमित या प्रतिबधित बौद्धिकता (Bounded rationality) रखता है तथा उसी की सीमाओ मे रहकर विनिश्चय करता है। मनुष्य अपने जीवन का अधिकाश समय सवश्रेष्ठ वरीयता (Preference) या सर्वाधिक अनुकूलतम निर्णय करने मे नही बिताता। वह प्रत्येक सगतिपूर्ण वस्तु का भी पूरी तरह मे ध्यान नहीं रख पाता। वह मानव मनोविज्ञान का सहारा लेते हुए बौद्धिक परिगणन (Calculation) की 'सीमाओ' को समझता है। मनुष्य अधिकतमीकरण (Maximising) की अनन्तता मे फसने के बजाय 'अच्छी पर्याप्तता' या सन्तोषीकरण (Satisficing) से ही काम चला लेता है। यही साइमन का 'व्यवहार-विकल्प प्ररूप' है।[25]

विनिश्चयन प्रक्रिया के चरण

अपने सरल रूप मे, निर्णय या विनिश्चय आमुखो (Premises) से निष्कर्ष निकालने या अनेक विकल्पो मे से किसी एक के चयन (Choice) की प्रक्रिया है। यह चयन किसी एक व्यक्ति, समुदाय, सगठन या व्यवस्था द्वारा भी किया जा सकता है। चयन से सम्बन्धित सरचनात्मक प्रक्रियाओ का स्वरूप औपचारिक या अनौपचारिक दोनो प्रकार का हो सकता है। बडे सगठनो एव व्यवस्थाओ म विनिश्चयन प्रक्रिया का स्वरूप वृक्ष या नदी की भाँति होता है। इनको सगठन स्तर पर अनेक शाखाएँ और प्रशाखाएँ होती हैं। विशेषज्ञता और समन्वयन (Coordination) के आधार पर निर्णयन के स्वरूप का निर्माण और क्रियान्वयन अनेक स्तरो पर होता है।

विनिश्चयन तीन चरणो मे किया जाता है—

(1) विनिश्चयन के कारणो तथा अवसरो की उपलब्धि,

(2) कार्यवाही या कार्य करने के लिए सभी सम्भावित विकल्पो की प्राप्ति, तथा

(3) उन विकल्पो मे से किसी एक का चयन।

कुछ विश्लेषको ने इन चरणो की सख्या, जैसे, पीटर ड्रकर ने पाँच, लासवैल ने सात तक बतायी है। साइमन ने प्रथम को आसूचना (Intelligence) गतिविधि कहा है। उसमे विनिश्चय की माग करने वाली परिस्थितियों के पर्यावरण की खोज की जाती है। द्वितीय को अभिकल्प (Design) गतिविधि कहा गया है। इसमे सम्भावित कार्यवाही का आविष्कार, विकास और विश्लेषण किया जाता है, तथा, तृतीय चयन (Choice) गतिविधि बतायी गयी है। इसमे उपलब्ध कार्यमार्गों म से किसी एक का चयन किया जाता है।[26] मैकफरलेण्ड ने विनिश्चय को प्रतिशतात्मक, प्रतिबद्धतापूर्ण, मूल्याकनात्मक बौद्धिकतापूर्ण माना है। विनिश्चयन प्रक्रिया अनेक सरचनात्मक, ऐतिहासिक, मूल्यात्मक, क्रियाविधि-सम्बन्धी, मानवीय, सास्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि कारको से अन्तर्ग्रस्त होती है। ह्वाइट और लुण्डबर्ग ने उसे सस्थात्मक या सामूहिक प्रवृत्ति का बताया है।

विनिश्चय का आरम्भ शीर्ष या धरातल से हो सकता है। औपचारिक रूप से उसे कार्यपाल या मुख्य कार्यपाल को सौंपा जाता है। उससे सम्बन्धित व्यापक लक्ष्य मूल्यात्मक होते हैं और वे व्यवस्थापिका द्वारा निर्धारित किये जाते हैं। उनके अन्तर्गत, उपलब्ध तथ्यों के आधार पर, साधनात्मक अथवा क्रियान्वयनात्मक निर्णय कार्यपालिका द्वारा लिए जाते हैं। अधीनस्थ कर्मचारियों अथवा मध्यस्तर के राजनेताओं के लिए ये ही लक्ष्य बन जाते हैं। राजव्यवस्था में विनिश्चयन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों से सम्बन्धित कार्य विशेषज्ञता, कुशलता, सुगमता, शीघ्रता और प्रभावशीलता के आधार पर, अनेक स्तरों पर, क्षैतिज एवं उदग्र रूप में विभाजित कर दिया जाता है। उसके मध्य समन्वयन का कार्य मुख्य कार्यपाल या शीर्षस्थ नेता द्वारा किया जाता है। तभी विनिश्चयकर्त्ताओं अथवा विनिश्चयन में सहायकों को उचित विनिश्चय करने के लिए, आवश्यक साधन, सामग्री, संचार उपकरण सत्ता आदि प्रदान किये जाते हैं। विनिश्चयों पर विनिश्चयकों (Decision makers) के व्यक्तित्व, पर्यावरण, अलौकिक तत्त्वों, समय आदि का भी प्रभाव पड़ता है। अब वैज्ञानिक तकनीकी और आनुभविक प्रविधियों पर अधिक जोर दिया जाता है।

राजविज्ञान के क्षेत्र में विनिश्चयन-सिद्धान्त का निर्माण करने के लिये तीन बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। (i) उसे विशिष्ट राजनैतिक समस्याओं के उतार-चढ़ावों पर ध्यान दिलाने के लिए नियमों की व्याख्या करनी चाहिए, (ii) उसे राजनैतिक कर्म (Action) के प्रभावशाली विकल्पों के निर्माण और आविष्कार का नियमन करने वाले कार्यनियमों (Principles) का उल्लेख करना चाहिए, तथा (iii) उसे उन शर्तों को निर्धारित कर देना चाहिए, जो किसी विकल्प के चयन को निश्चित करें। इनसे ऐसी विधियाँ बनाने में सहायता मिलेगी जो प्रत्येक प्रकार के विनिश्चय की मार्ग-निर्धारक हों।

यदि उक्त नियमों, कारकों, परिस्थितियों एवं चरों आदि को क्रमिक रूप से बता दिया जावे, तथा परम मूल्यों एवं उपमूल्यों या लक्ष्यों का कथन कर दिया जावे, तो कर्त्ता (Actor) द्वारा किये जाने वाले विनिश्चय की पूर्वकथन (Prediction) किया जा सकता है। निस्संदेह, विभिन्न परिस्थितियों, विषयों तथा रणनीतियों के लिए विनिश्चयात्मक संरचनाओं का सैटिंग (Setting) अलग-अलग होगा। *विनिश्चय-प्रक्रिया को उच्चस्तरीय,* जटिल एवं संवेदनशील संगणकों (Computors) पर सैट किया जा सकता है तथा निर्दिष्ट चरों के अनुसार उपयुक्त 'विनिश्चय' प्राप्त किये जा सकते हैं। विकसित देशों में सभी महत्वपूर्ण मामलों में विनिश्चय करने के लिए इसी प्रकार के संगणकों की सहायता ली जाती है। साइमन के पश्चात् अनेकानेक राजविज्ञानियों ने उक्त उपागम का प्रयोग, विकास एवं परिष्कार किया है। इनमें हेरोल्ड स्प्राउट, लासवैल, स्नूमियन पाई, बर्नार्ड कोहन, रोजर हिल्समैन, स्नाइडर, ब्रक एवं सेपिन आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। येहज्केल ड्रोअर ने इस उपागम को व्यापक एवं वैज्ञानिक बनाने पर विशेष बल दिया है।

उक्त उपागमों एवं परिप्रेक्ष्यों के अतिरिक्त अन्य और भी उपागम उपलब्ध हैं तथा संचार-सिद्धान्त, समूह-उपागम आदि। शोधक अपने विषय, केन्द्रीय चरों, उपयुक्तता तथा पद्धतियों एवं प्रविधियों के सन्दर्भ में उनका चयन कर सकता है। उपागम या परिप्रेक्ष्य का निर्धारण करने के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रश्न पद्धतियों के चुनाव से सम्बन्धित होता है। इन पद्धतियों में सबसे अधिक उपयोगी एवं आनुभविक वैज्ञानिक-पद्धति (Scientific-Method) मानी जाती है। इनका विवेचन अगले अध्याय में किया गया है।

सन्दर्भ

1 श्यामलाल वर्मा आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त वही, अध्याय-दो।
2 Eugene J Meehan, The Foundations of Political Analysis—Emperical and Normative, Homewood, Illinois Dorsey press, 1971, p 244
3 David Easton, A Framework for Political Analysis, New York, Prentice Hall, 1965
4 Meehan, The Theory and Method of Political Analysis, op cit, p 128
5 Karl K Popp r quoted, Robert Dubin, Theory Building—A Practical Guide to the Construction and Testing of Theoretical Models, New York, Free Press 1969, p 9
6 Percy S Cohen, Modern Social Theory, London, H E S, 1968, p 1
7 Talcott Parsons The Structure of Social Action, New York, McGraw Hill, 1937, p 6
8. Gideon Sjoberg and Roger Nett A Methodology for Social Research, New York, Harper & Row, 1968, Preface
9 Geoffrey K Roberts, What is Comparative Politics, London, Macmillan, 1972, pp 23-24
10 David Easton, The Political System - An Inquiry into the State of Political Science, 2nd Indian Edition, Calcutta, Scientific Book Agency, (1953), 1971, A Framework for Political Analysis, New York, Prentice Hall, 1960, A Systems Analysis of Political Life, New York, Prentice Hall, 1965
11 Meehan, The Foundations of Political Analysis, op cit, p 91.
12. Maurice Duverger, Introduction to the Social Sciences, London, George Allen and Unwen Ltd, 1961, p 225
13. अन्य उपागमों, प्रत्ययों आदि के लिए देखिए, वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, वही अध्याय-सात, आठ नौ एव दस।
14. Easton, ed, Varieties of Political Theory, Englewood Cliffs, New Jersey, Prentice-Hall, 1966, Introduction
15. James C Charlesworth, ed, Contemporary Political Analysis, 1967, Introduction
16. Gabriel A Almond and James S Coleman, eds, The Politics of Developing Areas, Princeton U P 1960, Introduction, p 7
17 Meehan, Contemporary Political Thought A Critical Study, Illinois, Dorsey Press, 1967, p 113.

18 'प्रकार्य' एक तकनीकी शब्द है। वह साधारण एव प्रचलित शब्द 'कार्य' से भिन्न है। इसी प्रकार, 'सरचना' शब्द भी तकनीकी है। उसकी व्याख्या आगे की गई है।

19. विस्तार के लिए देखिए, *श्यामलाल वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धात*, द्वितीय सस्करण, वही, अध्याय–आठ, समकालीन राजनीतिक चिन्तन एव विश्लेषण, दिल्ली, मैकमिलन, 1976, अध्याय–तेरह ; जियाउद्दीन खान् एव एस एल. वर्मा, प्रशासनिक विचारधाराएँ–भाग–2, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1979, पृ. 55–75

20. Fred W. Riggs, 'Systems Theory : Structural Analysis', in Micheal Hans and Leroy S Kariel, eds, *Approaches to the Study of* political Science, op. cit

21 Marion J. Levy Jn , The Structure of Society, Princeton, U.P. – *1952.*

22. इस पुस्तक मे 'Phenomenon' के लिए 'घटना' शब्द का उपयोग किया गया है। 'Event' के लिए 'घटना' शब्द का प्रयोग करते समय अंग्रेजी शब्द को भी कोष्टको मे अंकित कर दिया गया है।

23. Gbriel A Almond and Bingham G. Powell, Comparative Politics ; A Developmental Approach, Boston, Little, Brown, 1966.

24. मूल्य सम्बन्धी परिचर्चा के लिए, देखिए, *अगला अध्याय तथा वर्मा, आधुनिक* राजनीतिक सिद्धान्त, द्वितीय सस्करण, अध्याय–चार।

25. विस्तार के लिए देखिए, *खान एव वर्मा, प्रशासनिक विचारधाराएँ–भाग–2*, वही, अध्याय–6।

26. Herbert A. Simon, The New Science of Management Decision, New York, Harper and Row, *1960*, p 2.

अध्याय 4

वैज्ञानिक पद्धति एवं मूल्य समस्या
(Scientific Method & Value Problem)

राजनीति के अध्ययन को 'वैज्ञानिक' बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसे 'वैज्ञानिक पद्धति' को अपनाकर किया जाय। 'वैज्ञानिक पद्धति' (Scientific Method) के द्वारा प्राप्त ज्ञान को ही 'राजनीति का वैज्ञानिक ज्ञान' या 'राजनीति विज्ञान' कहा जायेगा। वैसे राजनीति-विषयक ज्ञान का भंडार अपार है और उसका थोड़ा बहुत ज्ञान सभी के पास है, किन्तु राजनीति का 'वैज्ञानिक ज्ञान' बहुत कम लोगों के पास है। दूसरे शब्दों में, विशुद्ध राजविज्ञानियों की संख्या बहुत कम है। राजनीतिक ज्ञान का दावा करने वाले अन्य व्यक्तियों को राजवेत्ता, राजनीतिज्ञ, विचारक, राजशास्त्री, राजदार्शनिक आदि कहा जा सकता है, किन्तु उनकी तुलना में राजविज्ञानी का ज्ञान ही अधिक निश्चित, प्रामाणिक, वस्तुपरक, व्यापक, जाचशील, सचारणीय तथा सार्वजनिक प्रकृति का होगा। ज्यों-ज्यों ऐसे वैज्ञानिक ज्ञान की मात्रा बढ़ती जायेगी, राजनीति का विषय अधिकाधिक मात्रा में 'राजविज्ञान' (Political Science) बनता जायेगा। पीयर्सन ने कहा है कि 'सत्य तक पहुँचने के लिये कोई भी संक्षिप्त मार्ग नहीं है। जगत का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के अलावा और कोई दूसरा द्वार नहीं है।'[1]

'There is no short-cut to truth; no way to gain knowledge of the universe except through this gateway of scientific method."

—Karl Pearson

'विज्ञान' और 'वैज्ञानिक पद्धति' (Science & Scientific Method)

मूल रूप में, विज्ञान जगत् और उसकी वस्तु/वस्तुओं के ज्ञान की खोज है। वान डायक ने कहा है कि विज्ञान उस ज्ञान से सम्बन्ध रखता है जो हो चुका है, या है, या होगा, चाहे किसी परिस्थिति में कोई भी 'चाहिए' (Ought) क्यों न हो। वह यथार्थ (Reality) के विवेचन की विधि है, इसलिए प्रेक्षण, पर्यवेक्षण या अवलोकन पर आधारित है तथा उसकी सीमाओं से बंधी हुई है। जिसका अवलोकन नहीं किया जा सकता, वह विज्ञान की अध्ययन-सामग्री नहीं बन सकती। किन्तु यहाँ अवलोकन या प्रेक्षण का अर्थ केवल नेत्रों द्वारा देखना मात्र न होकर, सभी ज्ञानेन्द्रियों या कम से कम एक या दो के द्वारा उस वस्तु का ज्ञान है। इसमें उस वस्तु, घटना, क्रिया या प्रक्रिया के साथ संलग्न नाम, भाव, विचार आदि सभी आ जाते हैं। इस प्रकार विज्ञान प्रेक्षण (Observation) का ज्ञान है।[2] डायक के अनुसार, विज्ञान में तीन लक्षण पाये जाते हैं (1) सत्यापनीयता (Verificationality) (2) व्यवस्था (System), तथा (3) सामान्यता (Generality) विज्ञान का मूलाधार प्रेक्षण है। उसकी विशिष्ट प्रेक्षणीयता को वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है। किसी भी अनुशासन (Discipline) को विज्ञान बनाने के लिये उसकी विषय वस्तु नहीं, अपितु वैज्ञानिक-पद्धति महत्वपूर्ण होती है। लुण्डबर्ग (George A Lundberg) ने कहा है कि विज्ञान, पद्धति से माना जाता है, विषय वस्तु से नहीं।[3] उसका मूल आन्तरिक स्वरूप सभी जगह एक-सा

है । तकनीकी शब्दो मे, वह व्यवस्थित पर्यवेक्षण, वर्गीकरण और आधार सामग्री (Data) के निर्वचन (Interpretation) से निर्मित है ।

व्यापक दृष्टिकोण से, वैज्ञानिक पद्धति विश्व के प्रति एक चित्तवृत्ति (Attitude), एक दृष्टि बिन्दु जाचशील ज्ञान का व्यवस्थित निकाय तथा खोज करने का एक तरीका है । ऑगस्त काम्त (Auguste Comte) के अनुसार, समस्त जगत् कतिपय शाश्वत प्राकृतिक नियमो मे व्यवस्थित एव निर्देशित होता है । इन नियमो को धार्मिक एव आध्यात्मिक आधारों का सहारा लिये बिना समझा और जाना जा सकता है । थाउलेस (R N Thouless, The Study of Society, 19‘6) के मत म, "वैज्ञानिक पद्धति सामान्य नियमो की खोज के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रविधियो की एक व्यवस्था (System) है जो कि विभिन्न विज्ञानो मे कई बातों में अलग होते हुए भी एक सामान्य प्रकृति को बनाये रखती है ।

‘ Scientific method is a system of techniques (different in many respects in different sciences, although retaining the same general character) *for attaining the end of discovering general laws* ”

—R N Thouless

समस्त विज्ञानों की एकता पद्धति की समानता म है । तथ्य मात्र विज्ञान का निर्माण नही करते, अपितु इन तथ्यो का अध्ययन करने के लिये जिस वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग किया जाता है, वह पद्धति ही विज्ञान बनने बनाने की कसौटी है । जो विषय इस कसौटी पर जितना खरा उतरता है वह उतनी ही मात्रा म 'वैज्ञानिक' माना जाता है ।

सरल शब्दो म, वैज्ञानिक पद्धति एक ऐसी प्रक्रिया है जिससे किसी वस्तु या घटना को जैसी वह है, उसी रूप म उतना ही जाना जाता है न कम और न अधिक । इस जानने की सत्यता या प्रामाणिकता के लिए आवश्यक है कि उस प्रक्रिया को काम मे लेकर दूसरे लोग भी वैसा ही जानें । यह कुछ 'गतिविधियां करने का तरीका है । उसे सूक्ष्म, परिशुद्ध और व्यवस्थित ढग से अध्ययन करने की विधि कहा जा सकता है । उसका किसी देश विशेष, सस्कृति या विषय वस्तु स सम्बन्ध नहीं होता । ग्रीबर ने वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्राप्त ज्ञान को 'अन्तर्वैयक्तिक सचारणीय बोध' (Inter Subjectively transmissible Knowledge) या 'एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाया जा सकने वाला ज्ञान' कहा है । ऐसे ज्ञान के दो गुण होते हैं—(i) वह व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य होता है, तथा (ii) उसे एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को समझाया या बताया जा सकता है । ऐसा तभी हो सकता है जबकि इस ज्ञान की प्राप्ति म सर्वमान्य वैज्ञानिक पद्धति का उपयोग किया जाय ।

किन्तु सभी विषयो म वैज्ञानिक-पद्धति की एकता का अर्थ यह है कि वह प्रत्येक अवस्था में एक-सी ही होगी । विभिन्न प्राकृतिक विज्ञानों म भी उसका स्वरूप बदल जाता है । ऐसा विषय-वस्तु की प्रकृति क कारण होता है । वैज्ञानिक पद्धति का स्वरूप भौतिक विज्ञान म कुछ और है तो खगोल विज्ञान अथवा भूगर्भ विज्ञान म कुछ और । इस अन्तर स उसके वैज्ञानिक होने की मान्यता में फर्क नहीं पड़ता । किन्तु यदि भौतिक विज्ञान की वैज्ञानिकता का सर्वोच्च स्थान दिया जायेगा, तथा निश्चितता, सूक्ष्मता, परिमाणता, परिशुद्धता आदि विशेषताओं का सर्वोपरि माना जायगा तो अन्य विज्ञान विज्ञानत्व की कसौटी पर नीचे उतरते दिखायी पड़ेंगे । किन्तु यदि उनकी विषय सामग्री की प्रकृति के अनुसार 'वैज्ञानिकता' की धारणा को सामने रखा जायगा, तो वे भी विज्ञान, अपने अनुरूप

'वैज्ञानिक-पद्धति' को अपनाने के कारण दूसरे से नीचा नही माना जायेगा। थाउलेस ने स्पष्ट कहा है कि वैज्ञानिक-पद्धति को प्रत्येक अवस्था म एक सी मान लेना त्रुटिपूर्ण है। प्रत्येक विज्ञान की निजी आवश्यकतानुसार इस पद्धति मे फेर बदल हो जाना स्वाभाविक है। वैज्ञानिक-पद्धति की मूल विशेषता यह है कि तथ्य एव प्रमाणो के आधार पर जाँच योग्य निष्कर्ष निकाले जायें। ये निष्कर्ष किसी न किसी रूप मे प्रेक्षणीय होने चाहिएँ।

एक दृष्टि से, भौतिक विज्ञान की वैज्ञानिक पद्धति को अन्य सभी विषयो पर लागू करना उन्हें अवैज्ञानिक बनाने का प्रयास है। जैसे, समाजशास्त्र या राजविज्ञान की गतिशील विषय-वस्तु के विषय से शासन एव सार्वभौमिक कथन करना अथवा उनको माप तौल की भाषा म कहना एक अवैज्ञानिक स्थिति हो सकती है। इसी प्रकार मन्त्रिमडल के सदस्यो को नेत्रो से देखभर लेना अपर्याप्त अवलोकन का उदाहरण होगा।

फिर भी यह स्वीकार करना पडेगा कि वैज्ञानिक पद्धति प्रक्षण (Observation) पर बल देती है तथा तथ्यो या विचारो की वास्तविक परीक्षा करनी है। वह ऐसे प्रयोग करने या आदर्श परिस्थितियाँ तैयार करने का प्रयास करती है जिनसे उन विचारो की जाँच हो सके। वह क्रमश ऐसे नये उपकरणो एव प्रविधियो का आविष्कार करती है जिनसे अधिक निश्चित रूप से जाँच या अध्ययन के समय वह शोधक को अपने निजो मूल्यो का बहिष्कार करने के लिये बाध्य करती है।[3]

वैज्ञानिक-पद्धति की मूलभूत मान्यताएं (Fundamental Assumptions of Scientific Method)

वैज्ञानिक-पद्धति शोधक या अध्येता को अपने निजी मूल्यो को दूर रखने का आग्रह करती है किन्तु स्वय उसके अपने मूल्य होते हैं तथा वह इन मूल्यो, धारणाओ या मान्यताओ का त्याग नही कर सकती। इन मूल्यो का त्याग कर देन पर वैज्ञानिक पद्धति असम्भव, निरर्थक एव अनुपयोगी हो जाती है। इन मान्यताओ का वैज्ञानिक-पद्धति की प्रक्रिया तथा उससे प्राप्त नतीजा पर कोई प्रभाव भी नही पडना अर्थात् वैज्ञानिक-पद्धति की मान्यताएँ उसके परिणामो को दूषित नही करती। उनसे प्राप्त परिणाम एव निष्कर्ष सार्वजनिक, सचारणीय एव गतिमान हो जाते हैं। यद्यपि इन मान्यताओ को वैज्ञानिक-पद्धति का उपयोग करके सिद्ध या प्रमाणित नही किया जा सकता, किन्तु इन्ह तर्क एव सार्वभौमिक अनुभव के आधार पर स्वीकार किया जा सकता है।

इन मान्यताओ के अनुसार, (1) यह जगत् (Universe) बोधगम्य है। इस जगत् म रहने वाले मनुष्यो, समूहो, सस्थाओ तथा उनके अन्त सम्बन्धो एव प्रक्रियाओ को जाना जा सकता है। (ii) मनुष्यो मे समवैयक्तिकता (Consubjectivity) पायी जाती है। मनुष्य होने के नाते हम किसी वस्तु का बिम्ब (Impression) अपनी इन्द्रियो के माध्यम से उसी प्रकार से ग्रहण कर सकते हैं जैसाकि कोई दूसरा व्यक्ति करता है। (iii) प्रकृति के आचरण मे व्यवस्था है, उसमे ऋतु, काल व जलवायु सम्बन्धी नियमितताएँ (Regularities) पायी जाती हैं। उसकी प्राकृतिक घटनाओ मे अनुक्रम (Succession) और अन्त सम्बन्ध पाया जाना है। (iv) मनुष्यो मे न्यूनाधिक मात्रा मे बोध या समझ (Understanding) होती है। उसमे किसी को सत्य (True) या असत्य (False) समझने की थोडी बहुत स्वतन्त्रता होती है। तथा, (v) मनुष्य आधार या विज्ञानी सत्य या वास्तविकता (Reality) का पता लगाने म वास्तविक रुचि रखता है। वह सत्य (Truth), दार्शनिक या नैतिक सत्य न

होकर, तथ्यात्मक (Factual) सत्य होता है। तथ्यात्मक सत्य का अनुसंधान करना उसका स्वाभाविक कर्म होता है। नये तथ्यों के प्रकाश में वह अपने ज्ञान 'सत्य' को बदलने के लिये तैयार रहता है। उपर्युक्त मान्यताएँ जैसाकि स्पष्ट है, स्वयंसिद्ध या स्वतः मान्य हैं। उन्हें न्यूनाधिक रूप में सभी स्वीकार करते हैं। उन्हें वैज्ञानिक पद्धति द्वारा प्रमाणित या सत्यापित नहीं किया जा सकता।

'सत्य' की खोज करना सभी राजविज्ञानियों का समान मूल्य या लक्ष्य होता है। यह सृष्टि, प्रकृति, ईश्वर या अदृश्य के कृतित्व को जानने की जिज्ञासा है। उसे असीम की खोज का मानवीय प्रयास माना जा सकता है। यह प्रयास असीम पर कोरा विश्वास रखने अथवा अंधी पूजा करने से भिन्न है। एक विज्ञानी किसी भी अंध श्रद्धालु भक्त से श्रेष्ठ माना जा सकता है। एक शोधक या वैज्ञानिक प्रकाश की ओर किन्तु निरा भक्त अंधकार की ओर ले जाता है। एक अपनी उपलब्धियों एवं मान्यताओं को खुले में, सबके सामने तथा सबके लिए रखता है, तो दूसरा उन्हें अकेले अपने लिये, अपने सीमित अनुयायियों के सामने तथा रहस्यमय तरीकों से छिपाता फिरता है। समाज या प्रकृति विज्ञानी छिपे हुए रहस्यों को सामने रखता है, किन्तु दूसरा खुली वस्तुओं को आदर्श और मूल्य की चादर में छिपा देता है। फिर भी ये दोनों, एक दूसरे के सर्वथा विपरीत नहीं हैं। न्यूटन जैसा वैज्ञानिक एवं अनुसंधानकर्त्ता भी जगत् के अनन्त रहस्यों के सामने बच्चे के समान हतप्रभ एवं मूक हो जाता है।

विज्ञानियों का विश्वास होता है कि यह जगत् एक व्यापक व्यवस्था (Cosmos) है, कोई अराजक (Chaos) अवस्था नहीं। उसमें विभिन्न गतिविधियों घटनाओं, विचारों आदि के व्यवस्थित प्रतिमान (Patterns) पाये जाते हैं। कान्ट ने कहा है कि जगत् का व्यवहार नियमित है। इन नियमित प्रतिमानों को खोजना ही शोधक का काम है। यह काम सदैव खुले और सार्वजनिक रूप में होता है। स्टुअर्ट चेज ने लिखा है कि उसमें "न कोई गुप्त क्रियाएँ हैं, न कोई पूर्व निश्चित उपचार, न कोई आत्मसीमित बोध, और न कोई सौदेबाजी। सारी गणना मेज पर रखी जानी चाहिए ताकि सारा संसार उसे देख सके और चुनौती दे सके।"[5] यह दृष्टिकोण वैज्ञानिक की सर्वोत्कृष्ट नैतिकता का प्रतीक है। यह नैतिकता उपकरणात्मक या साधनात्मक होने के कारण अस्वीकार नहीं की जा सकती। यदि वह वास्तविकता की खोज या निष्कर्षों को प्रभावित करती है, तो उन्हें चुनौती दी जा सकती है।

वैज्ञानिक पद्धति के प्रमुख चरण : आर्नल्ड ब्रैष्ट (Main Steps in Scientific Method Arnold Brecht)

'वैज्ञानिक पद्धति' तथ्यात्मक सत्य को जानने की व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध प्रक्रिया का नाम है। सत्य को जानने के लिये कई अवस्थाओं, चरणों या स्तरों से निकलना पड़ता है। कॉम्ट ने अपनी विधेयात्मक प्रणाली (Positive method) के पांच चरण बताये हैं—(i) विषय या समस्या का चुनाव, (ii) प्रेक्षण द्वारा प्राप्त होने वाले तथ्यों का संकलन, (iii) तथ्यों का वर्गीकरण (iv) तथ्यों की जांच, तथा (v) नियमों का प्रतिपादन। जॉर्ज ए लुण्डबर्ग ने चार चरण बताये हैं—(क) कार्यकर परिकल्पनाएँ (Working Hypotheses), (ख) आधार सामग्री का अवलोकन तथा आलेखन (Observation and recording of data) (ग) संकलित आधार-सामग्री का वर्गीकरण व संगठन (Classification and organization of the data collected), तथा (घ) सामान्यीकरण (Generalisation)। इन्हीं चरणों को अन्य प्रविधियों ने छः या सात चरणों में बताया है। आर्नल्ड

ग्रैबर ने इन्हें विस्तारपूर्वक बारह चरणों में प्रस्तुत किया है[6]—

(1) प्रेक्षण (observation)—सर्वप्रथम, प्रेक्षणीय वस्तुओं घटनाओं और तथ्यों का शोधकर्ता की इन्द्रियों द्वारा प्रेक्षण या अवलोकन किया जाता है। उन वस्तुओं आदि के लक्षणों और गुणों को पूर्ण रूप से सिद्ध होने तक के पहले लगभग निश्चितता के साथ स्वीकार या अस्वीकार करते हैं। कई बार, देखी हुई या सुनी हुई बातें बाद में गलत सिद्ध हो जाती हैं। नये तथ्यों के प्रकट होने पर विज्ञानी अपने विचार या अनुभव बदलने के लिये तैयार रहता है।

(2) वर्णन (Description)—इस अवस्था में प्रेक्षित वस्तुओं, घटनाओं या तथ्यों का वर्णन या विवरण प्रस्तुत किया जाता है। उस वर्णन या कथन को पूर्ण रूप सिद्ध होने के पूर्व तक 'सही और पर्याप्त' निर्णय के रूप में स्वीकार या अस्वीकार कर लिया जाता है। नये साक्ष्य (Evidence) के प्रस्तुत होने पर उनको बदला जा सकता है। 103636

(3) मापन—(Measurement)—यदि वह वस्तु, घटना या तथ्य मापनीय है तो उसके प्रेक्षण एवं वर्णन के आधार पर उसका मापन या परिमाणन किया जाता है।

(4) स्वीकृति या अस्वीकृति (Acceptance or Non-acceptance)—उपर्युक्त तीनों अवस्थाओं के पश्चात् उक्त वस्तु, घटना या तथ्य को तथ्यों, आँकड़ों आधार-सामग्री (Data) या वास्तविकता (Reality) के रूप में अस्थायी या सत्य में स्वीकार या अस्वीकार कर लिया जाता है। इसका अर्थ है, प्रेक्षण, वर्णन और मापन के परिणामों के अनुसार तथ्यों को जानना या स्वीकार करना। उन्हें असत्य सिद्ध होने पर अस्वीकार कर दिया जाता है।

(5) आगमनात्मक सामान्यीकरण (Inductive Generalization)—इस अवस्था में उपर्युक्त तथ्यों को एक 'तथ्यात्मक परिकल्पना' (Factual hypothesis) के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसमें तथ्यों को अस्थायी तौर पर उनके सामान्य गुणों या घटनाओं से जोड़ा जाता है। उदाहरण के लिये, मार्च, 1977 में हुए लोकसभा चुनावों के परिणामों को, विशेषतः उत्तर भारत में राज्यों को देखकर, कांग्रेस की हार के सन्दर्भ में यह 'तथ्यात्मक परिकल्पना' रखी जा सकती है कि 'जहाँ-जहाँ आपातकाल में अधिक अत्याचार हुए, वहीं सत्तारूढ़ दल की भारी पराजय हुई।' यह परिकल्पना चुनाव-परिणामों का अवलोकन, मापन एवं वर्णन करने के बाद रखी गयी है।

(6) व्याख्या (Explanation)—इस स्थिति में चौथी अवस्था वाले स्वीकृत तथ्यों अथवा पाँचवीं अवस्था वाले आगमनात्मक सामान्यीकरणों को कारणात्मक सम्बन्धों (Casual relations) के रूप में स्पष्ट किया जाता है। ऐसा किए जाने पर यह अवस्था 'सैद्धान्तिक परिकल्पना' (Theoretical hypothesis) कहलाती है। इसमें पाँचवीं अवस्था तक प्राप्त निष्कर्षों को (उनके असत्य सिद्ध होने के पूर्व तक) प्रामाणिक मान लिया जाता है। जैसे, उपर्युक्त उदाहरण में कांग्रेस के कर्नाटक या दक्षिण राज्यों में हारने या न हारने की व्याख्या की जा सकती है।

(7) तार्किक निगमनात्मक युक्तिकरण (Logical deductive reasoning)—यह अवस्था पाँचवें आगमनात्मक सामान्यीकरणों अथवा छठी व्याख्यात्मक परिकल्पनाओं के आधार पर, प्रथम अवस्था जैसे लक्षणों वाले प्रेक्षणों पर लागू की जाती है। इसे

छठी अवस्था वाले प्राप्त निष्कर्षों को, गणित के पहाड़े या सूत्र की तरह नये मिलते-जुलते तथ्यों पर लागू करना शुरू कर देते हैं। इसे किसी घटना की व्याख्या करते समय तर्क की तरह काम में लेते हैं। दूसरे शब्दों में, इस अवस्था में, सैद्धान्तिक परिकल्पनाओं को समान लक्षण वाले स्वीकृत तथ्यों, तथ्यात्मक सामान्यीकरणों और परिकल्पनात्मक व्याख्याओं (जो कि क्रमश: चार, पांच और छठे क्रम में हैं) पर लागू करते हैं। जैसे, यदि किसी स्थान पर कोई सत्तारूढ़ दल, जो कि तीन वर्षों से शासन करता आ रहा हो, हार जाय, तो यह तर्क दिया जा सकता है कि उसने अनुशासन लागू करके अत्याचार करने का प्रयास किया होगा।

(8) जांच (Testing) या परीक्षण—इसमें उपर्युक्त 1 से 7 अवस्था में आने वाली उपलब्धियों को, प्रथम तीन अवस्थाओं तक चलने वाली प्रक्रिया की तरह, प्रेक्षण, वर्णन या मापन करके परीक्षण किया जाता है। अर्थात् नवीन तथ्यों या घटनाओं के सन्दर्भ में देखा जाता है कि आगमनात्मक सामान्यीकरण[5] अथवा तार्किक निगमनात्मक युक्तिकरण[7] सही-सही उतरता है या नहीं। इसके पश्चात् इस अवस्था के परिणामों को चौथी अवस्था के समान तथ्य के रूप में, या सातवीं अवस्था के समान युक्तिकरण से सिद्ध (अस्थायी) प्रत्याशाएँ (Expectations) माना जाता है। इस अवस्था के बाद प्राप्त निष्कर्षों को सर्वत्र लागू किया जा सकता है।

(9) संशोधन (Correction)—इस अवस्था में, जब कभी दूसरे प्रेक्षणों, सामान्यीकरणों या व्याख्याओं के साथ 1 से लेकर 6 तक के क्रम या अवस्थाओं से प्राप्त निष्कर्ष या तथ्य असंगत (Incompatible) प्रतीत होते हैं तो अपनी उपलब्धियों में संशोधन करना पड़ता है। नये तथ्य पुराने निष्कर्षों में संशोधन कर सकते हैं।

(10) पूर्वकथन (*Prediction*)—यदि, (अ) पांचवीं या छठी *अवस्था-विषयक तथ्यात्मक* या सैद्धान्तिक परिकल्पनाओं तथा सातवीं और आठवीं अवस्थाओं में तादात्म्य प्रकट हो जाय, यानि दोनों में मेल हो जाय, या (ब) विभिन्न सम्भावित कार्य-विकल्पों में से वह किसी एक को क्रियात्मक (Practical) प्रक्रिया में वैज्ञानिक ढंग से योगदान करता हो, तो विभिन्न घटनाओं या दिशाओं के विषय में पूर्वकथन किया जा सकता है। उन्हें भूत, वर्तमान और भविष्य में होने वाली घटनाओं और दशाओं को उनके सम्भावित पुञ्ज (Constellation) से सम्बद्ध घटनाएँ तथा दशाएँ माना जा सकता है। उनको कार्य-कारण के रूप में बताया जा सकता है।

(11) अस्वीकृति (Non-acceptance)—सभी विवरण या कथन, यदि उपर्युक्त प्रक्रिया (1 से 10 तक) से उपलब्ध या पुष्ट (Confirm) नहीं हुए हैं, जैसे स्वतःमान्य (Apriori) कथन या कल्पनाएँ, तो उन्हें स्वीकार्य प्रस्तावनाओं या निष्कर्षों से *अलग कर दिया जाता है। वैज्ञानिक पद्धति की पूर्वमान्यताओं* अथवा अस्थायी मान्यताओं (tentative assumptions) या कार्यकर परिकल्पनाओं को अलग करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इनसे उनकी वैज्ञानिकता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

ब्रैकट की वैज्ञानिक पद्धति की दसवीं तथा ग्यारहवीं अवस्थाओं को यहाँ दृष्टान्त देकर समझाया गया है। यह इस प्रकार है कि पांचवीं अवस्था में दी गई तथ्यात्मक परिकल्पना को, आगमनात्मक सामान्यीकरण की व्याख्या (6) करके, निगमनात्मक युक्तिकरण (7) बना दिया गया है। उसकी जांच (8) आठवीं अवस्था में कर ली जाय तथा नवीं अवस्था

में आवश्यक संशोधन (9) कर दिये जायें, तो यह कहा जा सकता है कि 'जहाँ-जहाँ आपात्-काल में अधिक अत्याचार होते हैं तथा एक विशेष वंश की पारिवारिक तानाशाही स्थापित होने का खतरा उत्पन्न हो जाता है, वहाँ सत्तारूढ़ दल की भारी पराजय हो जाती है।' जहाँ कहीं ऐसा होता दिखायी पड़े और तथ्य सामने आयें तो यह पूर्वकथन (10) किया जा सकता है कि वहाँ सत्तारूढ़ दल वैसे ही चुनाव में हार जायेगा। किन्तु दसवीं अवस्था का यह पूर्वकथन असत्य हो जायेगा, यदि उस पूर्वकथन में विरोधी दलों में एकता स्थापित होने के चर (Variable) की अवहेलना कर दी गयी हो, या निरे ज्योतिषियों की भविष्य-वाणी से काम लिया गया हो। उस समय अस्वीकृति (11) की ग्यारहवीं अवस्था उपस्थित हो जायगी। किन्तु 'सत्य की सर्वत्र विजय होती है' जैसे स्वतः मान्य वचनों को इससे अलग कर दिया जायेगा। यही कारण है कि बहुत से पद्धतिविज्ञानियों ने असत्यीकरण (Falsification) को भी वैज्ञानिक पद्धति का आवश्यक गुण माना है। किन्तु ब्रैंक्ट ने प्रयोग (Experiment) और तुलना का इन अवस्थाओं में स्थान नहीं दिया है।

आर्नल्ड ब्रैंक्ट ने अपनी विशेषता बताने के लिए 'वैज्ञानिक पद्धति' के अंग्रेजी शब्द '(Scientific Method)' के प्रथमाक्षरों को बड़े वर्णों (Capital letters) एवं एक-वचन के रूप में प्रयोग किया है। उसके अनुसार, यह जरूरी नहीं है कि उक्त पद्धति निर्दिष्ट अवस्थानुसार ही प्रयोग की जाय। प्रायः पाँचवीं अवस्था 'अस्थायी कार्यकर परिकल्पना' से यह पद्धति काम में लायी जाती है। इस पद्धति के सफल उपयोग में विज्ञानेतर तत्त्वों का भी हाथ होता है। उसमें मानव प्रतिभा (Genius), गवेषणा के लक्ष्य, मानव-ज्ञान की संगतता (Relevance) आदि का विशेष महत्त्व है। ब्रैंक्ट वैज्ञानिक पद्धति को केवल-मात्र 'पद्धति' या 'प्रविधि' के रूप में ही स्वीकार नहीं करता। उसका लक्ष्य 'वैज्ञानिक पद्धति का सिद्धान्त' प्रस्तुत करना है। उसने वैज्ञानिक पद्धति पर बड़ी सूक्ष्मता, गहनता, व्यापकता तथा श्रेष्ठता के साथ विचार किया है। उसका मूल उद्देश्य यह है कि वैज्ञानिक ज्ञान को, उस व्यक्ति से, जिसके पास ऐसा ज्ञान है, किसी भी दूसरे व्यक्ति तक, जिसके पास ऐसा ज्ञान नहीं है, शब्दों, संकेतों या प्रतीकों (Symbols) के माध्यम से पहुँचाया जाय। ऐसा करने से उस ज्ञान की वैज्ञानिकता तथा उपयोगिता बढ़ेगी। ऐसे ज्ञान को सम्प्रेषणीय या संचारणीय ज्ञान कहते हैं। यह प्रेक्षणीय साक्ष्य (Observable testimony) पर आधारित होता है। कोई भी व्यक्ति उन्हीं दशाओं में स्थित होकर निश्चयपूर्वक उस ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। ऐसा ज्ञान 'अन्तर्वैयक्तिक रूप से संचारणीय' होता है। फिर भी यह संचारित ज्ञान प्राप्तकर्ता के लिए अकाट्य और अन्तिम नहीं है। उस ज्ञान का आधार साक्ष्य (Evidence) है, न कि प्राप्त निष्कर्ष। आनुभविक साक्ष्य के माध्यम से ज्ञान संचार-णीय बनता है। वैज्ञानिक पद्धति में असंचारणीय साक्ष्य पर आधारित ज्ञान त्याज्य एवं अनुपयोगी होता है।

वैज्ञानिक पद्धति की दसवीं अवस्था पूर्वकथनीयता के अलावा सभी अवस्थाएँ अन्तर्वैयक्तिक संचारणीय ज्ञान की उपलब्धि के लिए आवश्यक हैं। ब्रैंक्ट 'संचारणीयता' पर अधिक जोर देता है। वह 'साक्ष्य' या प्रमाण के आधार पर उस ज्ञान को स्वीकार या अस्वीकार करने के अधिकार को मानता है। वह सत्यापनीयता (Verifiability) पर अधिक बल नहीं देता। उसके लिए विज्ञानत्व का आधार संचारणीयता है। अतएव स्पष्ट है कि 'व्यवस्थित' होना मात्र किसी ज्ञान को विज्ञान नहीं बनाता।

मूल्यों की समीक्षा (Problem of Values)

अन्य विज्ञानों की तरह प्रारम्भ में राजविज्ञान में मूल्य निरपेक्ष (Value-free) वैज्ञानिक-पद्धति को अपनाया था। यह विशुद्ध व्यवहारवाद का प्रभाव था। इसका अर्थ यह था कि राजविज्ञानी अपने आपको अपनी नैतिक भावनाओं मूल्यों आदर्शों, विचार झुकावों व पक्षपातों (Bias and Prejudice), स्वजातिवादिता, (Ethnocentrism), व्यक्तिगत निहित स्वार्थों आदि से दूर रख कर वैज्ञानिक अध्ययन और अनुसंधान करें। इन मूल्यों, नैतिक भावनाओं आदि के आ जाने पर शोधक निष्पक्ष एवं वैज्ञानिक तरीके से अनुसंधान-कार्य नहीं कर सकता। वह न केवल तथ्यों व समस्या को अपनी भावनाओं से देखने और आंकने का प्रयास करेगा, अपितु वैसी ही दूषित पद्धतियाँ तथा प्रविधियाँ अपनायेगा तथा उसके निष्कर्ष भी वैसे ही पक्षपातपूर्ण होंगे।

मूल्य-निरपेक्ष अध्ययन की परम्परा का स्रोत वियना-क्षेत्र के तार्किक स्वीकारवादी है। इनमें मोरिज शिलक, रुडोल्फ कार्नप आदि प्रमुख हैं। उनके अनुसार समस्त मूल्य या आदर्श व्यक्तिगत वरीयताएँ मात्र होते हैं जिनकी श्रेष्ठता या निम्नता के बारे में वैज्ञानिक आधार पर कुछ नहीं कहा जा सकता। अतः प्रत्येक राजवैज्ञानिक को मूल्य निरपेक्ष एवं तटस्थ (Netural) रहना चाहिए।

शीघ्र ही मूल्य-निरपेक्षवाद या मूल्य-तटस्थवाद के दुष्परिणामों की ओर राजवैज्ञानिकों का ध्यान गया। वैज्ञानिकों द्वारा मूल्यों से दूर रहने का परिणाम यह हुआ है कि सभी मूल्य बराबर माने जाने लगे। अब किसी भी मूल्य को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अधिक श्रेष्ठ नहीं बताया जा सकता था। तानाशाही और लोकतन्त्र बराबर हो गये। उनके लिए संविधानवाद, नाजीवाद एवं स्टालिनवाद में कोई अन्तर नहीं रहा। ब्रैष्ट ने इसे बीसवीं शताब्दी के राजनीतिक सिद्धांत की 'एक बड़ी दुःखान्तिका' (Tragedy) कहा है। राजवैज्ञानिकों के देखते-देखते तानाशाही शासन मनमाने अत्याचार करते रहे और वे अपने मूल्य तटस्थ वाद के कारण उनकी समीक्षा भी न कर सके। उनका अध्ययन केवल लघु महत्त्व के विषयों तथा साधनों (Means) तक ही सीमित हो गया। वे सभी मूल्यों को अस्थायी, कामचलाऊ, पूर्वकालिक एवं सापेक्षिक (Relative) मानने लगे। राजनैतिक विषय एवं घटनाएँ प्रायः मूल्य-ग्रस्त होती हैं, उनका विश्लेषण करना तथा उन पर निर्णय देना, सक्रिय राजनीति में शामिल में भाग लेने के बराबर हो जाता है। इस डर से राजवैज्ञानिक वास्तविक राजनैतिक विषयों से कतराने लगे और अपनी 'प्रोफेसरी' दुनिया में रहने लगे। एलबर्ट आइन्स्टीन (Albert Einstein) ने सन् 1940 में लिखा कि 'यदि कोई पृथ्वी से मानव प्रजाति के समूल विनाश को लक्ष्य (Goal) के रूप में स्वीकार करता है, तो भी कोई व्यक्ति बौद्धिक आधार पर ऐसे दृष्टिकोण का खण्डन नहीं कर सकता।'[4] इस तरह, सभी लोकतन्त्रात्मक मूल्य एवं लक्ष्य केवल धर्म सिद्धान्त (Dogma), विचारवाद (Ideology) और पौराणिक गल्प (Myth) मात्र बनकर रह गये। राजवैज्ञानिकों की यह दृढ़ धारणा बन गयी कि अन्तिम मूल्यों के बीच में कोई चयन (Choice) सम्भव नहीं है। मूल्य-निरपेक्षवादी राजविज्ञानी अपने आपको मूल्यों से दूर रखते थे।

मूल्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण की सम्भावना (Possibility of Scientifiee Analysis of values)

धीरे-धीरे समाज-विज्ञानियों द्वारा यह अनुभव किया जाने लगा कि मूल्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए तथा वैज्ञानिक-पद्धति द्वारा अन्तिम मूल्यों को छोड़कर अन्य

मूल्यों का विश्लेषण किया जा सकता है। भले ही अन्तिम मूल्यों को ब्रैख्ट के अनुसार, वैज्ञानिकता की कसौटी पर कस कर निर्दिष्ट न किया जा सके, किन्तु उनका वैज्ञानिक विश्लेषण सम्भव हो सकता है। उनके आधार पर विकल्पों में से वरीयताओं (Preferences) की श्रेष्ठता को वस्तुनिष्ठ ढंग से और निष्पक्ष रूप से बताया जा सकता है। चरम मूल्यों (Ultimate values) की अप्रेक्षणीयता, अमूर्तता या अप्रदर्शनीयता का यह अर्थ नहीं है कि उनका विवेचन निरर्थक है, या सभी मूल्य समान हैं, या निर्दिष्ट परिस्थितियों में श्रेष्ठतर मूल्यों का चयन असम्भव या अवैज्ञानिक है।[8] अनेक दृष्टियों से मूल्यों का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जा सकता है – यथा, (1) हम जिन मूल्यात्मक निर्णयों को ग्रहण कर रहे हैं, उनकी यथार्थ (Exact) तथा परिशुद्ध प्रकृति क्या है? (2) प्रत्येक मूल्य का क्या परिणाम (Consequence) हो सकता है? उनका एक मूल्यात्मक अनुमाप (Scale) तैयार किया जा सकता है। (3) तथ्य एवं मूल्य को पृथक् करके उनसे सम्बन्धित विभिन्न दृष्टि बिन्दुओं तथा उनसे उत्पन्न सम्भावित प्रतिक्रियाओं का अवबोधन किया जा सकता है। इस विचारधारा को 'वैज्ञानिक मूल्य-सापेक्षवाद' (Scientific value relativism) कहा जाता है। इसमें मूल्यों एवं तथ्यों का अन्य मूल्यों की अपेक्षा से विश्लेषण किया जाता है। जैसे, समानता के मूल्य की दृष्टि से सरकार द्वारा लाइसेन्स या परमिट बाँटने की क्रिया का विश्लेषण किया जा सकता है।+

वैज्ञानिक मूल्य सापेक्षवाद (Scientific Value Relativism)

अर्नेल्ड ब्रैख्ट ने 'वैज्ञानिक मूल्य सापेक्षवाद' या 'वैज्ञानिक मूल्य विकल्पवाद' का विवेचन किया है।+ उसके अनुसार, वैज्ञानिक ढंग से मूल्यों का विश्लेषण किया जा सकता है तथा किया जाना चाहिए। उसकी प्रमुख धारणाएँ इस प्रकार हैं—

(1) यदि लक्ष्य या प्रयोजन बता दिया जाय, तो यह बताया जा सकता है कि कोई वस्तु उस लक्ष्य को प्राप्त करने की दृष्टि से मूल्यवान या लाभकारी है अथवा नहीं? यदि लोकतन्त्र को शक्तिशाली बनाना है तो यह कहा जा सकता है कि स्थानीय स्वशासी संस्थाएँ होनी चाहिए अथवा नहीं?

+(1) 'The question whether something is "Valuable" can be answered scientifically only in relation to

(a) some goal or purpose for the Pursuit of which it is or is not useful (valuable), or to

(b) the ideas held by some person or group of persons regarding what is or is not valuable and that, consequently,

(2) It is impossible to establish scientifically what goals or purposes are valuable irrespective of

(a) the value they have in the pursuit of other goals purposes or

(b) of someone's ideas about ulterior or ultimate goals or purposes"

—Arnold Brecht

(2) यदि हमें किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह की विचारधारा बता दी जाये, तो वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर यह बताया जा सकता है कि किसी क्रिया या घटना को मूल्यवान मानना चाहिए अथवा नहीं ? उदाहरण के लिए, यदि राजनैतिक दल समाजवाद लाना चाहता है तो उसे विश्लेषण करके कहा जा सकता है कि उसे पूँजीपतियों को नये कल-कारखाने लगाने देना चाहिए अथवा नहीं ?

(3) यदि हमें न तो अन्तिम मूल्यों के बारे बताया जाता है और न ही व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के विचारों का ज्ञान कराया जाता है, तो हम वैज्ञानिक आधार पर नहीं बता सकते कि कौनसी घटना, मूल्य या क्रिया मूल्यवान, लाभकारी या वरणीय हैं।

(4) वैज्ञानिक पद्धति अन्तिम या परम मूल्यों—जैसे, स्वतन्त्रता, न्याय, धर्म आदि की प्रामाणिकता के विषय में कुछ नहीं कह सकती। किन्तु उनके ज्ञात हो जाने पर वैज्ञानिक पद्धति अन्य सहायक या गौण मूल्यों की उपयुक्तता या अनुपयुक्तता के बारे में निर्णय दे सकती है।

(5) अन्तिम मूल्यों का स्रोत ईश्वर, धर्म, प्राकृतिक विधि अथवा व्यक्ति का निजी मस्तिष्क, संकल्प, विश्वास या अन्तर्प्रज्ञा होता है। यह स्वविवेक का क्षेत्र है। इस कारण, वैज्ञानिक पद्धति उन मूल्यों की प्रामाणिकता या औचित्य के बारे में कुछ नहीं कह सकती। यही उसकी सीमा है। स्वयं वैज्ञानिक भी इस विषय में कुछ नहीं कह सकता। राजवैज्ञानिक के कार्य का आरम्भ अन्तिम मूल्यों के ज्ञान के बाद ही होता है। ऐसा होने के बाद ही दूसरे मूल्यों का वर्णन, विश्लेषण आदि सम्भव होता है।

(6) वैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा हम, मानव की सामान्य समझ, आवश्यकताओं तथा भावनाओं का पता लगा सकते हैं। दूसरे शब्दों में, हम 'मानव का स्वभाव' (Nature of man) जान सकते हैं। इसमें हम 'वस्तुओं की प्रकृति' (Nature of things) की तरह गवेषणा का विषय बना सकते हैं और मानव की मानसिक प्रवृत्तियों का पता लगा सकते हैं। इससे मानव की वरीयताओं (Preferences) का अभिज्ञान हो सकता है।

(7) सापेक्षवाद (Relativism) में 'सापेक्ष' शब्द का अर्थ यह है कि किसी परम मूल्य, या व्यक्ति विशेष या समूह के मूल्यों के सन्दर्भ में अन्य मूल्यों और प्रयोजनों का अध्ययन नहीं किया जाय। वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करने के कारण वेबर की सम्पूर्ण धारणा को 'वैज्ञानिक मूल्य सापेक्षवाद' कहा गया है।

मूल्य-विश्लेषण (Analysis of Values)

मूल्य (Value) शब्द राजनीतिक विश्लेषण में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वैसे यह एक व्यापक शब्द है और उसमें अनेक प्रकार के मूल्य शामिल हो जाते हैं, यथा,

(i) वे सभी मूल्य या साधन (Means) आ जाते हैं जो किसी तात्कालिक (Immediate) प्रयोजन की पूर्ति में सहायक हों।

(ii) कोई भी तात्कालिक प्रयोजन जो किसी दूसरे व्यापक या अप्रत्यक्ष उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो।

(iii) वे सभी प्रयोजन, मूल्य या वस्तुएँ जिनके कारण सघर्ष होता है।
(iv) कुछ प्रयोजन जिन्हे प्राप्त कर हम सुख का अनुभव करते हैं और जिनके लिए हम सोचते हैं कि हमे उनको प्राप्त करना चाहिए।
(v) कुछ अन्तिम उद्देश्य या प्रयोजन, जिन्हे हम किन्ही दूसरे अध्यक्त प्रयोजनो के माध्यम से व्यक्त नही कर सकते तथा जो समस्त प्रयोजनो की चरम सीमा के रूप मे होते हैं।
(vi) कुछ पूर्व निर्धारित प्रयोजनविहीन कार्य, जैसे नि स्वार्थ प्रेम राष्ट्र के लिये प्राण-त्याग आदि। इन्हे हम अन्तरस्थ (Intrinsic) मूल्य (मूल्य स्वय मूल्य के लिये) के रूप मे मान सकते है।

प्रथम पाँच बाहरी या अप्रधान (Intrinsic) मूल्य हैं जो कि प्राय अन्तिम लक्ष्यों से जुड़े हुए होते हैं। वैज्ञानिक पद्धति प्रथम चार वर्गों के मूल्यो का विश्लेषण करने मे सक्षम है। लेकिन यह पाँचवें और छठे के बारे मे केवल अन्वेषण या पूछताछ मात्र कर सकती है। अन्तिम मूल्यो के बारे मे उसके पास कोई निर्णायक साक्ष्य नही है। किन्तु वैज्ञानिक मूल्य-सापेक्षवाद जो कि वैज्ञानिक-पद्धति का पूरक पहलू है, इस बात से इन्कार नही करता कि कोई निश्चयात्मक या अन्तिम मूल्य नही होते या नही हो सकते। वैज्ञानिक पद्धति का उनके विषय मे यही कहना है कि उसके पक्ष विपक्ष मे उसके पास कोई प्रामाणिक साक्ष्य नहीं है।

मूल्य शोध की सम्भावनाएं (Possibility of Research)

अब वैज्ञानिक-पद्धति के द्वारा मूल्यो मे अनेक ऐतिहासिक, व्यक्तिगत, वास्तविक एव सम्भावित पक्षो एव अर्थों का विश्लेषण किया जा सकता है। शोध के माध्यम से, मानव के विचारो, भावनाओ तथा क्षमताओ मे सार्वजनिक तथा अपरिवर्तनीय तत्वो का पता लगाया जा सकता है। ऐसे विश्लेषण के सन्दर्भ म यह जाना जा सकता है कि कौन-कौन से मूल्य सर्वाधिक वरीय (Preferable) माने जाते हैं। इन गवषणाओ स मानव की प्रकृति का पता चलता है। उन्हें सतत कारक (Constant factors) मानकर शोध-कार्यों को आगे बढाया जा सकता है। सबसे अधिक पसन्द किये गये मूल्यो को आर्नल्ड ब्रेक्ट ने मानव की 'सर्वाधिक वाछित वरीयताएँ' कहा है। इन्हे आनुभविक एव वस्तुनिष्ठ प्रविधियो से प्राप्त किया जा सकता है। उसने 'न्याय' को ऐसी ही सर्वाधिक वाछित 'वरीयता' पाया है। कोई चाहे तो इन वरीयताओ की पुष्टि म विज्ञानेतर समर्थन भी जुटा सकता है।

स्पष्टत वैज्ञानिक पद्धति द्वारा अब मूल्यो और मानवों का विश्लेषण एव परीक्षण सम्भव हो गया है।" वैज्ञानिक मूल्य सापेक्षवाद के सहारे राजवैज्ञानिको द्वारा अब आध्यात्मिक समस्याओ पर भी विचार करना सम्भव है। इसका आगे चलकर यह परिणाम होगा कि मूल्यात्मक विषय पर भी वैज्ञानिक रीति से विचार किये जा सकेंगे। वैज्ञानिक विधि यह बता सकेगी कि कौन कौन से मूल्य मानव कल्याण की वृद्धि म सहायक तथा बाधक हैं? उन्हे दूर करने के लिए कौनसे उपाय अधिक प्रभावपूर्ण एव लाभकारी रहेंगे? आगे चलकर तुलनात्मक विवेचन करके यह बताया जा सकेगा कि कौनसे मूल्य अन्य मूल्यो से अधिक उपयोगी एव मान्य समझे जाने चाहिएँ? अब तक इन प्रश्नो का चिन्तन धार्मिक जगत् का क्षेत्र माना जाता था। उसमे तथ्यात्मक शोध एव वैज्ञानिक अध्येता के प्रवेश का सर्वथा निषेध था।

ऐसा किये जाने पर, मूल्य निरपेक्षवाद तथा निरी विज्ञानवादिता (Scientism) से उत्पन्न मूल्य सम्बन्धी मौन या नपुंसकत्व समाप्त हो जायेगा तथा अमानवीय तत्त्वों एवं विचारधाराओं का तथ्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया जा सकेगा। वैज्ञानिक पद्धति एवं वैज्ञानिक मूल्य सापेक्षवाद से सुसज्जित राजवैज्ञानिक (Political Scientist) अब उन विचारवादों के विरुद्ध अधिक सचेत, सक्रिय तथा आक्रामक (Militant) हो उठा है, जो अपने अन्धविश्वासों को वैज्ञानिक निर्णयों की चादर ओढ़ाए फिरते हैं। इनमें उन विचार-वादियों (Ideologies) के निहित स्वार्थ छिपे पड़े हैं। समकालीन राजविज्ञानी, किसी मूल्य विशेष के प्रति तटस्थ एवं निरपेक्ष रहकर, उनका वैज्ञानिक विश्लेषण तथा अनुसंधान करने में सक्षम हैं। अपने निजी मूल्यों के समर्थन में भी इस पद्धति का उपयोग किया जा सकता है किन्तु अधिक प्रमाणिक एवं उपादेय तथ्य एकत्रित करके उन निजी मूल्यों की सार्थकता को चुनौती भी दी जा सकती है। वैज्ञानिक पद्धति सत्य की दुधारी तलवार की तरह है जो दूसरों की तरह विधि विरुद्ध हो जाने पर स्वयं को काट-छांट सकती है। वह 'है' और 'चाहिए' के बीच में किसी प्रकार का तार्किक एवं तथ्यात्मक सम्बन्ध स्वीकार नहीं करती। साथ ही, वह प्रचलित धार्मिक, दार्शनिक, न्यायशास्त्रीय आदि पद्धतियों से सर्वथा भिन्न भी है।

राजविज्ञान अब यह बता सकता है कि कौनसे राजनैतिक कार्य जनहित की अधिक गारण्टी प्रदान करते हैं। वे उसे प्राप्त कर सकते हैं, जिसे लोग चाहते हैं और उन परिणामों से बच सकते हैं जिन्हें वे नहीं चाहते। इसका मूल्य-सापेक्षवाद नारेबाजी के नीचे छिपे हुए अर्थों और परिणामों को खुले तौर पर मतज्ञान में सक्षम है। वह यह भी बता सकता है कि वास्तविक मूल्यों से असम्बद्ध नारों के परिणाम कहाँ और किस स्थिति में ले जायेंगे? उन्हें क्या निर्दिष्ट दशाओं में क्रियान्वित करना सम्भव है? आदि। यह अवैज्ञानिक राजनैतिक विचारवादों के विरुद्ध एक अस्त्र है, जिसका प्रयोग मानव-मूल्यों को सुस्पष्ट करने तथा उनकी रक्षा करने के लिए भी किया जा सकता है। यह किसी भी व्यक्ति-समूह विशेष को अन्तःप्रज्ञा, धर्म, प्राकृतिक नियम आदि से अपने मूल्य ग्रहण करने में निषेध नहीं करता। शर्त केवल यही है कि उन्हें पृथक् रूप से बनाया जाय। यह सभी विकल्पों तथा उनके सम्भावित परिणामों की तुलना तथा उन्हें अपनाने पर आने वाले संकटों के प्रति सावधान करने में सक्षम है ताकि चयन और निर्णय सोच-समझकर लिये जा सकें।

किन्तु राजविज्ञानियों द्वारा विशुद्ध रूप में वैज्ञानिक-पद्धति का प्रयोग सीमित क्षेत्रों में ही किया गया है। उनकी वैज्ञानिक-पद्धति भी अनेक स्तरों पर दूषित हो गयी है। शोधकों द्वारा प्राप्त निष्कर्ष भी अभी अपरिपक्व अवस्था में पाये जाते हैं। उनमें से बहुत कम निष्कर्षों एवं सामान्यीकरणों को सिद्धान्त का स्तर प्रदान किया गया है। जो कुछ 'सिद्धान्त' के नाम पर प्राप्त किया गया है, उसे भी नये तथ्यों एवं विकसित प्रविधियों के सन्दर्भ में दोहराया नहीं गया है। ऐसी स्थिति में अन्य पद्धतियों द्वारा प्राप्त ज्ञान को ठुकराया नहीं जा सकता। अतएव वैज्ञानिक-पद्धति को पूर्ण सफलता प्राप्त होने तक, इन पद्धतियों का प्रयोग किया जाना जारी रहेगा। स्वयं ब्रैंड ने अन्य ऐतिहासिक, मानवशास्त्रीय आदि पद्धतियों के समुचित प्रयोग को तर्कसंगत बताया है। वह मानवीय प्रेरणा और प्रयोजन को समुचित स्थान देता है। साथ ही वह वैज्ञानिक पद्धति के निष्कर्षों में 'सीमित सम्भाव्यता' (Limited Possibility) स्वीकार करता है। वह आध्यात्मिक प्रेरणाओं एवं चिन्तन का तिरस्कार

करता है और न उन विचारकों का विरोधी है जो 'वैज्ञानिकता' को व्यापक अर्थों में ग्रहण करते हैं। लेकिन शर्त यही है कि इनका उपयोग वे यथार्थ ज्ञान को प्राप्त करने के एक प्रदर्शन और मुखौटे के रूप में न करें।

विज्ञानेतर पद्धतियां (Ascientific Methods)

विज्ञानेतर पद्धतियों को परम्परागत (Traditional) पद्धतियाँ भी कहा जाता है। किन्तु 'परम्परागत' शब्द मुख्य भारित है। उसमें पुरातनता, रूढ़िवादिता अवैज्ञानिकता, समयबाह्यता, अनुपयोगिता आदि विशेषताओं की गंध आती है। फिर भी वैज्ञानिक पद्धति की सीमित प्रकृति के कारण इनका प्रयोग आज तक भी भारी मात्रा में किया जाता है। इन्हें 'परम्परागत' कहने का अर्थ इतना ही है कि इनका प्राचीनकाल से ही प्रयोग किया जाता रहा है तथा इनका वैज्ञानिकता एवं सिद्धान्त-निर्माण के प्रति उतना आग्रह नहीं है। ये सभी पद्धतियाँ एक-दूसरे से सर्वथा अलग नहीं हैं। प्रायः राजवेत्ता इन सभी का यथा-वसर एक साथ प्रयोग करने में नहीं हिचकते। ये पद्धतियाँ अनेक हैं—(i) दर्शनशास्त्रीय, (ii) इतिहासात्मक, (iii) मनोविज्ञानात्मक, (iv) सांख्यिकीय, (v) समाजशास्त्रीय, (vi) तुलनात्मक' (vii) कानूनी-संस्थात्मक आदि। इन्हें दो वर्गों में रखा जा सकता है, यथा, (क) *मानकीयता (Normative) तथा (ख) अनुभवपरक (Empirical)। मानकीय-वर्ग के अन्तर्गत दर्शनशास्त्रीय पद्धति को, तथा अनुभवपरक-वर्ग में इतिहासात्मक, मनोविज्ञानात्मक, सांख्यिकीय आदि पद्धतियों को रखा जा सकता है। यहाँ इन दो वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाली* प्रमुख पद्धतियों का संक्षिप्त विवेचन किया जायेगा। जिस मात्रा, समय और सीमा तक वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से प्राप्त ज्ञान उपलब्ध नहीं है, वहाँ तक इन पद्धतियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान उपयोगी माना जा सकता है। कुछ क्षेत्रों में तो इनका उपयोग सम्भवतः बहुत लम्बे समय तक किया जाता रहेगा।

दर्शनशास्त्रीय पद्धति (Philosophical Method)

पद्धतियों में दर्शनशास्त्रीय पद्धति (Philosophical Method) सबसे अधिक *प्राचीन*, प्रचलित एवं प्रभावशाली रही है। *आज भी इसका प्रयोग सभी विषय, किसी न किसी रूप में कर रहे हैं।* राजविज्ञान में दर्शनशास्त्रीय पद्धति का अनुगमन प्लेटो एवं अरस्तू के काल से ही चल आ रहा है। वर्तमान समय में इस पद्धति के अनुगामी राज-शास्त्रियों का एक बहुत बड़ा सम्प्रदाय है। इस पद्धति को आदर्शात्मक, चिन्तनात्मक, आध्यात्मिक आदि नामों से भी सम्बोधित किया जाता है।

'दर्शनशास्त्र' (Philosophy) शब्द 'दर्शन' से बना है जिसका अर्थ है सूक्ष्मता या *गहराई से देखना। प्रत्येक शास्त्र या विषय जब अपनी विषय-सामग्री के विषय में गहराई* या सूक्ष्मता से विचार करने लगता है, तो उसे उस शास्त्र का दार्शनिक चिन्तन या 'दर्शन-शास्त्र' कह दिया जाता है। दर्शनशास्त्रीय पद्धति में विषयों या वस्तुओं के सूक्ष्म अमूर्त, वैचारिक तथा चिन्तनात्मक पक्षों पर विचार किया जा सकता है। ऐसा केवल चिन्तन, मनन, तर्क, विवेक, कल्पना, अन्तर्प्रज्ञा आदि के आधार पर किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, दार्शनिक पद्धति में संविधान की धाराओं की व्याख्या एवं क्रियान्वयन पर विचार करने के बजाय उनमें निहित विचारों की धारणाओं एवं अर्थों पर विचार किया जायेगा। *ऐसा करते समय शीघ्र ही दार्शनिक राजवेत्ता का सम्बन्ध जीवन, जगत् और प्रकृति की* व्यापक बातों के साथ हो जायेगा।

वस्तुत दार्शनिक पद्धति के पाँच भाग होते हैं—(i) शाश्वत भाग—इसमें वह सृष्टि के शाश्वत, तत्त्वों, परमात्मा, आत्मा, प्रकृति, सत्य, ज्ञान आदि पर स्थित रहता है। (ii) भौतिक या विषयगत भाग—इसमें वह अपने प्रतिपाद्य विषय या अनुशासन की विषय सामग्री पर विचार करता है तथा उनके मूर्त, मूल या भौतिक स्वरूपों के बजाय वैचारिक, अमूर्त एवं भावनात्मक पक्षों पर अधिक बल देता है, और प्रथम भाग के सन्दर्भ में उनकी व्याख्या करता है। (iii) विश्लेषणात्मक भाग—इसमें वह द्वितीय भाग को प्रथम भाग की दिशा में जाने का आग्रह करता है तथा उसे सिद्ध करने के लिए तर्क देता है तथा अनुभवेतर एवं स्वयंसाध्य प्रमाण देता है। (iv) विवाद भाग—इसमें वह अन्य विचारकों के चिंतन को चुनौती देता है तथा उनको प्रमाणों के आधार पर खंडित करने का प्रयास करता है। (v) मूल्यांकन भाग—अंत में, अपने निष्कर्षों के सन्दर्भ में जीवन और जगत् की घटनाओं की व्याख्या एवं मूल्यांकन करता चलता है। संक्षेप में, वह एक ओर मूल्यों, सत्यों, भावनाओं, सिद्धांतों, आदर्शों, शाश्वत तत्त्वों और मानकों पर विचार करता है, तो दूसरी ओर अपने विषय की मूल प्रकृति उपयोगिता, उनके अन्तर्सम्बन्धों आदि का तात्त्विक अन्वेषण करता है। वह वृत्तियों, अनुभवों, घटनाओं आदि का हेगेल के समान समन्वयात्मक चिंतन एवं परीक्षण करता है। वह विषयवस्तु के विशिष्ट और वर्तमान स्वरूप तक सीमित न रहकर, व्यापक, पूर्ण शाश्वत एवं सार्वभौम आधार पर चिन्तन प्रस्तुत करता है। उसकी दृष्टि सामान्य, व्यापक अमूर्तपरक, कल्पनाप्रधान तथा आदर्शोन्मुख होती है। उसके विवेचन का आधार अन्तर्दृष्टि (Insight), आत्मप्रमाण, श्रद्धा, विश्वास, साक्षात्कार अथवा परमज्ञान की प्राप्ति होती है।

इस पद्धति या विधि की उपयोगिता के पक्ष में बड़े बड़े दावे किये गए हैं। दर्शनशास्त्रीय पद्धति के अनुयायियों के अनुसार वैज्ञानिक या व्यवहारवादी पद्धति अपूर्ण, इंद्रियपरक, संकुचित अयथार्थ एवं अधोगामी होती है। सभी भौतिक एवं दृश्य घटनाओं के पीछे अमूर्त कारक तत्त्व—भावनाएँ, विचार, अदृश्य शक्ति, प्राकृतिक नियम आदि होते हैं। उनके समझे-जाने-विचारे बिना प्रश्न का दावा करना अज्ञानता का प्रदर्शन मात्र है। दार्शनिक दृष्टिकोण द्वारा प्राप्त व्यापक, सूक्ष्मतर, विवेकपूर्ण तथा मूल्यात्मक ज्ञान के अन्तर्गत ही निम्नतर इन्द्रियपरक ज्ञान को स्वीकार किया जाना चाहिए। राज्य राजनीति, कानून आदि जीवन के आंशिक, सीमित, आनुभविक एवं भौतिक पक्ष हैं, उनको दर्शन शास्त्रीय पद्धति द्वारा प्रदत्त सम्पूर्णता, व्यापकता, शाश्वता आदि में परिपूर्ण तत्त्वों के प्रकाश में ही ग्रहण किया जाना चाहिये। देशकाल में पैठा या यथातथ्यवादी वर्णनात्मक राजविज्ञान समाज और राजव्यवस्थाओं की समस्याओं को न तो ठीक तरह से समझ सकता है और न ही उनके स्थायी समाधान प्रस्तुत कर सकता है।

वस्तुतः यह सही है कि भौतिक एवं मूर्त घटनाओं के पीछे निहित अमूर्त तत्त्वों को समझने के लिए दर्शनशास्त्रीय पद्धति उपयोगी रहती है। यह राजवैज्ञानिक को व्यापक, सामान्य एवं शाश्वत मूल्य तथा धारणाओं की ओर ले जाकर अनेक उपयोगी परिकल्पनाएँ प्रदान करती है। वहाँ तक पहुँचने के लिए चिंतन, कल्पना, अनुमान, अन्तर्दृष्टि आदि ही प्रमुख वाहन होते हैं। राजनीति के पीछे वर्तमान राजनीतिक संस्कृति, स्वतन्त्रता, समानता, न्याय तथा मानवता जैसे मूल्यों को इसी पद्धति द्वारा सुगमतापूर्वक समझा जा सकता है। इस पद्धति के प्रयोग सहस्रों वर्षों से राजवेत्ताओं एवं दार्शनिकों ने किया है तथा निष्कर्ष निकाले हैं। उन निष्कर्षों का तुलनात्मक अध्ययन करके वैज्ञानिक ज्ञान को समृद्ध बनाया जा सकता

है। राजनीति का प्रत्येक देश म, समग्र, तात्त्विक तथा सूक्ष्मतर ज्ञान होना आवश्यक है।

किन्तु यह पद्धति केवल अमूर्त पक्षो से ही सम्बद्ध है तथा अपने वैविध्यपूर्ण निष्कर्षों के पक्ष मे विश्वसनीय प्रमाण जुटाने म असमर्थ है। यह एक गहन एव नूतन शोध का विषय है कि मनुष्य एव राजनीति कहाँ तक उन अमूर्त तत्त्वो, विचारो या भावनाओ से प्रेरित एव सचालित होती है ? दर्शनशास्त्रीय पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को प्रमाणित एव पुष्ट करने के लिए पुन वैज्ञानिक पद्धति का ही सहारा लेना पडता है। मनुष्य तो ठोस, भौतिक, आर्थिक तथा सामाजिक जगत् म रहता है। वह दर्शनशास्त्रीय पद्धति द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को सहज रूप से स्वीकार नही करता। यह पद्धति राजविज्ञान को परिकल्पनाएँ, समन्वयन, गहनता तथा मूल्यात्मक ज्ञान देने मे तो सहायक है, किन्तु वैज्ञानिक एव 'अन्तर्वैयक्तिक सचारणीय' ज्ञान प्रदान करने मे असमर्थ है।

इतिहासात्मक पद्धति (Historical Method)

इतिहासात्मक पद्धति (Historical Method) भी अत्यन्त प्राचीन, मान्य तथा महत्त्वपूर्ण रही है। इसका प्रयोग लगभग सभी विचारको ने, जैसे, अरस्तू, मैकियावेली, मॉन्टेस्क्यू, हीगल, मार्क्स, मैक्स वेबर आदि ने किया है। टॉयनबी, वेल्स, टेगार्ट आदि ने इतिहास को कोरी घटनाओ और विशिष्ट व्यक्तियो के कार्य कलापो का सकलन मात्र न बताकर, सामाजिक जीवन को समझने मे मदद करने वाला विषय बताया है। यह कार्य अतीत की घटनाओ एव सस्थाओ के क्रमबद्ध, प्रामाणिक एव व्यवस्थित वर्णन के द्वारा किया जाता है।+

लगभग सभी राजनैतिक तथ्यो, सरचनाओ, प्रक्रियाओ, विचारो आदि का स्वरूप सर्वथा नवीन नही होता। वे भूतकाल मे किसी न किसी रूप म पहले से ही वर्तमान होते हैं। उनके वर्तमान स्वरूप, प्रभाव, शक्ति और सम्भावना को समझने के लिए, उनके अस्तित्व में आने तथा विकास सम्बन्धी कारणो, उनका दूसरो पर तथा उन पर पडे हुए प्रभावो को जानना लाभकारी होता है। उन्ही के भूतकालिक स्वरूप से न्यूनाधिक मात्रा मे आज की राजनीति प्रभावित रहती है। इन्ही अर्थों म 'इतिहास को राजनीति की जड तथा राजनीति को इतिहास का फल' कहा गया है। बर्नार्ड ने कहा है कि अतीत समूह के पीछे नहीं होता अपितु समूह के भीतर ही विद्यमान रहता है।

इतिहासात्मक पद्धति मे विषय से सम्बद्ध प्राचीन घटनाओ या तथ्यो के क्रमिक-विकास, नियमितताओ एव सामाजिक प्रभावो के सन्दर्भ मे समसामयिक राजनैतिक घटनाओ की व्याख्या एव विश्लेषण किया जाता है। सरल शब्दो म, वह अतीत की सहायता से वर्तमान को समझने का प्रयास करती है। रैडक्लिफ ब्राउन के अनुसार, इस पद्धति मे वर्तमान काल मे घटित होने वाली घटनाओ को भूतकाल मे घटित हुई घटनाओ के लगातार तथा क्रमिक विकास की एक कडी के रूप मे मानकर अध्ययन किया जाता है। यग के मतानुसार, यह वर्तमान काल को ढालने वाले अतीतकालीन सामाजिक शक्ति एव प्रभावो के विषय म खोजे गए विचारनियमो (Principles) का आगमन (Induction) है।[9] इस पद्धति को अपनाने के स्रोत प्राचीन प्रलेख, ग्रन्थ, सिक्के, मूर्तियाँ, शिलालेख, ऐतिहासिक एव

+The Historical Method is "the induction of principles through research into the past social forces and influences which have shaped the present"

—P V. Young

सांस्कृतिक गाथाएँ, परम्पराएँ आदि हैं। किन्तु पर्याप्त, सन्तोषप्रद एवं यथार्थ अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक है कि अध्येता स्वयं निष्पक्ष तथा वस्तुनिष्ठ हो। उसे अपने कार्यक्षेत्र या विषय की पूर्ण जानकारी हो तथा उसमें ऐतिहासिक अभिमुखन (Orientation) एवं सामाजिक अन्तर्दृष्टि हो। उसमें विश्वसनीय एवं सम्बद्ध तथ्यों का चयन करने का ज्ञान, साहस तथा योग्यता हो। उसे अपनी सीमाओं, विषय की सीमाओं तथा निजी पूर्वाग्रहों के प्रति भी सचेत होना चाहिए।

इस पद्धति को अपनाते समय शोधक को अपनी समस्या की प्रकृति और क्षेत्र को समझना चाहिए। हो सकता है कि निर्दिष्ट राजनैतिक समस्या का कोई खास ऐतिहासिक भूत (Past) भी न हो। कुछ विषयों के अतीत में जाने की न तो आवश्यकता होती है और न सम्भावना। अनेक बार उस घटना का ऐतिहासिक स्वरूप वर्तमान स्वरूप से अधिक सम्बन्ध नहीं रखता। शोधक इस पद्धति को अपनाते समय उपलब्ध साधनों का भी ध्यान रखना चाहेगा। हो सकता है कि उसे वे तथ्य उन्हें न बताये जाएँ। उन्हें जानने की लागत बहुत ऊँची एवं प्राणघातक हो सकती है। इसी प्रकार यत्र-तत्र-सर्वत्र बिखरी हुई सामग्री में से तथ्यों को संकलित करना कोई आसान कार्य नहीं होता। किस सामग्री पर कितना और कैसे विश्वास किया जाय? इसके लिए उसमें पर्याप्त योग्यता, अनुभव, दूरदर्शिता तथा प्रशिक्षण होना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर उसे तथ्यों के स्रोतों को बताना या छिपाना भी पड़ता है। तथ्य-संकलन में मात्रा तथा गुणों के मध्य समन्वयन होना चाहिए। तथ्यों की व्याख्या उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर निष्पक्ष ढंग से की जानी चाहिए।

सारांश यह है कि इतिहासात्मक पद्धति द्वारा राजनीतिक क्रियाओं, घटनाओं, संस्थाओं आदि के वर्तमान स्वरूप को अच्छी तरह समझा जा सकता है। इससे समाज एवं राज्यव्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों, उनकी गति, मात्रा, स्वरूप आदि को समझा जा सकता है। ऐसे अध्ययनों से भविष्य के सम्भावित स्वरूप का भी अनुमान लगाया जा सकता है। आज न बीते हुए कल से अवश्य ही भिन्न होता है, किन्तु यह बीता हुआ कल ही है जिसने आज को ढाला है और यह कल और आज आने वाले कल को अवश्य ही प्रभावित करेगा। ह्वाइट ने लिखा है कि 'वर्तमान समय में उभरती हुई प्रत्येक वस्तु में उसके समस्त अतीत तथा उसके भविष्य का बीज छिपा होता है।' लासवेल, आमण्ड, पॉवेल आदि ने अपने विकासात्मक उपागम (Development approach) में इस पद्धति का खुलकर प्रयोग किया है।

किन्तु प्रत्येक राजवैज्ञानिक को इतिहासवादात्मक पद्धति को अपनाते समय बहुत सावधान रहना चाहिए। ऐतिहासिक अध्ययन प्रायः भावचित्रात्मक (Ideographic) होते हैं और वे प्रत्येक घटना को विशिष्ट मानते हैं। राजवैज्ञानिक जब इस पद्धति का प्रयोग करते हैं, तब वे अपने शोध-विषय के पक्ष-विपक्ष में ऐतिहासिक घटनाओं का ढेर लगाने में लग जाते हैं। साथ ही वे तुलना एवं सामान्यीकरण करने से बचने का प्रयास करते हैं। इतिहास का अध्ययन मूल्य-निरपेक्ष (Value-free) होते हुए भी इतिहासवेत्ता के व्यक्तिनिष्ठ दृष्टिकोण से प्रभावित हो जाता है। शोधक को ध्यान रखना चाहिए कि ऐतिहासिक घटनाएँ, विचार आदि विशेष तात्कालिक परिस्थितियों से सम्बद्ध होने के कारण वर्तमान या भविष्य के लिए मार्ग-निर्देशक नहीं हो सकती। ऊपरी समानताएँ एवं सादृश्यताएँ भी नवीन घटनाओं को समझने में धोखा दे सकती हैं। इतिहास घटनाओं को दोहराता है, यह

अर्द्ध-सत्य है, क्योंकि यह भी सही है कि इतिहास वैसी घटनाओं को नहीं दोहराता। राजनीति का क्षेत्र वर्तमान और तात्कालिक जगत् होता है। उसका स्वरूप आदर्शोन्मुख एवं मानवीय भी होता है। भावी घटनाएँ वर्तमान से सम्बद्ध किन्तु सर्वथा नवीन भी हो सकती हैं। इतिहासात्मक पद्धति को अपनाना उतना सरल भी नहीं है, जितना समझा जाता है। अनेक बार तथ्य एवं आँकड़े या तो उपलब्ध ही नहीं होते या अज्ञात क्षेत्रों में यत्र-तत्र बिखरे रहते हैं। ऐतिहासिक घटनाओं को न तो देखा जा सकता है न दोहराया जा सकता है। उनकी मापन या गणना करना भी सम्भव नहीं हो पाता। फिर भी अपने सीमित साधनों के भीतर यह पद्धति राजनीति के वर्तमान स्वरूप को समझने में बहुत सहायक होती है। इसके द्वारा शोधक अपने विषय को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देख सकता है तथा उसे अनेक उपयोगी परिकल्पनाएँ प्राप्त होने की सम्भावना भी बनी रहती है।

मनोविज्ञानात्मक पद्धति (Psychological Method)

राजविज्ञान, प्रारम्भ से ही, किसी न किसी रूप में मनोविज्ञान में सम्बन्धित रहा है। प्लेटो से लेकर मैकियावेली और हॉब्स तक राजवेत्ता एवं विचारक यह अनुभव करते आये हैं कि मनुष्य अपनी बुद्धि के साथ-साथ अपने संवेगों, प्रवृत्तियों, मनोवेगों, आदतों से प्रेरित होता है। किन्तु आधुनिक काल से पूर्व, राजशास्त्रियों के मनोविज्ञानात्मक परिप्रेक्ष्य स्वमान्य एवं निगमनात्मक धारणाओं पर आधारित थे। मानव स्वभाव सम्बन्धी गलत धारणाओं के कारण उनका राजनीतिक चिन्तन भी दूषित हो गया। प्राकृतिक विज्ञानों के विकास तथा प्रत्यक्षवाद (Positivism) के प्रभाव से मनो-विज्ञान के स्वरूप में परिवर्तन हुआ और वह 'वैज्ञानिक' बनने लगा। राजनीतिक चिन्तन एवं विश्लेषण के क्षेत्र में मनोविज्ञानात्मक परिप्रेक्ष्य का प्रतिपादन ग्राहम वालास (1858–1932) ने किया। फ्रायड ने अपने वैज्ञानिक मनोविश्लेषणों के द्वारा राजनीतिक चिन्तन के क्षेत्र में (अन्य विषयों में भी) युगान्तर ला दिया। उसने मानवीय क्रियाकलापों में अवचेतनमन, भावनाओं, प्रवृत्तियों, अनुकरण, सुझाव आदि का महत्त्व सिद्ध कर दिया। इसी दिशा में टार्डे, मैक्डगल, एडलर, फ्रोम, मीड आदि के अध्ययन किये गये हैं।

मनोविज्ञानात्मक पद्धति के अनुसार राजनीति की विषयवस्तु शक्ति, प्रभाव, नेतृत्व, शासन, दल, द्वन्द्व, चुनाव, सत्ता, प्रभुत्व, राष्ट्रीयता आदि का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक तथ्यों के सन्दर्भ में किया जाता है। इसमें राजनैतिक तथ्यों को मानव की जन्मजात प्रकृति, समूह-मनोविज्ञान आदि से जोड़ा जाता है। चुनावों में अहं, भय, सामूहिक प्रवृत्ति, परम्परा आदि का खुलकर प्रयोग होता है। राजनेताओं के प्रभाव का आधार भी मनोवैज्ञानिक होता है। वालास ने बताया है कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय घटनाएँ वैयक्तिक प्रेम, भय या लालच से बड़ी प्रभावित होती हैं। स्वयं मनोविज्ञान ने राजनीति के अनेक पक्षों का विश्लेषण किया है —

(i) समूह की राजनीतिक अभिप्रवृत्तियाँ, जैसे, राजनीति में अतिवादी प्रवृत्तियाँ, अज्ञान, अलगाव, सुरक्षा सम्बन्धी भावनाएँ, सामाजिक गतिशीलता आदि।

(ii) निर्वाचन, राजनीतिक प्रतीक (Symbols) व भाषा, सामाजिक आर्थिक प्रस्थिति, व्यक्तिकार्य (Role), जनमत आदि।

(iii) राजनीतिक नेतृत्व, उसकी प्रकृति, अभिप्रेरणाएँ, अनुयायियों की प्रकृति, संस्थाएँ आदि।

राज-विज्ञान में प्रयोग की जाने वाली मनोविज्ञानात्मक पद्धति के दो प्रकार हैं—

(क) व्यक्तिपरक मनोविज्ञानात्मक पद्धति (Individualistic Psychological Method)—इसमें अध्ययन-इकाई 'व्यक्ति' को माना जाता है तथा उसकी चित्तवृत्तियों, अभिप्रायों आदि के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं। विनिश्चयन (Decision-making) सिद्धांत, प्रमुख राजनेताओं के व्यक्तिवृत अध्ययन आदि से इसका प्रयोग किया जाता है। लासवेल ने युद्ध-प्रचार तथा राजनेताओं के व्यक्तित्वों का इसी पद्धति के द्वारा अध्ययन किया है। उसका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन, निरोधात्मक राजनीति आदि इसी के अन्तर्गत आते हैं।

(ख) समाज मनोविज्ञानात्मक पद्धति (Socio-Psychological Method)–इस पद्धति की इकाई व्यक्तिकार्य (Role), समूह (Group), संस्कृति (Culture), जाति (Caste) आदि होती है। सामूहिकताओं की राजनैतिक क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं का अध्ययन करने में इस पद्धति का उपयोग किया जाता है।

वर्तमान समय में राजनीतिज्ञों में यह देखा जाता है कि वे क्रान्तिकारी, उदार, साम्यवादी या समाजवादी क्यों हैं? उनका परिवार और परिवेश कैसा रहा है? उनके जीवन में किन किन घटनाओं एवं व्यक्तियों ने विशेष प्रभाव डाला है, आदि। साम्प्रदायिक दंगों, युद्धों आदि के विश्लेषण में भी पृष्ठभूमिगत मनोवैज्ञानिक कारकों की खोज की जाती है। इन अध्ययनों के पीछे मनोविज्ञान के क्षेत्र में किये गये अनुसन्धानों के निष्कर्ष एवं उपलब्धियाँ होती हैं। ये अनुसन्धान पशुओं से लेकर मनुष्य तक पर किये गये प्रयोगों (Experiments) से सम्बंधित होते हैं। मनोवैज्ञानिक (Psychologists) बच्चों के छोटे-छोटे समूहों, श्रमिकों के कार्यदलों आदि पर प्रयोग करते रहते हैं। हॉथार्न प्रयोग वर्षों तक किये गये तथा उनके बड़े महत्त्वपूर्ण परिणाम निकले। इसी तरह स्वयं राजनीति के क्षेत्र में भी अनेक प्रयोग होते रहते हैं, यथा, लेनिन, गांधी और माओ की क्रान्तियाँ, लोकतन्त्र एवं तानाशाही के प्रयोग, स्थानीय स्वशासन के प्रयोग आदि।

राजविज्ञानी जब मनोविज्ञानात्मक पद्धति का उपयोग करता है तो वह बाहरी घटनाओं मात्र को न देखकर उनके पीछे निहित मनोवैज्ञानिक कारणों का विश्लेषण करता है तथा उनका उस घटना से वस्तुपरक सम्बन्ध स्थापित करता है। ये मनोवैज्ञानिक कारण या कारक मानव की मूल प्रवृत्ति एवं प्रकृति से सम्बद्ध होते हैं। ये शाश्वत रूप से सभी मनुष्यों में पाये जाते हैं। इस आधार पर उन घटनाओं का सामान्यीकरण कर दिया जाता है। प्रभावित व्यक्तियों का तटस्थ अवलोकन, सहभागी अवलोकन, परीक्षण आदि किया जाता है। उनसे साक्षात्कार, प्रश्न, वार्तालाप आदि किया जा सकता है। कर्त्ताओं के अवचेतन मन, महत्त्वाकांक्षाओं, रुझानों आदि का पता लगाने के लिए मनोविज्ञान ने अनेक विधियाँ एवं प्रविधियाँ विकसित की हैं।

किन्तु राजनीति विज्ञान में अनुसन्धान कार्य करने वाले शोधकों को मनोविज्ञानात्मक पद्धति पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए। अन्यथा सभी कुछ मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों, मनोवेगों आदि में बदल जायेगा और उसकी बुद्धि, विवेक, नैतिक भावना कानूनी उत्तरदायित्व आदि के लिए कोई भी स्थान नहीं रहेगा। मनुष्य एक पशु की तरह सदा-सर्वत्र एक-सा आचरण करने वाला व्यक्ति नहीं होता। वह स्व विवेक, समूह तथा आत्म ज्ञान के सन्दर्भ में अपना व्यवहार परिवर्तन कर सकता है और करता है। स्वयं मनोविज्ञान की

धारणाएँ अस्पष्ट और अपरिपक्व पायी जाती है। बच्चो और मजदूर दलो पर किये गये प्रयोग सभी पर लागू नही किये जा सकते। मनुष्य की मूल्यात्मक भावनाओ को मनो विज्ञानात्मक पद्धतियो से नही समझा जा सकता। किन्तु मनुष्य के निजी व्यक्तित्वो, समूहो के व्यवहार, सामाजिक समस्याओ आदि को समझने म इस पद्धति का प्रयोग किया जा सकता है। ऐसा करने से पहले मनोविज्ञान की प्रकृति एव कार्यक्षेत्र के विषय मे पूरी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

अन्य पद्धतियां (Other Methods)

राजनीति का अध्ययन करने के लिए वैज्ञानिक पद्धति के अतिरिक्त अन्य महत्त्वपूर्ण पद्धतियो मे कानूनी-सस्थात्मक, अर्थ शास्त्रीय, साख्यिकीय, तुलनात्मक आदि हैं। इनमे से साख्यिकीय पद्धति विषयवस्तु के मापन एव परिमापन के साथ ही वैज्ञानिक पद्धति का एक भाग बन जाती है। यह पद्धति परिमापनीय आधार सामग्री का विश्लेषण करने मे विशेष रूप से सहायक होती है। तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग निरन्तर बढता जा रहा है। इसको काम मे लाने से पूर्व एक परियोजना (Scheme), रूपरेखा या विचारबंध तैयार कर लिया जाता है, फिर प्रत्येक इकाई का स्वतन्त्र अध्ययन उस परियोजना के अनुसार किया जाता है। सरचनात्मक प्रकार्यात्मक उपागम ऐसी ही तुलनात्मक परियोजना प्रस्तुत करता है। आमड, कोल्मैन, पॉवेल, एप्टर, एवस्टीन, फाइनर आदि ने इसी प्रकार तुलनात्मक अध्ययन किये हैं।[9] पद्धति–विज्ञान के विकास की दृष्टि से तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग बहुत बाद मे आता है।

कतिपय अधिक उपयोगी किन्तु सीमित मात्रा मे प्रयोग की गयी पद्धतियां कानूनी-सस्थात्मक (Legal-Institutional) तथा अर्थ-शास्त्रीय (Economic) पद्धतियां हैं। उनमे से कानूनी-सस्थात्मक पद्धति का प्रयोग अर्द्ध-बीसवी शताब्दी तक बहुत किया गया, किन्तु व्यवहारवादी क्रान्ति के प्रभाव तथा कानून के स्वतन्त्र एव पृथक् विषय बन जाने के कारण इसका प्रयोग काफी सीमित हो गया। सस्थाओ का अध्ययन समाजशास्त्र द्वारा किया जाने लगा। लेकिन किसी भी राजनैतिक व्यवहार को जानने और समझने मे कानून एव सस्थाओ की भूमिका स्पष्ट है। कानूनी पद्धति के अन्तर्गत राजनीति तथा राजनैतिक व्यवहार को सविधान, कानून, आदेश, अध्यादेश आदि के सन्दर्भ मे समझा जाता है। कानून के पीछे औचित्यपूर्णता, वैधता, प्रस्थिति, सत्ता और दण्डात्मक शक्तियां होती हैं। इस कारण न्यूनाधिक रूप मे उनका अनुपालन किया जाता है। कानून की सीमाओ मे उठकर ही, असाधारण परिस्थितियो को छोडकर, राजनैतिक व्यवहार सम्भव होता है। कानूनी पद्धति का उपयोग करते समय उन सभी कानूनो का अध्ययन किया जाता है, जिनके अन्तर्गत राजनैतिक क्रियाएँ एव प्रक्रियाएँ सम्भव होती हैं। उन्हीं के अन्तर्गत कानूनी सरचनाओ का स्वरूप, कार्यक्षेत्र, सत्ता, अधिकारी एव अधीनस्थों की व्यवस्था तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धो का निर्धारण होता है। शोधक यह देखता है कि उन कानूनो के बनाने वालों का अभिप्राय क्या था? क्या बनाये गये कानून समुचित प्रक्रिया को अपनाकर बनाये गये? उस कानून को मानने वालो तथा नही मानने वालो के साथ पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था है? आदि। किन्तु अनुसन्धानकर्त्ता को यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि कानून सदैव औपचारिक होता है तथा उसका यथार्थ स्वरूप कुछ और ही होता है। विधि निर्माताओं के अभिप्राय तथा उनका प्रयोग करने वालो के इरादो मे भारी अन्तर हो सकता

है। राजनीति को कानूनी पद्धति से समझना एक न्यायाधीश या वकील के लिए भले ही सम्भव हो, किन्तु एक राजविज्ञानी के लिए अनुपयुक्त होगा। कानून राजनीति की कतिपय सीमाओं एवं प्रक्रियाओं के स्वरूप का निर्धारण तो करता है, किन्तु संचालन नहीं।

कानूनी पद्धति की सहयोगी दूसरी पद्धति संस्थात्मक विधि है। इसमें राजनीति तथा उसकी संरचनाओं का संस्थात्मक अध्ययन किया जाता है। आमण्ड-पॉवेल, आइजनस्टेड, हटिंग्टन आदि ने इस पद्धति को अपनी अन्य पद्धतियों के साथ स्थान दिया है। प्रमुख राजनैतिक संस्थाओं में संविधान, मंत्रिमंडल, संसद, न्यायालय, स्थानीय संस्थाएँ, नागरिक सेवाएँ आदि हैं। इस पद्धति में इन संस्थाओं के लक्ष्यों स्वरूप, प्रक्रियाओं, पारस्परिक संबंधों आदि का विश्लेषण किया जाता है। यह पद्धति अपने आपको कानूनी पक्षों तक ही सीमित न रखकर संस्था के औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों स्वरूपों की ओर ध्यान देती है।

व्यवहार में होता यह है कि दोनों पद्धतियाँ औपचारिक होने के कारण साथ-साथ चलने लगती हैं तथा उनका स्वरूप 'कानूनी संस्थात्मक पद्धति' हो जाता है। दोनों पद्धतियों का एक साथ प्रयोग राजनीति के औपचारिक कार्य-क्षेत्र, सीमांकन आदि को तो बनाता है, किन्तु वास्तविकता को समझने में अधिक उपयोगी नहीं है। कानून एवं संस्थाएँ समाज में परिव्याप्त शक्ति, प्रभाव, सामाजिक अन्तर्सम्बन्धों आदि से निर्मित संरचनाएँ हैं। उनका ज्ञान उनसे परे और गहरे जाकर ही किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, तृतीय विश्व के देशों में विकसित देशों जैसा कानूनी-संस्थात्मक ढाँचा स्थापित कर दिये जाने के बाद भी राजनीति का व्यवहार सर्वथा भिन्न है। इस भिन्नता को कानूनी-संस्थात्मक पद्धति से नहीं समझा जा सकता।

समाजवाद के उदय तथा कार्ल मार्क्स के चिन्तन के आविर्भाव के साथ ही अर्थशास्त्रीय पद्धति का राजविज्ञान में प्रभाव एवं प्रयोग शुरू होता है। राजनीति के तल में आर्थिक कारणों का ढूँढना तथा उनको राजनैतिक व्यवहार के साथ जोड़ना ही अर्थशास्त्रीय पद्धति है। एक दृष्टि से, यह पद्धति वैज्ञानिक-पद्धति के बहुत अधिक समीप है। यही कारण है कि आधुनिक समय में इसका प्रयोग वैज्ञानिक-पद्धति के समकक्ष किया जाने लगा है। किन्तु राजनीति सदा-सर्वदा आर्थिक कारकों से ही प्रेरित नहीं होती। राष्ट्रीयता, लोकतन्त्र, सत्ता का विकेन्द्रीकरण, संघवाद, जातिवाद आदि को विशुद्ध अर्थशास्त्रीय दृष्टिकोण को अपनाकर नहीं समझा जा सकता। आधुनीकरण (Modernization) के अध्येता अर्थशास्त्रीय पद्धति को सर्वोपरि मानकर विकासशील देशों की राजनैतिक प्रक्रियाओं को समझने में असमर्थ बने रहते हैं। महत्त्वपूर्ण होते हुए भी आर्थिक कारक अन्य कारकों में से एक हैं, सब कुछ वे ही नहीं।

जैसा कि कहा जा चुका है कि ये पद्धतियाँ वैज्ञानिक-पद्धति के पूरी तरह से प्रयोग करने से पूर्व तक के लिए उपयोगी हैं तब तक इनका प्रयोग किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से ये वैज्ञानिक पद्धति की पूरक पद्धतियाँ हैं किन्तु इन सभी का विकास होने पर सभी पद्धतियाँ वैज्ञानिक पद्धति के समीप आ जाएँगी। वर्तमान अवस्था में उक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक समान 'वैज्ञानिक भाषा' (Scientific Language) का विकास किया जाना चाहिए। अगले अध्याय में समान तकनीकी शब्दावली का विवेचन किया गया है। उसे 'शोध भाषा' भी कहा गया है।

सन्दर्भ

1. Karl Pearson, The Grammar of Science, London, A & C Black, 1911, p 1
2. Vernon Van Dyke, Political Science A Philosophical Analysis, op cit, pp 191–205
3. George A Lundberg, Social Research, New York, Longmans, Green and Co, 1951, pp 1-2
4. D Martindale and E Monachesi, *Elements of Sociology*, New-York, Harper and Bros, 1951, P 24, John Bynner and Keith M Stribley, Social Research Principles and Procedures, London, *Longman Group*, 1979, *pp* 4–5
5. Stuart Chase, The Proper Study of Mankind–An Inquiry into the Science of Human Relations, New York, Harper and Bros, 1948, p 22.
6. Arnold Brecht, Political Theory, Indian edition, Bombay, The Times of India Press (1959) 1965, pp 27–116
7. Albert Einstein, 'Freedom and Science', in Ruth Anshen, ed, Freedom Its Meaning, New York, 1940, p 382.
8. Brecht, op cit, pp 14–16
9. 'तुलनात्मक पद्धति' के लिए देखिए अध्याय–तेरह।

अध्याय 5

वैज्ञानिक भाषा : तथ्य, अवधारणा एवं चर

[Research Langauge : Fact, Concept and Variables]

व्यवस्थित एवं आनुभविक ज्ञान के भण्डार के रूप में विज्ञान के अनेक तत्त्व होते हैं। उनमें भाषा (Language) एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। भाषा 'अन्तर्वैयक्तिक संचारणीय ज्ञान' का मूलाधार है। ठोस ज्ञान के लिए यह आवश्यक है कि भाषा के शब्द 'सत्य' हों, तथा प्रत्यक्ष अवलोकन या सही प्रत्यक्षण (perception) पर आधारित हों। वे अन्य लोगों द्वारा भी सत्य मान जाने चाहिएँ। ज्ञान की स्थापना के लिए भाषा का विकास एक पूर्वापेक्षा (Pre-requisite) है। शोध-कार्य के तीन बड़े आधार होते हैं--तथ्य, अवधारणा तथा सिद्धांत। ये तीनों शोध भाषा के प्रमुख प्रकाश स्तम्भ हैं।

भाषा उन विवरणों को कहते हैं जिनके द्वारा सत्य मानी जाने वाली वस्तुओं को बताया जाता है। यह उन प्रतीकों (Symbols) की एक व्यवस्था है जिनका संधारण किए जाने वाले तथ्यों को पहचानने एवं परस्पर सम्बन्धित करने के लिए उपयोग किया जाता है। ये प्रतीक शब्द (Words) कहलाते हैं। इन शब्दों को लगातार प्रयोगों के द्वारा अर्थ (Meaning) प्रदान किया जाता है। शब्द, मानसिक विरचना (Construct) या प्रत्यक्ष के प्रतीकात्मक प्रतिनिधित्व के कारण दो या अधिक व्यक्तियों के मध्य, जगत् के विषय में, सम्प्रेषण (Communication) को सम्भव बनाता है। भाषा ऐसे प्रतीक-समुच्चयों का संचय है। ये प्रतीक कृत्रिम या शिल्प-तथ्य (Artifact) होते हैं। इन्हें प्रत्यक्षण के प्रतिनिधि के रूप में गढ़ा जाता है। प्रत्यक्षण की समानता के कारण उसे स्वीकार कर लिया जाता है तथा मान्यता दे दी जाती है। ज्यों-ज्यों प्रत्यक्षण सूक्ष्म होता जाता है, शब्द परिष्कृत एवं परिशुद्ध होते जाते हैं। शब्दों को परिशुद्ध एवं स्पष्ट करने के कार्य को परिभाषा करना या 'परिभाषीकरण' कहते हैं। इसके द्वारा यह स्पष्ट हो जाता है कि उस शब्द में कौन-कौनसी विशेषताएँ या गुण पाये जाते हैं। इन्हें शब्द का गुणार्थ (Connotation) कहते हैं। साथ ही यह भी बताया जाता है कि ये गुण या विशेषताएँ किन किन वस्तुओं या व्यक्तियों में पायी जाती हैं। इसे शब्द का अभिप्रार्य या वस्त्वर्थ (Denotation) कहा जाता है।

प्रतीकों के रूप में, शब्द न तो सत्य होते हैं और न असत्य। उन्हें जो भी अर्थ प्रदान किया जाता है वे उनके प्रतीक होते हैं। यह अर्थ उपयोगी अथवा अनुपयोगी हो सकता है। शब्दों की विशेषताओं को दो वर्गों में रखा जा सकता है--(i) निर्णायक (Defining) विशेषताएँ तथा (ii) सहगामी (Accompanying) विशेषताएँ। निर्णायक विशेषताओं के आधार पर एक वस्तु या घटना को सम्पूर्ण वर्ग (Class) की सदस्यता का प्रतीक (Symbol) दे दिया जाता है। इन निर्णायक विशेषताओं या प्रतीक के आधार पर ही उस वस्तु

या घटना को अन्य वस्तुओं से अलग किया जाता है। संलग्न विशेषताओं में शेष सभी विशेषताएँ समाहित कर दी जाती हैं। सामान्यतः ये संलग्न विशेषताएँ उस वर्ग की सभी वस्तुओं में पायी जाती हैं, किन्तु इनमें से एकाध विशेषताएँ नहीं भी होती हैं, उस अवस्था में भी, वे उस वर्ग की सदस्य बनी रहती हैं। निर्णायक विशेषताओं को ज्ञात कर लेने के पश्चात् अन्य संलग्न विशेषताओं को भी सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है। ये विश्लेषण की अतिरिक्त सामग्री है। निर्णायक विशेषताओं के आधार पर शब्दों की परिभाषा की जाती है। भाषा को परिभाषा के माध्यम से अर्थ प्रदान किये जाते हैं। परिभाषा, शब्द या पद के द्वारा *अभिव्यक्त उस वर्ग की समस्त वर्गगत विशेषताओं का सामान्य एवं संक्षिप्त* विवेचन करती है। वह केवल यह बताती है कि तथ्य या घटना-विशेष में क्या देखा जाना चाहिए। शब्द परिभाषा का स्थानापन्न होता है। उसमें निहित सत्यासत्य से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता। शोध कार्यों में तकनीकी शब्दों एवं परिभाषाओं का प्रयोग किया जाता है।

तथ्य (Fact)

वैज्ञानिक या तकनीकी शब्दों का निर्माण व्यक्तियों, घटनाओं, गतिविधियों आदि को 'देखने' से शुरू होता है। इस देखने को 'प्रत्यक्षण' (Perception) कहा जाता है। प्रत्यक्षण के द्वारा किसी वस्तु या घटना की विशेषताओं या गुणों को देखा जाता है। *प्रत्यक्षक या शोधक उस वस्तु या घटना की समस्त विशेषताओं या गुणों को न देख कर* अपने लक्ष्य या विषय तक सीमित रहता है। किसी राजनेता के 'प्रभाव' का अध्ययन करते समय उसके शरीर की आंतरिक बनावट को जानना आवश्यक नहीं है। तथ्य इन्हीं प्रेक्षित गुणों या देखी गयी विशेषताओं को कहते हैं। प्रत्येक वस्तु व्यक्ति या घटना के अनन्त गुण, *पक्ष या रूप होते हैं। किन्तु अनुसंधानक का उन सभी पक्षों या रूपों से सम्बन्ध नहीं होता।* वह विशेष प्रयोजन से सम्बन्धित पक्षों, रूपों या गुणों को ही उस वस्तु, व्यक्ति या घटना में देखता है। प्रत्येक वस्तु या घटना को इन विशिष्ट गुणों या पक्षों के समूह के रूप में देखा जाता है। लक्ष्य या प्रयोजन से सम्बद्ध होने तथा आनुभविक अवलोकन के आधार पर उस वस्तु या घटना के प्रेक्षित *भाग को तथ्य (Fact)* कहा जाता है। तथ्यों को विचारों में ग्रहण करना होता है।

'जो यथार्थ में घटित हुआ हो' वही वास्तविक तथ्य कहलाता है।*

इसमें मूर्त एवं अमूर्त दोनों ही घटनाएँ आ जाती हैं। मूल्य, विचार, अनुभव और *भावनाएँ भी तथ्य होती हैं। गुड के मत में, तथ्य उन भौतिक, मानसिक संवेगात्मक* उपस्थितियों या घटनाओं (Phenomena) को कहते हैं, जिन्हें निश्चयपूर्वक माना जाता है, तथा विचार-विमर्श में सत्य स्वीकार किया जाता है।[1] गुड एवं हैट के शब्दों में, वह 'आनुभविक रूप से सत्यापित हो सकने वाला अवलोकन है।[2] फेयर चाइल्ड ने तथ्य के विषय में दो बातें बतायी हैं—(1) वह प्रदर्शित या प्रदर्शनीय वास्तविकता का मद, पद या

---

*"Fact is an empirically verifiable observation."

—Goode and Hatt

"A fact by itself....is an abstration ; we isolate a certain limited aspect of the concrete process of becoming, rejecting, least provisionally, all its indefinite complexity." —Thomas and Znan ecki

विषय है, तथा (ii) ऐसी घटना है जिसके प्रेक्षणों एवं मापनों के विषय में सभी में न्यूनाधिक सहमति पायी जाती है। इस प्रकार तथ्य की कुछ सामान्य विशेषताएँ हैं—(i) वह वास्तविक रूप से घटित हुआ हो या विद्यमान हो (ii) वह मूर्त्त अथवा अमूर्त्त हो सकता है, (iii) उसे सभी व्यक्ति सच मानते हैं तथा चाहे तो पुनर्परीक्षा, जाँच या सत्यापन कर सकते हैं, (iv) वह अनुभवपरक होता है तथा उसके बारे में विचार एवं संचार किया जा सकता है, (v) उसके प्रेक्षण एवं मापन के बारे में मतैक्य हो सकता है, (vi) तथ्य एक से अधिक, जटिल एवं संश्लिष्ट हो सकते हैं, तथा (vii) उसे पुष्ट या प्रमाणित किया जा सकता है। इन्हीं विशेषताओं के आधार पर 'तथ्य' एवं सामान्य 'घटना' के मध्य अन्तर किया जाता है।

दुर्खीम के अनुसार, तथ्य की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं—(i) बाह्यता (Exteriority) वह शोधकर्ता के मस्तिष्क से बाहर घटित घटना है, तथा (ii) बाध्यता (Constraint)—वह समाज के सदस्यों को मानने के लिए बाध्य कर देता है।[3]

संक्षेप में, तथ्य प्रेक्षित गुणों या देखी गयी विशेषताओं को कहते हैं। इन गुणों या विशेषताओं को सिद्धान्त या अवधारणात्मक विचारबंध (Conceptual framework) की परिधि में देखा जाता है। इन निश्चित अथवा सीमित विशेषताओं या गुणों से युक्त वस्तु या घटना को प्रतीक या शब्द प्रदान किये जाते हैं। निश्चित अर्थों से युक्त होने के कारण ही उन्हें 'वैज्ञानिक शब्द' कहा जाता है। 'वस्तु प्रेक्षण-सीमित गुण-प्रतीक शब्द' ही वैज्ञानिक-शब्द निर्माण की प्रक्रिया है।

तथ्य एवं सिद्धान्त-निर्माण (Facts and Theory-Making)

सिद्धांत तथ्यों के आधार पर बनते हैं। मर्टन के अनुसार, एक युक्त सिद्धांत उपयुक्त तथ्यों के भोजन पर ही विकसित होता है। दोनों के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। तथ्यों में पायी जाने वाली समानताओं एवं असमानताओं का राजविज्ञानियों द्वारा अवलोकन किया जाता है। इसके आधार पर तथ्यों को पहचाना तथा उनका वर्गीकरण किया जाता है। इस प्रक्रिया को अवधारणीकरण (Conceptualization) कहा जाता है। अवधारणाओं में आनुभविक सम्बद्धता को देखकर सामान्यीकरणों या सामान्य कथनों का पता लगाया जाता है। सामान्यीकरणों के आधार पर वैसे ही तथ्यों की व्याख्या की जाती है।

प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में सभी खोजें या आविष्कार तथ्यों पर ही आश्रित होते हैं। वैज्ञानिक उनका अवलोकन करते हैं तथा उनके आधार पर या तो नये सिद्धांत विकसित करते हैं, या पहले से ही विद्यमान सिद्धांत को पुष्ट या खंडित करते हैं। वे तथ्यों पर कड़ी निगाह रखते हैं। नये तथ्य सामने आने पर पुराने सिद्धांत निरर्थक हो जाते हैं अथवा उनमें भारी परिवर्तन करने की आवश्यकता पड़ जाती है। विज्ञान किसी भी सिद्धांत को शाश्वत या अंतिम नहीं मानता। वह वर्तमान तथ्यों के प्रकाश में, सिद्धांत में आवश्यक संशोधन, सुधार या परिवर्तन करता रहता है। आवश्यकता पड़ने पर पुराने सिद्धांत के आधार पर नया सिद्धांत बना लिया जाता है। गुड एवं हैट ने तथ्यों के तीन महत्त्वपूर्ण कार्यों का उल्लेख किया है—(i) वे सिद्धांत-निर्माण के लिए कच्चा माल, या आवश्यक आधार को प्रस्तुत करते हैं, (ii) उनके द्वारा किसी वर्तमान सिद्धांत को रद्द (Reject) किया तथा उसमें संशोधन, परिमार्जन एवं परिवर्तन किया जा सकता है, तथा (iii) उनसे किसी सिद्धांत की जाँच, परिभाषा या व्याख्या की जा सकती है।

जिस प्रकार तथ्य सिद्धात के लिए आवश्यक हैं, उसी प्रकार सिद्धात भी तथ्य के लिए अनिवार्य हैं। तथ्यो के सन्दर्भ में सिद्धात के अनेक कार्य हैं—(i) सिद्धात तथ्यो के स्वरूप तथा उनको एकत्रित करने की सीमा को निर्धारित करता है, (ii) वह सम्बन्धित घटनाओ, वस्तुओ, विचारो आदि को व्यवस्थित, वर्गीकृत तथा अन्त सम्बन्धित करने के लिए अवधारणात्मक विचारबन्ध प्रस्तुत करता है, (iii) उसके द्वारा तथ्यो को सामान्य नियमो एव सामान्यीकरणो के अन्तर्गत रखकर सक्षेप मे प्रस्तुत किया जाता है, (iv) वह तथ्यो के बारे मे पूर्वकथन भी कर सकता है, तथा (v) उसके द्वारा जगत् के विषय मे हमारे ज्ञान की अपूर्णता का बोध होता है। सिद्धात के आधार पर शोध को आगे बढाने से शोधक को यह पता चल जाता है कि उस सिद्धात को सही या गलत प्रमाणित करने के लिए कौन-कौने से तथ्यो को एकत्रित किया जाना चाहिए ? ऐसा करने से समय, धन, श्रम आदि का अपव्यय बच जाता है। उससे घटनाओ के तार्किक वर्गीकरण मे सहायता मिलती है। सिद्धात अनुसधान-कार्य को सगठित एव निर्देशित करता है। किन्तु उसके निष्कर्षों का परीक्षण आनुभविक अवलोकन के आधार पर ही किया जाता है।

व्यापकता एवं प्रामाणिकता के मध्य संघर्ष
(Conflict between Generality and Validity)

यह स्पष्ट है कि तथ्यो का ज्ञान, सामान्यीकरण अथवा सिद्धात प्रामाणिक (Valid) या अनुभवाश्रित होने चाहिएँ किन्तु हम ज्यो-ज्यो सामान्यता या व्यापकता (Generality) की ओर जाते हैं, हमारी तथ्यो से सम्बन्धित ज्ञान की प्रामाणिकता मे कमी आने लगती है। प्रामाणिकता की मात्रा की दृष्टि से, तथ्यात्मक विवरणो म अन्तर वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से प्रेक्षणीय राजनीतिक तथ्यो का अध्ययन करके ज्ञात किया जाता है। ऐसे विवरणों का प्रमाणन (Validation) के आधार पर चार स्तरो मे विभाजन किया जा सकता है—

(1) इस वर्ग मे अनुभवात्मक साक्ष्य पर आधारित तथ्यात्मक विवरण होते हैं। ये मेज, कुर्सी आदि की तरह प्रेक्षणीय होने के कारण पूर्ण विश्वसनीय होते हैं।

(2) ऐसे विवरण सम्भावनात्मक सत्य (Truth) होते हैं, जिन्हें दूसरे क्षेत्रो (अर्थात् देखे गये तथ्यो के अलावा) मे लागू किया जाता है। ये परिकल्पनात्मक (Hypothetical) अथवा असत्य सिद्ध किये जाने तक सत्य माने जाते हैं। इनकी प्रामाणिकता कभी भी शत-प्रति-शत नही होती।

(3) ये विवरण परिकल्पनात्मक ज्ञान के रूप मे होते हैं। इनमे हम तथ्यो के बारे मे *अनुमान (Guess) लगाते हैं। इन्हें विभिन्न चरो (Variables) के अन्तर्सम्बन्धो के* आधार पर अनुभवात्मक साक्ष्य लेकर जाना जाता है। इनसे यह पता चलता है कि एक चर के बदलने पर दूसरे चर मे क्या अन्तर आ जाता है। चरो की न्यूनतर अस्पष्टता अन्तर्सम्बन्धो की श्रेष्ठतर परिशुद्धता को प्रदर्शित करती करती है। इसी परस्पर सम्बन्ध के आधार पर परिकल्पनात्मक विवरण अधिक से अधिक लाभदायक तथा प्रामाणिक होते जाते हैं।

(4) ऐसे तथ्यात्मक विवरण सैद्धातिक ज्ञान (Theoretical knowledge) से सम्बन्धित होते हैं। सैद्धातिक ज्ञान विभिन्न तथ्यो परिकल्पनात्मक विवरणो आदि को तार्किक तारतम्य मे बाँध रखता है। यह पूर्ववर्णित तीनो विवरणो की अपेक्षा अधिक अमूर्त किन्तु अधिक व्यापक तथा अधिक सार्वकालिक होता है। यह उनकी अपेक्षा

कम प्रतिबन्धित होते हुए भी वैज्ञानिकता के मानदण्डो का विषय होता है। इस प्रकार 'सिद्धांत' विभिन्न प्रकार के तथ्यात्मक विवरणो की एकीकृत सरचना का शिखर होता है। ज्यो-ज्यो अध्येता तथ्यो से ऊपर उठकर सिद्धात-निर्माण की ऊँचाइयो पर चढता है, तथ्यो के विषय मे उसके ज्ञान का अधिकाधिक सामान्यीकरण होता जाता है। उसका ज्ञान व्यापक होता जाता है और प्रामाणिकता घटती जाती है।

परन्तु ये सभी ज्ञान के स्तर किसी न किसी तरह तथ्यो से सम्बन्धित हैं। ज्ञान की यह सरचना सरलतम तथ्यात्मक विवरणो से आरम्भ होकर अधिकतम एव सर्वमान्य विवरणों मे समाप्त होती हैं। इस तरह, वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित उपर्युक्त सभी प्रकार के विवरण एव 'सिद्धान्त तथ्य सातत्य' (Taeory data-continuum) का निर्माण करते हैं। यह नवीन परिकल्पनाओ अखोजित तथ्यो आदि की उपलब्धि का मार्ग प्रशस्त करता है। उच्चस्तरीय अमूर्त अवधारणाओ के बिना, हम राजनीतिक तथ्यो के बारे मे बहुत कम जान सकते हैं। उसी प्रकार, बिना आनुभविक शोधक के द्वारा प्रस्तुत तथ्यों के सिद्धान्त-निर्माता मूक होता है। उसके पास ठोस बात कहने के लिए कुछ नहीं होता। काण्ट ने बहुत पहले ही कहा है कि *'तथ्य सिद्धात के बिना अन्धा होता है, तथा सिद्धात तथ्य के अभाव में* खोखला होता है।'

प्रत्येक दशा म अध्येता या शोधक (Researcher) का सैद्धांतिक ज्ञान तथ्यों के विषय मे अथवा तथ्यो पर आधारित होता है। तथ्यों का ज्ञान क्या, कैसे, कब और कहाँ के बारे मे तो बता सकता है और उसके लिए साक्ष्य भी जुटा सकता है, किन्तु वह 'क्यो' (Why) का उत्तर नहीं दे सकता। *तथ्यो के पीछे निहित प्रयोजन, लक्ष्य या आदर्श के* विषय मे अथवा उनके आधार पर किये गए चयन या निर्णय के बारे मे निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। इनका ज्ञान मूल्यों से सम्बन्धित होता है। मूल्यो का, विशेषकर परम या अन्तिम (Ultimate) मूल्यो का सीधा सम्बन्ध अन्त प्रेरणा, सकल्प या स्वेच्छा से होता है। मूल्य तथ्यों से सम्बन्ध रखते हुए भी स्वतन्त्र हो सकते हैं। कोई तानाशाह सर्वसम्मति के होते हुए *अथवा तथ्यों के विरुद्ध भी निर्णय ले सकता है। अतएव तथ्यात्मक ज्ञान* के साथ मूल्यों का बोध भी होना चाहिए। अधिकाश राजनैतिक तथ्य न्यूनाधिक रूप से प्रकट या प्रच्छन्न मूल्यो से सम्बद्ध होते हैं।

तथ्य एवं मूल्य (Fact and Value)

राजविज्ञान मे तथ्यो एव मूल्यों (Fact and value) दोनों का बड़ा महत्त्व है। *विशुद्ध तथ्यो के आधार पर अध्ययन* करने के कारण ही इस विषय को 'विज्ञान' (Science) कहा जाता है। किन्तु राजविज्ञान एक मानवीय एक सामाजिक विज्ञान है। इस कारण यह मूल्यों, आदर्शों अथवा प्रयोजनो से घनिष्ठ रूप मे सम्बन्धित है। यह प्रश्न उठता है कि क्या राजविज्ञान मे राजनीति के तथ्यो को विशुद्ध तथ्यों के रूप मे देखा जा सकता है? यदि तथ्यों को प्राकृतिक विज्ञान की वस्तुओ की तरह, मूल्य निरपेक्ष होकर देखना सम्भव है, तो राजविज्ञान भी *वैसा ही* 'विज्ञान' बन सकता है। यदि राजनीति के तथ्यो को मूल्य निरपेक्ष होकर देखना सम्भव *नहीं* है, और उन्हें 'देखने' म मूल्य प्रवेश कर जाते हो तो राजविज्ञान को 'विज्ञान' बनाने की तो सम्भावना नहीं रह जाती। तथ्य किसी वस्तु, घटना या विचार मे देखे गए गुणों के समूह कहते हैं। यदि उस वस्तु मे वास्तविक रूप म पाये जाने वाले

गुणो को, जैसे वे है वैसे ही देखे जा सकें, तो उस अवलोकन या प्रेक्षण को हम 'वैज्ञानिक' या 'तथ्यात्मक' कहेंगे। तथ्यो को यथार्थ रूप मे देखना अत्यावश्यक होता है। तथ्यात्मक ज्ञान के आधार पर ही अन्य सम्बन्ध, धारणाएँ, मूल्यांकन आदि निर्धारित किये जाते है। उदाहरण के लिए, एक मजदूर-नेता अपने सर्वोच्च प्रबन्धक के इरादो को सही रूप मे जानना चाहता है या एक उच्च अधिकारी कर्मचारी-सघ की क्षमता या ताकत को समझना चाहता है। उनके निर्णय मे त्रुटि रह जाने के भारी दुष्परिणाम हो सकते है।

तथ्यो के मूल्य निरपेक्ष अध्ययन के विषय मे डहल (Modern Political Analysis) ने दो दृष्टिकोणो की चर्चा की है। एक दृष्टिकोण तथ्यो को विशुद्ध तथ्यो या मूल्य-निरपेक्ष रूप मे अध्ययन करना सम्भव एव आवश्यक मानता है। वह मूल्य तथ्य पृथकता या विरोध को मानता है। उसके अनुसार, मूल्यो को तथ्यो से पृथक् किया जा सकता है। दूसरा वर्ग मूल्य-तथ्य एकता मे विश्वास करता है। उसके अनुसार मूल्यो को तथ्यो से पृथक् करना न सम्भव है और न वाछनीय है। प्रथम वर्ग को डहल के अनुभववादी सिद्धान्ती (Empirical theorists) कहा है। इस दृष्टिकोण की दृढ धारणा है कि राजनीति का एक महत्त्वपूर्ण सारभाग तटस्थ और वस्तुनिष्ठ रहकर अध्ययन किया जा सकता है। इनके तर्क विशुद्ध व्यवहारवादियो से मिलते जुलते हैं। उनका लक्ष्य प्राकृतिक विज्ञानो के समान इस विषय को 'राजनीति का विज्ञान' बनाना है। ऐसा वैज्ञानिक पद्धति एव व्यवहारवाद को अपना कर किया जा सकता है।

दूसरे वर्ग को, डहल के अनुभवेतरवादी (Transempiricist) कहा है। इन्होने अनुभववादियो के दृष्टिकोण का तीव्र विरोध किया है। उनके आक्षेप व्यवहारवाद पर किये गये आक्षेपो के समान हैं। अनुभवेतर दृष्टि का सबसे अधिक समर्थन इरिक वोगेलिन, लिओ स्ट्रॉस आदि मे पाया जाता है। इन्होने बताया है कि अनुभववादी अथवा वैज्ञानिक दृष्टिकोण मे मानव मूल्यो की अवहेलना पायी जाती है। वे यह नही मानते हैं कि मानव और मशीनो, तथा, मानव और जगली जानवरो मे केवल डिग्री (मात्रा) का ही अन्तर है। राजनीति मे मूल्यो का अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, इसलिए किसी भी विश्लेषण या अध्ययन मे उनकी अवहेलना नही की जानी चाहिए। वे मूल्यो के प्रकाश म तथ्यो का विश्लेषण, अध्ययन एव अवलोकन करते हैं। उनकी दृष्टि से, मूल्य-निरपेक्ष राजनीति-विज्ञान का होना ही असम्भव है (A value-free political science is impossible)। स्वय 'राजनैतिक' (Political) शब्द का प्रयोग 'मूल्यात्मक' है। प्रत्येक राजनैतिक कार्य मे कोई न कोई प्रयोजन निहित होता है। उसमे वर्तमान अवस्था के परिरक्षण (Preservation) या परिवर्तन का लक्ष्य रहता है। दोनो अवस्थाओ मे 'अधिक श्रेष्ठ' (Better) की उपलब्धि का भाव वर्तमान रहता है। मूल्यवादी मूल्य-तथ्य पृथकरण को अवैज्ञानिक एव अवास्तविक मानते हैं।

डहल द्वारा बताये गये दोनो दृष्टिकोण एक दूसरे के विपरीत हैं। वैचारिक दृष्टि से दोनो ही सही प्रतीत होते हैं। अनुभववादी इन्द्रियज्ञान से परे नही जाते और हैं या तथ्यो तक ही सीमित रहते हैं। उधर अनुभवेतरवादी मूल्यो की व्यापकता और सर्वोपरिता का कथन करते हैं। उनका यह कथन सही है कि अनुभववादी भी कतिपय मूल्यो को अपनाकर कार्य करते हैं। किन्तु व्यवहार म, दोनो दृष्टिकोणो के मध्य इतनी अधिक दूरी नही है। दोनो ही 'सत्य' या 'वास्तविकता' का अन्वेषण करना चाहते हैं। किन्तु अनुभववादी 'अन्तर्वैयक्तिक सचारणीय' अथवा जाँचशील ज्ञान पर जोर देते है। उनके मूल्य

उपकरणात्मक, साधनात्मक एव गौण होते हैं। ये मूल्य शोध की प्रक्रिया एव परिणामों को प्रभावित नहीं करते। ये परम मूल्यों के अस्तित्व एव श्रेष्ठ-स्थान के विषय मे साक्ष्य न होने के कारण विश्वास नही करते। साथ ही वे नही हैं', ऐसा भी नहीं कहते। उभर अनुभवेनरवादी भी तथ्यों की अवहेलना नहीं करना चाहते। परन्तु वे तथ्यों को कतिपय शाश्वत मूल्यों के रग न प्रकाश म देखना चाहते हैं। उनके लिए मूल्य, विशेषतः शाश्वत मूल्य अधिक महान सत्य हैं। उन्हीं के अन्तर्गत अन्य सत्य एव तथ्य आ जाते हैं। वे तथ्यों का अध्ययन मूल्यों के सन्दर्भ मे करते हैं। किन्तु वे अपने मूल्यों की श्रेष्ठता, स्थायित्व, प्राप्ति आदि को प्रमाणित करने के लिए तथ्यों की खोज करते हैं। इस प्रकार दोनों विचार-वर्ग तथ्यों के इर्द-गिर्द हैं। वास्तविकता यह है कि वे केवल अन्तिम या परम-मूल्यों की प्रामाणिकता के विषय मे एक-दूसरे से दूर हैं। अन्य मूल्यों की उपयोगिता, आवश्यकता तथा स्वरूप के विषय म वे एक-दूसरे के काफी नजदीक आ गये हैं। उत्तर-व्यवहारवादी विचारधारा से भी इस समीपता की मात्रा मे वृद्धि हुई है। वैज्ञानिक मूल्य-सापेक्षवाद ने यह बता दिया है कि लगभग सभी मूल्यों का वैज्ञानिक अध्ययन करना सम्भव है। वस्तुत मूल्यों को वस्तुएं या निर्दिष्ट (Givens) मानकर या पता लगा कर वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है। शेष मूल्य गौण या साधनात्मक होते हैं। उनका वैज्ञानिक विश्लेषण करने में कोई कठिनाई उत्पन्न नही होती। लेकिन किसी भी विश्लेषण मे तथ्यों का स्थान सर्वोपरि माना जाना चाहिए। तथ्यों के प्रकाश मे राजनीति एव राजनैतिक मूल्यों का अध्ययन करने पर ही राजविज्ञान तथा राजसिद्धान्त का निर्माण सम्भव है।

अवधारणा (Concept)

अवधारणा (Concept) तथ्यों के एक वर्ग या समूह की सक्षिप्त परिभाषा को कहते हैं। जैसे, मतदान, राजनैतिक दल या क्रान्ति। अवधारणा तथ्यों के एक वर्ग की सक्षिप्त अभिव्यक्ति होती है। उसमे या तो तथ्यों का एक नया वर्ग होता है—या अन्य वर्गों से कुछ विशेषताओं को अलग करके एक नया नाम या लेबल (Label) दे दिया जाता है। शोधक विभिन्न तथ्यों मे अन्त सम्बन्ध खोजता है या एक निश्चित घटना या व्यवहार-प्रतिमान बनाता है तथा उसे सक्षेप मे एक दो शब्दों की सहायता से कहता है। इन एक दो शब्दों को अवधारणा' कहा जाता है। मिचेल के अनुसार, वह 'एक विवरणात्मक गुण या सम्बन्ध की ओर सकेत करने वाला पद (Item) है।'[1] अवधारणा मे तथ्यों के वर्ग या समूह को, या विभिन्न वर्गों मे से कतिपय लक्षणों या व्यवहार के प्रतिमान को, एक-दो शब्दों म व्यक्त परिभाषा होती है। यह सक्षिप्त परिभाषा या शब्द उस घटना या व्यवहार-प्रतिमान की सम्पूर्ण व्याख्या नहीं करता बल्कि केवल सकेत देता है।*

---

* "Concept is a term referring to a descriptive property or relation" — Migchell

"A concept is in reality a definition in shorthand of a class or group of facts" —Young

"A concept is a classification by definition of some phenomenon, which may or may not be variable" —H W Smith

Contd

अवधारणा वैज्ञानिक, अवलोकन, चिन्तन एव यथार्थ अनुभव पर आधारित होती है तथा उसका एक अर्थ-सम्बन्धी आधार होता है। उसके द्वारा बनाये जाने वाला अर्थ या विशेषताएँ उससे सम्बद्ध सम्पूर्ण वर्ग या समूह मे पायी जाती है। वह स्वय कोई सिद्धान्त (Theory) न होकर तथ्यो के एक वर्ग की विशेषताओ को बताने वाला पद होता है। अवधारणा के अर्थ और स्वरूप मे परिवर्तन होता रहता है। नये तथ्य सामने आने पर अथवा वैज्ञानिक दृष्टि या ज्ञान मे परिवर्तन हो जाने पर अवधारणा मे भी फेर-बदल हो सकता है।

अवधारणा के कुछ पर्यायवाची नाम और हैं, जैसे, धारणा, सम्बोध, प्रत्यय आदि। ये सभी वस्तुओ, व्यक्तियो या गतिविधियो मे विशेष रूप से प्रेक्षित किये गये गुणो के समूह होते हैं। अवधारणा मे शोधक वास्तविकता के जगत् से अपने लिए तथ्यो का चयन करता है तथा उन्हे परिभाषित करके शब्दो या प्रतीको द्वारा सम्बोधित करता है। ये शब्द कतिपय गुणो या विशेषताओ का सकेत देते हैं। वैसे ही गुणो से युक्त विचारो, वस्तुओ या घटनाओ को उस अवधारणा से सम्बन्धित तथ्यो के वर्ग के अन्तर्गत रख दिया जाता है। अवधारणा शब्दो द्वारा गुण-समूहीकरण का नाम है। अवधारणा के अन्तर्गत आने वाली घटनाओ, वस्तुओ, क्रियाओ आदि को 'तथ्य' कह दिया जाता है। वास्तव मे, अवधारण किसी घटना, गतिविधि, वस्तु या विचार को देखने या अवलोकन के नियमो को कहते हैं। ये नियम विशेष उद्देश्य को सामने रखकर बनाये जाते हैं। मैक्स वैबर की 'नौकरशाही' की अवधारणा इसी प्रकार की है। अवधारणा तथ्यो की विशेषताओ का अकन करती है। ब्रोडबेक के मतानुसार, यह वर्णनात्मक गुण या सम्बन्ध का नाम है। वह कतिपय समान गुणो से युक्त तथ्यो की विशेषताओ का सामान्यीकरण है। उसे तथ्यो का अमूर्तिकरण (Abstraction) कहा जा सकता है। वह प्रेक्षक की दृष्टि से, अपने वर्ग की समस्त विशेषताओ को बताती है। फेयर चाइल्ड के अनुसार, अवधारणाएँ विशेष मौखिक सकेत होती हैं। ये सकेत वैज्ञानिक अवलोकन एव चिन्तन के आधार पर निकाले गये सामान्यीकृत विचारो को दिये जाते हैं। ये सिद्धान्त से सम्बन्धित शब्दावली देते हैं तथा उसकी विषय-वस्तु को बताते हैं। इस प्रकार, अवधारणा राजनैतिक जगत् तथा उसके विषय मे निर्मित सिद्धान्त को जोडने वाली कडी है। अवधारणाओं के बिना प्रत्यक्षणो तथा तथ्यो के महासागर से नही निकला जा सकता।

अवधारणाएँ तथ्यो पर आधारित वैचारिक रचनाएँ होती हैं। इन्हें अन्य अर्थों या स्थितियों मे लागू नही किया जा सकता। अवधारणा मे निहित तथ्यो की विशेषताओ को चर या परिवर्त्य (Variable) कहते हैं। चर अवधारणा का मापनीय फैलाव है। अवधारणा मे मिचेल के अनुसार, सूक्ष्मता, परिशुद्धता, आनुभविकता तथा सिद्धान्तोन्मुखता होनी चाहिए। ऐसी अवधारणाएँ 'समस्त मानव-सम्पर्क तथा विचार की आधारशिलाएँ बन जाती हैं। अवधारणाओ के स्वरूप को परिभाषा द्वारा निश्चित कर दिया जाता है।

"A concept is an abstraction from reality, a term that designates a class of phenomema or certain characteristics shared by a class of phenomena"

—Gerald S. Ferman & Jack Levin

अवधारणीकरण (Conceptualization)

अवधारणीकरण (Conceptualization) जगत् के प्रत्यक्षणों (perceptions) को संगठित करने की प्रक्रिया को कहते हैं। वह राजनीतिक विश्लेषण में, व्यवस्थित ज्ञान की दिशा में पहला कदम माना जाता है। जगत् के बारे में ज्ञान-विषयक सवर्गों (Categories) का विकास करने के लिए दो प्रकार की अवधारणाएँ होती हैं—

(क) विश्लेषणात्मक अवधारणाएँ—ये विश्लेषण के लिए अर्थपूर्ण समझे जाने वाले सवर्गों पर निर्भर होती हैं। जब एक सिद्धान्त-निर्माता अपने विश्लेषण के लिए, उपयोगी समझे जाने वाले सवर्गों के अन्तर्गत, प्रत्यक्षण-प्रकारों के अमूर्त सवर्गों के माध्यम से अवधारणाओं को परिभाषित करता है, उन्हें विश्लेषणात्मक अवधारणाएँ कहा जाता है, य नवीन प्रकारणाओं (Typologies) के समान हैं। प्रकारणा यथार्थ के उपयोगी रूपों के वर्गों का अमूर्तिकरण (Abstraction) होती है। इसका उद्देश्य प्रत्यक्षणों का सगठन होता है। विश्लेषणात्मक धारणाएँ अमूर्तिकरण होती हैं और उनका वास्तविक जगत् से प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता। किन्तु वे वास्तविक जगत् के प्रत्यक्षणों को सगठित करने की क्षमता प्रदान करती हैं। जैसे, तानाशाही या क्रान्ति की विश्लेषणात्मक अवधारणाएँ।

(ख) संश्लेषणात्मक अवधारणाएँ—इन संश्लेषणात्मक (Synthetic) अवधारणाओं का प्रत्यक्ष अवलोकन किया जा सकता है। इन्हें ऐन्द्रिक प्रत्यक्षण के द्वारा परिभाषित किया जाता है। मापन द्वारा इन अवधारणाओं को परिशुद्ध बनाया जा सकता है, जैसे, ताप की अवधारणा को। दोनों प्रकार की अवधारणाएँ अलग-अलग होते हुए भी एक-दूसरे से सम्बन्धित होती हैं। एक विश्लेषणात्मक अवधारणा अप्रत्यक्षत संश्लेषणात्मक हो सकती है, यदि उसे संश्लेषणात्मक अवधारणा के द्वारा, अथवा, ऐसी अन्य विश्लेषणात्मक अवधारणाओं के द्वारा जो स्वयं संश्लेषणात्मक अवधारणाओं द्वारा परिभाषित की जायें। एक विश्लेषणात्मक अवधारणा का अर्थ ऐन्द्रिक प्रत्यक्षण पर टिकाया जा सकता है। ऐसे संश्लेषणात्मक सम्बन्ध का विकास हो जाने पर, उक्त अन्तर निरर्थक हो जाता है। किन्तु इससे वास्तविकता प्रत्यक्षण का सगठन करने के लिए उपयोगी अवधारणाओं का विकास करने की प्रक्रिया का पता चलता है।

इस प्रक्रिया में अवधारणा को सर्वप्रथम प्रत्यक्ष घटना के साथ जोड़ा जाता है। तब, उसका वैसे ही तथ्यों की पहचानने के लिए उपयोग किया जा सकता है। वैज्ञानिक विश्लेषण का मूल उद्देश्य है कि शोध एवं परिष्कार के द्वारा विश्लेषणात्मक शब्दों को संश्लेषणात्मक पदों में अनूदित किया जाय। विश्लेषणात्मक अवधारणाओं के आनुभविक जगत् में जमने से, उनके अर्थों को संश्लेषणात्मक समझा जा सकता है। अर्थों का यह रूपान्तरण विज्ञान के विकास का मूल हृदय है।

अवधारणीकरण का सामान्य लक्ष्य, प्रतीकों के रूप में, विचारों का प्रस्तुतिकरण करना होता है। शब्द विचारों के स्थानापन्न हो जाते हैं। प्रतीकों (शब्दों) का प्रयोग अच्छे संचारण (Communication) को सुगम बना देता है, तथा व्यवस्थित ज्ञान के रूप में विचारों के अच्छे सगठन तथा क्रियाकौशल (Manipulation) के अवसर प्रदान करता है। अवधारणाओं का वैज्ञानिक भाषा में उपयोग किया जाता है। उन्हें परिभाषित करके अर्थ प्रदान किए जाते हैं। यह कार्य प्राकृतिक विज्ञानों में सरलतापूर्वक हो जाता है। उनमें कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती। उनमें वस्तुएँ पहले होती हैं तथा उन्हें प्रतीक, सकेत या 'लेबिल' बाद में दिया जाता है। राजविज्ञान में नाम होते हैं, परन्तु वस्तुओं का स्वरूप ज्ञात और

निश्चित नही होता। प्राकृतिक विज्ञानो के पास यथार्थ वस्तुएँ एव वास्तविक अर्थ (Real meaning) होते है। राजविज्ञान मे अवधारणाओ की शाब्दिक (Nominal) परिभाषाएँ देनी पडती है किन्तु उनके निर्णायक या आवश्यक (Essential) अर्थों को ढूंढना पडता है। जैसे, शक्ति (Power) की अवधारणा क, ख, ग, घ विशेषताएँ रखती हैं। राजविज्ञान मे शाब्दिक परिभाषा मे अनुभावात्मक विशेषताओ की समानुरूपता का अवलोकन करना पडता है। फिर उनका वर्णन करके, अर्थ प्रदान करते हुए, एक अकन या चिह्न (Label) देना होता है।

हैम्पल अवधारणीकरण के नियम
(Hempel Rules of Conceptualization)

अवधारणाओ का निर्माण सम्भावित सिद्धात तथा स्थापित ज्ञान के प्रकाश मे किया जाता है। राजविज्ञान म, अन्य विज्ञानो की तरह, केवल प्राकृतिक अथवा आवश्यक विशेषताओ से निर्मित अवधारणाएँ पर्याप्त नही होती। उसम वैज्ञानिक भाषा के अनुकूल शाब्दिक (Nominal) परिभाषाएँ भी तैयार करनी पडती हैं। इनका अनुबन्धित (Stipulative) परिभाषाओ के रूप म विकसित करना होता है। इन अनुबन्धित परिभाषाओ मे आधारभूत या निर्णायक तथा गौण विशेषताओ को शामिल कर दिया जाता है। इनको उपयोगिता तथा घटनाओं के परिशुद्ध ज्ञान के कारण, विश्लेषण मे स्वीकार किया जाता है। यद्यपि ये स्वेच्छानुसार बनायी जाती है, फिर भी इन्हें परिशुद्धता तथा विशिष्ट मानकीकृत अर्थों मे प्रयुक्त किए जाने की सम्भावना के कारण 'सचारणीय' माना जाता है। जॉर्ज जी हैम्पल ने इनके निर्माण के लिए दो आवश्यक शर्तें या दशाएँ बतायी हैं :

(1) उनके विशिष्ट आनुभविक सन्दर्भ (Empirical refcrene) होना चाहिए। ये अवधारणाए यथार्थ जगत् मे निर्देशित निर्णायक विशेषताओ से युक्त किसी वस्तु या घटना के सन्दर्भ पर आश्रित होनी चाहिए, तथा,

(2) वे अवधारणाएँ सैद्धातिक महत्त्व (Theoretical significance) से युक्त होनी चाहिए। उनका महत्त्व उसी अवस्था मे स्वीकार किया जायेगा, कि उसका उपयोग यथार्थ जगत् के विषय मे अर्थपूर्ण विवरण देने के लिए किया जा सके।

प्रथम शर्त की पूर्ति दूसरी शर्त के लिए आवश्यक है। दूसरी शर्त के लिए यह आवश्यक है कि अवधारणाएँ अस्पष्ट तथा अनेकार्थक नही हो तथा सवर्गों के तादात्म्य से परे जाने की क्षमता रखती हो। इन अवधारणाओ का, दूसरी घटनाओ से, जिनको अर्थपूर्ण स्वीकार किए जाने से पूर्व सस्थापित या परीक्षित किया जा सके, विवरण म सम्बद्ध हो सकना सम्भव होना चाहिए। कई बार अनेक अवधारणाएँ तथा उनकी परिभाषाएं, अस्पष्ट और अनेकार्थ नही होते हुए भी विवरणो मे, अन्य घटनाओ के साथ सम्बद्ध नही होती। इस कारण उनका सैद्धान्तिक महत्त्व नही होता। आनुभविक सन्दर्भ और सद्धातिक महत्त्व परस्पर जुडे हुए हैं। सिद्धात मे उपयोग करने की दृष्टि से हो, महत्त्वपूर्ण सम्बन्धो को बताने वाले विवरणो म प्रयुक्त अवधारणाओ को परिभाषित किया जाना है। शाब्दिक (Nominal) अवधारणाओं का भी सिद्धान्त—विकास मे उपयोगी होता है। सिद्धात के लिए यह भी आवश्यक है कि वह यथार्थ जगत् मे प्रेक्षित दशाओं के उपयुक्त हो। इस तरह, शाब्दिक अवधारणाओ का सिद्धात के माध्यम से यथार्थ घटनाओ के साथ सम्बन्ध जुड जाता है। शाब्दिक परिभाषाओ मे, विवरणों की दृष्टि से, महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को

स्पष्ट किया जाना चाहिए। उनके द्वारा, सिद्धांत के माध्यम से, प्राकृतिक या यथार्थ दशाओं को जानना सम्भव हो जाता है। शाब्दिक अवधारणाओं की अनुबन्धित (Stipulative) परिभाषा करने का अर्थ यह नहीं है कि उन्हें आनुभविकता या यथार्थ से दूर कर दिया। किन्तु आनुभविकता के साथ-साथ सिद्धान्त-विकास की आवश्यकता को भी ध्यान में रखना पड़ता है। इन्हीं अर्थों में अवधारणाएँ 'लक्षण-शब्द' (Character-words) हैं, तथा विज्ञान की मूल सामग्री (Stuff) या उपादान हैं।[8] उनके तर्कपूर्ण सेटों या समुच्चयों से ही विज्ञान की संरचना का निर्माण सम्भव होता है। किन्तु उनका महत्त्व उनकी विषयवस्तु (Content) के कारण होता है। ऐसे 'लक्षण-शब्द' या निर्माण अवधारणीकरण के द्वारा ही सम्भव होता है। स्थायी विशेषताओं, लक्षणों या गुणों का संकेत देने के कारण ही, अवधारणा को 'शाश्वत वर्णनात्मक शब्द' (Universal descriptive word) कहा जाता है।

अवधारणाओं का वर्गीकरण (Classification of Concepts)

अवधारणाओं के अनेक प्रकार हैं। वे यद्यपि समानताएँ रखते हुए भी भिन्नताएँ रखती हैं। उन्हें दो आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है—(1) विश्लेषण में उपयोग, तथा (2) सिद्धांत-निर्माण में सहायता के आधार पर। इस अध्याय में उनका विश्लेषण में उपयोग के आधार पर वर्गीकरण किया जा रहा है। इस दृष्टि से ये सर्वथा पृथक् नहीं होतीं। एक आनुभविक (Empirical) अवधारणा मानकीय (Normative) सन्दर्भ में काम में लायी जा सकती है। उनका पारस्परिक सम्बन्ध तार्किक (Logical) होने के साथ-साथ आनुभविक भी हो सकता है। अवधारणाओं में व्याख्या करने की क्षमता अलग-अलग मात्रा में होती है। उनकी व्याख्यात्मक क्षमता का पता लगाने तथा इस विषय में उत्पन्न होने वाले भ्रम से बचने के लिए उनका वर्गीकरण करना तथा उनमें अन्तर स्पष्ट करना आवश्यक है। इसमें उनके परस्परव्यापी (Overlapping) होते हुए भी अनेक कठिनाइयों से बचा जा सकता है। राजविज्ञान में अनुसन्धान एवं विश्लेषण की दृष्टि से अवधारणाओं को प्रमुख पाँच वर्गों में रखा जा सकता है—

(i) आनुभविक (Empirical) अवधारणाएँ।
(ii) सम्बन्धात्मक (Relational) अवधारणाएँ।
(iii) मूल्यात्मक (Valuational) अवधारणाएँ।
(iv) आदर्श प्रकार (Ideal-type) अवधारणाएँ, तथा
(v) प्रकार्यात्मक (Functional) अवधारणाएँ।

(1) आनुभविक अवधारणाएँ (Empirical Concepts)

आनुभविक अवधारणाओं का सामान्य संवर्ग (Category) यथार्थ जगत् की वस्तुओं का अभिज्ञान कराता है। ये अवधारणाएँ अस्तित्व रखने वाली वस्तुओं का परिमाणन या मापन करने तथा गुणों को पहचानने के उपयोग में आती हैं। राजनीति के तथ्य इनसे पहचाने एवं सवर्गीकृत या वर्गीकृत किए जाते हैं। ये अवधारणाएँ ही राजनीति-विषयक विवरणों, सामान्यीकरणों तथा सिद्धान्तों की आधार होती हैं। इन्हें यथार्थ जगत् तथा राजनीति में सिद्धान्तात्मक (Theoretical) विश्लेषण के मध्य कड़ी के रूप में देखा जा सकता है।

यथार्थ जगत् मे किसी वस्तु के पृथक् (Discrete) एव एकाकी प्रत्यक्षण को 'तथ्य' (Fact) कहा गया है।[7] एक 'तथ्य' यथार्थ जगत् मे वस्तुओ के सम्बन्धो का अवलोकन या एक अवलोकित गुण (Property) हो सकता है। व्यापक अर्थो म, यथार्थ जगत के किसी भी अश को 'तथ्य' कहा जा सकता है। आनुभविक अवधारणा का विकास विशिष्ट 'निर्णा-यक' विशेषनाओ की पहचान या अभिज्ञान द्वारा विशेष तथ्यो को अकित करके किया जाता है। 'तथ्य' एव 'आनुभविक अवधारणा' के मध्य अन्तर सामान्यता (Generality) का ही होता है। आनुभाविक अवधारणाएँ, यथार्थ जगत् मे प्रक्षित तथ्यो के सगठन द्वारा सामान्य सवर्गो का निर्माण करती हैं।

ईस्टन ने 'तथ्य' (Fact) तथा 'घटना' (Event) के मध्य अन्तर माना है।[8] वह यथार्थ जगत् मे घटित होने वाली गतिविधियो को 'घटना' कहता है। उन घटनाओ के विशेष पक्षो को, जिनमे सिद्धात निर्माता की रुचि होती है, 'तथ्य' कहता है। इससे 'घटना' तथा उस घटना का विश्लेषण करते समय प्रत्यक्षण मे अन्तर स्पष्ट हो जाता है। घटना के बारे मे, तथ्यो का, सिद्धात-निर्माता द्वारा, वह जिन पक्षो या गुणो को महत्त्वपूर्ण समझता है, चयन किया जाता है। इस तरह, घटना तथा उसका वर्णन अलग-अलग हो जाता है। यह भिन्नता सिद्धान-निर्माता के अपने अभिमुखीकरण या अभिमुखन (Orientation) के कारण होती है। किसी भी वर्णन या विवरण से उस घटना के बारे मे समस्त तथ्य नही होते। विश्लेषक एव शोधक की, उस घटना का अवलोकन, तथ्यो का चयन तथा वर्णन करने मे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका (Role) होती है। इसी कारण विश्लेषको एव अनुसधानकर्त्ताओ की व्याख्याएँ भिन्न भिन्न हो जाती हैं। आनुभविक अवधारणा के विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण तथ्यो के चयन के चारो ओर घूमती है। उन्ही के आधार पर सवर्ग सगठित किए जाते हैं तथा यथार्थ जगत् का वर्णन एव व्याख्या की जाती है।

सवर्गो अथवा घटनावर्गो के विकास के लिये यह आवश्यक है कि तथ्यो को, अस्पष्टता तथा अनेकार्थकता से बचते हुए, सगठित किया जाये और उसमे सभी आनुभविक दशाएँ शामिल कर ली जायें। अवधारणा के आधार पर पृथक् की जाने वाली सभी वस्तुएँ या विशेषताएँ किसी एक सवर्ग मे समायोजित (Fit) हो जानी चाहिए। यह आवश्यक नही है कि सभी वस्तुओ या विशेषताओ को जान लिया जाये। प्रत्येक तथ्य युक्तिसगत सवर्ग मे रखा जाना चाहिए। किसी निर्दिष्ट सवर्ग मे न आने वाले तथ्यो के लिए अलग अवशिष्ट सवर्ग बनाया जाना चाहिए। 'नर' और 'नारी' इन दो सवर्गो के अन्तर्गत न आने वाले व्यक्तियो के लिए तीसरा अवशिष्ट सवर्ग होना चाहिए।

आनुभविक अवधारणाएँ प्रत्येक तथ्य को एक ही वर्ग या सवर्ग (Category) मे रखती हैं। सवर्ग परस्पर एकान्तिक या अनन्य (Exclusive) होने चाहिए। किसी एक तथ्य को दो या अधिक सवर्गो मे नही रखा जा सकता। यदि वह तथ्य दो सवर्गो मे रखा जा सकता है, तो इसका अर्थ यह होगा कि वर्गीकरण सूक्ष्म एव परिशुद्ध नही है। सवर्गीकरण विश्लेषक की ही कृति होती है। अतएव उसके द्वारा वर्णित अवधारणाएँ सर्वान्तर्भावी तथा परस्पर अनन्य होनी चाहिए। किन्तु ऐसा करते समय कतिपय समस्याएँ उठ खडी होती हैं। उनका सक्षिप्त विवेचन किया जाना चाहिए।

क) 'न्यूनीकरण' एवं 'समग्रतावाद' (Reduction and Holism)

आनुभविक अवधारणाओ के निर्माण मे न्यूनीकरण (Reduction) तथा समग्रता

(Holism) की विरोधी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। तथ्यों के समुचित संगठन के लिये प्राथमिक (Primary) अवधारणाओं—व्यक्तियों, समूहों, राष्ट्रों आदि का चयन होना आवश्यक है। फिर यह स्पष्ट निर्णय करना होगा कि उसकी इकाई—व्यक्ति, समूह या राष्ट्र, को प्रत्यक्ष अवलोकन या प्रत्यक्षण के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से ज्ञात नहीं किया जा सकता। वास्तव में यह निर्णय लेना बड़ा कठिन कार्य है कि ऐसी किस मूलभूत इकाई को गवेषणा का विषय बनाया जावे कि उसके अध्ययन में समस्त अध्ययन समाहित हो जाय। यदि 'समूह' को लेते हैं, तो 'व्यक्ति' रह जाता है। स्वयं 'व्यक्ति' के भी अनेक पक्ष हैं। यदि शोधक या विश्लेषक 'व्यक्ति' से 'व्यवहार' पर तथा 'व्यवहार' से 'व्यक्तिगत' विशेषताओं' पर चला जाता है, तो उसके राजविज्ञान से हटकर अन्य विषयों की गोद में चले जाने का खतरा रहता है।

इस समस्या का समाधान स्वयं सिद्धांत निर्माता की रुचि पर निर्भर करता है। उसकी अवधारणाएँ उसके शोध तथा सिद्धांत सम्बन्धी रुचियों के अनुसार होनी चाहिए। उसे शोध-समस्या के समाधान के लिए सदैव सर्वाधिक लाभदायक आनुभाविक अवधारणाओं का उपयोग करना चाहिए। यदि सामान्यीकरणों (Generalizations) का सत्यापन उसके द्वारा चयनित विश्लेषण-इकाई द्वारा हो सकता है तो उसे अन्य इकाइयों तक जाकर न्यूनीकरण (Reduction) करने की आवश्यकता नहीं है। उनके लिये बाद में रूपान्तरण नियमों' का विकास किया जा सकता है। अवधारणा का मूल्य विश्लेषण या अनुसंधान में उसकी उपयोगिता की मात्रा के अनुसार किया जाता है।

न्यूनीकरण प्रायः मनोविज्ञान की ओर धकेलता है। समग्रवाद (Holism) समाज शास्त्र की ओर ले जाता है। समग्रवाद के अनुसार समूह या समाज को उनके अंगभूत घटकों के अध्ययन द्वारा नहीं समझा जा सकता, क्योंकि समग्र (Whole) सदैव उसके अंगों के जोड़ से ज्यादा होता है।[1] इस दावे को समग्रवाद के नाम से पुकारा जाता है। किन्तु समूह का विश्लेषण समूह के अन्तर्गत व्यक्तियों के अध्ययन का उन्मूलन नहीं करता। यद्यपि समग्रतावाद के अनुसार अंगभूत (Constituent) घटकों के मिलने से समूह में उद्गामी (Emergent) गुण आ जाते हैं, जिन्हें सम्पूर्ण इकाई के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। किन्तु रूपान्तरण-नियमों का विकास करके इन समूहगत विशेषताओं को व्यक्ति तक, जैसे, अन्तःक्रिया (Interaction), मानक (Norm) आदि के द्वारा ले जाया जा सकता है। निष्कर्ष यह है कि सिद्धांत निर्माता को सदैव अपनी प्राथमिक इकाई को चुनते समय परिणाम की दृष्टि से सोचना चाहिए। यदि वह रूपान्तरण-नियमों का विकास कर लेता है तो, चाहे वह न्यूनीकरण की ओर जाय, चाहे समग्रतावाद की ओर, उसके द्वारा व्याख्या और पूर्वकथन (Prediction) का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।[2]

(ख) 'सामान्यता' एवं 'परिशुद्धता' (Generality and Precision)

तथ्यों के चयन में अवधारणा की निर्णायक (Defining) विशेषता के अन्तर्गत आने वाली घटनाओं के विस्तार (Breadth or Scope) का प्रश्न उठता है। विश्लेषण के लिए कभी सामान्य (General) और कभी संकुचित (Narrow) अवधारणाओं का उपयोग किया जाता है। सामान्य अवधारणा अधिक अन्तर्भावी (Inclusive) होती है और उसके क्षेत्र में उप प्रकार भी आ जाते हैं। उसका उद्देश्य परिशुद्धता का त्याग किये बिना अपने में अधिकाधिक घटनाओं (Phenomena) का समावेश करना होता है। सामान्यता

का नाम, यथार्थ जगत् के विषय में, अनेक घटनाओं को जोड़ने वाले सिद्धान्त का विकास करते समय होता है। प्राय ऐसी अन्तर्भावी सामान्य अवधारणा को 'अमूर्त' (Abstract) कह दिया जाता है, क्योंकि उसका प्रत्यक्षण से घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं होता। किन्तु अमूर्तिकरण सभी अवधारणाओं में होना है, क्योंकि सिद्धान्त निर्माता या शोधक उनको घटनाओं के विशिष्ट पक्षों या तथ्यों को लेकर विकसित करता है। इसमें परिशुद्धता की हानि नहीं होती। साथ ही अमूर्तिकरण का अर्थ अस्पष्ट (Vague) भी होना नहीं है।

अवधारणाएँ वस्तुओं या घटनाओं के प्रकारों का प्रतिनिधित्व करती हैं। अवधारणा में निहित प्रत्यक्षणों का विस्तार उसकी निर्णायक विशेषताओं की परिशुद्धता को प्रभावित नहीं करता। सामान्यता के साथ अस्पष्टता तथा अनेकार्थकता अनिवार्य रूप से जुड़े हुए नहीं हैं। वास्तव में देखा जाय तो सभी समुचित ढंग से परिभाषित आनुभविक अवधारणा स्वकीय या अपनी सामान्यता की दृष्टि से शाश्वत (Universal) होती हैं। वे सभी निर्णायक विशेषताओं से युक्त वस्तुओं पर (अन्य वस्तुओं पर नहीं), सदैव लागू होगी। 'मानव' 'हिन्दू' की अपेक्षा अधिक अमूर्त तथा अधिक सामान्य अवधारणा है, किन्तु इसका अर्थ उसमें परिशुद्धता का अभाव नहीं है। उनके मध्य अन्तर व्यापकता (Compreuhensive) सम्बन्धी है।

अमूर्तिकरण (Abstraction) को चिन्तन, कल्पना या मानकीयता से नहीं जोड़ा जाना चाहिए। 'सन्तुलन' (Equilibrium) अथवा 'सार्वजनिक हित' (Public interest) जैसी अवधारणाएँ अमूर्त होने के कारण कमजोर हैं, अपितु वे इस कारण कमजोर हैं कि उन्हें परिशुद्ध 'निर्णायक विशेषताएँ' प्रदान नहीं की गयी हैं। अवधारणा का क्षेत्र (जिसमें उसका विस्तार शामिल है), उस अवधारणा का उपयोग करने वाले सामान्यीकरणों के सम्बन्ध की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। फिर भी, सर्वाधिक अमूर्त अवधारणाएँ सर्वाधिक परिशुद्ध (Precise) हो सकती हैं। सामान्यता (Generality) तथा परिशुद्धता (Precision) के मध्य विरोध होना आवश्यक नहीं है।

(2) सम्बन्धात्मक अवधारणाएँ (Relational Concepts)

यह उन अवधारणाओं का सामान्य सवर्ग है जो यह बताती हैं कि यथार्थ जगत की वस्तुओं के प्रकारों को बताने वाली अवधारणाएँ या प्रतीक कैसे दूसरे को जोड़ती हैं। सम्बन्धात्मक अवधारणाएँ वस्तुओं के मध्य सम्बन्धों का संकेत देती हैं। ये वस्तुओं, घटनाओं या तथ्यों के वर्गीकरण को आगे बढ़ाने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं। ये परिशुद्धतापूर्वक यह बताती हैं कि विशिष्ट सवर्गों में रखी हुई वस्तुएँ कैसे एक दूसरे के साथ जुड़ी हुई हैं? ये तर्क—शब्द होती हैं, या तुलनात्मक परिमाणन या गुणात्मक विशेषताओं को बताती हैं। एक बार आनुभविक अवधारणाओं का समुचित निर्माण कर लिये जाने पर भी, परिभाषित घटनाओं के मध्य सम्बन्धों को समुचित ढंग से, सम्बन्धात्मक अवधारणाओं के द्वारा वर्णन करना कठिन होता है। सम्बन्ध औपचारिक एवं अनौपचारिक हो सकते हैं जैसा 1. 'शक्ति सम्बन्धों में होता है।[10] उस समय यथार्थ जगत् के सम्बन्धों का वर्णन करना कठिन हो जाता है। विश्लेषण और शोध में यही औपचारिक सम्बन्धों का वर्णन तर्क—शब्दों या गणितीय संकेतों के द्वारा किया जाता है।

सम्बन्धात्मक अवधारणाएँ तार्किक अथवा अनुभवात्मक हो सकती हैं। तार्किक अवधारणाएँ मात्रिकीय अथवा गणितीय हो सकती हैं। ये साम्य, जोड़, भाग आदि उपयोग

में आती हैं। इनका उपयोग प्रत्यक्षणों के सत्य या असत्य होने पर निर्भर नहीं होता। तार्किक सम्बन्धों को, आनुभविक अवधारणाओं द्वारा आनुभविक बनाया जाता है। इनके द्वारा वास्तविक घटनाओं के मध्य नियमपूर्ण (Lawful) सम्बन्धों का वर्णन किया जाता है। राजविज्ञान में ऐसे सम्बन्ध प्राय शाश्वत नहीं होते। राजविज्ञान में सम्बन्ध अधिकांशतः सम्भावनात्मक होते हैं। 100 में से 75 बार घटित होने वाले सम्भाव्यता-सम्बन्धों को ·75 या 3/4 के रूप में अंकन किया जायेगा। शाश्वत, पूर्ण या एक-के-बराबर-एक सम्बन्धों को 1·0 से, तथा उनके पूर्ण अभाव को 0 0 से अंकित किया जायेगा। सम्भावनात्मक सम्बन्ध 1 0 से प्रारम्भ होकर असम्भावना 0 0 तक जायेंगे। वास्तविक बारम्बारताओं की सम्पूर्ण बारम्बारताओं से तुलना की जायेगी।

किन्तु प्रवृत्ति-सम्बन्धों (Tendency relationship) में दो या दो से अधिक परिवर्त्य चर (Variables) एक साथ घटित होते हैं। उस समय, उनके सम्भावनात्मक सम्बन्ध भ्रमोत्पादक हो जाते हैं। उनके सम्बन्धों के बारे में दावों के दृढ़तापूर्वक वर्णन नहीं किये जा सकते, क्योंकि सूचनाएँ सीमित हो जाती हैं। वर्तमान समय में राजविज्ञान की यही स्थिति है।

सम्बन्धात्मक अवधारणाओं के विषय में दो बातों का ध्यान रखना चाहिए— (क) यदि घटनाओं या अवधारणाओं का निर्वचन परिशुद्ध (Precise) है तो उनके औपचारिक अथवा तार्किक अर्थों को सुरक्षित रखा जा सकता है। उनके विश्लेषणात्मक या 'निर्णायक अर्थों' का, आनुभविक वास्तविकता के विषय में, निष्कर्ष निकालने या क्रियाशीलतापूर्ण विवरण देने में उपयोग किया जा सकता है। यदि यथार्थ जगत् के सम्बन्धों को सही प्रकार से चित्रित किया गया है, तो a + b=c को a = c - b बनाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। (ख) साथ ही, आनुभविक सम्बन्ध पूरी तरह से परिशुद्ध औपचारिक अवधारणा में समाहित होने चाहिए। अन्यथा, उनका प्रयोग अयुक्त और भ्रामक हो जायेगा। औपचारिक *सम्बन्धात्मक शब्द परिभाषित अर्थों के प्रतीक होते हैं। यदि उन्हें आनुभविक दृष्टि से* महत्त्वपूर्ण नहीं बनाया गया है, तो यथार्थ जगत् के विश्लेषण में उनका अधिक उपयोग नहीं हो सकता। सिद्धान्त व विकास में सम्बन्धात्मक अवधारणा की केन्द्रीय भूमिका होती है। उन पर पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

3 मूल्यात्मक अवधारणाएँ (Valuational Concepts)

मूल्यात्मक अवधारणाओं के भी अनेक प्रकार उपलब्ध हैं। मूल्यों की प्रकृति का वर्णन अध्याय-4 में किया जा चुका है। 'मूल्यात्मक अवधारणाएँ' उस विषयवस्तु में सम्बन्धित होती हैं, जिन्हें सामाजिक या राजनैतिक प्रसंग में कर्त्ताओं (Actors) द्वारा विशेष प्राथम्य या 'चाहिए' के रूप में विश्वास किया जाता है। इस अवधारणा का आनुभविक या मानकीय होना उसके उपयोग पर निर्भर है। मूल्य का घटना के रूप में अवलोकन 'आनुभविक' कहलाता है। मानकीय (Normative) रूप में उसे मूल्यवान या वाञ्छनीय माना जाता है। यह अन्तर उस घटना या अवधारणाओं के कारण न होकर, उस घटना के विषय में दावों (Claims) के कारण होता है। जब एक आनुभविक अवधारणा यह दावा (साक्ष्य या प्रमाण के बिना) करने लग जाती है कि किसी घटना का अस्तित्व है, या उसका अस्तित्व हो सकता है, तो उसका प्रयोग 'मानकीय' या चिन्तनात्मक (Speculative) माना जाएगा। इसी प्रकार, जब यथार्थ जगत् के मूल्यों को 'वस्तु' के रूप में देखा जायेगा,

तो उससे सम्बन्धित अवधारणा का वह उपयोग 'आनुभविक' माना जायेगा।

मानवीय अवधारणाओ का अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है। एक ही घटना को, पाठको स्वय कर्ता के द्वारा, अथवा सिद्धात निर्माता या विश्लेषक के कारण मानकीय मूल्य प्रदान किया जा सकता है। उनके मानवीय दावो का विश्लेषण करने के लिए, मूल्यात्मक अवधारणाओ के प्रयोगो को तीन वर्गों म रखा जा सकता है—

(i) मानवीय (Normative) प्रयोग,
(ii) भावात्मक (Emotive) प्रयोग, तथा
(iii) आनुभविक (Empiric l) प्रयोग।

(क) मानकीय प्रयोग (Normative Use)

जब स्वय शोधक या विश्लेषक घटना को साभिप्राय मानकीय मूल्य के रूप मे देखता है और 'क्या होना चाहिए' की स्थापना करने लग जाता है, तो उसके दावो को 'मानकीय' प्रयोग कहा जाता है। उनकी स्थिति मूल्यो के अर्थों का मानकीय मानदड स्थापित किए बिना ही सम्प्रेषण करने के कारण, व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) बन जाती है। वह निष्कर्षों के बजाय पूर्वमा यताओ पर आधारित होने के कारण चिन्तनात्मक (Speculative) हो जाती है। राजदर्शन (Political Philosophy) के सभी प्रत्यक्षण इसी प्रकार के हैं। उनका कोई 'अन्तर्वैयक्तिक सत्यापनीय' मानदड नही पाया जाता। कुछ सिद्धात निर्माता तथ्यो और मूल्यो को पृथक् करके एक शाश्वत मूल्यात्मक मानदड की खोज करने का प्रयास करते है, किन्तु वैज्ञानिक पद्धति ऐसे किसी भी स्थापित मानदड के प्रति प्रतिबद्ध होकर नही चलती।[11]

(ख) भावात्मक प्रयोग (Emotive Use)

इस स्थिति को ए जे ऐय्यर मे देखा जा सकता है।[12] उसके अनुसार, जब हम 'क अच्छा है' कहते हैं, तब हम 'क' के बारे मे कुछ नही कह रहे हैं। उसमे कहने वाला व्यक्ति केवल यह कह रहा है कि 'क' को मूल्य प्रदान किया गया है। इससे 'क' के बजाय, कहने वाले व्यक्ति की मूल्यात्मक स्थिति का आभास होता है और उसकी स्थिति को 'क ! ! !' के रूप म अभिव्यक्त किया जा सकता है। 'क' की दृष्टि से कोई निर्देशन (Prescription) या मूल्याकन नहीं है। 'अच्छा' शब्द वक्ता की भावना को बताता है। इसका अर्थ यह है कि ऐसी भावात्मक स्थितियाँ बनाने वाली अवधारणाओ का आनुभविक विश्लेषण किया जा सकता है।

(ग) आनुभविक प्रयोग (Empirical Use)

राजनीति के वैज्ञानिक अध्ययन मे मूल्यो का आनुभविक रूप मे भी प्रयोग किया जाता है। मूल्यो का भावात्मक (Emotive) अनुक्रिया के रूप म प्रयोग करके घटनाओ के अर्थ तथा उनके व्यवहार पर उनके प्रभाव का वर्णन एव व्याख्या की जाती है। मूल्यो का अधिगम या सीखना (Learning) समाजीकरण (Socialisation) की प्रक्रिया माना जा सकता है। इसम मूल्यों क प्रति लगाव तथा कारणो का अन्वेषण किया जा सकता है। व्यक्तिनिष्ठ विश्वासो का अभिवृत्तियाँ (Attitudes) मानकर व्यवस्थित आनुभविक अध्ययन करना सम्भव है। इनके विषय म अध्याय-चार म विस्तारपूर्वक बताया जा चुका है।

अन्तर्सम्बन्ध (Inter-relationship)

राजनीति के आनुभविक ज्ञान का मूल्यों के प्रयोगों से अन्तर्सम्बन्ध होता है। मानवीय मानदंड मूल्यांकन के लिए आनुभविक सम्भावना से युक्त होना चाहिए। तथ्यात्मक ज्ञान उसके विपरीत नहीं जा सकता। मूल्यात्मक अवधारणाओं का भावात्मक अर्थ भी आनुभविक ज्ञान अथवा अधिक भावात्मक मूल्यों से प्रभावित होता है। सभी भावात्मक लगावों की मूल्यों के आनुभविक सिद्धान्तों से व्याख्या की जा सकती है। इस तरह राजदार्शनिक से राजसिद्धान्ती (Political theorist) भिन्न किया जा सकता है। दोनों के व्यक्तिकार्य (Roles) पूर्णतः अलग-अलग नहीं हैं और इन्हें एक ही व्यक्ति के द्वारा सम्पन्न भी किया जा सकता है। यदि सिद्धान्ती मानो अपने भावात्मक लगाव के कारण भी विषयों का चयन करता है, तो भी उसके अनुभवात्मक निष्कर्षों का, उनसे प्रभावित हुए बिना, प्रामाणिकता के मानदंडों के आधार पर, विश्लेषण किया जा सकता है। वैज्ञानिक विश्लेषण के ये मानदण्ड, मूल्यात्मक लगावों के व्यक्तिनिष्ठ पक्षों का, अन्तर्संचारणीय ज्ञान के लिए वस्तुनिष्ठ विश्लेषण कर सकते हैं। इनके लिए आदर्शात्मक तथा प्रकार्यात्मक अवधारणाएँ अधिक उपयोगी हैं।

4 'आदर्श प्रकार' अवधारणाएँ ('Ideal Type' Concepts)

'आदर्श प्रकार' अवधारणाएँ (Ideal-type concepts) आनुभविक एवं मानकीय अवधारणाओं के बीच में अवस्थित होती हैं। प्लेटो के प्रत्ययों (*Ideas*) के पश्चात् इनका सर्वाधिक वैज्ञानिक रूप हमें मैक्स वेबर की अवधारणाओं में देखने को मिलता है।[1] आदर्श-प्रकार अवधारणाएँ अवधारणाओं का एक सवर्ग है। उनकी विषयवस्तु 'यदि प्रदिष्ट (Given) मानक अन्य चरों से परिवर्तित नहीं हो, तो एक प्रकार का व्यवहार या क्रियाएँ हैं। किसी घटना की 'आदर्श-प्रकार' अवधारणा के अनुसार, विशेष प्रकार के निरन्तर रहने वाले मानवों के अन्तर्गत किये जाने वाले, व्यक्ति या समूह के सम्भावित व्यवहार का विश्लेषण किया जाता है। यह विश्लेषण 'मानो कि' (As if) प्रकार का है। वास्तव में, यह आनुभविक या मानकीय अवधारणा होने के स्थान पर, विश्लेषण का एक उपकरण है। यह प्रायः निर्दिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कर्ताओं में पूर्णतः बौद्धिक व्यवहार आरोपित करता है। इसका वास्तविक रूप में पाये जाने वाले व्यवहार के साथ तथा उसका विश्लेषण किया जा सकता है। उस विशुद्ध आदर्शात्मक प्रकार के अनुसार विश्लेषण को सरचित किया जा सकता है। इससे 'आदर्श' प्रकार से परे हटने के कारकों की खोज की जा सकती है।

इस अवधारणा की दुर्बलता उसकी 'बौद्धिकता' है। यह अवधारणा अन्तर्प्रेक्षात्मक अर्थ लिए हुए है।[13] 'बौद्धिकता' की आनुभविक व्याख्या करने के प्रयास राजविज्ञान में किए गए हैं।[14] इसमें निर्दिष्ट मानकों के अधिकतमीकरण के लिए निष्पादित की जाने वाली गतिविधियाँ शामिल की जा सकती हैं। यदि इसे मानकीय न बनाया जाये, तो 'आदर्श' अवधारणा, व्यवहार और अभिप्रेरणा का व्यापक बोध कराने के लिए, आनुभविक विश्लेषण के उपकरण के रूप में ग्रहण की जा सकती है। यह उपकरण राजविज्ञानी एवं कर्ता दोनों की दृष्टियों से घटनाओं के विश्लेषण में उपयोगी हो सकता है। इन्हें 'आदर्श' इसलिए कहा जाता है कि वे कर्त्ता द्वारा इच्छित मानकों की उपलब्धि के लिए किए जाने वाले

आदर्श व्यवहार से सम्बंधित होते हैं। ये मानवोन्मुख व्यवहार का विश्लेषण करने के लिए साधन-स्वरूप हैं। इन्हें पूर्णत आनुभविक नही माना जा सकता, क्योंकि ये सिद्धात-निर्माता की अपनी विरचनाएँ (Constructs) या प्ररूप (Model) हैं। इनकी प्रकृति मूल्यात्मक अवधारणाओं से मिलती जुलती है।

5 प्रकार्यात्मक अवधारणाएँ (Functional Concepts)

ये अवधारणाएँ घटनाओ की विशेषताओ, गुणो या प्रभावो को 'प्रकार्यों Functions) के रूप में देखती हैं। राजविज्ञानियो एव राजसमाजशास्त्रियो ने इनके अनेक उपप्रकारो का पता लगाया है।[15] यद्यपि 'उपयोग' (Use) या 'प्रयोजन' शब्द प्रकार्य-अवधारणा क काफी निकट है, किन्तु उनम निहित मानवीय धारणाओ के कारण इनका प्रयोग नही किया जाता। 'प्रकार्य' को विशेष भाषा-शब्द के रूप म विकसित किया गया है और उसका अनेक विद्वानों ने प्रयोग किया है।[16] इसे घटनाओ की निर्णायक विशेषताओ से विकसित किया जाता है। इनका विवेचन द्वितीय अध्याय म कर दिया गया है। प्रकार्यात्मक अवधारणाओ का प्रयोग शोध एव सिद्धात का मध्यवर्ती कदम माना जाना चाहिए। मर्टन की 'मध्य स्तरीय सिद्धात' की धारणा इसी से जुडी हुई है।

शोध के क्षेत्र मे, प्रकार्यात्मक अवधारणाओ के अनेक सामान्य उपयोग हैं[17] *(1)* ये शोध प्रारम्भ करने के लिए, सश्लिष्ट अन्तर्सम्बन्धो के अध्ययन मे अत्यन्त उपयोगी रहती हैं। (2) श्रेष्ठतम दशाओ मे, प्रकार्यों को, यदि अधिक औपचारिक सम्बन्ध ज्ञात किए जा सकें, तो कारणात्मक (Casual) सम्बन्धो के रूप मे पहचाने जा सकते हैं। ये अधिक परि-*शुद्ध विश्लेषण के लिए मार्ग दर्शन कर सकती हैं। (3) सामान्य शब्दो म परिभाषित किये* जाने पर, समान या वही प्रकार्य करने वाली वस्तुओ या घटनाओ की तुलना की जा सकती है। (4) तुलनात्मक विश्लेषण की आरम्भिक अवस्था मे प्रकार्यात्मक अवधारणाएँ बडी उपयोगी रहती हैं। इनके सहारे द्वि-दलीय, बहु-दलीय या एक-दलीय राजव्यवस्थाओ के प्रकार्यों की तुलना की जा सकती है। (5) जब कारणात्मक सामान्यीकरणो का प्रयोग करने के लिए पर्याप्त सूचनाएँ उपलब्ध नहीं होती, उस अवस्था मे, प्रकार्यों का विश्लेषण, सामान्य सिद्धात के विकास म प्रथम चरण का काम देता है। (6) कुछ विषयो म, जैसे, *नागरिकता प्रशिक्षण मे, प्रकार्यात्मक सूचनाएँ पर्याप्त मानी जा सकती हैं तथा और अधिक* सूचनाओ की आवश्यकता नही होती।

किन्तु अधिक परिष्कृत शोध मे उनका उपयोग सीमित होता है। वे परिशुद्ध शोध और सिद्धांत म उपयोग की दृष्टि से अति अस्पष्ट होती हैं। प्रकार्यात्मक अवधारणा सूचना को विद्रूप कर या तोड मरोड देती है। कभी-कभी उसे घटना के मानवीय औचित्यीकरण मे उपयोग कर लिया जाता है। प्रकार्यवाद के प्रति निष्ठा रखने वाले विश्लेषक प्रकार्य न होने पर भी उनकी 'खोज' कर बैठते हैं। एक व्यवस्था में प्रकार्यों की खोज उन्हें अन्य व्यवस्थाओ मे उन सरचनाओ की खोज करने को बाध्य कर देती है जो उन प्रकार्यों को करते हैं। प्राय प्रकार्यों को अस्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाता है। इसलिए विश्लेषण की आरम्भिक अवस्था में उनके उपयोग और सीमाओ से पूरी तरह अवगत रहने की आवश्यकता है। वैज्ञानिक-पद्धति के भीतर प्रकार्यों का नियतिवादी या पूर्वनिर्धारणवादी (Teleological) विश्लेषण किया जाना सम्भव है। इस बात की भी बहुत सम्भावना है कि विश्लेषण पूरी तरह से मानवीय हो जाये।

चरों की प्रघारणा एवं मापन (Concept of Variables and Measurement)

आनुभविक राजविज्ञान की अवधारणाओं के विषय में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि किन्हीं दो घटनाओं के मध्य एक प्रति-एक (One to-one) का सम्ब ध नहीं पाया जाता। अवधारणाओं के सबधो के विषय मे शायद ही राजविज्ञानियो के सामान्यीकरण साधारण या शाश्वत प्रस्तावनाओं के रूप म समान हो पाते हा। अधिकाश चर (Variables) या परिवर्त्य जो विश्लेषण के लिए चयनित किये जाते हैं, वे घटनाओं के सबधो के विषय म मापन प्रविधियाँ (Measurement techniques) की माँग करते हैं। इसलिए चरो की प्रकृति के विषय म विचार करना आवश्यक है।

विभिन्न मात्रा म घटित होने वाल गुणों को 'परिवर्त्य' या 'चर' कहते है।* गुण अनेक प्रकार के होते हैं, अत उनकी अध्ययन-पद्धतियाँ भी भिन्न भिन्न होती हैं। इसलिए वस्तुओं मे निहित गुणों का मापन करने के अनेक तरीके एव प्रविधियाँ हैं। अपने विश्लेषण-विषय से सबधित वस्तुओ, घटनाआ या तथ्यो मे विशेषताएँ या परिवर्त्य हात हैं। ये बदलते रहते हैं अर्थात् इनम उतार चढाव या घट-बढ होती रहती है। प्रत्यक्ष अवलोकन के मामलों म इनका निर्णय करना बड़ा सरल होता है। कि तु जटिल एव सश्लिष्ट मामलों मे चरो का निर्धारण करना कठिन होता है। किसी व्यक्ति या समूह म समाजवादी या पूँजीवादी चरो को ढूढना सरल नही होता। चर अकेले या अलग-थलग नही रहते। इनका स्वरूप बड़ा सश्लिष्ट (Synthetic) होता है। चर स्वय एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। घटना, प्रभाव या तथ्य के सन्दर्भ म चरो को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है

(i) स्वतन्त्र (Independent) चर या परिवर्त्य,

(ii) हस्तक्षेपी या मध्यवर्ती (Intervening) चर, तथा

(iii) आश्रित (Dependent) चर।

आश्रित चर मानव-व्यवहार का एक आयाम (Dimension) है जिसका स्वतन्त्र चर या चरो के सम्बन्ध के माध्यम से व्याख्या या पूर्वकथन किया जाता है। इसके विपरीत, स्वतन्त्र चर मानव-व्यवहार का वह आयाम होता है जो आश्रित चर म परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए काम म लाया जाता है। स्वतन्त्र चरा को कभी-कभी 'पूर्वकथन करने वाले' (Predictor) या 'प्रयोगात्मक' (Experimental) चर भी कहा जाता है। समय क्रम की दृष्टि से स्वतन्त्र चर, जैसे, आयु, आश्रित चरो, जैसे शिक्षा से पहले आते हैं। अनेक चर एक दूसर पर निर्भर, अन्तर्निर्भर या अन्तर्वर्ती (Interdependent or intervening) कहलाते हैं। इन्हें 'हस्तक्षेपी चर' भी कहते हैं। इन चरो म थोडा परिवर्तन होने का परिणाम दूसरे चर मे भी थोडा परिवर्तन हो जाना होता है। दूसर चर म आया हुआ परिवर्तन प्रथम चर मे आये हुए परिवर्तन को और बढ़ा देता है। जस, सामाजिक, आर्थिक

---

* "A variable is a concept, but a concept which in a given research project takes on two or more values or degrees It is a concept that varies" —Ferman and Levin

'A'variable *can be regarded as some kind of yardstick that gives* us a basis for the evaluation of the single unit of analysis"

—Galtung

प्रस्थिति मे थोडी वृद्धि नवीनतापरक प्रवृत्ति मे थोडी वृद्धि ला देती है। यह वृद्धि पुन सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति को ऊपर उठान का काम करती है। चरो का उक्त वर्गीकरण मूल रूप स स्वेच्छापूर्ण होता है।

इनके परस्पर अन्तर्सम्बन्धो के निर्धारण की समस्या के कारण 'मापन' (Measurement) की अवधारणा का बडा महत्त्व है। सही चौराहे पर पद्धतिविज्ञान (Methodology) का साख्यिकी एव गणित से सयोग होता है। मापन की दृष्टि से चरो को तीन वर्गो मे रखा जा सकता है

(क) गुणात्मक चर (Qualitative Variables)

गुणात्मक चरो (Qualitative variables) की अवधारणा को विशिष्ट गुणो या गुणो के समुच्चय द्वारा परिभाषित किया जाता है। इनका निर्धारण सीधे अवलोकन या परिचालनात्मक जाँच द्वारा किया जा सकता है। किसी वस्तु को देखकर यह सरलतापूर्वक ज्ञात किया जा सकता है कि वह उसके वाच्यार्थ (Denotation) के अन्तर्गत आती है अथवा नहीं। गुणात्मक चरो में साख्यिकीय क्रियाकौशल सीमित रहता है। अधिकाश प्रकारणाएँ (Typologies) तथा राजनीतिक अवधारणाएँ गुणात्मक भेदो पर आधारित होती है। इनके गुणो के आधार पर वस्तुओ का परिमाणन सम्भव हो जाता है। किन्तु उस सख्या से गुणो की मात्रा (Degree) का पता नही चलता।

(ख) क्रमसूचक चर (*Ordinal Variables*)

इन क्रमसूचक चरो (Ordinal variables) का उपयोग, मात्रा में प्रकट होने वाले किन्तु योगज (Additive) रीति से निर्धारणीय गुणो के सबध में किया जाता है। गुणो की निरन्तरता (Continuum) में उस गुणो की अपेक्षित मात्रा की दृष्टि से यह सभी वस्तुओ को वर्गीकृत करना सम्भव बना देती है। यदि 'क', ख' से अधिक मत प्राप्त करता है और 'ख', 'ग' से अधिक, तो उनकी क्रमसूचक स्थिति इस प्रकार होगी—
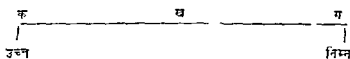
इन्हे 'अपेक्षाकृत अधिक' (Is large than >) तथा 'अपेक्षाकृत कम' (Is less than <) से अभिव्यक्त किया जाता है। क>ख, तथा ख>ग, और, क>ग होगा। ये चर सक्रमणशील होते है। इसलिए अकगणितीय विधियो से इनका परिमाणात्मक विश्लेषण उपयुक्त नही माना जाता।

(ग) अनुपात अवधारणाएं/चर (Ratio Concepts/Variables)

अनुपात अवधारणाएँ (Ratio concepts) साख्यिकीय तथा गणितीय क्रियाकौशल का अधिकतम अवसर प्रदान करती है। ये चर परिशुद्ध रीति से मापन किए जा सकने वाले गुणो की दृष्टि से परस्पर सबद्ध चरो का अभिज्ञान कराते हैं। इनके विषय में मापन की मानकीकृत इकाई उपलब्ध रहती है जैसे, मत की गणना। इनके द्वारा सुसम्बद्ध रीति से अनुक्रम स्थापित किया जा सकता है।

ये तीनों प्रकार के चर या अवधारणाएँ अर्थपूर्ण आनुभविक अवधारणाएँ विकसित करने के लिए उपयोगी मानी गई हैं। आनुभविक अवधारणा में किस प्रकार की विशेषता या गुण परिचालित किया गया है, यह निर्धारण करने के लिए निर्णायक विशेषताओं का चयन साधनस्वरूप होता है। सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए अनुपात अवधारणाएँ उपयुक्त रहती हैं। किन्तु उनका उपयोग गुणात्मक विश्लेषण में सीमित रहेगा।

राजविज्ञान में अवधारणाओं का उपयोग
(Use of Concepts in Political Science)

राजविज्ञान में अवधारणाओं के निर्माण में अनुभवपरकता को सर्वाधिक प्रमुखता दी जाती है।[18] यह कार्य तीन रीतियों से किया जाता है, प्रथम, कुछ अवधारणाओं को सीधे ही अनुभव प्रेक्षणीयों (Observables) से, जिनसे हम सुपरिचित होते हैं, जोड़ दिया जाता है, जैसे प्रत्यक्ष मतदान। द्वितीय, इसमें प्रत्यक्षत दिखाई देने वाली सदृश विशेषताएँ नहीं होती, फिर भी उन्हें प्रेक्षणीयों से सम्बद्ध कर दिया जाता है। इन्हें आगे चलकर 'परिचालनात्मक' (Operational) अवधारणाएँ कहा गया है, तथा, तृतीय, सैद्धान्तिक अवधारणाएँ होती हैं, जो न तो प्रत्यक्षत प्रेक्षणीयों से सबंधित होती हैं और न परिचालनात्मक रीति से परिभाषित की जाती है। फिर भी उन्हें आनुभविक माना जाता है।

एक आनुभविक वैज्ञानिक सिद्धांत की कतिपय अवधारणाएँ अवश्यमेव सीधे ही अथवा परिचालनात्मक रीति से प्रेक्षणीयों से सम्बद्ध होती हैं। इसलिए, उसमें, जो इन पद्धतियों से परिभाषित नहीं होती, वे भी इन अवधारणाओं से, तार्किक रूप से, सबंधित होने के कारण आनुभविक मान ली जाती हैं। इसी आधार पर ज्यामितीय 'रेखा' को स्वीकार कर लिया गया है किन्तु 'भूत-प्रेत' (Ghost) को नहीं, यद्यपि दोनों ही प्रेक्षणीयों से सम्बन्धित नहीं हैं।

अवधारणाओं में व्यवस्थात्मक (Systematic import) होने का गुण भी होना चाहिए। यह अवधारणाओं के मध्य स्थित सम्बन्धों के विषय में होता है। उसका आधार 'उपयोगिता' है। पूर्व वर्णित आनुभविकता ही अवधारणा को अवधारणा बनाती है और वही उसका आवश्यक, मूलभूत और निर्णायक (Defining) गुण है। व्यवस्थात्मक होने का गुण वांछनीय है, किन्तु आवश्यक नहीं। रसायनशास्त्र, भौतिकशास्त्र आदि की अवधारणाओं में ये दोनों ही गुण होते हैं। राजविज्ञान में हम अवधारणाओं में आनुभविकता की मांग करते हैं और व्यवस्थात्मक होने के गुण की आशा करते हैं।

राजविज्ञान में, अवधारणाओं के सिद्धान्त-निर्माण के अलावा और भी अनेक उपयोग है :

(1) वर्णन (Description)—राजनीतिक घटनाओं का वर्णन करने के लिए अवधारणाओं का उपयोग किया जाता है। हम कतिपय प्रेक्षणीय विशेषताओं का अवलोकन करते हैं और उन्हें 'शक्ति' की संज्ञा प्रदान कर देते हैं। इस प्रकार, प्रेक्षणीय घटनाओं का एक वर्ग उक्त अवधारणा के अन्तर्गत आ जाता है। ऐसी अवधारणाओं के सहारे राजनीतिक घटनाओं का वर्णन किया जाता है। वर्णन के पश्चात् ही तुलना, चयन, मापन आदि किए जाते हैं।

(2) वर्गीकरण (Classification)—कुछ अवधारणाएँ वर्गीकरण का आधार प्रदान करती हैं जिनसे राजनीतिक क्रियाओं, व्यवस्थाओं, संस्थाओं आदि को वर्गों या

सवर्गों में रखा जा सकता है। वर्गीकरण के माध्यम से जगत् की अनन्त घटनाओं को सुव्यवस्थित, सुगम तथा कुशल ढग से समझने में सहायता मिलती है। राज-विज्ञानी अपना विश्लेषण वर्गीकरण से ही आरम्भ करता है। राजविज्ञानी का वर्गीकरण सामान्य रूप से व्यवहृत वर्गीकरण की अपेक्षा अधिक परिष्कृत एव उपयोगी होता है। यदि अवधारणा को युक्तियुक्त ढग से परिभाषित किया गया है और वह विचाराधीन जनसख्या (Population) पर लागू होने योग्य है, तो वर्गीकरण सर्वांगीण (Exhaustive) तथा अनन्य (Exclusive) होगा।

(3) तुलना (Comparison)—वर्गीकरण-अवधारणाओं का अगला कदम तुलना या अवधारणाओं का सुव्यवस्थाकरण (Ordering) होता है। तुलनात्मक अवधारणा एक अधिक सश्लिष्ट तथा लाभदायक प्रकार की वर्गीकरण-अवधारणा है। इसमें जनसख्या के सदस्यों का चयन किया जाता है और उन्हें वर्गों म रखा जाता है। ऐसा इस ढग से किया जाता है कि वर्ग न्यूनाधिक रूप से एक विशेषता का प्रति-निधित्व करें। सदस्य उस विशेषता मे क्रम या स्तर के अनुसार रखे जाते हैं। प्रत्येक स्थिति म, केवल वर्गीकरण से तुलना अधिक लाभप्रद होती है। अधिक परिशुद्ध तथा सुव्यक्त वर्णन राजनीति के अधिक परिष्कृत सामान्यीकरणों तथा सिद्धांतो का विकास करते हैं। वर्गीकरणात्मक अवधारणाएँ यदि यह बताती हैं कि लोकतन्त्रात्मक राजव्यवस्थाएँ अस्थायित्वपूर्ण हो जाती हैं तो उन्हीं घटनाओं का विश्लेषण करने पर तुलनात्मक अवधारणाएँ यह सामान्यीकरण प्रदान कर सकती हैं कि "यदि कोई राष्ट्र अधिक लोकतन्त्रात्मक है, तो वह अधिक अस्थायित्वपूर्ण होगा।"

(4) परिमाणन (Quantification)—जनसख्या को जब तुलनात्मक अवधारणाओं के आधार पर एक सुव्यवस्था (Order) प्रदान कर दी जाती है, तो उसे गणितीय विशेषताएँ देने का भी अवसर आता है। जब एक नेता 'क' दूसरे नेता 'ख' से अधिक शक्तिशाली कहा जाता है, तब हम यह जानना चाहते हैं कि 'क' 'ख' से कितना अधिक शक्तिशाली है? इस परिमाणात्मक अवधारणा मे कितने अधिक' (How much more) का प्रश्न सामने आता है। यह अवधारणाओं के विकास में अधिक विश्वसनीय ज्ञान की माँग करता है।[18] किन्तु राजविज्ञान मे ऐसी अव धारणाएँ सीमित मात्रा मे ही उपलब्ध हैं।

सन्दर्भ

1 Pauline V. Young, Scientific Social Survey and Research, New Delhi, Prentice-Hall of India, Indian edition, 1975, pp 9–11 and Johan Galtung, Theory and Methods of Social Research, London, George Allen & Unwin Ltd, 1967, pp 9 & 27

2 W. J. Goode and P K. Hatt, Methods in Social Research, New York, Mc-Graw Hill Book Co, 1952, p 8

Emile Durkheim, The Rules of Sociological Method, New York, The Free Press, 1950, p 142.
G D Mitchell, A Dictionary of Sociology, London, 1968, P 37.
Carl G Hempel, 'Fundamentals of Concept Formation in Empirical Science', International Encyclopaedia of United Science, ed., Otto Neurath, Rudolf Carnap and Charles Morris, Chicago, University of Chicago Press, 1952, No 7, pp. 39–55.
Alan C. Issak, Scope and Methods of Political Science, New York, The Dorsey Press, 1969, p. 61; Russell L Ackoff et al, Scientific Method, New York, John Willy & Sons, 1962, pp 1–4
देखिए, पीछे, पृ. 3–4.
Easton, The Political System : An Inquiry into the State of Political Science, op. cit, pp. 52–55.
W.G Runciman, Social Science and Political Theory, Cambridge Cambridge University Press, 1965, pp 6–8.
वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, वही, पृ. 397–411.
Harold D. Lasswell and Abraham Kaplan, Power and Society : A Framework for Political Inquiry, New Haven, Yale University Press, 1950, p xi, Arnold Arecht, Political Theoy—The Fundations of Twentieth Century Political Thought, op cit, Chap. III.
Carl C Hempel, Aspects of Scientific Explanation and Other Essays in the Philosophy of Science, New York, Free Press, 1965, pp 155–71 ; and Ernest Nagel, The Structure of Science Problem in the Logic of Scientific Explanation, New York, Harcourt Brace and World, 1961, pp 31–45, H W Smith, Strategies of Social Research—The Methodological Imagination, New Jersey, Englewood Cliffs, Prentice-Hall, 1975, pp 21–34
ग्रान एव वर्मा, प्रमामनिक विचारधाराएँ—भाग—1, जयपुर, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1974, पृ 197–206
Anthony Downs, An Economic Theory of Democracy, New York, Harper and Brothers, 1957 : and Inside Bureaucracy Boston, Little, Brown and Co, 1967
वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, वही, पृ 243–57, समकालीन राजनीतिक चिन्तन एव विश्लेषण, दिल्ली, मैकमिलन, 1976, पृ 4 9-41.

16. Kaplan, op. cit., pp 363–69; Hempel, op. cit., pp. 297–303: and Nagel, op. cit, pp 401–21.
17. George J Graham, Methodological Foundation for Political Analysis, Toronto, Xerox College Publishing, 1971, pp 81–82.
18. Hayward R Alker, Jr. Mathematics and Politics, New York, Mcmillan Company, 1965

□□□

अध्याय 6

सिद्धान्त-निर्माण

(Theory-Building)

राजनीतिविज्ञान में सिद्धांत निर्माण (Theory-building) के प्रयास में चार प्रमुख क्रियाएँ होती हैं—( ) तथ्यों एवं आधार-सामग्री का आकलन तथा अवधारणाओं का निर्माण, (2) आनुभविक अवधारणाओं का व्याख्याकरण (Explication), (3) सामान्यीकरण (Generaliza ion) तथा (4) सामान्यीकरणों के मध्य अन्तर्स्थापन अर्थात् सिद्धांत-सृजन (Construction of theory)। तथ्यों एवं अवधारणाओं का विवेचन पिछले अध्यायों में किया जा चुका है। तथ्यों, आँकड़ों, आधार-सामग्री आदि के संग्रह, प्राप्ति, तुलना, सारणीयन आदि की विशेष तकनीकी प्रविधियाँ एवं उपकरण (Techniques and tools) होते हैं। उनका विवेचन अगले अध्यायों में किया जायेगा। यहाँ सिद्धांत-निर्माण की शेष तीन प्रमुख क्रियाओं को प्रस्तुत किया जा रहा है।

आनुभविक अवधारणाओं का प्रयोग : व्याख्याकरण

(Use of Empirical Concepts · Explication)

राजविज्ञान में प्रयुक्त आनुभविक अवधारणाएँ विषयवस्तु (Contents) या राजनीति से सम्बन्धित होती हैं। इनका विश्लेषण (Analysis), शोध (Research) तथा सिद्धांत-निर्माण (*Theory-building*) में *प्रयोग किया जाता है। यह प्रयोग 'व्याख्याकरण' या* 'विस्तारण' (Explication) की प्रक्रिया द्वारा किया जाता है। 'व्याख्याकरण' आनुभविक अवधारणाओं के अर्थ का विस्तार करने को कहते हैं। अर्थ-विस्तारण या व्याख्याकरण से यह पता चलता है कि अवधारणाओं का उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है। इसे 'परिमापाकरण' भी कहा जाता है।

अवधारणाओं के अर्थों के व्याख्याकरण में, एक शब्द के अर्थ का इस प्रकार प्रसार किया जाता है कि उसे, *उसके सिद्धांत-सम्बन्धी सन्दर्भ के भीतर रखते हुए या उससे जोड़ते* हुए, उस शब्द की संगति (Relevance) स्पष्ट होती हो। साथ ही साथ, उस शब्द की परिभाषा अधिक परिशुद्ध और यथातथ्य हो जाती हो।[1] अवधारणा के अर्थ के विस्तारण की चार विशिष्ट अवस्थाएँ मानी गई हैं—

प्रथम अवस्था में, सामान्य एवं विशिष्ट भाषा के प्रयोग म स्थापित रूढ़िगत या परम्परागत अर्थ को ढूँढ़ा जाता है। इससे उस शब्द के अस्पष्ट तथा अनेकार्थ स्वरूपों का पता चलता है।

द्वितीय अवस्था में, उन सामान्य भाषा-प्रयोगों की सुव्यवस्थित ढंग से छान-बीन की जाती है, ताकि वास्तविक सामान्य उपयोगों तथा परस्परव्यापी (Overlapping) उपयोगों पर ध्यान केन्द्रित किया जा सके। यह कार्य अवधारणा या शब्द के अर्थों का पुनर्निर्माण

करने के लिए किया जाता है। इसमे व्याख्याकार विश्लेषणात्मक प्रविधियों तथा निजी अन्तर्प्रज्ञा का प्रयोग करता है।

तृतीय अवस्था में, अवधारणा का एक नया निर्माण सामने आता है, जो पुराने अर्थ को लिए रहते हुए भी, परिशुद्ध (Precise) अवधारणा के मानदण्डो पर खरा उतरता है। व्याख्याकरण एक गम्भीर शाब्दिक या नामरूपात्मक (Nominal) परिभाषा प्रस्तुत करने का प्रयास है, जो पूर्व प्रयोगो के आवश्यक अर्थों को नवीन विवरणो के साथ जोडता है, तथा,

चतुर्थ अवस्था मे, यह स्पष्ट हो जाता है कि व्याख्याकरण या अर्थ विस्तारण में उक्त नवीन अवधारणा ने प्रारम्भिक अवस्थाओं में निर्दिष्ट सम्बन्धो या अर्थों को पुनर्निर्माण का अवसर दिया है। साथ ही, उसने यह भी बताया है कि पहली अवधारणा के विभिन्न परिस्थितियों में अनुपयुक्त सिद्ध होने पर नवीन व्याख्याकृत अवधारणा अधिक उपयोगी रहती है।

इन चारो अवस्थाओ या चरणो को प्राप्त करना प्राय कठिन होता है। अवधारणाएँ, जो किसी विज्ञान विशेष के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है, प्राय अन्यत्र परिभाषा करने के लिए अत्यधिक कठिन हो जाती हैं। राजनीति-विज्ञान में विस्तारण के चारो चरण बडे महत्त्वपूर्ण हैं, क्योकि उसमें अनेक अवधारणाओं के व्याख्याकरण की आवश्यकता है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि परिभाषा-निर्माण की तरह, व्याख्याकरण (Explication) का विषयवस्तु के सत्य-असत्य होने से सम्बन्ध नही होता। किन्तु व्याख्याकरण की प्रक्रिया के चरणो की प्रामाणिकता का सही होना आवश्यक है। अर्थात् व्याख्याकरण में भी आनुभविक सन्दर्भ तथा सैद्धान्तिक महत्व बने रहने चाहिएँ। उसमें सुसगति (Consistency) अथवा स्वविरोधहीनता होना चाहिए। आनुभविक सन्दर्भ उसको सुपरिभाषित बनाए रखते हुए उसका अन्य घटनाओ से सम्बन्ध प्रदर्शित करता है। सैद्धांतिक सम्बद्धता या सुसगति उसे विश्लेषणात्मक सम्बन्धो की सरचना मे उपयोगी स्थान प्रदान करती है।

व्याख्याकरण को दो और मानको पर खरा उतरना चाहिए। प्रथम, उसका लक्ष्य परम्परागत अर्थ प्रयोगो के उन पक्षो को बनाए रखना होना चाहिए, जिनका बनाए रखना वाछनीय हो, तथा द्वितीय, अवधारणा के अर्थों का व्याख्याकरण अधिक व्यापक, अधिक परिशुद्ध तथा अधिक युक्त सिद्धात निर्माण की दिशा में ले जाने वाला होना चाहिए। वास्तव में, यह आशा करना अनुचित नही है कि व्याख्याकरण स्पष्टतः विशिष्ट अवधारणाओ के समुच्चय का स्पष्ट विवरण प्रस्तुत करेगा तथा उनके अन्तर्सम्बन्ध पहले से व्याख्या नही की गई वस्तुओ की व्याख्या करने में उपयोगी होंगे। विधेयात्मक या रचनात्मक व्याख्याकरण का दृष्टात कार्ल डॉयश के 'राष्ट्रवाद'[2] तथा निषेधात्मक विस्तारण का उदाहरण ग्लेन्डन शुबर्ट के 'सार्वजनिक हित'[3] सम्बन्धी अध्ययनो में पाया जाता है। राज-विज्ञान में अवधारणाओ के व्याख्याकरण के उदाहरण अधिक नही हैं। इस दिशा में प्रयास करने वाले राजविज्ञानी प्राय राजनीतिक विश्लेषण का समग्र सिद्धातात्मक विचार-बन्ध विकसित करने के जाल में फँस जाते हैं। या फिर विशिष्ट चरों को लेकर राजनीति को परिभाषित करने लग जाते हैं।

अवधारणाओ का चाहे कितने ही परिश्रम से निर्माण क्यो न किया जाये और चाहे

उनमें कितनी ही वैज्ञानिकता क्यों न हो उनका वास्तविक महत्त्व उनकी उपयोगिता पर निर्भर करता है। इसलिए राज विज्ञान में प्रयुक्त विश्लेषण, सिद्धांत-निर्माण, व्याख्या तथा पूर्वकथन में उनके वास्तविक उपयोग पर ध्यान दिया जाना चाहिए। अवधारणाओं का राजविज्ञान में तीन प्रकार से प्रयोग किया जाता है—

(i) प्रत्यक्ष एवं वास्तविक (Real) शब्दों के रूप में,

(ii) परिचालनात्मक (Operational) अवधारणाओं के रूप में, तथा

(iii) सैद्धांतिक (Theoretical) अवधारणाओं के रूप में।

इनमें से प्रत्यक्ष तथा प्रेक्षणीय विशेषताओं पर *आधारित शब्दों के निर्माण एवं* सत्यापन के विषय में कोई कठिनाई *उत्पन्न नहीं होती।* मत पत्र', 'सिपाही' आदि शब्द स्पष्ट होते हैं किन्तु *अन्य अवधारणाओं को स्पष्ट किए* जाने की आवश्यकता होती है।

परिचालनात्मक परिभाषाएं एवं अवधारणाएं
(Operational Definitions and Concepts)

अवधारणाओं का वैज्ञानिक भाषा में बड़ा महत्त्व है। किन्तु उनका वैज्ञानिक भाषा में आत्मसात् होना या कराना एक समस्या है। परन्तु उनकी उपयोगिता न्यूनाधिक मात्रा में इसी बात पर निर्भर है। प्रत्यक्षत प्रेक्षणीय वस्तुओं अथवा यथार्थता के आधार पर परिभाषा नहीं करना कठिन नहीं होता। किन्तु कठिनाई यह है कि राजनीति-विज्ञान की अधिकांश वस्तुएँ प्रेक्षणीय नहीं होती और उनके अर्थ भी सुनिश्चित एवं सुस्पष्ट नहीं होते। 'समूह', 'अनुदारवादी', 'गांधीवादी', 'प्रभावशाली नेता' आदि की परिभाषा प्रेक्षणीय वस्तुओं की विशेषताओं के आधार पर देना एक कठिन कार्य है। इसलिए ऐसी अवधारणाओं को *परिचालनात्मक (Operational) ढंग से परिभाषित करना होता है।*[*]

यद्यपि परिचालनात्मक परिभाषाकरण वैज्ञानिक अवधारणा-निर्माण की समस्याओं का समाधान करने के लिए कोई 'अल्लादीन का चिराग' नहीं है, किन्तु अब उसे वैज्ञानिक भाषा में अवधारणाओं का प्रवेश कराने के लिए एक प्रमुख पद्धति मान लिया गया है[*] इसके अनुसार विज्ञानक (Scientists) अपनी अवधारणाओं को उनके प्रेक्षणीय तत्त्वों से जोड़ते हैं। वास्तव में, यह अनुभववाद का लोचशील प्रयोग है। हम प्रत्यक्षत प्रेक्षणीय तत्त्वों से अप्रत्यक्ष अवधारणाओं का निर्माण करते हैं और पुन प्रेक्षणीय वस्तुओं तक लौट आने के लिए तैयार रहते हैं। प्राकृतिक विज्ञानों में 'पुनरावर्तिता' इस प्रक्रिया का उदाहरण है। *यदि हम 'क' को 'ख' से 'ग' कार्य करवाने में सक्षम पाते हैं, तो हम कहते हैं, कि 'क',* 'ख' के ऊपर 'शक्ति' का प्रयोग कर रहा है। इस आधार पर हम 'शक्ति' को परिभाषित करते हैं। ऐसे सभी कार्यों को 'शक्ति' के रूप में बताने को 'परिचालनात्मक परिभाषा' कहा

---

* A definition is a rule that assigns a word to a thing The rule enumerates a list of defining characteristics of a term

—Dickinson McGraw and George Watson

Operational defining relates a concept to what would be observed if certain operations are performed under specified conditions on specified objects —Ackoff and Others

जायेगा। भले ही प्रत्येक परिस्थिति मे उक्त प्रयोग का प्रेक्षण या दोहराना सम्भव न हो।
अर्थपूर्ण आनुभविक अवधारणाएँ विकसित करने के सभी प्रयास 'परिचालनात्मक परिभाषाओं' से जुड़े हुए है। ये प्रत्येक अवधारणा को 'आनुभविक सन्दर्भ' प्रदान करते हैं।
इसमे अवधारणा की परिभाषा उन दशाओं का विवरण देते हुए की जाती है, जिनका विश्लेषण करके एक घटना के अस्तित्व का प्रदर्शन सम्भव बताया जा सकता है। इस धारणा को प्रसिद्ध भौतिकशास्त्री ब्रिजमैन ने, उन तथ्यों के जिनकी विशेषताओं का प्रत्यक्षत अवलोकन सम्भव नहीं था विश्लेषण के लिए विकसित किया।[5] इस प्रक्रिया के अनुसार, आनुभविक प्रेक्षणों पर आधारित विशेषताओं की अवधारणा या परिभाषा को, किसी पद या अवधारणा से, जो प्रेक्षणीय हो, जोड दिया जाता है। परिचालनात्मक परिभाषा की दशाओं को इस प्रकार निर्दिष्ट किया जाता है कि यदि विशिष्ट परिणाम या विशेषता को देख लिया जाता है, तो उस घटना को अस्तित्वयुक्त मान लिया जाता है।

परिचालनात्मक परिभाषा म एक 'चित्तवृत्ति सम्बन्धी गुण' (Dispositional quality) का होना अत्यावश्यक है। इस गुण के अनुसार उक्त परिभाषा मे निर्दिष्ट दशाओं की पूर्ति के लिए, प्रेक्षित वस्तु या घटना मे कोई सम्भावना या प्रवृत्ति (Propensity) का अस्तित्व वर्तमान रहता है। उन दशाओं मे उस गुण, सम्भावना या प्रवृत्ति को प्रदर्शित किया जा सकता है। सभी वस्तुओं को घोलकर 'घुलनशील' मानने के बजाय उस गुण की सम्भावना ही पर्याप्त मानी जाती है। राजनीति मे 'शक्ति सचय' के गुण को विभिन्न वर्गों, समूहों आदि मे सम्भव माना जा सकता है।

परिचालनात्मक परिभाषा का दूसरा गुण उसका 'परिकल्पनात्मक विरचना' (Hypothetical construct) होना है। परिकल्पनात्मक विरचना एक ऐसी अवधारणा है जिसका प्रत्यक्ष अवलोकन नहीं किया जा सकता, किन्तु जिसका प्रयोग सामान्य सैद्धांतिक निश्चायकता (Cogency) के लिए आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, शक्ति का सीधा अवलोकन सम्भव नहीं है, केवल उसके परिणामों को ही देखा जा सकता है। यदि शक्ति की अर्थपूर्ण ढग से परिभाषा देनी है, तो उसको उन दशाओं का वर्णन करके परिभाषित करना चाहिए, जिनको पूरा करने या न करने वाले परिणामों के अन्तर के आधार पर 'शक्ति' का निर्धारण (Assessment) किया जा सके। यदि 'न' 'प' के बजाय प'₁ बन जाता है तो यह परिकल्पना की जा सकती है कि ऐसा 'श' के कारण हुआ। यदि 'प' के बजाय 'प'₁ सम्बन्धी व्याख्याएँ सभी परिस्थितियों के समान होने के कारण, बेकार सिद्ध होती है, तो ऐसी परिकल्पनात्मक विरचना प्रस्तुत करना सुगम है कि उक्त अन्तर 'श' के कारण हुआ। यद्यपि 'श' को बताना असम्भव है, किन्तु ऐसा किये बिना यह स्पष्ट करना कठिन है क्योंकि 'न' कभी 'प' और कभी 'प'₁ बन जाता है।

परिकल्पनात्मक विरचना का राजनीतिक विश्लेषण के लिए बड़ा महत्त्व है। कभी-कभी इनको व्याख्यात्मक अवधारणाएँ भी कहा जाता है। ये परिकल्पनात्मक विरचनाएँ सिद्धांतों के विकास सम्बन्धी प्रयासों मे केन्द्रीय विचारबन्ध प्रदान करती है। व्यवस्था, शक्ति, प्रभाव, सत्ता आदि अनेक अवधारणाएँ, जो कि सैद्धांतिक अभिमुखन के आधार होती हैं, कभी भी प्रत्यक्षतः अवलोकन नहीं की जाती। इन्हें परिकल्पित किया जाता है। किन्तु उन्हें प्रेक्षण-विवरणों मे स्थापित किया जाना चाहिए। परिकल्पनात्मक विरचनाओं को परिचालनात्मक अर्थ प्रदान किया जाना चाहिए।

परिचालनात्मक परिभाषा प्रस्तुत करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि सूत्र या परिभाषा के दायें भाग में शब्द की परिभाषा रहती है। उसे परिभाषित भाग (Definiens) तथा, उसके परिभाषा गुण के परिभाषण (Definiendum) कहते हैं। परिभाषा में इन अगभूत तत्त्वों के अतिरिक्त समयक्रम, परिचालनात्मक परिभाषा के सिद्धांत शब्द के साथ सम्बन्ध तथा अर्थ की प्रामाणिकता आदि का भी महत्त्व होता है।

परिचालनात्मक परिभाषा में समय के आयाम (Dimension) का बड़ा महत्त्व है। प्राय हम परिकल्पनात्मक विरचना को एक सतत गुण (Constant quality) मानने की गलती कर बैठते हैं। सामाजिक शोध में 'समय' एक महत्त्वपूर्ण कारक होता है। अभिवृत्तियाँ, शक्ति-सम्बन्ध, व्यक्ति-कार्य (Role), प्रत्यक्षण आदि बदलते रहते हैं। राजविज्ञान में अधिकांश तथ्य परिवर्तनशील होते हैं। इसलिए परिभाषा-भाग तथा परिभाषण में समय के प्रभाव को एक चर के रूप में स्थान दिया जाना चाहिए। किन्तु राजवैज्ञानिक विश्लेषण के निष्कर्ष समय-सापेक्ष नहीं होने चाहिएँ, क्योंकि परिचालन-दशाएँ बदलती रहती हैं। अन्यथा सैद्धांतिक शब्द के लिए ही वह परिचालनात्मक परिभाषा बेकार हो जायेगी। परिचालनात्मक परिभाषा भी, इसी प्रकार, स्थान-सापेक्ष या स्थान-बद्ध (Place bound) नहीं होनी चाहिए।

इसका एक उपाय यह है कि ऐसी राजनैतिक घटनाओं या परिचालनों का उपयोग किया जाय जो समय सापेक्ष नहीं हों। किन्तु इस समाधान को क्रियात्मक रूप से प्रयोग में लाना बड़ा कठिन होगा।[6] यह जानना बड़ा-दुष्कर है कि परिवर्तन अथवा घटनाओं या परिचालनों की समय-सापेक्षता के कारण हुआ है। इसी कारण परिभाषित परिचालनात्मक अवधारणाओं की प्रामाणिकता स्थापित करने में बड़ी कठिनाई उत्पन्न होती है। उन्हें मान्य सैद्धांतिक अर्थ प्रदान कर दिया जाय या उनकी प्रयोज्यता या उपयोगिता को उन विशिष्ट परिचालनों तक सीमित मान लिया जाये। परिचालनों तक उन्हें सीमित मानने पर परिभाषाएँ तकनीकी बन जाती हैं। वे सैद्धांतिक नहीं रह जातीं। इस कारण परिचालनात्मक तथा सैद्धांतिक अवधारणाओं का सम्बन्ध समझ लिया जाना चाहिए।

सैद्धान्तिक अवधारणाएँ (Theoretical Concepts)

सिद्धांतों (Theories) तथा प्ररूपों (Models) में अवधारणाओं की स्थापना और भी अधिक अप्रत्यक्ष ढंग से की जाती है। सैद्धांतिक अवधारणा एवं सैद्धांतिक व्यवस्था (Theoretical system) के भीतर की वस्तु होती है। सिद्धांत अन्तर्संबंधित अवधारणाओं के समुच्चय को कहते हैं।[7] उनमें से कुछ अवधारणाएँ प्रत्यक्ष या कुछ परिचालनात्मक रूप से परिभाषित होती हैं और शेष कुछ नहीं होती हैं। सिद्धांत में अवशिष्ट अपरिभाषित अवधारणाओं को, जो कि प्रत्यक्ष या परिचालनात्मक अवधारणाओं की तरह परिभाषित नहीं होतीं, सैद्धांतिक अवधारणाएँ (Theoretical concepts) कहते हैं। वे अपना अर्थ सिद्धांत से ही ग्रहण करती हैं। ये सिद्धांत से पृथक् हो जाने पर, शरीर से कटकर अलग हुए अंगों की तरह निरर्थक हो जाती हैं। इसके विपरीत प्रत्यक्ष तथा परिचालनात्मक अवधारणाएँ सिद्धांत से पृथक् होकर भी अर्थ ग्रहण किए हुए रहती हैं। उदाहरण के लिए, यूक्लिड की ज्यामिति में रेखा या बिन्दु अथवा राजनीति में 'विदेशी नागरिक'।

संरचना की दृष्टि से वैज्ञानिक सिद्धांत तथा गणितीय व्यवस्थाएँ समान मानी जाती हैं। किन्तु विषय-वस्तु की दृष्टि से वैज्ञानिक सिद्धांत का आनुभविक होना आवश्यक है।

उसके लिए सरचना से अधिक विषयवस्तु का महत्त्व है। राजनीति के वैज्ञानिक सिद्धात के लिए यह आवश्यक है कि उसके द्वारा प्रयुक्त विषयवस्तु की अवधारणाओ में से कुछ वास्तविक (Real) जगत् से सम्बद्ध हो। दूसरे शब्दो में, उनमे से कुछ अवधारणाएँ प्रत्यक्षत या परिचालनात्मक रूप से परिभाषित होनी चाहिए। यदि सैद्धांतिक अवधारणाओ को इन दोनों के सहारे परिभाषित नही किया गया है और यदि सिद्धात तार्किक दृष्टि से युक्तिसगत है, तो उन्हे सिद्धात के अन्तर्गत परिभाषित किया जायेगा। इस प्रकार उन्हे कुछ न कुछ मात्रा मे सिद्धान्त की अन्य अवधारणाओ के आनुभविक होने के कारण, आनुभविकता प्राप्त हो जायेगी। परिचालनात्मक अवधारणाओ का निर्माण प्रत्यक्षत प्रेक्षित गुणो के आधार पर किया जाता है। सैद्धांतिक अवधारणाओ के पास न प्रत्यक्षत प्रेक्षणीय वस्तुएँ होती हैं और न वे स्वतन्त्र होती हैं। उन्हे उनका अर्थ सिद्धान्त के अन्तर्गत अन्य अवधारणाओ तथा उनके अन्तर्सम्बन्धो से प्राप्त होना है।

सैद्धांतिक अवधारणाएँ परिचालनात्मक अवधारणाओ की तरह नही होती फिर भी उनकी आवश्यकता पडती है। सिद्धान्त का उद्देश्य व्याख्या (Explanation) करना होता है और उनका क्षेत्र (Scope) विशुद्ध आनुभविक सामान्यीकरणो की अपेक्षा व्यापक होता है। यह व्यापक क्षेत्र सैद्धांतिक अवधारणाओ के कारण बनता है। ये सैद्धांतिक अवधारणाएँ प्रत्यक्ष तथा परिचालनात्मक अवधारणाओ को जोड़ने का कार्य करती हैं। सामान्यीकरण प्रत्यक्षत ज्ञातव्य अथवा परिचालनात्मक अवधारणाओ का उपयोग करते हैं। राजविज्ञान मे सैद्धांतिक अवधारणाएँ अधिक मात्रा म उपलब्ध नही है। ये अवधारणाएँ केवल विकसित आनुभविक सिद्धातो मे ही उपलब्ध होती हैं। फिर भी कुछ उपागम एव प्रारूप सिद्धात-निर्माण की दिशा मे अवस्थित पाये जाते हैं।[8]

पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual Relationship)

'परिचालनात्मक परिभाषाओ' को परिभाषा का एक विशेष प्रकार माना जा सकता है। यदि विवरण का सत्य या वास्तविकता-भाग परिवर्तित नही किया जाता है, तो सैद्धान्तिक शब्द या अवधारणा के स्थान पर परिचालनात्मक परिभाषा के वाच्यार्थ (Denotation) को रखा जा सकता है। यदि सैद्धांतिक शब्द विषयक विवरण सही है, तो तत्सम्बन्धी परिचालनात्मक परिभाषा के वाच्यार्थ भी सही मान जायेंगे, किन्तु इसका उल्टा या विपर्यय सही नही है। परिचालनात्मक परिभाषाएँ कतिपय परिस्थितियों तक ही सीमित होती हैं और अन्य सम्बन्धित परिस्थितियो पर लागू नही होती। उन अन्य सम्बन्धित परिस्थितियो के लिए सैद्धांतिक अवधारणाएँ लागू होती हैं। वे समय सापेक्ष होने के कारण सैद्धांतिक अवधारणाओ के लिए प्रतिबन्धित या सीमित अर्थ की तरह काम देती हैं।

सिद्धान्त निर्माताओ ने अपने अभिमुखनो की विभिन्नताओ के कारण अलग अलग सैद्धान्तिक अवधारणाएँ विकसित की हैं। एक ही तथ्य या घटना के विषय म दो सिद्धात या अधिक सैद्धांतिक अवधारणाएँ हो सकती है। किन्तु परिचालनात्मक अवधारणाएँ तथा सिद्धात सर्वांगसम (Congruent) होने चाहिए तथा ये दोनो अर्थपूर्ण सैद्धांतिक अवधारणाओ के साथ उपयुक्त होने चाहिए। तब जा कर, परिचालनात्मक सिद्धान्तों का निर्माण होता है। तकनीकी,

वैज्ञानिक या विशेष भाषा को, अवधारणाओं के प्रामाणिक होने पर, सिद्धांतों में परस्पर प्रयोग किया जा सकता है। परिचालनात्मक परिभाषाएँ सैद्धान्तिक अवधारणाओं के अर्थों को एक विशेष या प्रतिबन्धित (Qualified) रीति से प्रस्तुत करती हैं। इससे सैद्धान्तिक अवधारणाओं के अर्थों तथा विभिन्न परिचालनात्मक परिभाषाओं के मध्य सम्बन्धों के स्पष्टीकरण में सहायता मिलती है। भौतिकशास्त्रियों को भी, जैसे ताप के विषय में, अनेक परिचालनात्मक परिभाषाओं के मध्य रहना पड़ता है। राजवैज्ञानिक के लिए तो यह स्वाभाविक स्थिति है। परिभाषा का एक विशिष्ट प्रकार किसी विशिष्ट शोध-परियोजना के लिए अधिक लाभकारी सिद्ध हो सकता है। सैद्धान्तिक अवधारणाओं की विभिन्न परिचालनात्मक परिभाषाओं को एक शीर्षक दिया जा सकता है। उसकी प्रामाणिकता, व्यवहार में, क्रियात्मक तुलना द्वारा देखी जाती है। प्रामाणिक सिद्ध न होने पर अवधारणाओं को नये ढंग से विकसित किया जा सकता है। प्रामाणिकता-मूल्यांकन के नये मापन बना लिये जाते हैं। लेकिन प्रामाणिकता मूल्यांकन के लिए कोई माप (Scale) अन्तिम नहीं होता। परिचालनात्मक परिभाषाएँ नामरूपात्मक या शाब्दिक (Nominal) होती हैं तथा कतिपय शोध एवं सिद्धान्त सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु निर्मित की जाती हैं।

प्रकारणाएँ (Typologies)

'प्रकारणा' (Typology) भी एक आनुभविक एवं उपयोगी अवधारणा है। उसका परिभाषाओं की उद्गमन-प्रक्रिया में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। वह सवर्गों का एक ऐसा समुच्चय है, जो एक निर्दिष्ट गुण या विशेषता के आधार पर वस्तुओं में अन्तर करता है। अवधारणाएँ समूहों या समुच्चयों में तथ्यों के लिए प्रयोग की जाती हैं। इन समूहों का, परिभाषा करके निर्माण किया जाता है। लेकिन ये सिद्धान्त न होकर 'तार्किक विरचना' (Logical Construct) मात्र होती हैं। राजविज्ञान में किसी एक अकेली अवधारणा का प्रयोग नहीं किया जाता। उसमें अवधारणाओं का समूह या समुच्चय काम आता है, जैसे, शक्ति या विधि का शासन। इसलिए इन अवधारणा-समूहों का महत्त्व बढ़ जाता है।

प्रकारणाओं का उपयोग उस समय अधिक होता है जबकि विशेषताओं के उपप्रकारों का संश्लिष्ट या मिला हुआ विभाजन करना हो। संश्लिष्ट वर्गीकरण व्यवस्थाओं को 'प्रकारणाएँ' कहा जाता है। उनमें व्यवस्थाओं तथा उनके उप प्रकारों को सर्व समावेशी तथा परस्पर पृथक् रूप से वर्गीकृत किया जाता है। उन सवर्गों में समानताएँ तथा असमानताएँ स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। एक अच्छी प्रकारणा विभिन्न प्रकारों के आनुभविक दावों के विकास को प्रस्तुत करने वाले सवर्गों से निर्मित होती है। एप्टर ने आधुनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करने के सैद्धान्तिक उद्देश्य को लेकर एक व्यापक प्रकारणा प्रस्तुत की है।[9] उसमें राजव्यवस्थाओं को सम्प्रत्यात्मक सहभाग, औचित्यपूर्णता तथा समूह स्वायत्तता के अनुसार वर्गीकृत किया गया है।

प्रकारणाओं में निहित वर्गीकरण द्वारा यदि उनके पारस्परिक सम्बन्धों को गहन ढंग से व्यक्त कर दिया जाता है, तो अन्तर्भावी सामान्यीकरणों के निर्माण के लिए अधारभूत सरचना प्राप्त हो जाती है। जिन अवधारणा सवर्गों द्वारा प्रकारणाओं की परिभाषा की जाती है उनसे ऐसे अन्तर्भावी विवरण प्राप्त किये जा सकते हैं जो सामान्यीकरणों को

जन्म दे सकते हो। इस तरह प्रवारणा सिद्धान्त तो नहीं है, किन्तु सिद्धान्त-विकास में बड़ी सहायक है।

इस तरह, एक लाभदायी प्रवारणा वर्गीकरण व्यवस्था तथा अन्य विशेषताओं द्वारा निर्दिष्ट प्रवर्गों के मध्य सम्बन्धों के बारे में उपयोगी सामान्यीकरणों को सम्भव बनाती है। किन्तु कौनसे अवधारणा-सवर्गों के आधार पर वर्गीकरण व्यवस्था बनायी जाये ? इस विषय में कोई शाश्वत रूप से लागू किये जाने वाले नियम उपलब्ध नहीं हैं। यह बहुत कुछ सयोग या अन्तर्प्रज्ञा पर आधारित है। किन्तु प्राकृतिक सवर्गों पर आधारित अनेक लाभदायक प्रवारणाएँ विकसित की गयी हैं। कुछ भी हो, प्रवारणाएँ राज-विज्ञान की वर्तमान अवस्था में बड़ी आवश्यक है, क्योंकि उनका उपयोग अवधारणा-निर्माण में सर्वाधिक आधारभूत प्रकार का मापन प्रस्तुत करता है। प्रवारणाओं से विकसित अवधारणाएँ परिमाणन योग्य गुणों की नाम रूपात्मक या शाब्दिक पहचान बताती हैं। इनसे यह निर्धारण करना सम्भव हो जाता है कि एक वर्ग में आने वाली सभी या कुछ वस्तुएँ उस वर्ग की सभी सामान्य विशेषताओं को लिये हुए हैं। प्रत्येक वर्ग से सम्बद्ध गुणात्मक मात्रा की अन्य वर्गों से तुलना की जा सकती है।

सामान्यीकरण (Generalization)

सामान्यीकरण (Generalization) का साधारण अर्थ है, वस्तुओं, घटनाओं आदि के मध्य कतिपय समानताओं या सामान्य विशेषताओं का निर्णयन। वास्तव में देखा जाये तो *अवधारणाकरण एवं वर्गीकरण* दोनों ही, एक विशेष दृष्टि से, सामान्यीकरण की प्रक्रिया पर आधारित हैं। सामान्यीकरण इनसे कुछ और ऊपर की स्थिति में होता है। यह अवधारणाओं के मध्य सम्बन्ध को अभिव्यक्त करता है। यह परिकल्पना या प्राक्कल्पना (Hypothesis) तथा विधि या नियम (Law) से भिन्न होता है। सामान्यीकरण निश्चित, स्पष्ट और सशर्त होता है। मीहान के अनुसार, सामान्यीकरण एक ऐसा प्रस्ताव या सुझाव है जो घटनाओं के दो या दो से अधिक वर्गों को इस तरह जोड़ता है कि किसी एक वर्ग में आने वाले सदस्य दूसरे वर्ग के भी सदस्य बन जाते हैं। सामान्यीकरण आगमनात्मक (Inductive) और निष्कर्षात्मक होते हैं। ये वर्णन से परे जाकर बिना देखी हुई बातें भी कहते हैं। इनके द्वारा अवधारणाओं, वर्गों आदि के अन्तर्गत आने वाली अनन्त वस्तुओं, घटनाओं आदि का कथन किया जा सकता है। इनसे उन वस्तुओं और घटनाओं का व्यक्तिगत प्रेक्षण करने में लग सकने वाले समय और श्रम की बचत तथा ज्ञान की तीव्र गति से वृद्धि होती है।[9]

वैज्ञानिक सामान्यीकरण (Scientific-Generalization) अवधारणाओं के मध्य सम्बन्धों को व्यक्त करता है। राज विज्ञान में सामान्यीकरणों का बड़ा महत्त्व है, क्योंकि वे हमें राजनैतिक घटनाओं के बारे में अधिक परिष्कृत एवं व्यापक विवरण देते हैं। द्विधात्मक वर्गीकरण के अनुसार हमारे लिए लोकतन्त्रात्मक राजव्यवस्थाओं का महत्त्व हो सकता है। उनमें भी यदि खोज लिया जाय कि इन राज व्यवस्थाओं में शिक्षा एवं आर्थिक समृद्धि का स्तर ऊँचा होता है, तो हमारा ज्ञान व्यापक हो जायेगा। जब व्यक्तिगत तथ्यों के मध्य सम्बन्ध स्थापित करके प्रतिमान (Pattern) स्थापित कर लिये जाते हैं, राजनीति का जगत् हमारे लिए अधिक अर्थपूर्ण हो जाता है। अवधारणाओं को विभिन्न बिन्दुओं पर जोड़ना बड़ा महत्त्वपूर्ण होता है। इन जोड़ बिन्दुओं को परीक्षण, पुष्टिकरण, खण्डन आदि करके

उन्हें प्रामाणिक बनाया जाता है। यही प्रक्रिया हम विज्ञान की ओर ले जाती है। उदाहरण के लिए, विभिन्न ससद-सदस्यों मे हम 'क' को 'ख' से अधिक शक्तिशाली पाते हैं। यह एक सामान्य सूचना मात्र है। किन्तु यदि हम किसी प्रतियोगितापूर्ण परिस्थिति मे, यह पाते हैं कि सर्वाधिक अभिप्रेरित व्यक्ति कम अभिप्रेरित व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रभुत्वशाली होते हैं, तो यह खोज हमारे लिए अधिक उपयोगी है। इतिहासकार एवं राजविज्ञानी मे यही मूल अन्तर होता है। राजनीति विज्ञान विषयक ज्ञान अधिक व्यवस्थित होता है। व्यवस्थित ज्ञान वास्तव मे सामान्यीकृत होता है। व्याख्या एव पूर्वकथन के लिए भी ऐसे सामान्यीकरणो अथवा सामान्य ज्ञान की आवश्यकता होती है।

सामान्यीकरणों की प्रकृति (Nature of Generalizations)

सामान्यीकरण परिकल्पना (Hypothesis) तथा नियमो (Laws) से भिन्न होते हैं। ये दोनों एक तरह से सामान्यीकरण ही हैं क्योंकि उनका स्वरूप और सरचनात्मक आवश्यकताएँ सामान्यीकरणो के समान ही होती हैं। यदि हमे प्रसग का ध्यान न रहे, तो हम 'प्रजातन्त्रात्मक राजव्यवस्थाएँ स्थायित्वपूर्ण होती हैं' को नियम अथवा परिकल्पना दोनो को कहा जा सकता है। इनका अन्तर विवरण विषयक किये जाने वाले दावे की प्रकृति से ही पता चल सकता है। परिकल्पना अवधारणाओं के मध्य सम्बन्ध के बारे मे अनुमान (Guess) है। वैज्ञानिक पद्धति के विचारनियमो के अनुसार, उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर जाँच करके, उसको स्वीकार या अस्वीकार किया जाता है। स्वीकार कर लेने पर उसे नियम (Law) कहा जाता है। नियम एक सच्ची, या सिद्ध परिकल्पना है। यह एक सुपुष्ट परिकल्पना कही जा सकती है। परन्तु राजविज्ञान मे (या किसी भी विज्ञान मे) हम 'सच्ची' या 'सत्य' जैसे शब्दो का प्रयोग नही करते। वैज्ञानिक नियम शाश्वत या अपरिवर्तनीय सम्बन्धो के परिचायक नही होते। राजविज्ञानी का ज्ञान सशर्त होना है।

एक वैज्ञानिक सामान्यीकरण अवधारणाओं के मध्य, पुष्ट या परिकल्पित आनुभविक सम्बन्धो को, एक सामान्यीकृत शर्त के रूप मे अभिव्यक्त करता है। जैसे, 'यदि एक व्यक्ति व्यापारी है, तो स्वतन्त्र दल का होगा।' सरचनात्मक दृष्टि से, सामान्यीकरणो की पहचान उसमे प्रयुक्त शर्त 'यदि ... तब ...' से होती है। इनके द्वारा अवधारणाओं के मध्य आधारभूत सम्बन्धो को अभिव्यक्त किया जाता है।[10] यद्यपि समस्त सामान्यीकरण शर्तों के रूप म या सशर्त कथनो के रूप मे अनुदित होने योग्य होते हैं, किन्तु प्रत्येक शर्तयुक्त विवरण प्रामाणिक वैज्ञानिक सामान्यीकरण नही होता। उसे और भी अन्य कई आवश्यकताओं को पूरा करना होता है। उनका अवलोकन तथा अनुभव पर आधारित होना अनिवार्य है।

सभी सामान्यीकरण मूलभूत रूप से, आनुभविक अवधारणाओं के मध्य प्रस्तावित या पुष्ट सम्बन्ध होते हैं। इस कारण सामान्यीकरण की युक्तियुक्तता अवधारणाओं की युक्तियुक्तता पर निर्भर है। एक सामान्यीकरण, जो आनुभविक मानदण्ड पर खरी उतरने वाली अवधारणाओं पर आधारित नहीं है, स्वयं आनुभविक नहीं हो सकता, "समस्त भूत-प्रेत उदार होते हैं"—यह कथन आनुभविक सामान्यीकरण नहीं हो सकता। क्योंकि 'भूत-प्रेत' की अवधारणा, जिस पर सामान्यीकरण टिका है, आनुभविक नहीं है। आनुभविक होने के लिए सामान्यीकरण का व्याकरण की दृष्टि से भी सही होना आवश्यक है।

तर्क शब्दों द्वारा, जैसे, 'और,' 'या,' 'कुछ' आदि से, जो अच्छी अवधारणाओं को संयुक्त कर देने से सामान्यीकरण में आनुभविकता नहीं आ जाती। सामान्यीकरण को प्रेषणीय बनाना तथा उसे पुष्ट या अपुष्ट किये जाने योग्य बनाना अनिवार्य है। यदि एक सामान्यीकरण को तर्क के आधार पर अपुष्ट सिद्ध करना असम्भव हो जाये तो उस सामान्यीकरण को अनुभवपरक नहीं कहा जा सकता। जैसे, "समस्त राजनैतिक शक्ति नीली होती है"—को परीक्षणीय या जांच करने योग्य नहीं माना जा सकता, भले ही इस सामान्यीकरण की अवधारणाएँ आनुभविक हैं। एक बेहूदा सामान्यीकरण आनुभविक नहीं हो सकता।

इसी प्रकार यदि परिकल्पना (Hypothesis) को, अनुभव या अवलोकन के आधार पर, स्वीकृत या अस्वीकृत नहीं किया जा सकता, तो उस परिकल्पना को वैज्ञानिक नहीं कहा जा सकता। ऐसी परिकल्पना या अध्यात्मशास्त्र की विषयवस्तु हो सकती है। सामान्यीकरण की परीक्षा, सत्य-असत्य के बजाय पुष्टिकरण अथवा अपुष्टिकरण (Non confermation) के आधार पर की जाती है। अपुष्ट सामान्यीकरण भी आनुभविक बने रह सकते हैं।

सामान्यीकरणों में केवल अयुक्त आनुभविक अवधारणाओं को ही पृथक् करना आवश्यक नहीं होता है, अपितु उस रीति का भी ध्यान रखना होता है, जिनके द्वारा अवधारणाओं को सामान्यीकरणों में परिभाषित एवं निर्वचन किया जाता है। सामुदायिक शक्ति-विश्लेषण सम्बन्धी एक सामान्यीकरण को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। "'क' नगर में समस्त महत्त्वपूर्ण विनिश्चिय (Decisions) एक अभिजन-वर्ग के द्वारा किये जाते हैं।" इस सामान्यीकरण की अवधारणाएँ आनुभविक हैं। उनको पुष्ट या अपुष्ट करने की युक्तियों द्वारा जांच की जा सकती है। उक्त सामान्यीकरण की जांच के लिए एक शोधक यह परिकल्पना प्रस्तुत करता है कि क समुदाय में सभी महत्त्वपूर्ण निर्णय एक शक्तिशाली अभिजन-वर्ग द्वारा लिये जाते हैं। इसके लिए वह अनेक स्थानीय मामलों—तरणताल बनाने, उद्यान लगाने आदि मामलों की गवेषणा यह देखने के लिए करता है कि प्रत्येक निर्णय में, समुदाय में से कौन अधिक प्रभावशाली है? वह दोनों मामलों पर यह निष्कर्ष प्राप्त कर सकता है कि उन मामलों पर व्यापारिक तथा राजनेतागण सर्वाधिक प्रभावयुक्त रहे हैं। किन्तु वे वहाँ एक महाविद्यालय खोलने के विषय में प्रभावशाली नहीं रहे। इस मामले में एक शैक्षिक वर्ग प्रभावपूर्ण रहा। अब राजविज्ञानी यह निष्कर्ष निकालता है कि तीसरा मामला अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है (क्योंकि वह शक्ति-अभिजन-वर्ग (power-elite) के द्वारा निर्णीत नहीं हुआ। और, इस तरह, यह उसकी परिकल्पना के खण्डन का आधार नहीं बन सकता।

उसने 'महत्त्वपूर्ण मामला' की अवधारणा को, 'शक्ति-अभिजन-वर्ग' कहलाने वाले विशेष समुदाय के विशेष सन्दर्भ में परिभाषित किया है। साथ ही, उसने शक्ति-अभिजन-वर्ग' उसे माना है कि वह एक महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सकने वाला समूह है। इस आधार पर वह इस निर्णय पर पहुँचता है कि जो निर्णय 'शक्ति-अभिजन-वर्ग' द्वारा नहीं किया गया है, महत्त्वपूर्ण मामला नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ है कि उसकी परिकल्पना परिभाषा द्वारा सत्य सिद्ध हुई। इसे साक्ष्य द्वारा खण्डित नहीं किया जा सकता। वे निर्णय, जिन्हें अभिजनवर्ग द्वारा नहीं किया गया है, एक साथ अमहत्त्वपूर्ण घोषित कर दिये गये। ऐसे सामान्यीकरणों को, जिन्हें अपुष्ट करना असम्भव हो, आनुभविक एवं वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता।[11]

राजविज्ञान में अपने सामान्यीकरणों व 'सत्य' को सुरक्षित बनाने की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है। इसे पद्धति वैज्ञानिक असावधानी के रूप में देखा जाना चाहिए, न कि चालाकी के रूप में। इसकी जड़ें अवधारणा—निर्माण में हैं। सामान्यीकरणों की अवधारणाओं को स्वतन्त्र ढंग से परिभाषित किया जाना चाहिए, एक दूसरे के माध्यम से नहीं। इन अवधारणाओं के मध्य परिकल्पित या पुष्ट सम्बन्धों का प्रश्न 'आनुभविक' होता है न कि विश्लेषणात्मक। वह तथ्य से सम्बन्ध रखता है न कि परिभाषा से। उपर्युक्त उदाहरण में 'महत्वपूर्ण निर्णय' तथा 'शक्ति अभिजन वर्ग' को इस प्रकार परिभाषित किया जाना चाहिए था कि वे एक दूसरे से तार्किक रूप में स्वतन्त्र रहते। यदि वे तार्किक रूप से एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं तो परिकल्पना की जाँच नहीं की जा सकती, चाहे कितना ही साक्ष्य उन्हें पुष्ट करने के लिए जुटाया जाये। 'महत्वपूर्ण निर्णय' को आनुभविक मानदण्डों पर खरा उतारना होगा। तब ही वास्तव में 'शक्ति अभिजनवर्ग' का पता लगाया जा सकेगा।

सामान्यीकरणों का क्षेत्र (Scope of Generalizations)

सामान्यीकरण किसी व्यक्ति-विशेष घटना से सम्बन्धित नहीं होते। उसकी अवधारणाएँ परिचालनात्मक रूप से परिभाषित होनी चाहिए। सामान्यीकरणों के अन्तर्गत अवधारणाओं में शामिल सभी विशेषताएँ आ जाती हैं। सामान्यीकरण घटकों, इकाइयों या तथ्यों के वर्ग से सम्बन्धित होना है। किन्तु उसे विशेषकों (Qualifiers) द्वारा सीमित किया जा सकता है, यथा, सभी स्थानीय राजनीतिज्ञ बहिर्मुख (Extrovert) होते हैं। फिर भी, इससे सामान्यीकरण सीमित नहीं होता, क्योंकि अब भी, वह उसके अन्तर्गत आने वाले समस्त वर्ग को समाहित या शामिल करता है। उपर्युक्त उदाहरण में सामान्यीकरण का क्षेत्र संकुचित (Narrow) हो गया है, किन्तु सीमित (Limited) नहीं। एक सामान्यीकरण जितने क्षेत्र पर (Scope) पर लागू होता है, उसे उसकी 'जनसंख्या' (Population) कहते हैं।[12]

सामान्यीकरणों के क्षेत्र के दो मानदण्ड हैं प्रथम, परिभाषा द्वारा सीमित क्षेत्र वाला वाक्य सामान्यीकरण नहीं हो सकता, तथा द्वितीय व्यापक क्षेत्र वाले सामान्यीकरण विकसित किये जाने चाहिए। जितना क्षेत्र व्यापक होगा, सामान्यीकरण की उतनी ही अधिक शक्ति होगी। साथ ही अस्पष्टता तथा अनेकार्थकता से प्राप्त होने वाली सामान्यता से भी बचना पड़ेगा। यदि लोकतन्त्र की परिभाषा इस प्रकार की जाये कि प्रत्येक राज-व्यवस्था उसमें शामिल हो जाये, तो उससे निर्मित सामान्यीकरण अर्थहीन होंगे।

शाश्वत एवं सांख्यिकीय सामान्यीकरण (Universal and Statistical Generalization)

राजविज्ञान में शाश्वत सामान्यीकरणों का अभाव है।[13] शाश्वत (Universal) सामान्यीकरण समस्त' (All) प्रकृति के होते हैं। यथा, समस्त राजनेता जन-सेवक होते हैं, अथवा 'म' राजनेता है, तो वह जन-सेवक होगा। किन्तु राजविज्ञान में ऐसे शाश्वत विवरण नहीं दिये जा सकते। समस्त युवकों को समाजवादी तथा समस्त वृद्धों को रूढ़िवादी नहीं कहा जा सकता। इस कारण, सांख्यिकीय सामान्यीकरणों की आवश्यकता पड़ती है।

सांख्यिकीय सामान्यीकरण अनेक प्रकार के होते है। यथा, कुछ युवक समाजवादी होते हैं। या, अधिकांश वृद्ध रूढ़िवादी होते हैं। अथवा 75 प्रतिशत गरीब व्यक्ति साम्यवादी होते हैं। या, नेताओं की गतिविधियों में जनसेवा की सम्भावना (Probability) 0 75 है, आदि। पिछले सामान्यीकरण 'कुछ' या 'अधिकांश' वाले सामान्यीकरणों से निश्चित रूप से श्रेष्ठ हैं। यद्यपि दोनों सांख्यिकीय (Statistical) है। पहले वाले वाक्यों को 'प्रवृत्ति-विवरण' (Tendency-Statements) भी कहा जाता है। सांख्यिकीय सामान्यीकरणों को अपूर्ण शाश्वत ज्ञान माना जाता है। लेकिन अपूर्ण ज्ञान को पूर्ण बनाया जा सकता है। ज्यों-ज्यों प्रभाव डालने वाले कारकों का पता चलता जाता है, अपूर्णता के क्षेत्र (Scope में कमी आती जाती है। महायुद्ध के पूर्व तथा उसके पश्चात् मतदान-विषयक अध्ययनों से इस बात को पुष्ट किया जा सकता है। क्षेत्र की दृष्टि से सांख्यिकीय तथा शाश्वत सामान्यीकरणों में केवल दावों (Claims) की पुष्टि का ही अन्तर होता है।

परिकल्पनाएँ एवं नियम (*Hypotheses and Laws*)

ऊपर बताया गया है कि प्रकल्पनाएँ या परिकल्पनाएँ (Hypotheses) वे सामान्यीकरण होते हैं, जिनका निर्माण किया गया है, किन्तु जिनका परीक्षण नहीं किया गया है। नियम (Laws) वे सामान्यीकरण हैं जिनका परीक्षण किया गया है तथा जिनको या तो पुष्ट कर दिया है अथवा अस्वीकार नहीं किया गया है। परिकल्पनाओं की जाच की सामान्य प्रक्रिया 'आगमन' (Induction) कहलाती है। उसमे ठोस साक्ष्यों के आधार पर सामान्यीकरणों की ओर बढ़ते हैं।[14] ऐसी परिकल्पनाओं को हम अवलोकन के माध्यम से पुष्ट करते हैं कि क्या वह प्रेक्षण-जगत् के अनुकूल बैठती है। इसमे मूर्त प्रेक्षण सामान्यता का आधार होता है। राजविज्ञानी या शोधक शीघ्र ही आगमनात्मक साक्ष्य से कूदकर सामान्यीकरण तक जाना चाहता है। प्रेक्षणों की संख्या का एक आधार बना लिया जाता है। आगमनात्मक साक्ष्य निदर्शन (Sample) के आधार पर चयनित किये जाते हैं। आनुभविक घटनाओं की व्याख्या एवं पूर्वकथन के लिए, मूर्त प्रेक्षणों से शाश्वत अथवा सांख्यिकीय सामान्यीकरणों की ओर आगमनात्मक उछाल (Leap) लेना आवश्यक होता है। इस विधि को, रीशनबाख ने भविष्य के पूर्वकथन (Prediction) का सर्वाधिक श्रेष्ठ साधन माना है।[15] कुछ भी हो, राजवैज्ञानिक अपनी प्रेक्षण-क्षमता से परे कभी नहीं जा सकते। वैज्ञानिक ज्ञान जगत् विषयक ज्ञान ही होता है।

सामान्यीकरण एवं कार्य कारण सम्बन्ध
(*Generalization and Cause effect Relationship*)

जब यह कहा जाता है कि "यदि 'क', तो 'ल' भी होगा।" तो उस 'क' को 'ल' का कारण भी बताया जा सकता है। इसका अर्थ यह होगा कि नियमपूर्ण (Lawful) सम्बन्ध कार्य-कारण (Cause-effect) सम्बन्धों के रूप में अस्वीकार कर लिये जायेंगे। 'सामान्यीकरण' तथा 'कारण' सम्बन्धी धारणाएँ काफी समीप हैं। कारणत्व (Causality) की आधुनिक अवधारणा डेविड ह्यूम के विश्लेषण से प्रारम्भ होती है। उसमें घटनाओं के आवश्यक पारस्परिक सम्बन्धों को केवल एक निरन्तर संयुति (Conjunction) माना गया है। आनुभविक सम्बन्ध संयोगिक (Contingent) होते है, आवश्यक रूप से 'सत्य' नहीं होते। घटनाओं एवं चरों में परस्पर सम्बन्ध आवश्यक 'प्रकृति' का नहीं होता। यह 'सतत संयुति' के रूप में होता है।

इसलिए सामान्यीकरणों को कारण-विवरणों के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। कारणात्मक विवरण आवश्यक सम्बन्धों को अभिव्यक्त नहीं करते तथा विश्लेषणात्मक प्रस्तावनाएँ आनुभविक नहीं होतीं। 'क' 'ख' का कारण है, यह कहने का अर्थ होगा कि 'ख' 'सदैव' 'क' का अनुगमन करता है। इसे हम सामान्यीकरण के रूप में, बिना कारणात्मक सम्बन्ध बताये, इस प्रकार भी रख सकते हैं कि "यदि 'क' है, तो 'ख' है।" इसलिए कारणात्मक तथा अकारणात्मक सामान्यीकरणों में अन्तर रखा जाना चाहिए। सश्लिष्ट चरों से युक्त घटनाओं के विश्लेषण में इसका और भी अधिक ध्यान रखा जाना चाहिए। यदि 'क' दो राजनैतिक अभिवृत्तियों को रखता है, जो सामान्यतः साथ-साथ पायी जाती हैं, तो भी यह कहना उपर्युक्त नहीं होगा कि एक दूसरे का कारण है। हम नहीं जानते कि पहले कौन-सी अभिवृत्ति आयेगी? हर्बर्ट मैक्लोस्की द्वारा किये गये "रूढ़िवाद तथा व्यक्तित्व" के विश्लेषण में यही पद्धति वैज्ञानिक सकेत पाया जाता है।[16] उसने रूढ़िवादिता के साथ कतिपय व्यक्तिगत विशेषताओं के सम्बन्ध को स्थापित किया है। उससे, उसके अनुसार, केवल सह सम्बन्ध (Co-relation) ही ज्ञात होता है, न कि पूर्व या पश्चात्गामी अनुक्रम। उसने कारणात्मक सम्बन्ध बताने की भूल नहीं की है।

राजविज्ञान में कारणात्मक सम्बन्धों को नियमपूर्ण सम्बन्धों की खोज और परिष्कार के रूप में देखा जाता है। किन्तु ये सम्बन्ध आनुभविक होते हैं। शोध-प्रविधियों के द्वारा इन सहसम्बन्धों को सांख्यिकीय सहसम्बन्धों के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। उनकी तुलना, स्वीकृति, अस्वीकृति, परिष्कृति आदि की जा सकती है। कारणात्मक परिस्थितियों को पर्याप्त या आवश्यक दशाओं के रूप में देखा जाता है। इसे ह्यूम के सतत संयुति के विचारबन्ध से समायोजित किया जा सकता है। यद्यपि यह जरूरी नहीं है कि आवश्यक दशाएँ पर्याप्त भी हों। दूसरी ओर दशाएँ भी वर्तमान रहता हैं। राजविज्ञान में आंशिक रूप से 'पर्याप्त दशाओं की अवधारणा' से ही घटनाओं का विश्लेषण किया जा सकता है।

राजनीति-विज्ञान में सिद्धान्त-निर्माण

(Theory-Building in Political Science)

राजविज्ञान में सिद्धान्त निर्माण की दृष्टि से बहुत कम ध्यान दिया गया है। उसमें राजनीतिक सिद्धान्त (Political theory) की स्थिति, आवश्यकता, उपयोगिता और विशेषताओं की दृष्टि से तो विचार किया गया है किन्तु इसके निर्माण और विकास पर बहुत कम सोचा गया है।[17] सिद्धान्त निर्माण पर शोधपद्धतिविज्ञान (Research-Methodology) के दृष्टिकोण से विचार किये जाने की आवश्यकता है। इस विषय में यह दोहराना जरूरी है कि किसी भी विषय को एक 'वैज्ञानिक सिद्धान्त' की इतनी अधिक आवश्यकता नहीं है, जितनी कि राजनीति-विज्ञान को है। एक अनुशासन (Discipline) के रूप में, राजविज्ञान का भविष्य एक 'आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त' के निर्माण पर निर्भर है।

सिद्धान्त-सम विरचनाओं से पृथकता (Separate from quasi-theories)

वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त-निर्माण का विवेचन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि 'सिद्धान्त' के नाम से प्रचलित राजदर्शन (Political philosophy) सहित अनेक सिद्धान्त-सम (Quasi-theories) गतिविधियों को सिद्धान्त' नहीं कहा जा

सकता। उन सभी से सिद्धान्त का क्षेत्र, अर्थ, स्वरूप आदि भिन्न हैं। सिद्धान्त की राजविज्ञान मे कोई सर्वमान्य परिभाषा उपलब्ध नही है। किन्तु वह अवधारणीकरण (Conceptualization), प्रारूप (model), लक्षण समष्टि (Paradigm), प्रकारणाओ (Typologies), व्याख्याकरणो (Explications), निर्देशनो (Prescriptions), परिकल्पनाओ (Hypotheses), विवरणो (Statements)' सामान्यीकरणो (Generalizations), उपागमो (Approaches) आदि से पृथक् प्रकार का होता है। इन विश्लेषणात्मक सरचनाओ (Structures) का महत्त्व है, किन्तु ये वैज्ञानिक राजनीतिक सिद्धान्त नहीं हैं।

अवधारणीकरण (Conceptualization), या अवधारणात्मक परियोजनाओ के विकास को सिद्धान्तीकरण या सिद्धान्तन (Theory making) मान लिया जाता है। यह युक्तियुक्त नहीं है। सिद्धान्त को विकसित करने के लिये तथ्यो के आधार पर अवधारणीकरण किया जाता है। अवधारणीकरण की प्रक्रिया म विश्लेषणात्मक विचारवर्गों (Analytical categories) का विकास किया जाता है। इनका राजनीतिक सिद्धान्त के विकास मे उपयोग होता है। विश्लेषणात्मक विचारवर्ग या अवधारणाएँ सूचनाओ का सगठन करने के लिये इस प्रकार विकसित की जाती हैं कि उससे उनके सम्भावित सम्बन्ध उभरें। ये अवधारणाएँ आनुभविक अवधारणाओ के निर्माण की प्रक्रिया का पहला चरण होती हैं। इन विश्लेषणात्मक, या पहले चरण वाली, अवधारणाओ का उपयोग यथार्थ जगत् म घटनाओ (Phenomena) का अवलोकन या प्रेक्षण (Observation) करने के लिये किया जाता है। अवधारणीकरण विश्लेषणात्मक (Analytical) होता है, सिद्धान्त सश्लेषणात्मक (Synthetical)। अवधारणीकरण पर्याप्त आनुभविक सूचनाएँ एव बोध प्राप्त करने के लिये किया जाता है। डेविड ईस्टन ने (A Systems Analysis of Political Life, 1965) मे राजनीतिक जीवन का 'व्यवस्था' (Sys em) के रूप म अवधारणीकरण किया है। प्ररूपण (Model-making) का भी ऐसा ही उपयोग किया जाता है।

प्ररूपण की तरह प्रकारणा (Typology) को भी 'सिद्धान्तीकरण' का पर्याय मान लिया जाता है। इसी तरह 'व्याख्याकरण' (Explication) को भी। ये दोनो सैद्धान्तिक विश्लेषण एव विकास के लिये आवश्यक गतिविधियाँ हुए भी स्वय 'सिद्धान्त का निर्माण' नहीं हैं। ये अवधारणीकरण के सरलीकृत रूप हैं। व्याख्याकरण अवधारणाओ के उपयोग से सम्बद्ध होता है। उसमे, शब्द के अर्थ का इस प्रकार प्रसार किया जाता है, उसे, उसके सिद्धान्त सम्बन्धी सन्दर्भ के भीतर रखते हुए, या उससे जोड़ते हुए, उसकी सगति (Relevance) स्पष्ट होती है। 'प्रकारणा' अनेक अवधारणाओ के वर्गों का एक समुच्चय होती है। निर्दिष्ट गुणो के आधार पर प्रकारणा का निर्माण तथा उसका अन्य प्रकारणा से अन्तर किया जाता है। उसमे कई उप प्रकार या वर्ग-उपवर्ग होते हैं। हट्ल, फाइनर आदि के राजव्यवस्थाओ के वर्गीकरण इसी प्रकार के हैं।[18]

सामान्य विवरण भी सिद्धान्त नहीं होते। यथार्थ जगत् मे पायी जाने वाली, वस्तुओं और घटनाओ के बारे मे प्रस्तावनाओं (Propositions) सम्बन्धी सरल अभिव्यक्तियाँ हैं। विवरण व्यक्ति विशेष या सामान्य प्रत्यक्षणो (Perceptions) के विषय मे हो सकते हैं। आनुभविक विवरण सत्य या असत्य हो सकते हैं। केवल विश्लेषणात्मक

विवरण न तो सत्य होते हैं और न असत्य, क्योंकि वे केवल अपनी परिभाषा में निहित
सम्बन्धों का ही कथन करते हैं। विवरण व्याख्या, वर्गीकरण, पूर्वकथन आदि नहीं करते।
परिकल्पना, प्रकल्पना या प्राक्कल्पना (Hypothesis) या वैज्ञानिक विश्लेषण में
बड़ा महत्त्व होता है। परिकल्पना वस्तुओं या घटनाओं तथा उनके गुणों के मध्य सम्बन्धों
के बारे में असत्यापित दावे हैं। यह उन सम्बन्धों के विषय में अनुमान है, जिसकी जाँच
करना शेष होता है। परिकल्पना एक विवरण के रूप में, आनुभविक घटनाओं के मध्य
विशिष्ट सम्बन्धों का कथन करती है। इन्हें 'शिक्षित अनुमान' कहा जा सकता है। इसमें
जिसे सत्य समझा जाता है, उसकी कल्पना या प्रक्षेप (Project) किया जाता है। परि-
कल्पना या प्रकल्पना को, यथार्थ जगत् के अवलोकनों, या सामान्य सैद्धान्तिक परियोजना
के आधार पर, या चिंतन के किसी भी रूप में विकसित किया जा सकता है। चाहे
विकासशील देशों में होने वाली सैनिक क्रान्तियाँ हों, या निर्वाचन हों, अथवा कोई रहस्यमयी
घटना—परिकल्पनाओं के रूप में प्रस्तुत किये गये विवरणों का 'सत्य' अज्ञात होता है।
वह एक तथ्यों से अप्रमाणित सम्भावना मात्र होती है।

सामान्यीकरण (Generalization) वस्तुओं अथवा घटनाओं तथा उनके गुणों
(Properties) के मध्य सम्बन्ध बताने वाला विवरण होता है। सामान्यीकरण आनुभविक
(Empirical) या विश्लेषणात्मक हो सकता है। तथ्यात्मक अवलोकन प्रस्तुत करने वाले
को संलेख या अधिकृत लेख (Protocol statement) कहते हैं। राजविज्ञान की वर्तमान
केन्द्रीय गतिविधि इन अधिकृत लेखों में वर्णित आनुभविक सामान्यीकरणों की जाँच करना
है। यह जाँच परिकल्पित सामान्यीकरणों के सन्दर्भ में, यथार्थता (Reality) के अवलोकनों
या प्रेक्षणों की तुलना की जाती है। इस प्रक्रिया से सामान्यीकरणों में व्यक्त सम्बन्धों का
प्रेक्षणों (Observations) से परिपुष्टिकरण या तालमेल (Combination) बताया जाता
है। विवरण में सामान्य अवधारणाओं के मध्य सम्बन्धों का कथन मात्र किया जाता है।
यह कथन विश्लेषणात्मक या संश्लेषणात्मक दावों की तरह हो सकता है। विश्लेषणात्मक
दावे (Analytic-claims) यथार्थ जगत् के बारे में कोई नयी सूचना नहीं देते। उसका
सत्य या असत्य अर्थपूर्ण नहीं होता, क्योंकि वह स्वनिर्मित परिभाषा पर आधारित होता
है। उस परिभाषा को अस्वीकार करते ही विवरण स्वविरोधी (Contradictory) हो
जाता है। संश्लेषणात्मक दावे (Synthetic claims) यथार्थ जगत् के विषय में एक दशा
या स्थिति को प्रस्तुत करते हैं, जिसकी जाँच या सत्यापन (Verification) किया जा
सकता है। संश्लेषणात्मक विवरण का सत्य यथार्थ पर अवलम्बित रहता है। किन्तु उसे
सत्य तब ही माना जायेगा जब वह शुद्ध रीति से यथार्थता में अवस्थित सम्बन्धों का
वर्णन करे।

राजनैतिक घटनाओं के संश्लेषणात्मक ज्ञान की वृद्धि के लिये दो प्रकार की
प्रस्तावनाएँ काम आती हैं। प्रथम, व्यापक सामान्यीकरणों के रूप में, ये घटनाओं के विषय
में पूर्ण प्रस्तावनाएँ रखती हैं, जैसे, सर्वोच्च न्यायालय में नियुक्त सभी व्यक्ति पुरुष रहे हैं।
इसके विपरीत, द्वितीय, सीमित अस्तित्व से सम्बन्धित (Existential) दावे होते हैं।
राजवैज्ञानिक विश्लेषण में इनका ही अधिक उपयोग होता है। इनमें बार-बार घटने वाली
गतिविधियों का विवरण दिया जाता है, इनकी बारम्बारता या पुनरावृत्ता का सापेक्ष
(Relative) रूप में सांख्यिकीय सामान्यीकरणों (Statistical generalizations) के रूप
में प्रस्तुत किया जा सकता है। ये अतिरिक्त मात्र बताने वाले या अस्तित्व सम्बन्धी दावों की

अपेक्षा अधिक दृढ़स्थन करते हैं। जब एक प्रस्तावना साक्ष्य (Evidence) सहित सामान्यीकरण को अभिव्यक्त करती है, तब उसे परिकल्पना (Hypothesis) नहीं कहा जा सकता। उसे प्रस्तावना को सत्यापित सामान्यीकरण कहा जायेगा। यह स्तर शाश्वत एवं सार्वभौमिक सामान्यीकरणों का प्रदान किया जाता है। जब सामान्यीकरणों को इतना अधिक सत्यापन प्राप्त हो जाता है कि उन पर कोई सन्देह नहीं किया जाता और उनके आनुभविक 'सत्य' का, शोध एवं सिद्धान्त निर्माण में राजवैज्ञानिकों द्वारा उपयोग किया जाता है, उस अवस्था में उसे वैज्ञानिक नियम या विधि (Law) कहा जाता है। परन्तु व्यवहार में राजविज्ञान के क्षेत्र में, *वैज्ञानिक नियम के बजाय आनुभविक सामान्यीकरण का प्रयोग* अधिक उपयुक्त रहता है। आनुभविक सामान्यीकरण सश्लेषणात्मक विवरण होते हैं जो ऐसे सम्बन्धों का विवरण देते है। किन्तु उनका 'सत्य' उनके द्वारा यथार्थ जगत् के सही तरीके से वर्णन किये जाने पर अवलम्बित होता है। यथार्थता के बदल जाने पर वे भी बदल जाते हैं। वे *तथ्यों के सन्दर्भ में असत्य कर दिये जाने योग्य होने चाहिए। वैज्ञानिक विश्लेषण की* आधारभूत मान्यता यह होती है कि ज्ञान जगत् के यथार्थ स्वरूप या वास्तविकता पर आधारित होना है, न कि परिभाषाओं पर।

कभी-कभी आनुभविक सामान्यीकरणों को सिद्धान्त (Theory) कह दिया जाता है। किन्तु सामान्यीकरण प्राय सिद्धान्त के अंग या भाग होते हैं। सिद्धान्त सामान्यीकरण से निर्मित होते है। किन्तु *सिद्धान्त नियमनात्मक रीति मे सम्बन्धित सामान्यीकरणों का* समुच्चय होता है अर्थात् वह व्यापक सन्दर्भ में विभिन्न सामान्यीकरणों को एक दूसरे से संयुक्त करता है। इसके विपरीत अकेला आनुभविक सामान्यीकरण अवधारणाओं के बीच में संगत सम्बद्धता का अभिज्ञान या पहचान होना है। सिद्धान्त ऐसे सामान्यीकरणों का अभिज्ञान होना है, *जो या तो, एक दूसरे को जोड़ने वाले सामान्यीकरणों के 'कैसे'* को दूसरो से अन्तर्सम्बन्धित करते हो। या, वे यह प्रदर्शित करते हो कि उनको सामान्य पूर्वमान्यताओं या स्वयंसिद्धों (Axioms) से किस प्रकार निगमित किया जा सकता है। संक्षेप में, सिद्धान्त अनेक सामान्यीकरणों से सम्बद्ध होता है, जबकि आनुभविक सामान्यीकरण अकेला होता है।+

\+ A theory is a "set of inter-related hypothesis or propositions concerning a phenomenon or set of phenomena" —H W Smith
Theory refers to a set of logically inter-related "propositions" or "statements" that are empirically meaningful
—Sjoberg and Nett

Theories are nets cast to what we call "the world" · to rationalize, *to explain, and to master it* —*Karl Popper*
The concepts of science are the knots in a network of systematic interrelationships in which laws and theoretical principles from the threads——The *more thread converge upon, or issue from,* a conceptual knot, the stronger will be its systematizing role, or its systematic role —Carl Hempel
Contd.

सिद्धान्त की पद्धति वैज्ञानिक प्रकृति
(Methodolog'cal Nature of Vheory)

अनुभविक राजनीतिक सिद्धांत या राजसिद्धांत मानकीय (Normative) राजदर्शन से भिन्न होता है।[19] किन्तु क्रियात्मकता (Practice) की दृष्टि से कभी-कभी सिद्धांत को अवास्तविक चिन्तन मात्र समझ लिया जाता है।[20] वास्तविकता यह है कि सिद्धांत और क्रियात्मकता में कोई विरोध या अन्तर नहीं। एक उपयुक्त सिद्धांत राजनीति के विश्वसनीय ज्ञान का आधार होगा। सिद्धांत राजनैतिक घटनाओं की व्याख्या (Explanation) एवं पूर्वकथन (Prediction) करने के कारण और तथा क्रियात्मक निर्णयन (Decision-making) में सहायता करता है। उसके स्वरूप के विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण बातें कही गई हैं। क्विन्टन के अनुसार 'सिद्धांत विभिन्न सम्मिलित रीतियों में, तार्किक ढंग से अन्तर्सम्बन्धित विवरणों की व्यवस्था या समुच्चय होते हैं।'[21] पोलस्की आदि के अनुसार, सिद्धांत सामान्यीकरणों का निगमनात्मक जाल है, जिसमें ज्ञात घटनाओं के कतिपय प्रकारों की व्याख्याएँ अथवा पूर्वकथन किए जा सकें।[22] पारसन्स की दृष्टि से, 'एक सैद्धांतिक व्यवस्था आनुभविक सन्दर्भ को तर्कपूर्ण रूप में अन्तर्निर्भर सामान्यीकृत (Generalized) अवधारणाओं का निकाय है।' मर्टन ने लिखा है कि केवल उसी अवस्था में, जबकि अवधारणाएँ एक परियोजना के रूप में अन्तर्सम्बन्धित हो जाती हैं, एक सिद्धांत पनपना आरम्भ होता है।[23] एक सिद्धांत में तर्कसंगत रूप से अन्तर्सम्बन्धित ऐसी अवधारणाएँ होती हैं जिन्हें विज्ञानियों के अवलोकनों द्वारा सुझाए गए प्रस्तावनाओं से संयुक्त किया गया हो। उसमें, किसी सन्दर्भ के दायरे में अवधारणाओं का सामान्य परिष्करण (Articulation) हो जाता है। सिद्धांत में तथ्यों को अर्थपूर्ण विधि से व्यवस्थित किया जाता है और उनसे उपजी अवधारणाओं एवं सामान्यीकरणों के मध्य तार्किक सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। तथ्यों के मध्य परस्पर सम्बन्धों को अर्थपूर्ण विधि से व्यवस्थित करने की क्रिया ही सिद्धांत-निर्माण है। आर्नल्ड ब्रैक्ट के शब्दों में, सिद्धांत एक ऐसी प्रस्तावना या प्रस्तावनाओं का सेट है जो आधार सामग्री के सन्दर्भ में, प्रत्यक्ष प्रेक्षित या अप्रेक्षित या प्रकट नहीं होने वाले अन्तर्सम्बन्धों या किसी वस्तु की व्याख्या करने के लिए बनाया जाता है। हैम्पल के शब्दों में, 'यह प्रेक्षित सामग्री के विषय में बुद्धिगम्य, व्यवस्थित तथा अवधारणात्मक, प्रतिमान होता है।' वस्तुतः सिद्धांत एक विश्लेषणात्मक युक्ति है, जिसकी सहायता से तथ्यों का अवलोकन व्याख्या तथा पूर्वकथन किया जा सकता है। यह परस्पर सम्बद्ध व्याख्यात्मक नियमों का समुच्चय होता है।

इन परिभाषाओं एवं व्याख्याओं के आधार पर वैज्ञानिक सिद्धांत की कतिपय प्रमुख विशेषताओं को निम्न प्रकार से बताया जा सकता है—

(i) सिद्धांत में इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अनुभव किए जा सकने वाले तथ्यों का अध्ययन किया जाता है,

---

A scientific theory ideally, a universal, empirical statement which asserts a casual connection between two or more types of events
—Cohen

(ii) उक्त तथ्यो के अध्ययन से अवधारणाओ एव सामान्यीकरणो का सृजन होता है,
(iii) इनके अध्ययन के लिए मान्य वैज्ञानिक पद्धति तथा अन्य प्रविधियों का उपयोग किया जाता है,
(iv) ऐसा करते समय शोधक या राजवैज्ञानिक अपने मूल्यो को पृथक् रखता है,
(v) अध्ययन आरम्भ करने से पूर्व अध्येता एक वैचारिक या अवधारणात्मक रूपरेखा तैयार कर लेता है,
(vi) इसमे शोधक शोध या विश्लेषण मे परिणामो, निष्कर्षो या सामान्यीकरणो को परस्पर सम्बद्ध करके, उन्हे व्याख्या कर सकने वाले सिद्धात का रूप प्रदान कर देता है,
(vii) इसमे शब्द कार्यविधियाँ परिणाम आदि निश्चित, स्पष्ट एव तकनीकी रूप धारण कर लेते हैं
(viii) सिद्धात विश्वसनीय, पूर्वकथनीय तथा उपयोगी होता है। उसकी निर्धारित पद्धतियो तथा प्रविधियों द्वारा पुन जाँच और परख की जा सकती है,
(ix) सिद्धात स्वय एक साध्य न होकर साधन होता है। वह किसी घटना को समझने का साधन या उपकरण होता है,
(x) उसका स्वरूप अमूर्त्त होता है, तथा
(xi) नवीन तथ्यो एव अवधारणाओ के सन्दर्भ मे सिद्धात के पूर्व स्वरूप मे भी परिवर्तन हो जाता है।

सक्षेप मे, सिद्धात सम्बद्ध आनुभविक सामान्यीकरणो के समुच्चय (Set) को कहते हैं। राजनीति के विशिष्ट क्षेत्रो के विषय मे अनेक अन्तर्ग्रथित सामान्यीकरणो के सैट को सिद्धात कहा जाता है। मतदान व्यवहार तथा राजनैतिक दलो के व्यवहार सम्बन्धी अध्ययनो को इस दृष्टि से देखा जा सकता है।[4] इनमे अनेक सामान्यीकरणो को सगठित तथा सम्बन्धित करने का प्रयास किया गया है। राजनीतिक सिद्धात मे, किसी क्षेत्र या विषय मे सम्बन्धित आनुभविक सामान्यीकरणो का सयुक्त रूप देखने को मिलता है। ईजाक के शब्दो मे, राजसिद्धात 'सामान्यीकरणो का समुच्चय होता है जिसमे हमारे द्वारा प्रत्यक्षत परिचित तथा परिचालनात्मक रूप से परिभाषित अवधारणाएँ होती हैं, उनके अलावा, उसमे और भी अधिक महत्त्वपूर्ण सैद्धातिक अवधारणाएँ, जो यद्यपि प्रेक्षण से प्रत्यक्षत सम्बन्धित नहीं होती किन्तु इन अवधारणाओ के साथ तार्किक रूप से जुडी हुई होती हैं।[25] सिद्धात एव आनुभविक सामान्यीकरणो मे अन्तर होता है। आनुभविक सामान्यीकरणो का अवलोकन पर आधारित होने के कारण परीक्षा की जा सकती है, किन्तु हम सैद्धातिक अवधारणाओ को उस रीति से जाँच नही कर सकते। किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि हम सिद्धातो का परीक्षण एव मूल्याकन नही कर सकते।

वैज्ञानिक आनुभविक सिद्धात की दो विशेषताएँ होती हैं : प्रथम, सरचनात्मक, तथा, द्वितीय, विषयसामग्रीगत। सरचनात्मक विशेषता अवधारणाओ के मध्य सम्बन्धो के विषय मे होती है। विषयसामग्रीगत विशेषता आनुभविक यथार्थ मे सम्बन्ध रखती है। हैम्पल के अनुसार, वैज्ञानिक सिद्धात मे, अवरोधहीन निगमनात्मक रूप से विकसित व्यवस्था तथा निर्वचन होता है जो उसके शब्दो एव वाक्यो को आनुभविक अर्थ प्रदान करता है।[26] यह आनुभविक अर्थ अप्रत्यक्ष रूप से प्रदान किया जाता है।

सिद्धान्त के प्रकार (Kinds of Theories)

'सिद्धांत की परिभाषा' के अन्तर्गत आने वाले सिद्धांतों के अनेक प्रकार पाये जाते हैं।[28] पर्सी एस. कोहन ने उन्हें चार वर्गों में रखा है यथा, (i) विश्लेषणात्मक (Analytic), (ii) आदर्शात्मक (Normative), (iii) वैज्ञानिक (Scientific), तथा (iv) तात्त्विक या आध्यात्मिक (Meta-Physical) सिद्धांत। यहाँ हमारा सम्बन्ध केवल वैज्ञानिक सिद्धांतों से ही है। निगमनात्मक रीति से सम्बद्ध सामान्यीकरणों से बनी सिद्धांत की परिभाषाओं में उसके, विश्लेषणात्मक, संश्लेषणात्मक तथा गणितीय प्रकार भी आ जाते हैं। अधिक सुविधा, व्यावहारिकता एवं शोधवैज्ञानिक दृष्टि से सिद्धांतों को निम्नलिखित तीन आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है

(क) सामान्यता (Generality) या क्षेत्र-विस्तार के आधार पर,

(ख) संरचनात्मक (Structural forms) स्वरूपों के आधार पर, तथा

(ग) अवधारणात्मक विषयसामग्री (Conceptual contents) के आधार पर।

(क) सामान्यता अथवा क्षेत्र (Generality or Scope)

ईस्टन उक्त सामान्यता (Generality) के आधार पर इनको एकल (Singular) प्रकार के सामान्यीकरण,सिद्धांत, संकुचित (Narrow guage) सिद्धांत तथा वृहद् (Broad guage) सिद्धांत या व्यवस्था (Systems) सिद्धांत के रूप में विभाजित करता है।[29] किन्तु उक्त तीन वर्ग पूर्ववर्णित आनुभविक सिद्धांत की परिभाषा के अन्तर्गत समायोजित नहीं होते। सामान्यता या क्षेत्रीय विस्तार (Scope) की दृष्टि से सिद्धांतों को तीन वर्गों में इस प्रकार रखा जा सकता है—

(1) आनुभविक सामान्यीकरण (Empirical Generalization)

(2) मध्य-स्तरीय सिद्धांत (Middle-range Theory), तथा

(3) सामान्य सिद्धांत (General Theory)।

(1) आनुभविक सामान्यीकरण—दो या दो से अधिक अवधारणाओं को सामान्य विवरण के अन्तर्गत सम्बद्ध कर देने पर 'आनुभविक सामान्यीकरण' (Empirical Generalization) बन जाता है। जब इस सम्बद्धता के दावे का समर्थन करने वाले प्रेक्षण सम्बन्धी साक्ष्य प्रस्तुत किये जाते हैं, उस सामान्यीकरण को 'सत्य' या 'युक्त' मान लिया जाता है। अन्यथा एक ही अकेला सामान्यीकरण अत्यन्त अमूर्त हो सकता है और राज-व्यवस्था या व्यक्तिगत व्यवहार की विशेषताएँ प्रस्तुत कर सकता है। आनुभविक सामान्यीकरण के सिद्धांत से यह अन्तर होता है कि उसे प्रत्यक्षत: दूसरे निगमनात्मक सामान्यीकरणों से नहीं जोड़ा जा सकता। ऐसा करने के लिए आनुभविक सम्बद्धता होनी चाहिए। आनुभविक सामान्यीकरण राजसिद्धांत के विकास के हृदय होते हैं। राजसिद्धांत को अधिक पूर्ण, आनुभविक सामान्यीकरणों से जोड़कर, अथवा, उनमें निगमनात्मक रूप से नियमित हो सकने वाले आनुभविक सामान्यीकरणों द्वारा बनाया जाता है।

(2) मध्यस्तरीय सिद्धान्त—यह अन्तर्सम्बन्धित सामान्यीकरणों का वह समुच्चय होता है जो राजनीतिक प्रक्रिया के एक विशिष्ट पक्ष की ही व्याख्या करता है।[30] उदाहरण के लिए, विधायक निर्वाचन-क्षेत्र सम्बन्ध अथवा मतदान-मनोविज्ञान-विषयक राजनीतिक सिद्धांत मध्यस्तरीय (Middle-range) होंगे। इस सिद्धांत समस्त राजनीतिक प्रक्रिया की

व्याख्या नही करता। सामान्य सिद्धात एव मध्यस्तरीय सिद्धात क मध्य सीमा रखा सरलता-पूर्वक नही खीची जा सकती। उदाहरणार्थ, यद्यपि लासवेल राजनीतिक प्रक्रिया के विशिष्ट अश से ही सम्बन्धित रहने का प्रयास करता है, किन्तु वह ऐसे सिद्धात का प्रयोग करता है जो इतना सामान्य है कि वह राजनीतिक प्रक्रिया से परे चला जाता है।

(3) सामान्य सिद्धान्त–यह राजनीतिक यथार्थ की पूर्ण व्याख्या करने के लिए सम्पूर्ण सरचना प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए, डेविड ईस्टन, सम्पूर्ण अनुशासन (Discipline) के लिए, राजव्यवस्था के रूप मे सम्पूर्ण विषय का विश्लेषण करने के लिए एक युक्त सैद्धातिक विचारचित्र (Paradigm) का निर्माण करता।[1] सामान्य सिद्धात का क्षेत्र राजनीति के विशिष्ट पक्ष तक सीमित नहीं रहता। वह विषय के सम्पूर्ण ज्ञान को समाहित कर लेता है। उसकी सामान्य सरचना म आनुभविक सामान्यीकरण तथा मध्य-स्तरीय सिद्धात आदि समाहित हो जाते हैं।

यदि उपर्युक्त चित्राकन को ध्यान म रखा जाये तो सामान्य सिद्धात की भूमिका (Role) का पता चल जायेगा। उसके स्वयसिद्ध (Axioms) व्याख्याकृत आनुभविक अवधारणाओ का उपयोग करते हुए, विभिन्न स्तरीय सिद्धातो के सम्बन्धो के बारे म पूर्व-मान्यताओ के आधारभूत विवरण प्रस्तुत करते हैं। इन्हें सामान्य सिद्धात के स्वयसिद्ध (Axioms) कहा गया है। *इनकी गणितीय या तार्किक गणना या कलन (Calculus), इन स्वयसिद्धो मे से सामान्य सम्बन्धो के बारे म प्रमेयो (Theorems) को निर्गमित करने के नियम प्रदान करते हैं।* अपने आदर्शविचारात्मक रूप मे, मध्यस्तरीय सिद्धात, सामान्य सिद्धात के लिए विशेष मामलो का अभिज्ञान करने वाले प्रमेयो को स्वयसिद्धो से निर्गमित करेगा। किन्तु यह विशिष्ट राजनैतिक गतिविधियो पर ही लागू होगा। इनसे, तथा अप्रत्यक्षत स्वयसिद्धो से और अधिक आनुभविक प्रस्तावनाएँ निकाली जा सकती हैं। इन्हें परिचालनीकरण (Operationalization) तथा ठोस सत्यापन के अन्तर्गत रखा जा सकता है। राजविज्ञान मे अभी तक ऐसा पूर्ण एव सन्तोषजनक प्रयास नही किया जा सका है।

(ख) संरचनात्मक स्वरूप (Structural Form)

सिद्धात की सरचना (Structure), *प्रयोग किए जाने वाले सामान्यीकरणों के विशेष* प्रकार से सम्बन्ध रखती है। उसकी आदर्श सरचना को बताया गया है। एक आदर्श सैद्धान्तिक सरचना मे स्वयसिद्ध या पूर्व मान्यताएँ (Axioms), कलन (Calculus) तथा परिशुद्ध परिभाषाएँ होती है। राजविज्ञान मे सिद्धात का विकास अभी तक इस आदर्श या शुद्ध स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सका है।[2] इस आदर्श से काफी नीचे के स्तर की कतिपय सरचनाएँ तो प्राप्त है। इन सरचनाओ को सामान्यीकरणो के सम्बन्धो के आधार पर तीन प्रकारों मे विभक्त किया जा सकता है.

(1) प्रकार्यात्मक (Functional) सम्बन्ध,

(2) कारणात्मक (Causal) सम्बन्ध, तथा

(3) प्रवृत्तिपरक (Tendency) सम्बन्ध।

(1) प्रकार्यात्मक सम्बन्ध—इसमें सिद्धात निर्माता समाज की किसी एक सरचना, तथा उस समाज के अन्दर उसके द्वारा निष्पादित प्रकार्य (Function) क मध्य सम्बन्ध का अभिज्ञान किया जाता है। इन दोनो घटनाओ के मध्य सामान्यीकृत कारणात्मक सम्बन्धो की खोज की जाती है। विशेष जोर प्रकार्यात्मक (Functional) सम्बन्धो पर दिया जाता

है : वही चरों (Variables) के मापन के आधार होते हैं। ये खोजे गए सम्बन्ध विशिष्ट संरचनाओं पर निर्भर नहीं होते अर्थात् सम्बन्ध अधिक संरचित (Structured) नहीं होते। अधिक परिशुद्ध अवधारणाओं के प्राप्त होने पर प्रकार्यात्मक विश्लेषण त्याग देना अधिक लाभप्रद होता है।

(2) कारणात्मक सम्बन्ध—ये सम्बन्ध अधिक संरचित होते हैं। यह जानने के लिए कि घटनाएँ एक दूसरे के साथ कैसे सम्बद्ध होती हैं, ऐसे सम्बन्ध अधिक पूर्ण विश्लेषण का अवसर देते हैं। 'कारणत्व' की धारणा को इन सम्बन्धों में तार्किक विश्लेषण या अवलोकन के आधार पर प्रदर्शित नहीं किया जा सकता। दो या अधिक घटनाओं के संयोग या सतत् सहचार (Association) को देखकर कारणत्व मनोवैज्ञानिक ढंग से सिद्धांत निर्माता द्वारा आरोपित किया जाता है। उन्हें एक दूसरे के कारण के रूप में बताया जाता है। उन्हें नियम के आधार पर जोड़कर किसी सत्यापित आनुभविक सामान्यीकरण से संयुक्त कर दिया जाता है।

सिद्धांत निर्माण के सम्बन्ध में, प्रत्येक सिद्धांत निर्माता को अपूर्ण ज्ञान की चुनौती का सामना करना पड़ता है। यह जानना कठिन होता है कि कौनसी दशाएँ किसी घटना के घटित होने के लिए, पर्याप्त (Sufficient), तथा कौनसी आवश्यक कारणात्मक (Necessary causal) हैं? कारणत्व की दोनों ही धारणाएँ उपयोगी हैं। किन्तु दोनों ही पूर्ण नहीं हैं। परिणामों की व्याख्या करने के लिए आवश्यक कारणात्मक दशाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। पूर्वकथन (Prediction) के लिए पर्याप्त दशाओं का। आवश्यक दशाएँ विशिष्ट परिणाम के पूर्व सदैव वर्तमान रहती हैं। ये घटना में अन्तर्निहित समझी जाती हैं। पर्याप्त दशाएँ संयुक्त रूप में वर्तमान रहने पर परिणाम की ओर ले जाती हैं। ये सदा बहुल होती हैं। कारणात्मक सिद्धांत की संरचना सम्बन्धों का व्यवस्थित समुच्चय प्रस्तुत करती है। उससे विशिष्ट सम्बन्धों को निगमित (Deduce) करते हुए अनेक निष्कर्ष निकाले एवं सिद्धांत का विकास किया जा सकता है। इसके लिए निगमनात्मक प्रविधियाँ अपनायी जाती हैं। कारणात्मक सिद्धांत व्यवस्था-सिद्धांत से भिन्न होता है।

(3) प्रवृत्तिमूलक सम्बन्ध—ये राजसिद्धांत के निर्माण में उपयोग के लिए अतिरिक्त प्रकार के सामान्यीकरण प्रदान करते हैं। ये एक प्रकार के अवशिष्ट (Residuary) दावे होते हैं। इन्हें दुर्बल सामान्यीकरण माना जा सकता है। राजविज्ञान के अनेक सामान्यीकरण इसी प्रकार के हैं। प्रवृत्तिमूलक संयोग (Charce) की अपेक्षा अधिक बार घटित होने वाला दो या दो से अधिक चरों के बीच का सम्बन्ध है। इसे वास्तविक सम्भावना या घटना के रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता। इसलिए प्रवृत्तिमूलक सम्बन्धों की तुलना नहीं की जाती। कारक-सिद्धान्त (Factor-theory) प्रवृत्तिपरक विवरणों का समूह होता है। कॅपलन ने उससे अधिक व्यापक शृंखलित सिद्धान्त (Con catenated theory) बनाया है। इन्हें निगमनात्मक ढंग से संयुक्त किये जाने पर सिद्धान्त के रूप में विकसित किया जा सकता है। वे अमूर्त सिद्धांत के लिए समर्थनकारी भी हो सकते हैं।

संरचना की दृष्टि से, सैद्धान्तिक विश्लेषण में यह देखना चाहिए कि कौनसी संरचना प्रयुक्त की जा रही है? सिद्धान्त जितना कम संरचित होगा, उतना ही कम वह निगमनात्मक विश्लेषण, व्याख्या तथा पूर्वकथन के लिए सन्तोषजनक आधार बन सकेगा। एक पूर्ण सिद्धान्त निगमनात्मक विश्लेषण के लिए, पूरा कलन तथा सामान्यीकरणों का

समुच्चय प्रदान करता है, ताकि कोई भी सिद्धातशास्त्री ज्ञात सम्बन्धो को एक विचारबन्ध (Framework) मे एकीकृत कर सके। इससे अपरीक्षित सम्बन्धो के निगमित किये जाने की सम्भावना हो जाती है। वर्तमान समय मे, राजवैज्ञानिको को ऐसा पूर्ण सिद्धान्त उपलब्ध नही है और उन्हे दुर्बल सैद्धान्तिक सरचनाओ से ही काम चलाना पड रहा है।

(ग) अवधारणात्मक विषय सामग्री (Conceptual contents)

राजसिद्धात की विषय सामग्री मे, राजनीति विषयक, निगमनात्मक रूप से सम्बन्धित सामान्यीकरणो के समुच्चय (Set) को विकसित करने के लिए आधारभूत अवधारणाओ को शामिल किया जाता है। एक सिद्धात की अवधारणा को, दूसरे सिद्धात की परिभाषा के अन्तगत, रूपातरण नियमो के माध्यम से, उस सिद्धात मे सुगमतापूर्वक अनूदित किया जा सकता है। यदि एक सिद्धात निर्माता राजसिद्धात को विकसित करने के लिए मनोवैज्ञानिक अवधारणाओ को चुनता है, तो उसके सिद्धात की विषय सामग्री, समाजशास्त्रीय अवधारणाओ का प्रयोग करने वाले राजविज्ञानी (Political scientist) या शोधक की सामग्री से भिन्न होगी। किन्तु परिशुद्ध अवधारणाओ, कलन तथा रूपातरण नियमो के द्वारा उनका परस्पर उपयोग किया जा सकता है। किन्तु ऐसा करते समय, उनको यथावत् उद्धृत कर देने के बजाय पुर्नविवरण दिया जायेगा। इसके लिए मुख्य आधार मूलभूत अवधारणाओ को ही बनाया जाना चाहिए। स्वय राजविज्ञानियो ने मूलभूत अवधारणाओ को विभिन्न स्रोतो से अपनाया है। डेविड ईस्टन की अवधारणाएँ व्यवस्था विचारचित्र (System-paradigm) को अपनाती हैं और डॉयश राजविज्ञान के बाहर से सचार-सिद्धात (Communication theory) की अवधारणा को लाता है।

सिद्धान्त निर्माण की प्रक्रिया (Process of Theory Building)

सलग्न चित्र मे सिद्धात निर्माण प्रक्रिया तथा वैज्ञानिक पद्धतियो के पारस्परिक सबधों का अकन किया गया है। सिद्धात निर्माण की प्रक्रिया को सिद्धातन (Theorising), सिद्धात-निर्माण (Theory building), सिद्धातीकरण (Theorisation) आदि कहते हैं। सिद्धात-निर्माण की प्रक्रिया के अनेक चरण (Steps) होते है

सर्वप्रथम, सिद्धात निर्माण का आरम्भिक बिन्दु कोई वस्तु, घटना, विचार, प्रक्रिया, व्यक्ति, व्यक्तिसमूह, गतिविधियाँ आदि होता है। सिद्धातीकरण की आवश्यकता का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। यह कारण स्वय व्यक्ति के विचार या दृष्टिकोण से, अथवा अन्य किसी की माँग या प्रेरणा से सम्बन्धित हो सकता है। प्रत्येक वस्तु, व्यक्ति या घटना के अनन्त गुण, पक्ष या रूप होते हैं। किन्तु शोधक का उन सभी से सम्बन्ध या प्रयोजन नहीं होता। वह विशेष प्रयोजन से सम्बन्धित पक्षो या रूपो को ही उस वस्तु व्यक्ति, घटना या व्यवहार मे देखता है। उसके लक्ष्य या प्रयोजन से सम्बन्धित तथा आनुभविक अवलोकन या प्रेक्षण (Observation) के आधार पर, उस वस्तु या घटना के प्रेक्षित भाग को 'तथ्य' (Fact) कहा जाता है। यह तथ्य प्राय अवधारणात्मक विचारबन्ध (Conceptual Framework) की परिधि मे रहकर खोजे जाते हैं। जैसे किसी राजनेता के प्रभाव का अध्ययन करते समय उसकी सार्वजनिक गतिविधियो को ही देखा जाता है। अतएव ईस्टनीय विचारबन्ध मे रहते हुए यह देखा जायगा कि उसकी गतिविधियाँ सत्तात्मक मूल्यों के विनिधान (Allocation) को किस प्रकार और कहाँ तक प्रभावित कर रही है।

सिद्धांत-निर्माण प्रक्रिया
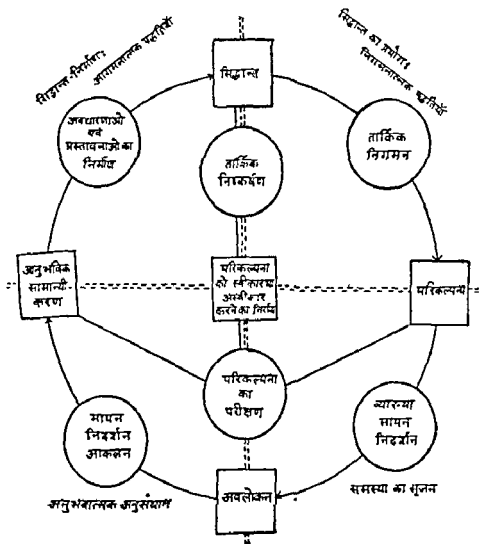
ज्ञान एवं सिद्धांत का (आयत तथा तीर) द्वारा प्रदर्शित सृजन तथा
उनका शोध-पद्धतियों (वृत्तों द्वारा प्रदर्शित) से सम्बन्ध

द्वितीय चरण मे अवधारणा या प्रत्यय (Concept) का निर्माण होता है। तथ्यों को विचारो मे ग्रहण किया जाता है। उस वस्तु, व्यक्ति या गतिविधि मे विशेष रूप से देखे गये गुणो के समूह या अश को अवधारणा, धारणा, म्बोध, प्रत्यय आदि कहते हैं। अवधारणा को निश्चित प्रतीक (Symbol), नाम, शब्द या पद दे दिये जाते हैं। अवधारणा बनाने या अवधारणीकरण (Conceptionalization) करने के कतिपय नियम होते हैं। उनके आधार पर सामान्य घटनाओ से तथ्यो का संकलन किया जाता है। उन्हें पहचाना जाता है। अवधारणा और तथ्य अलग-अलग वस्तुएँ है। अवधारणा घटनाओ को समझने के तरीके हैं। ये अमूर्त होते है। ये शोधक को सिद्धान्त की भाषा या शब्दावली प्रदान करते है तथा तथ्यो पर आधारित होते है। अवधारणाएँ सिद्धात मे आदि से अन्त तक रहती हैं। राजविज्ञान म अनेक अवधारणाएँ प्रसिद्ध हैं, जैसे अभिजन (Elite), व्यवस्था (System), सत्ता (Authority) आदि।

तृतीय चरण म अवधारणाओ का परिचालन (Operationalization) आता है इसका अर्थ यह है कि अवधारणाओ का आनुभविक या ठोस घटनाओ से सम्बन्ध बने रहना चाहिए। वे नितान्त अमूर्त या काल्पनिक नही होनी चाहिए। उनको तथ्यो एव दशाओ के आनुभविक प्रेक्षणो (Observations) के अनुरूप होना चाहिए। इस अनुरूपता या सम्बद्धता को बनाये रखने की प्रक्रिया को अवधारणाओं का परिचालन कहा जाता है। इसके अनुसार राजवैज्ञानिक अपनी अवधारणाओ को प्रेक्षणीय (Observable) तत्त्वो या चिह्नो से जोडता है। यह कार्य व्याख्याकरण (Explication) तथा परिभाषाकरण द्वारा किया जाता है।

अवधारणा मे शोधकर्त्ता वास्तविक जगत् से अपने लिए तथ्यों का चयन करता है तथा उन्हें शब्दो या प्रतीको से सम्बोधित करता है। ये शब्द कतिपय गुणो या विशेषताओ का सकेत करते हैं। वैसे ही गुणो से युक्त वस्तुओ या घटनाओ को उस अवधारणा के अन्तर्गत रख दिया जाता है। अवधारणा, इस प्रकार, शब्दो के द्वारा गुण समूहीकरण का वैचारिक नाम है। अवधारणाओ के स्वरूप को परिभाषा के द्वारा निश्चित कर दिया जाता है। उस अवधारणा को वैसी ही अनन्त वस्तुओ या घटनाओ के वर्ग पर लागू किया जा सकता है। यह कार्य आनुभविक विशेषताओ या गुणो के आधार पर परिचालन (Operationalize) करके किया जाता है। परिचालन के द्वारा तथ्यो से अवधारणाओ तक तथा अवधारणाओं से तथ्यो तक पहुँचा जा सकता है। परिचालन आनुभविकता के गुणो, प्रतीकों, सकेतो या पुलो (Bridges) का नाम है। इसी के द्वारा अवधारणाएँ वैज्ञानिक-भाषा का अग बनती हैं। सुपरिभाषित एव आनुभविक (Empirical) अवधारणाओं का मापन (Measurement) या परिमाणन (Quantification) भी किया जा सकता है।

चतुर्थ चरण मे वर्गीकरण (Classification) एव प्रकारणा (Typology) का निर्माण किया जाता है। अवधारणाओ को प्राय सामूहिक या समुच्चय रूप मे ही प्रयोग किया जाता है, अकेले नही। राजविज्ञान या समाज विज्ञान मे पारस्परिक सम्बद्धता (Relationship) महत्त्वपूर्ण होती है। अतएव समानताओं एव असमानताओं के आधार पर अवधारणाओ का व्यापक अवधारणाओ या विशेषताओ के अन्तर्गत वर्गीकरण (Classification) किया जाता है। जैसे, कतिपय अवधारणाओ के अन्तर्गत आने वाले व्यक्तियो को 'उदार' अथवा अन्य गतिविधियों को हिंसा या विद्रोह कह दिया जाता है। ये वर्गीकरण सश्लेषणात्मक या समन्वयात्मक अवधारणाओं द्वारा व्यक्त किये जाते हैं। इनके अधिक

व्यापक एवं संश्लिष्ट होने पर प्रकारणाएँ (Typologies) तैयार की जाती हैं। प्रकारणा सैद्धान्तिक उद्देश्यों को लेकर तैयार की जाती है। डहल ने इसी प्रकार की प्रकारणा रखी है।[31] *प्रकारणाएँ सामान्यीकरणों की प्राप्ति का मार्ग दिखाती हैं। सामान्य 'वर्गीकरण'* करने के भी कतिपय नियम होते हैं। ये वर्गीकरण परस्परव्यापी (Overlapping) नहीं होने चाहिएँ। उनके अन्तर्गत वैसी ही विशेषताएँ रखने वाले सभी तथ्य या घटनाएँ आ जानी चाहिएं।

पंचम चरण *सामान्यीकरणों (Generalizations)* के विकास एवं प्राप्ति से सम्बन्ध रखता है इन्हें सामान्यताएँ या निष्कर्षीकरण भी कह सकते हैं। सामान्यीकरण का साधारण अर्थ है, वस्तुओं, घटनाओं आदि के मध्य कतिपय सैद्धान्तिक (Theoretical) समानताओं या सामान्य विशेषताओं का निर्णयन। इन विशेषताओं का कथन वैसी ही अन्य *अनुपस्थित या अप्रेक्षित* वस्तुओं के विषय में भी कर दिया जाता है। वास्तव में देखा जाये तो अवधारणा एवं वर्गीकरण दोनों ही *सामान्यीकरण की प्रक्रिया पर आधारित हैं।* सामान्यीकरण कुछ और ऊपर की स्थिति है। यह अवधारणाओं के मध्य आनुभविक सम्बन्धों को व्यक्त करता है। किन्तु यह परिकल्पना या प्राक्कल्पना (Hypothesis) तथा विधि या नियम (Law) से भिन्न होता है। सामान्यीकरण निश्चित, सशर्त और स्पष्ट होता है। *परिकल्पना या प्राक्कल्पना अनुमान* मात्र होता है। मीहान के अनुसार, सामान्यीकरण एक ऐसा प्रस्ताव या सुझाव है, जो घटनाओं के दो या अधिक वर्गों को इस तरह जोड़ता है कि एक वर्ग में आने वाले सदस्य दूसरे वर्ग के सदस्य भी बन जाते हैं। सामान्यीकरण आगमनात्मक (Inductive) अथवा निष्कर्षात्मक होता है। वह वर्णन में परे जाकर बिना देखी हुई बातों के लिए भी लागू होने का प्रयास करता है। सामान्यीकरण के पुष्ट *(Confirm) हो* जाने पर, अवधारणाओं, वर्गों आदि के अन्तर्गत आने वाली अनन्त वस्तुओं, घटनाओं आदि का कथन किया जा सकता है। इनसे उन वस्तुओं या घटनाओं के व्यक्तिगत अवलोकन करने में लग सकने वाले समय और श्रम की बचत तथा ज्ञान की तीव्र गति से वृद्धि होती है।

छठा चरण स्वयं सिद्धान्त का निर्माण है। इस प्रक्रिया में समान प्रकृति के या सम्बद्ध सामान्यीकरणों में तालमेल बिठाया जाता है। सिद्धान्त अन्तर्सम्बन्धित सामान्यीकरणों का सैट (Set) होता है। वह सामान्यीकरणों का एक ऐसा 'सैट' या समुच्चय होता है, जो सामान्य कथनों, घटनाओं, दूसरे सिद्धान्तों या सामान्यीकरणों की व्याख्या करता है। *वोटर एवं मतदान व्यवहार से लेकर राष्ट्र-राज्यों की सैनिक गतिविधियों तक की व्याख्या* की जा सकती है। सिद्धांत को 'सत्य' और 'असत्य' के रूप में मूल्यांकन करने के बजाय आनुभविक नियमों के व्याख्याता के रूप में देखा जाना चाहिए। नियम विशिष्ट क्षेत्र में हमारे ज्ञान का विशिष्ट वर्णन करते हैं। सिद्धान्त ज्ञान की अधिक सामान्य रूप से तथा पूर्णतः व्याख्या करता है *ताकि अलग-अलग दिखायी पड़ने वाले तथ्यों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों* का पता चल सके।

सिद्धान्तों की प्रस्थिति (Status) के विषय में विज्ञान दार्शनिकों के मध्य विवाद है।[32] कुछ विद्वान उन्हें आनुभविक नियमों के समान सत्य या सत्यापित मानते हुए, उनको जगत के प्रेक्षण का वास्तविक वर्णन मानते हैं। उन्हें *यथार्थवादी (Realist)* कहा जाता है। ये यथार्थ घटकों से सम्बन्धित अवधारणाओं में, किसी प्रकार का, तार्किक या दार्शनिक,

सैद्धांतिक या असैद्धांतिक अन्तर नही करते । इसके विरुद्ध उपकरणवादियों (Instrumentalists) की स्थिति है । इन्हें सिद्धान्त के सत्य, असत्य या दोनो से ही कोई मतलब नही है । उनके अनुसार सिद्धांत जगत् का वर्णन नही करता, अपितु जगत् की घटनाओ की व्याख्या अथवा पूर्वकथन करता है । सिद्धांत की जांच वे इस आधार पर करते हैं कि वह किस प्रकार इन कार्यों को करता है ? किन्तु सिद्धांत में यथार्थता की पूर्ण अस्वीकृति एक त्रुटिपूर्ण मान्यता है । सिद्धांत मे सैद्धांतिक अवधारणाएँ होती हैं, किन्तु वे आनुभविक निर्वचन के माध्यम से प्रेक्षण से सम्बद्ध हो जाती हैं । अत सिद्धांत न्यूनाधिक रूप से जगत् का वर्णन करता है । सैद्धांतिक अवधारणाएँ रिक्तियों (Gaps) को भरती है तथा अलग-अलग आनुभविक नियमो द्वारा व्याख्या की जाने वाली वस्तुओं की ओर अधिक सामान्य शब्दों में व्याख्या करती हैं ।

व्याख्या के अतिरिक्त राजवैज्ञानिक सिद्धान्त का, राजवेत्ताओ द्वारा, विशेष क्षेत्र मे उपलब्ध ज्ञान के सगठन, सुव्यवस्थाकरण तथा समन्वयन मे भी उपयोग किया जाता है । मैनहीम के अनुसार, यह एक अवधारणात्मक सयन्त्र, (Apparatus) है जो किसी अनुभव-योग्य क्षेत्र मे उसकी व्याख्या और पूर्वकथन कर सकने को सम्भव बनाता है । राजविज्ञान मे सिद्धात के भी तीन प्रकार पाये जाते हैं--(क) शाश्वत, (ख) सम्भावनात्मक, तथा (ग) प्रवृत्तिमूलक । शाश्वत-सिद्धात मे ऐसे सिद्ध एव मान्य सामान्यीकरण होते हैं, जिन्हें सर्वत्र लागू हो सकने वाली विधियो की तरह, जैसे, दो और दो चार होते हैं, मान लिया जाता है । स्पष्टत राजविज्ञान मे ऐसे सिद्धातो का निर्माण नहीं हुआ है । व्याख्यात्मकता की मात्रा के आधार पर वे सम्भावना (Probability) अथवा प्रवृत्ति (Tendency) के परिचायक हो सकते हैं । अनुसधान एव शोध प्रविधियों के विकास के साथ ही सिद्धात-निर्माण के कार्य मे भी प्रगति आती जायेगी ।*

सिद्धान्त-निर्माण-प्रक्रिया का मूल्यांकन
(Evaluation of Theory-Building Process)

आनुभविक सिद्धातो का उनकी युक्तियुक्तता तथा उपयोगिता के आधार पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए । उसमे यह देखा जा सकता है कि क्या वह ठीक प्रकार से निर्मित है तथा आनुभविकता पर आधारित हैं ? वह किस प्रकार के कार्यों को करने मे सक्षम तथा कहाँ तक उपयोगी है ? उसमे वर्तमान घटनाओ की व्याख्या करने तथा भविष्य मे झाकने की कितनी सामर्थ्य है ? आदि । सिद्धात का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य तथ्यो एवं घटनाओं की व्याख्या करना होता है । किन्तु उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य आनुभविक सामान्यीकरणों की व्याख्या करना है । उसी से सिद्धान्त को वास्तविक शक्ति मिलती है ।

वैज्ञानिक सिद्धात आनुभविक सामान्यीकरणो की व्याख्या करने मे सक्षम होता है क्योंकि उनकी अपेक्षा वह अधिक सामान्य तथा अधिक अन्तर्भावी होता है । राजविज्ञान मे, सामान्य प्रेरक-अनुक्रिया-अधिगम (Stimulus-response-learning) सिद्धात से यह आशा की जा सकती है । ऐसे सिद्धात स्वय एक व्यवस्थाकरण (Systematization) है । ज्यो-ज्यो सिद्धान्त व्याख्या करता चलता है, तथ्यो के सगठन करने का कार्य

---

* To test an hypothesis is a kind of handicraft, to make a theory is to make a work of art —Galtung

9. वही, पृ 421
10. Ernest Nagel, op. cit , Chap. 4.
11. Nelson Polsby, Community Power and Political Theory, New Haven, Conn., Yale University Press, 1963, Chap 4.
12. 'जनसंख्या' के लिए आगे देखिए, अध्याय–13 ।
13. Carl G Hempel, Philosophy of Natural Science, Englewood· Cliffs, N J, Prentice-Hall, Inc, 1966, pp. 54–67
14. Israel Scheffler, The Anatomy of Inqniry, New York, Alfred A, Knopf, 1963, Part–III.
15. Hans Reichenbach, The Rise of Scientific Philosophy, Berkeley, University of California Press, 19›1, p 246
16. Herbert Mc-Closky, "Conservatism and Personality", American Political Science Review Vol L–II, 1958, pp 27–45
17. श्यामलाल वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, द्वितीय सस्करण, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1977, पृ. 25–26 , David Easton, The Political System : An Inquiry into the State of Political Science, 2nd Indian ed., Calcutta, Scientific Book Agency, (1953), 1971, pp 38-78.
18. Robert A. Dahl, Modern Political Analysis, Indian ed , New Delhi, Prentice-Hall of India, 1965, pp 31–38.
19. Alan C. Issak, Scope and Methods of Political Science, New-York, The Dorsey Press, 1969, pp 136–54.
20. Arnold Brecht, Political Theory, Princeton, New Jersey, Princeton University Press, 1959, p. 19.
21. Quentin Gibson, The Logic of Social Icquiry, London, Routeledge & Kegal Paul, 1960, p 113
22. Nelson Polsby, et, al, eds , Politics and Social Life, Boston, Houghton Miflin Co , 1963, p. 69
23. Robert K. Merton, Sociology Today, New York, Basic Books, 1959, p 89.
24. Iqbal Narain, et alii, Election Studies in India (Report of an ICSSR Project), Bombay, Allied Publishers Pvt Ltd , 1978
25. Issak, op cit , 138
26. Hempel, op. cit , P 34
27. वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, पूर्वोक्त, पृ. 50-56

28 Easton op cit, pp 55 63

29 Robert K Merton, Social Theory and Social Structure . Toward the Codification of Theory and Research, New York, Free Press, pp 5 10

30 Easton op cit 314 17

31 Graham op cit pp 314 17

32 Dahl op cit, pp 31-38

33 Abraham Kaplan The Conduct of Inquiry, San Fransisco, Chandler Publishing Co, 1964, Chap 8

अध्याय 7

अनुसंधान प्रक्रिया : समस्या, परिकल्पना एवं अभिकल्प

(Research Process : Problem, Hypothesis and Design)

समस्या का निर्धारण (Formulation of Problem)

प्रत्येक विषय की तरह, राजविज्ञान मे भी शोध कार्य का समारम्भ समस्या के निर्धारण (Formulation of problem) के साथ होता है। राजनीति के क्षेत्र मे तथा राजविज्ञान स्वय मे अनेकानेक समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। अनुसधान कत्ता उनमे से किसी एक समस्या को उठाता है तथा अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर उस समस्या के विषय में कतिपय सुझाव, प्रस्तावनाएँ, समाधान आदि रखता है। इस अवस्था या क्रिया को उपकल्पना, परिकल्पना या प्रकल्पना (Hypothesis) कहा जाता है। इसके बाद वह वस्तुपरक ढग से अध्ययन करने के लिए एक वैचारिक योजना या शोध की रूपरेखा बनाता है। इसे शोध प्ररचना, अभिकल्प (Research design) कहते हैं। इस अध्याय मे इन्हीं तीनो—समस्या निर्धारण, परिकल्पना तथा अभिकल्प पर विचार किया जायेगा।

समस्त वैज्ञानिक गवेषणाएँ प्रश्न पूछने या समस्या के साथ आरम्भ होती हैं।* ये प्रश्न चुनौती बनकर सामने आते हैं तथा उत्तर, व्याख्याएँ, पूर्वकथन, प्रयोग, अवलोकन आदि की माँग करते हैं। सबसे पहले किसी न किसी प्रकार की कठिनाई या अज्ञानता का अनुभव किया जाता है। उसके बाद, उस कठिनाई या समस्या को पहचाना (Identification) जाता है। ऐसा किए जाने के बाद समस्या के स्वरूप का निर्धारण (Problem-formulation) होता है। ये तीनो समस्या का अनुभव, पहचान, तथा निर्धारण सम्बन्धी अवस्थाएँ कहलाती हैं।

समस्या को पहचानना तथा उसके स्वरूप का निर्धारण करना एक अत्यन्त कठिन एव महत्त्वपूर्ण कार्य है। समस्या के चयन का समस्या शोध पर जबरदस्त प्रभाव पडता है। उसके साथ एक ओर स्वय अनुसधानकर्ता की क्षमता एव साधनों के प्रश्न जुड़े हुए होते हैं तो दूसरी ओर, समस्या के अध्ययन से सम्बन्धित चुनौतियाँ समाधान माँगती हैं। शोध-कार्य आरम्भ करने से पूर्व इन बातो पर सबसे अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए क्योंकि यहीं पर अनुसधान अभिकल्प (Design) का स्वरूप निर्धारित होना है। इसी अवस्था मे यह देख लिया जाता है कि उस समस्या का महत्त्व एव उपयोगिता क्या है? क्या उसके

---

* Scientists do not enjoy absolute freedom to study what they will
— Sjoberg and Nett

All scientific investigation begins with asking a question
— McGraw and Watson

अनुसंधान के लिए उपयुक्त साधन एवं सामग्री मिल सकेगी ? क्या वह समस्या अन्य समस्याओं की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण है ? इसके लिए उसे उपलब्ध साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं आदि का अध्ययन कर लेना चाहिए। राजविज्ञान का आधार समस्यात्मक है, इसलिए उसमें समस्याओं की कोई कमी नहीं है। शोधक सहज रूप में विभिन्न 'सिद्धांतों' (Theories) के मध्य विरोधाभासों, किसी एक सिद्धांत के भीतर परस्पर विरोधी बातों, या सिद्धांत एवं अवलोकन या अनुभव के मध्य विरोधों को अपने अनुसंधान का विषय बना सकता है। वह राजनीति की भूमिका वाली किसी भी समस्या को लेकर शोध-कार्य आरम्भ कर सकता है। किन्तु उसे 'समस्या' के अलावा अन्य पक्षों का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए।

सुविधा की दृष्टि से समस्याओं को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—

(1) आनुभविक (Empirical) समस्याएँ,

(2) विश्लेषणात्मक (Analytic) समस्याएँ, तथा

(3) मानकीय (Normative) समस्याएँ।

इनमें आनुभविक समस्याओं के समाधान मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव अर्थात् तथ्यात्मक अनुभव के आधार पर ढूँढ़े जाते हैं। जैसे, यदि यह पता लगाना है कि क्या सभी लोकतन्त्र औद्योगीकृत राष्ट्र हैं या, राजनैतिक अस्थायित्व, राजनैतिक असमानता से जुड़ा हुआ है ? तो हमें वास्तविक तथ्यों का अवलोकन करके 'हाँ' या 'ना' का उत्तर देना होगा। विश्लेषणात्मक समस्याओं में हमें वाक्य के अन्तर्गत शब्दों के अर्थों पर ध्यान देना पड़ता है। ये समस्याएँ परिभाषा-प्रधान होती हैं, इस कारण इनका सम्बन्ध भाषा एवं अवधारणाओं से होता है। जैसे, यह देखने के लिए कि क्या लोकतन्त्रात्मक देश लोकतन्त्रात्मक ढंग से शासन चलाते हैं ? हमें 'लोकतन्त्र' शब्द का विश्लेषण करना होगा। मानकीय समस्याएं ऐसे प्रश्नों से सम्बद्ध होती हैं जिनके समाधान मूल्यात्मक निर्णयों पर निर्भर होते हैं। मूल्यात्मक निर्णय यह बताते हैं कि क्या वांछनीय, श्रेष्ठ, नैतिक, करणीय या बाध्यकारी है ? इनके दो रूप हो सकते हैं—(क) मूल्यांकनात्मक (Evaluative), तथा, (ख) निर्देशात्मक (Prescriptive)। 'लोकतन्त्र तानाशाही शासन से श्रेष्ठ होता है', एक मूल्यांकनात्मक निर्णयन है। इसी तरह, 'सभी शासनों को लोकतन्त्र होना चाहिए' एक निर्देशनात्मक निर्णय है।

'समस्या' का निर्धारण करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि अपने आप में स्पष्ट हो। वैज्ञानिक दृष्टि से उपयोगी समस्याओं की कतिपय विशेषताएँ होती हैं। सर्वप्रथम, उसमें समस्या का स्पष्ट कथन होना चाहिए जिससे उसके कार्यक्षेत्र एवं अर्थ का पता चल सके। ऐसा न हो कि राजनैतिक दलों में टूटन या विघटन का विश्लेषण करते करते शोध-कर्त्ता दबाव-समूहों में घुस जाये या जनता में चरित्र की गिरावट को कोसने लगे। उसे अपने विषय के केन्द्रीय या मर्मस्थल को छोड़कर गौण या परिधि के इर्द-गिर्द चक्कर नहीं लगाना चाहिए। स्पष्ट उत्तर पाने के लिए प्रश्न भी स्पष्ट होना चाहिए। उसमें प्रयुक्त भाषा एकार्थक, विशिष्ट एवं निश्चित होनी चाहिए ताकि वह व्यक्तिशः संचारणीय हो सके। द्वितीय, समस्या व्याख्यापरक (Explicit) होनी चाहिए। उसे प्रत्येक व्यक्ति देख, सोच एवं समझ सकें। राजनीतिक समस्याएँ, सामाजिक, भौतिक, समूहवादी तथा समसामयिक होती हैं। उन्हें बहुत अधिक मात्रा में अतीत या अमूर्त जगत् से सम्बन्धित नहीं करना चाहिए।

भ्रष्ट राजनेताओं के आचरण या आत्म के स्वरूप से कोई सीधा सम्बन्ध दिखाई नही देता अतएव शोधक को भावुकता के जाल मे फँसने से बचना चाहिए। तीसरी बात यह है कि समस्या यथासम्भव मौलिक (Original) होनी चाहिए। यद्यपि अनेकानेक समस्याएँ, जैसे, लोकतन्त्र का स्वरूप, विधि के शासन का कार्यान्वयन आदि पुरातन होते हुए भी सदाबहार होती हैं, किन्तु उनका स्वरूप, अध्ययन का दृष्टिकोण एव पद्धति आदि नवीनता लिए हुए होनी चाहिए। इसके लिए उस विषय पर लिखे गए साहित्य एव शोध प्रयासो का आकलन किया जा सकता है, ताकि पुनरावृत्ति, चोरी के आरोप, प्रयासो की निरर्थकता आदि से बचा जा सके। इसके लिए विश्वकोषो, शोध-साराश-पत्रिकाओ तथा शैक्षिक सम्पर्कों की सहायता ली जा सकती है। चौथी विशेषता परीक्षणीयता (Testability) है। समस्या ऐसी होनी चाहिए कि उसकी आनुभविक रूप से या प्रयोगात्मक आधार पर जांच की जा सके। कई समस्याएँ बडी उपयोगी, चिंतावर्धक तथा करणीय लगती है किन्तु उपयुक्त साधनो, पद्धतियो और प्रविधियो के अभाव म उन्ह न तो अनुसधान का विषय बनाया जा सकता है और न ही विज्ञान के दायरे मे शामिल किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, शासन का सर्वोत्तम प्रकार वैज्ञानिक अनुसधान का विषय नही बन सकता। पाचवीं विशेषता के अनुसार समस्या को सैद्धान्तिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण (Theoretically relevant) होना चाहिए। दूसरे शब्दो मे, उसके निष्कर्ष ऐसे निकलें कि वह वैसी समस्याओ या चरो की व्याख्या कर सकने मे सहायक हो, अथवा उपलब्ध सिद्धात को या तो पुष्ट करे या विकसित करे। सरल शब्दो मे, वह ज्ञान की वृद्धि म योगदान करने वाली होनी चाहिए। छठी और अतिम विशेषता यह है कि समस्या सगतिपूर्ण (Relevant) होनी चाहिए। उत्तर-व्यवहारवादी दृष्टिकोण मे यह आवश्यक समझा गया है कि वह समाज के लिए उपयोगी हो तथा पर्यावरण (Environment) को ठीक प्रकार से प्रभावित कर सकने वाली हो। उससे गरीबी, साम्प्रदायिकता, आर्थिक सकट, सत्ता के केन्द्रीयकरण आदि समस्याओ के समाधान म सहायता मिलती हो। वर्तमान समय मे, राज्य के आध्यात्मिक स्वरूप या सविधानवाद का अध्ययन करने स समाज को कोई तात्कालिक लाभ मिलने वाला नही है।

प्रकल्पना (Hypothesis)

वैज्ञानिक ज्ञान केवल घटनाओ (Phenomena) का अवलोकन या तथ्यो को एकत्रित करने मे ही प्राप्त नही होता, उसके लिए प्रकल्पना (Hypothesis), परिकल्पना, उपकल्पना या प्राक्कल्पना का सहारा लिया जाता है। ये समस्याओ के अनुमानित समाधान या प्रश्नों के सम्भावित उत्तर होते हैं, जिनकी बाद म विधिवत, जाँच, विश्लेषण या परीक्षा की जाती है। प्रकल्पना के अनेक मिलते-जुलते स्वरूप हैं, यथा, अनुमान, प्रस्ताव, कल्पना, सूझ विचार, चिन्तन, अ तर्दृष्टि या अ तर्प्रज्ञा आदि। यदि कुछ न कुछ आरम्भिक ज्ञान या सामान्य अनुभव भी नही हो तो शोध कार्य या वैज्ञानिक अध्ययन की शुरुआत भी नही हो सकती। किसी भी समस्या या प्रश्न के उठने ही व्यक्ति का सामान्य अनुमान कुछ न-कुछ समाधान लेकर सामने आता है। यही अनुमान 'प्रकल्पना' कहलाता है और अनुसधान का आरम्भ बिन्दु, मार्ग निर्देशक, सहारा, दिशा-सूचक आदि बन जाता है। उसी के प्रकाश मे तथ्यों को एकत्रित किया तथा निष्कर्ष निकाले जाते है। प्रकल्पना के द्वारा शोधक स्वेच्छा से अपने साधनो एव क्षेत्र की सीमा को स्वीकार कर लेता है और समस्या के विशिष्ट पक्षों पर ही अपना ध्यान केन्द्रित रखता है।[1]

परिभाषा एवं व्याख्या (Definition and Explanation)

प्रकल्पना किसी समस्या के समाधान के विषय में अग्रिम विचार है।* यह ऐसी प्रस्तावना या सुझाव है जिसकी जाँच करनी बाकी है। लुण्डबर्ग के अनुसार, प्रकल्पना 'एक अस्थायी सामान्यीकरण है, जिसकी प्रामाणिकता की जाँच करना शेष है।'[2] यंग के अनुसार, यह शोध क्रिया का 'अस्थायी, केन्द्रीय किन्तु अति महत्वपूर्ण विचार' है। इसे अनुसंधान का मार्गदर्शक (Guide) कहा जा सकता है। गुड एवं हैट ने इसे एक ऐसी प्रस्तावना (Propositions) कहा है जिसकी प्रामाणिकता (Validity) की परीक्षा की जा सकती हो।[3] बर्नार्ड फिलिप्स के शब्दों में, 'यह घटनाओं के मध्य सम्बन्धों के विषय में अस्थायी कथन है।' गाल्टुंग के मत में, 'प्रकल्पना निश्चित इकाइयों एवं कारकों की पूर्व कल्पना है तथा यह इनके परस्पर वितरण एवं सम्बन्धों को बतलाती है।'[4] किन्तु यह सामान्य कथनों से भिन्न होती है। कैनथ डी बेली के अनुसार, 'प्रकल्पना एक प्रस्तावना है। जिसे परीक्षणीय रूप लिखा जाता है तथा जो दो (या अधिक चरों) के मध्य विशिष्ट सम्बन्धों का पूर्वकथन करती है।' डेल योडर ने, सरल शब्दों में, उसे 'सुविचारित अनुमान या कल्पना' (*A considered guess or hunch*) कहा है। किन्तु वैज्ञानिक प्रकल्पनाएँ 'किसी सिद्धांत से निसृत (Derived) आनुभविक रूप से परीक्षणीय कथन' होती है।[5]

वैज्ञानिक प्रकल्पनाओं को दूसरे मिलते-जुलते शब्दों, जैसे, प्रस्तावना, सामान्यीकरण, नियम आदि, से पृथक् किया जाना चाहिए। वह प्रस्तावना (Propositions) से भिन्न होती है। प्रस्तावना उस कथन को कहा जाता है जिसका परीक्षण एवं पुष्टिकरण नहीं किया गया है। प्रसंग के अभाव में वह प्रायः अस्पष्ट तथा अनेकार्थक होता है। कभी-कभी सामान्यीकरणों एवं प्रकल्पनाओं को पर्यायवाची शब्दों के रूप में उपयोग किया जाता है। किन्तु सामान्यीकरण अवधारणाओं की सम्बद्धता के परिचायक होते हैं, जबकि प्रकल्पनाएँ अनुमान मात्र होती हैं। नियम (Laws) परीक्षित एवं पुष्ट (Tested and confirmed) प्रकल्पनाओं को कहते हैं, जैसे, 'यदि 'क' है, तो हमेशा 'ख' भी होगा।'

वैज्ञानिक प्रकल्पनाओं के दो महत्वपूर्ण कार्य हैं—(i) अवधारणाओं को जोड़कर उनमें सुव्यवस्था एवं संगठन लाना, तथा, (ii) वैज्ञानिक सिद्धान्तों के परीक्षण को सुविधा-

---

* An hypothesis is a tentative generalization, the validity of which remains to be tested. In its most elementary stages, the hypothesis may be any hunch, guess, imaginative idea or intuition whatsoever which becomes the basis of action or investigation

—G. A. Lundberg

Scientific hypotheses are empirically testable statements derived from a theory —McGraw and Watson

The *formulation* of the deduction constitutes a hypothesis, if verified it becomes part of a future theoretical construction

—Goode and Hatt

An hypothesis assigns a value of variable to unit

—Galtung

बनाना। इस दृष्टि से, प्रकल्पनाएं अमूर्त सिद्धान्तो को आनुभविक जगत् मे संयुक्त है। प्रकल्पना शोधक के लिए गाइड या मार्ग निर्देशक की तरह होती है। वे अध्ययन-निश्चित बना देती हैं, कि कितना और क्या अध्ययन करना है? किन तथ्यो को ना या छोडना है? इनसे समय, शक्ति धन आदि का, उसके अभाव से हो सकने वाला व्यय रुक जाता है। उसे एक केन्द्रीय राजमार्ग की तरह माना जा सकता है। प्रकल्पना को सम्मुख रखकर चलने से अनुसधान-क्षेत्र सीमित और निश्चित हो जाता है। वह ध्रुव तारे की तरह अनुसधान की दिशा निर्देश करता है कि शोधक को क्या और क्या नहीं करना है? उससे लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है। शोधक या समाजविज्ञानी के प्रयास उद्देश्यपूर्ण, अर्थयुक्त एव सुनिश्चित हो जाते हैं। वह केवल सम्बद्ध एव उपयोगी तथ्यो की ही खोज करता है। शोधक अपने लिए सब कुछ मे से 'कुछ' को छांट लेता है। प्रकल्पना उसे धनै-शनै सत्य के समीप ले जाती है। चाहे परिणाम प्रकल्पना के अनुकूल हो अथवा-प्रतिकूल, अनुसधानकर्ता अपने गन्तव्य तक पहुँच जाता है।[6]

वैज्ञानिक प्रकल्पना सिद्धान्त से सम्बद्ध होती है। इसका अर्थ यह है कि वह मन-गढन्त, अस्वाभाविक, अतिव्यापक या अस्पष्ट न होकर किसी सिद्धान्त के सन्दर्भ मे रखी जाती है। गुड एव हैट ने इस दृष्टि से, प्रकल्पनाओ को निगमित प्रस्तावनाएँ' (Deduced propositions) कहा है। वे सिद्धान्त से जोडने वाली कड़ियो या गाँठो के रूप मे होती हैं। उन्हें सिद्धान्त रूपी पेड से निकलने वाली टहनियो की तरह देखा जा सकता है। वे परीक्षित होकर स्वय सिद्धान्त का भाग बन जाती हैं। ऐसी प्रकल्पनाओ का आनुभविक परीक्षण किया जाता है। एक ओर वे गवेषणा मे सही प्रकार की आधार सामग्री एकत्रित करने मे मार्ग निर्देशन देती हैं, दूसरी ओर यह बताती हैं कि अधिकाधिक कुशलता से तथ्यो को कैसे एकत्रित किया जाय। वह तथ्यो को सुव्यवस्थित करने का तरीका बताती है। हो सकता है कि उनके द्वारा दिये गये सुझाव ही शोध के अन्त मे समाधान बन कर निकलें। प्रकल्पना शोध रूपी कार को चालू कर देती है तथा शुरू से अन्त तक साथ देती है।

किन्तु यहाँ यह बता देना बहुत आवश्यक है कि जहाँ अनुसधान को एक सुनिर्मित प्रकल्पना से प्रारम्भ करना चाहिए, वहाँ स्वय अनुसधान प्रकल्पना के साथ शुरू हुए बिना ही किसी प्रकल्पना म समाप्त हो सकता है। इसका अर्थ यह है कि कई बार शोध प्रकल्पना की स्थापना किये बिना ही अनुसधान कार्य करने के लिये विवश हो जाता है। उसे कोई प्रकल्पना नही सूझती और न ही मिलती है। चाहे वह प्रकल्पना के सभी स्रोतो को छान मारे, उसे कुछ नही मिलता और उसे आगे बढ़ना पडता है। कई बार परीक्षणीय प्रकल्पनाओ को पाने के लिये भारी मात्रा म शोध एव विश्लेषण करना पडता है, तब जाकर उसे कुछ प्रकल्पनाएं मिल पाती हैं। ऐसा करने के बाद, शोधक अनुसधान की दिशा मे और आगे बढ़ सकता है। किन्तु ऐसी स्थिति म प्रकल्पना प्रारम्भ के बजाय परिणाम या अन्त तक बन जाती है। स्वय यग ने कहा है कि शोध प्रकल्पना की स्थापना के बिना ही प्रारम्भ हो सकती है। ऐसी अवस्था मे अध्ययन के लक्ष्य अथवा आधारभूत मान्यताएँ अवश्य ही स्पष्ट एव निर्धारित होनी चाहिए। प्रकल्पनाओ के अभाव में इन्हें ही प्रारम्भ बिन्दु माना जा सकता है। लेकिन प्रकल्पनाओ के अभाव म अनुसधान अत्यन्त कठिन, श्रमसाध्य तथा समय नष्ट करने वाला हो जाता है। प्रकल्पना असम्बद्ध घटनाओ के झमेले में पडने से शोधक को बचा लेती है। उसके बिना अनुसधान अन्धी खोज या धुन मे लट्ठ बन जाता है।

किन्तु अच्छी प्रकल्पनाओं का प्राप्त होना एक कठिन समस्या है। गुड एवं हैट ने इस विषय में तीन कठिनाइयों का उल्लेख किया है। सर्वप्रथम, उन्होंने बताया है कि शोधक के पास कोई ऐसा सिद्धान्त, या सैद्धान्तिक रूपरेखा नहीं होती जिसके आधार पर वह प्रकल्पना प्राप्त कर सके, द्वितीय, उसके पास कोई सैद्धान्तिक रूपरेखा होने पर भी, कई बार उसमें उसका उपयोग करने की योग्यता नहीं होती, तथा तृतीय शोधक में अनुसंधान प्रविधि के ज्ञान का अभाव होना है। इनके अतिरिक्त और भी कई समस्याएँ सामने आती हैं। आधुनिक समाज एवं राजनीति की समस्याएँ बहुत जटिल एवं बहुमुखी होती हैं। उनके समाधान के विषय में पहले से ही अनुमान लगाना जटिल होता है। राजनैतिक घटनाएँ बहुत तेजी से पलटती हैं। उनका समाधान सोचते सोचते ही वे अपने मूल स्वरूप को बदल लेती है। प्रायः प्रकल्पनाओं का निर्माण एक विशेष सांस्कृतिक परिवेश में होता है। इस कारण वे प्रायः संस्कृतिबद्ध होती हैं। किन्तु यातायात, संचार आदि के तीव्र साधनों के कारण सांस्कृतिक आदान प्रदान की क्रिया बहुत तेजी से चल रही है। कई बार प्रचलित सिद्धान्तों के आधार पर प्रकल्पना-निर्माण तो कर लिया जाता है, किन्तु आगे चलकर स्वयं सिद्धान्तों में ही परिवर्तन आ जाता है। स्वयं शोधक भी पूर्वाग्रहों, पक्षपात, अज्ञान आदि से ग्रसित होकर प्रकल्पना कथन करने लग जाता है। स्वजाति श्रेष्ठतावाद (Ethnocentrism) से प्रायः सभी व्यक्ति ग्रसित होते हैं। वे अपने समाज एवं संस्कृति को ही श्रेष्ठ मानकर उसे सही सिद्ध करने में लगे रहते है। कई बार स्वयं सूचनाएँ ही पक्षपात एवं मिथ्या-झुकाव से भरी होती हैं। उत्तरदाता, सरकारी अथवा गैर-सरकारी संस्थाएँ जानबूझकर सही तथ्यों को छिपाने या दबाने में रुचि रखती हैं। अनुसंधान-कार्य में एक बड़ा खतरा यह भी है कि शोधक अपनी प्रकल्पना को अन्तिम सत्य मानकर उसे सत्य सिद्ध करने में जुट जाता है। वे तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने लग जाते हैं। वेस्टाबे ने सचेत किया है कि 'प्रकल्पनाएँ वे लोरियाँ हैं जो असावधान (शोधक) को गाना गाकर सुला देती हैं।" शोधक को केवल और केवल सही तथ्यों की ओर देखना चाहिए। उसे अपनी प्रकल्पना को असत्य मानने के लिए तैयार रहना चाहिए। कभी-कभी तथ्यों को बनाने, जमाने या दिखाने वालों के भी निहित स्वार्थ होते है। प्रकल्पनाओं की उपयोगिता तीन बातों पर निर्भर होती है : (i) तीक्ष्ण अवलोकन, (ii) अनुशासित कल्पना तथा रचनात्मक चिन्तन, तथा, (iii) कोई सैद्धान्तिक रूपरेखा की बनावट का ज्ञान।

प्रकल्पनाओं के स्रोत (Sources of Hypotheses)

सामान्य तौर पर प्रकल्पनाएँ दो स्रोतों (Sources) से प्राप्त होती हैं : (i) व्यक्तिगत स्रोत (Individual source) जिसमें स्वयं शोधक की कल्पना, विचार, अनुमान, अन्तर्दृष्टि, अन्तर्प्रज्ञा, अनुभव आदि होते हैं, तथा, बाह्य स्रोत (External source) इसमें साहित्य, समाचार-पत्र, दूसरों के अनुभव, शोध-अध्ययन आदि आते हैं।[7]

गुड एवं हैट ने विभिन्न स्रोतों को चार शीर्षकों के अन्तर्गत रखा है : (i) सामान्य संस्कृति, (ii) वैज्ञानिक सिद्धान्त, (iii) सादृश्यता, तथा, (iv) व्यक्तिगत अनुभव।[8]

(i) सामान्य संस्कृति (General culture)—बाह्य परिवेश (Environment) प्रकल्पनाओं का महत्त्वपूर्ण और सबसे बड़ा स्रोत होता है। इसमें सामान्य संस्कृति, सामाजिक समस्याएँ, विभिन्नताएँ राजनैतिक गतिविधियाँ आदि आती हैं। इनको विभिन्न ऐतिहासिक कालों, स्थानों तथा समूहों के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिये,

भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का स्वरूप तथा उसकी सांस्कृतिक विशेषताएँ, भारतीय संसदीय शासनतन्त्र की ब्रिटिश पद्धति से तुलना, भारतीय तथा अमरीकी संघ शासन, जातिप्रथा एवं मतदान-व्यवहार आदि विषय फलप्रद प्रकल्पनाएँ प्रदान कर सकते हैं।

(ii) वैज्ञानिक सिद्धान्त (Scientific theories)—स्वयं राजविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि से अनेक नवीन प्रकल्पनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। राजविज्ञान में उपलब्ध विभिन्न सिद्धान्त एवं अर्द्ध-सिद्धान्त, सामान्यीकरण, तथ्य आदि की पुनर्परीक्षा की जा सकती है, अथवा उनसे नयी परिकल्पनाएँ विकसित की जा सकती हैं। वस्तुतः इनका पूर्व ज्ञान तथा पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है, ताकि राजविज्ञान का आगे विकास किया जा सके। यह देखा जा सकता है कि वेबरीय नौकरशाही विकासशील देशों में कहाँ तक राजतन्त्र का एक तटस्थ उपकरण है अथवा क्या विकास की अवस्थाएँ सर्वत्र समान हैं? क्या गरीबी अथवा सामाजिक असमानता का राजनीतिक अस्थायित्व से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध है, आदि। ऐसी समस्याएँ पूर्व स्थापित सिद्धान्तों से निगमन (Deduction) की जाती हैं।

(iii) सादृश्यता (Analogy)—मिलती-जुलती घटनाएँ, व्यक्तित्व, समूह आदि भी प्रकल्पनाओं के उपयोगी स्रोत होते हैं। औद्योगीकरण या भूमिकाओं का अध्ययन करने से अनेक प्रकल्पनाओं को प्राप्त किया जा सकता है। इसी प्रकार, आंगिक (Organis) सिद्धान्त से व्यवस्था जैसी धारणाओं को लेकर अनेक प्रकल्पनाएँ विकसित की गयी हैं।

(iv) व्यक्तिगत अनुभव (Personal Experience)—स्वयं शोधक अपने निजी अनुभवों के आधार पर प्राक्कल्पनाएँ विकसित कर सकता है। नगरपालिका या ग्राम-पंचायतों में अपने अनुभव के आधार पर कोई स्थानीय राजनेता उनको सशक्त या स्वायत्त बनाने की प्रकल्पना का अधिक प्रभावशीलता से सम्बन्ध जोड़ सकता है। पुलिस में विकृत भर्ती प्रणालियों का सम्बन्ध उसकी अकुशलता से जोड़ा जा सकता है। सर हर्बर्ट रिजे (Sir Herbert Risley) ने जनगणना अधीक्षक के रूप में कार्य किया और अपने अनुभव के आधार पर प्रजातीय-सिद्धान्त का विकास किया। न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त उसके निजी अनुभव का परिणाम था।

इस प्रकार, प्रकल्पनाएँ प्राप्त करने के अनेक स्रोत हो सकते हैं। शोधक को यथा-सम्भव ध्यान देना और समाज के परिवेश को समझकर, अपने विज्ञान की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर तथा अपने साधनों के भीतर रहकर प्रकल्पनाओं का निर्माण करना चाहिए। समस्या की तरह अच्छी प्रकल्पनाओं की भी कतिपय विशेषताएँ होती हैं।

प्रकल्पनाओं की विशेषताएँ (Characteristics of Hypotheses)

कार्यकारी (Working) एवं उपयोगी प्रकल्पनाओं की कुछ विशेषताएँ होती हैं। इन्हें देखकर ही त्रुटिपूर्ण प्रकल्पनाओं का सुधार किया जा सकता है। समस्याओं का समाधान करने के लिये प्रकल्पनाओं के सभी गुणों को देखा करते हैं, किन्तु प्रश्न उन्हें वैज्ञानिक एवं अनुभवपरक बनाना था है। एक उपयोगी प्रकल्पना अवधारणात्मक दृष्टि से स्पष्ट (Conceptually clear) होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि उन स्पष्ट, निश्चित, सर्व-मान्य तथा सर्वस्वीकृत शब्दों में अभिव्यक्त किया जाय। उसका अनुभवसिद्धता (Empirical) का होना अनिवार्य है। यह अनुभवसिद्धता ऐन्द्रिय ज्ञान से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाली होनी चाहिए। यह इन्द्रियनिष्ठ नहीं हो तथा उसकी जाँच वास्तविकता के आधार पर की जा सके। अन्यथा उसके अस्तित्व एवं स्वरूप के बारे में सभी की सहमति नहीं हो

पायेगी। यदि वह अनुभवपरक है तो उसका विशिष्ट (Specific) होना भी आवश्यक है।
व्यापक एवं सभी पक्ष एक ही समय पर अध्ययन नहीं किये जा सकते। 'मानवता का
विकास वर्तमान समस्याओं का हल है', एक आनुभविक प्रकल्पना नहीं बन सकता, क्योंकि
यह अनिश्चयात्मकता के दोष से ग्रसित है।

साथ ही, प्रकल्पना ऐसी होनी चाहिए जिसका वर्तमान उपलब्ध प्रविधियों
(Available techniques) से अध्ययन किया जा सके। किसी भी प्रकल्पना में निहित
वास्तविकता या सत्य की जाँच उपलब्ध प्रविधियों के द्वारा ही की जा सकती है। शोधक
को भली-भाँति यह ज्ञात होना चाहिए कि उसकी प्रकल्पना की जाँच के लिये कौन-कौनसी
प्रविधियाँ आवश्यक हैं तथा वे वहाँ तक उपलब्ध हैं। प्रकल्पना प्रविधियों की पहुँच के
भीतर होनी चाहिए। ज्यों-ज्यों प्रविधियों का विकास होता है, प्रकल्पनाओं का क्षेत्र भी
बढ़ता जाता है। प्रतिभावान शोधक प्रकल्पनाओं के अनुरूप प्रविधियों का सृजन एवं विकास
कर लेते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उन्हें अन्य विज्ञानों से भी ग्रहण किया जा सकता है।
किन्तु राजनीति का ज्ञान प्रविधियों की कृत्रिम सीमाओं तक सीमित नहीं रहता। उसके
'पास आनुभविक एवं अनुभवेतर प्रविधियाँ, दोनों ही हैं। प्रयास यह किया जाता है कि
अनुभवेतर प्रविधियाँ धीरे धीरे आनुभविक बनती चली जायें। प्रकल्पना के लिये यह भी
महत्त्वपूर्ण है कि वह सिद्धान्तात्मक (Theoretical) हो या नवीन सिद्धान्त के विकास में
सहायक हो। प्रकल्पना का केवल रुचिकर, महत्त्वपूर्ण और आवश्यक होना ही पर्याप्त
नहीं है, अपितु वर्तमान ज्ञान तथा सिद्धान्त के कलेवर में वृद्धि भी करती हो। भले ही यह
कार्य धीरे-धीरे तथा छोटी-छोटी प्रकल्पनाओं का विकास करके किया जाये। उन्हें अनेक
चरणों या स्तरों में विभाजित करके क्रियात्मक (Practical) बनाया जा सकता है। हो
सकता है कि शोध के प्रारम्भ में ऐसी परिकल्पना प्राप्त नहीं हो सके। जब तक प्रकल्पना
स्पष्ट और विशिष्ट नहीं हो जाती, उसे कार्यकर, कामचलाऊ या कार्यकारी (Working)
प्रकल्पना कहा जाता है। यह कार्य शोध प्ररचना (Research Design) तैयार करते समय
किया जाता है। प्रकल्पनाओं की जाँच एवं परीक्षण सहज कार्य नहीं है, फिर भी आनुभविक
प्रकल्पना जाँच का अवसर दे देती है।[9]

उपर्युक्त विशेषताओं के साथ-साथ प्रकल्पनाओं में पूर्वकथनीयता, संचारणीयता,
विश्वसनीयता एवं पुनरुत्पादनीयता (Reproducibility) भी होनी चाहिए।

प्रकल्पनाओं के प्रकार (Kinds of Hypotheses)

प्रकल्पनाओं को उनकी विशेषताओं के अनुसार चार वर्गों में रखा जा सकता है—

(1) एक-चरीय या बहुचरीय—एकचरीय (Univariate) प्रकल्पना में किसी
एक चर (Variable) का एक मूल्य (Value) किसी एक इकाई, घटना, समूह या व्यक्ति
पर आरोपित किया जाता है, जैसे सन् 1977 के आम चुनाव में मतदान प्रतिशत 65%
था। इसमें '65%' का मूल्य 'मतदान' के चर पर आरोपित किया गया है। कभी कभी चर
का वर्णन नहीं किया जाता। उस समय उसे प्रसंग के अन्तर्गत समझ लिया जाता है। एक-
चरीय होने के कारण इनका वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। राजविज्ञान के अनेक
विवरण एकचरीय प्रकल्पनाएँ हैं। वे विशिष्ट व्यक्तियों या राष्ट्रों के विषय में वर्णन,
व्याख्या या पूर्वकथन करते हैं। मात्रात्मक वर्णनात्मक होने के कारण इन्हें वैज्ञानिक प्रकल्पना
नहीं माना।[10] किन्तु सैद्धान्तिक भाव का जाल में इन्हें निश्चित रूप से प्रकल्पना
माना जाना चाहिए।

बहुचरीय (Multivariat) कथन दो या दो से अधिक चरों को जोड़ते हैं, जैसे, 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य राष्ट्रीय सम्पदा के अनुसार घटता-बढ़ता है।' या 'शिक्षा राजनैतिक सहभाग, आय तथा जाति से सम्बद्ध होती है।' इनमें एक से अधिक चरों का प्रयोग किया गया है।

(2) सहचारी एवं असहचारी प्रकल्पनाएँ--सहचारी (Associational) प्रकल्पनाएँ यह बताती हैं कि दो या दो से अधिक चर सम्बद्ध हैं। सहचारी प्रकल्पना निर्देशनात्मक (Directional) तथा अनिर्देशनात्मक (Non-directional) हो सकती है। निर्देशनात्मक प्रकल्पना बताती है कि दो या दो से अधिक चर विधेयात्मक (Positively) या निषेधात्मक रूप से जुड़े हुए हैं, यथा, 'यदि वेतन बढ़ता है, तो कीमतें घटती हैं', या 'गरीबी विपरीत रीति से शिक्षा के साथ जुड़ी हुई है।' असहचारी (Non-associational) प्रकल्पना यह बताती है कि दो या दो से अधिक चरों में सम्बन्ध नहीं है। ऐसी प्रकल्पनाओं को 'नहीं प्रकल्पना' (Null-hypothesis) या निषेधात्मक-प्रकल्पना कहते हैं। जैसे, 'लिंगभेद एवं मतदान के मध्य कोई सहचार या सम्बन्ध नहीं है।'

(3) शाश्वत एवं सांख्यिकीय प्रकल्पनाएँ--शाश्वत (Universal) प्रकल्पना का रूप इस प्रकार होता है कि 'यदि 'क' है, तो हमेशा 'ख' होगा।' किन्तु राजविज्ञान में ऐसी प्रकल्पनाएँ बहुत कम पायी जाती हैं। इनमें 'हमेशा' या 'कभी नहीं' जैसे, शब्दों का प्रयोग किया जाता है। सांख्यिकीय (Statistical) प्रकल्पना में मात्रा, संख्या या गणना का प्रयोग किया जाता है, जैसे, 'यदि 'क' है तो शायद 'ख' होगा।' अथवा 'यदि उम्मीदवार जनता पार्टी का सदस्य है तो यह 70% सम्भावना है कि वह जीतेगा।

(4) क्रमिक एवं एक-समयी प्रकल्पनाएँ--क्रमिक (Temporal) प्रकल्पनाओं में यह बताया जाता है कि एक चर दूसरे चर से समय-क्रम में पहले है, यथा, 'यदि वेतन बढ़ता है, बाद में कीमतें भी बढ़ जाती हैं।' एक-समय (Crors-sectional) प्रकल्पनाएँ यह बताती हैं कि एक ही सदस्य में चर घटित हुए हैं, लेकिन वे क्रमिक प्रकल्पनाओं की तरह कारणत्व (Causality) का संकेत नहीं देती। जैसे, 'जितना अधिक अलगाव होगा, उतना ही राजनीति में सहभाग होगा।' यह समय-क्रम को या कारणत्व को नहीं बताता।

गुड ने प्रकल्पनाओं को तीन वर्गों में रखा है– (i) आनुभविक एकरूपता या सामान्य जानकारी से सम्बन्धित, (ii) जटिल तथा, (iii) विश्लेषणात्मक। तीसरे प्रकार की प्रकल्पनाएँ चरों के लक्षणों के मध्य सम्बन्धों को बताती है।[11]

इन प्रकल्पनाओं के स्वरूप या विश्लेषण दो विचार-नियमों (Principles) के आधार पर किया जाना चाहिए। प्रथम निगमनात्मकता (Deducibility) के आधार पर प्रकल्पनाओं को सिद्धान्त से निकलने वाले आनुभविक रूप से परीक्षणीय विवरण कहा गया है। अतएव स्पष्ट है कि वे सिद्धान्त से सम्बद्ध होने चाहिए। दूसरे शब्दों में, वे 'सैद्धान्तिक आशय' (Theoretical Import) से युक्त होने चाहिए। निगमनात्मकता का नियम यह बताता है कि प्रकल्पना सिद्धान्त से निकल सकने वाली अथवा सिद्धान्त से दूसरे कथनों को निकाल सकने के काम में लायी जा सकने वाली होनी चाहिए। यदि उनमें यह गुण नहीं है तो वे वैज्ञानिक व्याख्या एवं पूर्वकथन करने में सहायक नहीं हो सकती। अधिक मात्रा में निगमनात्मकता रखने वाली प्रकल्पनाएँ अधिक श्रेष्ठ मानी जाती हैं। द्वितीय परीक्षणीयता (Testability) के आधार पर प्रकल्पनाएँ परीक्षणीय तथा गलत सिद्ध हो सकने वाली

होनी चाहिए। उन्हें आनुभविक साक्ष्य के आधार पर पुष्ट या अपुष्ट किया जा सके। इसे प्रकल्पनाओं में 'आनुभविक आशय' (Empirical import) का गुण कहा जाता है। परीक्षणीयता का गुण ही वैज्ञानिक ज्ञान को आध्यात्मिक ज्ञान से पृथक् करता है। एक ऐन्द्रिय अनुभव पर आधारित है, तो दूसरा अन्तर्दृष्टि, विवेक या आप्तप्रमाण (Authority) पर आधारित है। परीक्षणीयता भी एक जटिल अवधारणा है। इसमें स्पष्टता (Clarity), मापनीयता (Measurement), उपलब्ध प्रविधियों से सम्बद्ध होने के गुण आ जाते हैं। समय, साधन, धन आदि के अभाव का अर्थ यह नहीं लिया जाना चाहिए कि प्रकल्पनाएँ विकसित नहीं की जायें।

अनुसंधान अभिकल्प (Research Design)

शोध-समस्या का निर्धारण करने तथा प्रकल्पना निर्माण के रूप में इसका सम्भावित समाधान सुझाने के पश्चात् जाँच या परीक्षण की बारी आती है। प्रकल्पना को आनुभविक आधार पर जाँच करने की योजना को अनुसंधान-अभिकल्प (Research design) अन्वेषण-रूपांकन, शोध प्ररचना या शोध प्रकल्प कहा जाता है। शोध-कार्य करने की योजना या अनुसंधान प्रक्रिया की रूपरेखा को ही अनुसंधान-अभिकल्प माना जाता है। इसका स्वरूप, समस्या एवं प्रकल्पना के निर्धारण के अनुसार ही होना है। यह स्पष्ट है कि योजना बना कर शोध-कार्य करने से समय, धन, श्रम आदि का अनावश्यक अपव्यय बच जाता है। शोध-अभिकल्प तथ्यों के संकलन एवं विश्लेषण से सम्बन्धित दशाओं को इस तरह आयोजित करता है कि वे कार्यविधि में बचत करती हुई शोध के प्रयोजन के साथ संगतिपूर्ण हो सकें।*

अनुसंधान अभिकल्प : व्याख्या एवं स्वरूप
(Research Design : Explanation and Form)

निर्णय को क्रियान्वित करने से पूर्व निर्णय करने की प्रक्रिया को अभिकल्प (Design) कहा जाता है।[12] सेल्टिज एवं अन्य के शब्दों में, 'शोध-प्ररचना अध्ययन की विवेकसम्मत रणनीति है। अर्केड ज. काह्न के मत में, वह एक ऐसी योजना है जिसका विकास किसी प्रश्न का उत्तर देने, स्थिति का वर्णन करने, या प्रकल्पना का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। दूसरे शब्दों में, यह एक ऐसा तर्कपूर्ण आधार है जिसके द्वारा विशिष्ट कार्यविधियों के समूह से, जिसमें तथ्य संकलन एवं विश्लेषण दोनों ही शामिल हैं, अध्ययन की विशेष आवश्यकताओं को पूरा करने की आशा की जाती है। सेल्टिज एवं उसके सहयोगियों ने लिखा है कि शोध अभिकल्प या 'रिसर्च डिजाइन' तथ्यों के संकलन एवं विश्लेषण की उन दशाओं का आयोजन है जिसको इस ढंग से किया जाता है कि उसमें कार्यविधि में मितव्ययिता रखते हुए शोध लक्ष्य की पूर्ति हो जावे। इसका अर्थ यह है कि

---

* Design is the process of making decisions before the situation arises in which the decision is to be carried out —Ackoff

Methodology can be considered to be a special type of problem solving, one in which the problems to be solved are research problems —Ackoff and Others

लक्ष्य के अनुसार अनुसंधान-अभिकल्प का स्वरूप भी बदल जायेगा।[13] प्रारम्भ में, मत के विचारानुसार, यह योजना अस्पष्ट एवं अस्थायी होती है। ज्यों-ज्यों अध्ययन आगे बढ़ता है, इसमें सुधार और परिवर्तन होते जाते हैं तथा इसमें अन्तर्दृष्टियाँ होती जाती हैं। अभिकल्प में अनेक बातें होती हैं—(1) अध्ययन किसके बारे में है तथा उसके लिए किस प्रकार की आधार-सामग्री (Data) चाहिए? (2) अध्ययन क्यों किया जा रहा है? (3) ऐसी आधार-सामग्री कहाँ मिलेगी? (4) कहाँ या किन क्षेत्रों में अध्ययन को कार्यान्वित किया जायेगा? (5) उस अध्ययन में कब से या कितना काल शामिल किया जायेगा? (6) कितनी सामग्री या कितने मामलों (Cases) की छानबीन की जायेगी? (7) चयन का क्या आधार अपनाया जायेगा? (8) सामग्री के संकलन की कौन-कौनसी प्रविधियाँ अपनायी जायेंगी? आदि। संक्षेप में, यह अध्ययन सम्बन्धी क्या, कहाँ, क्यों, कितना, कैसे, कहाँ और किन साधनों द्वारा वाला मामला है।

इस बात को समझ लेना चाहिए कि पूर्ण या पूरी तरह से तर्कपूर्ण एकमात्र अभिकल्प जैसी कोई योजना नहीं होती। अनुसंधान योजना अनेक समझौतों का परिणाम होती है। विभिन्न व्यक्तियों के साथ उसका स्वरूप भी बदल जायेगा। ऐसा भी नहीं होता कि एक बार बना लेने के बाद उसे बदला ही न जाये। यह तो सही दिशा की ओर बढ़ने का एक निर्देश स्तम्भ है। स्वयं अनुसंधान-अभिकल्प की आवश्यकता के विषय में दो अभिमत हैं। एक वर्ग के अनुसार अभिकल्पन कम से कम मात्रा में किया जाना चाहिए। सामाजिक-राजनैतिक तथ्यों का स्वरूप, उपलब्धि आदि अनिश्चित होने के कारण पहले से ही विस्तृत अभिकल्प बनाना समय, धन आदि को नष्ट करना है। उसे आगे चलकर बदलना तो पड़ता ही है। दूसरा वर्ग विस्तृत एवं व्यापक अभिकल्प बनाना उपयोगी मानता है। ऐसा करने से समय, धन, मानव-श्रम आदि की बचत होती है।

अनुसंधान अभिकल्प की विषयवस्तु (Contents of Research Design)

एक सामान्य अनुसंधान-अभिकल्प में निम्नलिखित विषयों का उल्लेख किया जाता है —

(1) **शोध का विषय (Topic of Research)**—ऐसा करने से अध्ययन के विषय (Topic of research) का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है तथा उसके क्षेत्र (Scope) एवं सीमाओं का पता चल जाता है। उसके स्वरूप-निर्धारण, खोज आदि के विषय में उपलब्ध साहित्य, पत्र-पत्रिकाओं आदि का अध्ययन करना पड़ता है। अध्ययन के स्रोत सरकारी, गैर-सरकारी, व्यक्तिगत, पुस्तकालयी या परिवेश सम्बन्धी हो सकते हैं।

(2) **अध्ययन की प्रकृति (Nature of Study)**—इसमें शोध का प्रकार एवं स्वरूप निर्धारित करना पड़ता है। वह मात्रिकीय, व्यक्तिगत, तुलनात्मक, प्रायोगिक, विश्लेषणात्मक, अन्वेषणात्मक या मिश्रित प्रकार का हो सकता है।

(3) **प्रस्तावना एवं पृष्ठभूमि (Introduction and Background)**—इसमें उस विषय को चुनने की पृष्ठभूमि बनानी पड़ती है तथा उसकी शुरुआत करनी पड़ती है। इससे पता चल जाता है कि शोधक की उक्त विषय में रुचि किस प्रकार उत्पन्न हुई तथा समस्या का स्वरूप एवं स्थिति क्या थी। अब तक उस समस्या का किस किस ने तथा किन परिणामों को प्राप्त कर अध्ययन किया? उनमें क्या कमियाँ एवं त्रुटियाँ रहीं? उनको अब दूर किया जाना किस प्रकार सम्भव एवं वांछनीय है? आदि।

(4) उद्देश्य (Objectives)—इसमें अनुसंधानकर्ता या गवेषक अपना उद्देश्य बताता है। इसमें वह उप-उद्देश्य या लक्ष्य भी प्रकट करता है, अर्थात् प्रमुख एवं सहायक उद्देश्यों का उल्लेख करता है। ये प्राय चार पाँच वाक्यों में स्पष्ट किए जाते हैं।

(5) अध्ययन का सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं भौगोलिक सन्दर्भ (Socio-Cultural, Political and Geographical Context)—इसमें शोधक स्पष्ट करता है कि वह किस प्रकार के समाज एवं संस्कृति के पर्यावरण (Environment) में रह रहा है तथा उसके प्रमुख मूल्य, परम्पराएँ, मान्यताएँ आदि क्या हैं? इसमें स्थानीय मानक (Norm), रीति-रिवाज परिपाटियाँ आदि भी आ जाती हैं। इसके सन्दर्भ में राजनैतिक व्यवस्था, व्यवहार एवं मूल्यों का उल्लेख कर दिया जाता है। भौगोलिक सन्दर्भ में मानव-व्यवहार को प्रभावित करने वाले तथ्य, स्थिति, जलवायु, प्राकृतिक बनावट, प्रकृति, उत्पादन आदि आते हैं। यदि सम्भव हो तो आर्थिक परिवेश का भी परिचय दे दिया जाना चाहिए। राजनीतिक शोध को सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं भौगोलिक आयामों में समायोजित करना चाहिए।

(6) अवधारणा, चर एवं प्रकल्पना (Concepts, Variables and Hypotheses)—इस क्षेत्र में सबसे पहले यदि कोई सिद्धांत या अवधारणात्मक रूपरेखा को आधार बनाया गया है, तो उसका उल्लेख किया जाना आवश्यक है। उसके सन्दर्भ में प्रमुख अवधारणाओं को स्पष्ट किया जाना चाहिए। उनको सुनिश्चित बनाने के लिए उनकी कार्यकारी परिभाषाएँ (Working definitions) दी जानी चाहिए। जैसे यदि 'भ्रष्टाचार' की अवधारणा को प्रयुक्त किया गया है तो यह बताया जाना चाहिए कि उसे किन अर्थों में प्रयोग किया गया है। इसी तरह, यह बताया जा सकता है कि किन किन चरों को केन्द्रीय विषय बनाया जा रहा है तथा उनमें सम्बन्धित कौन-कौनसी प्रकल्पनाओं का निर्माण किया गया है। जैसा कि पीछे बताया जा चुका है कि प्रकल्पनाओं का निर्माण गवेषणा को सुनिश्चित बना देता है तथा उनसे शोध की दिशा, सीमा, क्षेत्र आदि निर्धारित हो जाते हैं।

कोहेन एवं नेगेल ने बताया है कि हम समस्या की प्रस्तावित व्याख्याओं या समाधान के बिना एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। ये समस्या से सम्बद्ध विषय-सामग्री तथा शोधक के पूर्वज्ञान (Previous knowledge) द्वारा सुझाये जाते हैं। जब इन सुझावों या व्याख्याओं को प्रस्तावनाओं (Propositions) की तरह रखा जाता है, वे प्रकल्पनाएँ (Hypotheses) कहलाती हैं। ये प्रकल्पनाएँ तथ्यों में सुव्यवस्था लाकर शोध को निर्देशित कर देती हैं।

(7) काल-निर्देश (Period Indication)—इसमें यह बताया जाता है कि शोध किस समय, काल या परिवेश से सम्बन्धित है। समय राजनीतिक अनुसंधान में एक अतिशय महत्त्वपूर्ण कारक होता है।

(8) तथ्य सामग्री के चयन के आधार एवं संकलन प्रविधियाँ (Bases of Selection of Data and Techniques of Collection)—इसमें तथ्य-सामग्री के चयन के आधार बताये एवं निश्चित किये जाते हैं। यहाँ उनका औचित्य भी स्पष्ट किया जाना चाहिये। ये आधार प्रलेखीय (Documentary), भौतिक (Physical) अथवा वैचारिक (Analytical), प्रेक्षणीय (Observational) आदि हो सकते हैं। तथ्य-संकलन की प्रविधियाँ मानवीय या मशीनी हो सकती हैं। अवलोकन, प्रश्नावली, साक्षात्कार, प्रक्षेपण

आदि युक्तियों के द्वारा तथ्य एकत्र किए जा सकते हैं। इनकी उपयुक्तता पर ध्यान दिया जाना आवश्यक होता है।

(9) विश्लेषण एव निर्वचन (Analysis and Interpretation)—सामग्री के एकत्रित होने के बाद उसके सारणीयन (Tabulation), वर्गीकरण एव विश्लेषण प्रणालियो का सकेत दिया जा सकता है। उसके निर्वचन म कौनसी पद्धतियो का सहारा लिया जायेगा? अथवा उसकी सामान्यता या प्रामाणिकता की मात्रा क्या होगी? आदि बातो का उल्लेख न्यूनाधिक मात्रा मे किया जा सकता है।

(10) सर्वेक्षण-काल, समय एव धन (Survey Period, Time and Money)—इसमे यह भी सकेत दिया जाना चाहिए कि सर्वेक्षण कितने समय के भीतर सम्पन्न हो जायेगा। उसे लगातार एक ही बार, या कई बार किया जाएगा? इसी प्रकार शोध मे लगने वाले समय एव धन का अनुमान भी बताया जाना चाहिए।

यग ने रीले (Riley) के एक आदर्श-अनुसधान-अभिकल्प (Model-research-design) को प्रस्तुत किया है। उसमे कुल बारह बातें बताई गई हैं—

1. शोध-विषय की प्रकृति व्यक्तिगत, दो या अधिक व्यक्तियो के समूह, उप-समूह, समाज, या इनके मिश्रित समूह।
2. घटनाओ की सख्या : एक, कुछ चयनित घटनाएँ, या कई चुनी हुई घटनाएँ।
3. सामाजिक-भौतिक परिवेश किसी एक समय मे एक ही समाज से सम्बद्ध मामले; या कई समाजो के कई मामले।
4. घटनाओ को चुनने का प्रायमिक आधार : प्रतिनिधित्वपूर्ण, विश्लेषणात्मक या दोनो।
5. समय का तत्व : (एक ही समय मे किया जाने वाला) स्थैतिक (Static) अध्ययन : (एक प्रक्रिया या लम्बे समय मे घटित परिवर्तन वाला) गत्यात्मक अध्ययन।
6. अध्ययन के अन्तर्गत व्यवस्था के ऊपर शोधक के नियन्त्रण की सीमा, व्यवस्थित या अव्यवस्थित नियन्त्रण।
7. आधार-सामग्री के मूल स्रोत : प्रस्तुत उद्देश्य के लिए शोधक द्वारा नई आधार-सामग्री का सकलन (शोध-समस्या की आवश्यकता के अनुसार)।
8 आधार-सामग्री को एकत्र करने की पद्धति: अवलोकन, प्रश्न या दोनो मिश्रित, या अन्य कोई।
9. शोध मे प्रयुक्त चरो या गुणो (Properties) की सख्या : एक, कुछ या कई।
10. एक गुण का विश्लेषण करने की पद्धति अव्यवस्थित वर्णन, चरों का मापन।
11. विभिन्न गुणो या चरों के मध्य सम्बन्धो के विश्लेषण की पद्धति : अव्यवस्थित वर्णन, व्यवस्थित विश्लेषण।
12. ऐकिक (Unitary) या सामूहिक (Collective) रूप मे व्यवस्था के गुणों का अध्ययन।

एक अच्छे अन्वेषण प्यारूप या प्ररचना में अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। वह शोध-प्रक्रिया के दौरान आवश्यकतानुसार सशोधित एव परिवर्तित किया जा सकने के कारण लचीला (Flexible) होता है। उसकी अवधारणाएँ स्पष्ट, सुनिश्चित एव आनुभविक होती हैं। इसमे शोध मे परिशुद्धता (Accuracy) आ जाती है। दूसरे शब्दो मे, शोध को अभि-नतियों (Baises) तथा पूर्वाग्रहों (Prejudices) से बचाने का पूर्व प्रबन्ध कर लिया जाता

है। ऐसा करने से उसमें विश्वसनीयता (Reliability) बढ़ जाती है। शोध-प्रारचना सभी उपलब्ध सामग्री, साधनों एवं स्रोतों का अध्ययन करने के पश्चात् ही बनाई जाती है। उसको सभी सम्बद्ध पक्षों से जोड़न का प्रयास भी किया जाता है। किन्तु ऐसा करते समय अन्य विषयों या अनुशासनों से सामग्री यथावत् ग्रहण नहीं की जाती। उसमें अवधारणाओं को प्रयोग करते समय राजनैतिक सन्दर्भ का ध्यान रखा जाता है। चरों का स्वरूप स्पष्ट कर देने से शोधक अपने मूल्यों को पृथक् रखने में सफल हो जाता है और अनुसंधान मूल्य-मुक्त (Value free) बन जाता है। अनुसंधान प्रकल्प की उपर्युक्त सभी विशेषताएँ एवं अंश किन्हीं कठोर एवं-निर्धारित मार्गों पर चलने का बाध्य नहीं है। नयी स्थितियों, दशाओं एवं विशेषताओं के दृष्टिगोचर हो जाने पर उनमें स्पष्टीकरण देते हुए परिवर्तन कर लिया जाता है। वस्तुतः राजनीति-विषयक अनुसंधान-प्रकल्प में ऐसा करना आवश्यक भी हो जाता है।

अनुसंधान अभिकल्प के प्रकार (Kinds of Research Designs)

अनुसंधान के उद्देश्यों के अनुसार अभिकल्पों के अनेक प्रकार हो सकते हैं। किन्तु उन्हें कतिपय सामान्य विशेषताओं के आधार पर चार वर्गों में रखा जा सकता है :

1. अन्वेषणात्मक अभिकल्प (Exploratory or Formulative Research Design)

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले अभिकल्पों में, अनुसंधान का उद्देश्य राजनैतिक घटनाओं (Phenomena) के कारणों का अर्थात् वास्तविकता (Reality) का पता लगाना होता है। ऐसा करते समय अपने अध्ययन के विषय की पूरी जानकारी हो जाती है तथा अनुसंधान के क्षेत्र (Scope) तथा सीमाओं का भी पता लग जाता है। विषय की गहराई में जाने के कारण प्रचलित अवधारणाओं का स्पष्टीकरण हो जाता है तथा अनेक बार नई अवधारणाओं का निर्माण भी करना पड़ता है। जैसे, कानून के अनुपालन (Obedience) की अवधारणा अन्वेषणात्मक शोध करते समय बदलती हुई दिखाई पड़ेगी। ऐसे अनुसंधान घटना के कार्य-कारण सम्बन्धों को स्पष्ट कर देते हैं। पुलिस द्वारा गोली चलाने अथवा साम्प्रदायिक दंगों के अध्ययन में ऐसे ही अभिकल्प बनाये जाते हैं। ऐसे शोध-कार्य कार्यकारी प्रकल्पनाओं (Hypotheses को जन्म देने में बड़े सहायक होते हैं, जिन पर आगे चलकर और भी अधिक अनुसंधान कार्य किया जा सकता है।

इस प्रकार के शोध प्रकल्पों को कतिपय विशेष अध्ययन-पद्धतियों का अवलम्बन करना पड़ता है। इनके तीन प्रकार पाये जाते हैं—यथा, (i) उपलब्ध साहित्य का सर्वेक्षण (Survey of literature), (ii) अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal interviews), तथा, (iii) व्यक्तिवृत्त अध्ययन (Case study)। साहित्य के सर्वेक्षण में पहले यह देखा जाता है कि उस विषय पर अब तक क्या लिखा, सोचा, समझा या किया गया है। इसमें वह सन्दर्भ-साहित्य, प्रकाशित पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं आदि को देखना है। किसी पंचायत का अध्ययन करने के लिए पंचायतीराज पर उपलब्ध साहित्य का अवलोकन करना पड़ेगा। उसमें सम्बन्धित सरकारी कानून, नियम, आदेश, पंचायतों द्वारा किये गए निर्णय आदि देखने पड़ेंगे। अनौपचारिक साक्षात्कारों में उन लोगों से मिलना पड़ेगा, जिन्हें उन विषयों का प्रत्यक्ष ज्ञान या अनुभव है। इसे अनुभव-सर्वेक्षण (Experience survey) भी कहा जाता

है। ऐसे लोगों का चुनाव करने में बड़ी सावधानी से काम लेना पड़ता है। सभी सम्बद्ध पक्षों से सम्बन्धित लोगों से सम्पर्क स्थापित किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, श्रमिक संघों का अध्ययन करने के लिए केवल साम्यवादी मजदूर नेताओं से साक्षात्कार करना ही पर्याप्त नहीं होगा। व्यक्तिवृत्त अध्ययनों में किसी एक व्यक्ति, समूह या घटना को चुन लिया जाता है। जैसे, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति या लोक-प्रशासन के क्षेत्र में किसी एक 'विनिश्चय' (Decision) का अध्ययन। फिर उसका आदि से अन्त तक तथा सभी सम्बद्ध पक्षों का गहन अध्ययन किया जाता है। ऐसा करने से समग्र इकाई का विश्लेषण हो जाता है। अन्त में, शोधक को कुछ अन्तर्दृष्टियाँ, प्रकल्पनाएं, सुझाव एवं निष्कर्ष अवश्यमेव प्राप्त होते हैं।

अन्वेषणात्मक अभिकल्प तैयार करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि ये केवल अन्तर्दृष्टियाँ या प्रकल्पनाएं प्रदान करते हैं, उनकी जांच या परीक्षण नहीं करते। इसलिए इन्हें सम्पूर्ण शोध प्रक्रिया का पूर्व भाग माना जा सकता है। घटनाओं या समस्याओं का चयन करते समय यह नहीं भूल जाना चाहिए कि वे विशिष्ट होती हैं। अतएव उनकी सामान्य अथवा विशिष्ट प्रकृति का ध्यान रखना चाहिए। वे शोध की दिशा में आरम्भिक कदम मात्र हैं। उनके कुछ प्रमुख कार्य हैं-- (i) किसी पूर्वनिर्धारित प्रकल्पना का तात्कालिक स्थितियों में अन्वेषण करना, (ii) विभिन्न शोध प्रविधियों की सम्भावना का स्पष्टीकरण करना, (iii) राजनैतिक घटनाओं के कार्य-कारण का पता लगाना, (iv) उस क्षेत्र की अधिक महत्वपूर्ण घटनाओं, कारकों आदि की जानकारी, तथा (v) विस्तृत अनुसंधान कार्य के लिए प्रकल्पना निर्माण करके ठोस आधार प्रदान करना।

2. वर्णनात्मक अनुसंधान अभिकल्प (Descriptive Research Design)

यह घटना या समस्या के विस्तृत वर्णन करने से सम्बन्धित होती है। इसमें, मोजर के अनुसार शोधक सामाजिक दशाओं, सम्बन्धों और व्यवहार का अध्ययन करता है।[14] अधिकांश मानवशास्त्रीय अध्ययन इसी प्रकार के हैं। प्रायः ऐसे अध्ययन बिना प्रकल्पना के ही आरम्भ कर दिये जाते हैं। ऐसे अभिकल्पों का लक्ष्य यथार्थ एवं पूर्ण सूचनाएँ प्राप्त करना होता है। ये किसी समूह, संगठन या स्थिति से सम्बन्धित हो सकती हैं। इनमें महत्त्वपूर्ण चरों की बारम्बारता (Frequency) या उनसे प्रभावित व्यक्तियों की संख्या या मात्रा का पता चल जाता है। ऐसे अनुसंधान यह बता सकते हैं कि कौन-कौन से चर परस्पर सह-सम्बन्धित हैं। इन गवेषणाओं के आधार पर यह बताया जा सकता है कि अगली घटनाओं का क्या स्वरूप सम्भावित है? किन्तु ऐसा करने से पूर्व शोधक को उस समस्या के विषय में थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य होना चाहिए। जैसे, भारतीय लोकसभा का वर्णनात्मक अभिकल्प बनाने से पूर्व यह जानकारी होनी चाहिए कि निम्न-सदन के क्या कार्य, अधिकार एवं अधिकारी होते हैं? उसमें उनके निर्वाचन, योग्यताएँ, आयु, लिंग, धर्म, भाषा, जाति, व्यवसाय, कार्य आदि सभी कुछ आ जायेंगे।

इस गवेषणा में सभी प्रविधियों का उपयोग किया जा सकता है क्योंकि उसका मूल उद्देश्य समग्र वास्तविकता को जानना होता है। फिर भी कुछ प्रविधियों का प्रयोग अधिक किया जाता है, यथा, साक्षात्कार, अनुसूची एवं प्रश्नावली प्रत्यक्ष एवं सहभागी निरीक्षण (Participant observation), सामुदायिक अभिलेख (Community records) आदि। ऐसा अभिकल्प बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि शोध का विषय ऐसा हो कि

आवश्यक एव वास्तविक तथ्य प्राप्त हो सकें। प्रविधियो का चुनाव इस दृष्टि से किया जाय कि सही तथ्य प्राप्त हो सकें। तथ्यो के वर्णन तथा चयन के समय मिथ्या झुकावो, पक्षपात आदि स बचने की अत्यधिक आवश्यकता है। उनकी अत्यधिक प्रशसा, घृणा आदि से बचना चाहिए। इसके लिये एक सन्तुलित व्यक्तित्व का होना आवश्यक है।

वर्णनात्मक अनुसधान के कई चरण होते हैं--

1. उद्देश्यो का निरूपण
2. तथ्य सकलन की प्रविधियो का चुनाव
3. निदर्शन-पद्धति का चयन
4. तथ्य सामग्री का सकलन तथा उसकी परिवीक्षा (Scrutiny) या जाँच, अन्य शोध-कार्यकर्त्ताओ के होने पर निगरानी करना
5. परिणामों का वर्गीकरण, सारणीयन तथा अन्य साख्यिकीय विश्लेषण
6. प्रतिवेदन लिखना
7. प्रकाशन अथवा प्रस्तुतिकरण

3 निदानात्मक अनुसधान अभिकल्प (Diagnostic Research Design)

ऐसे अभिकल्प का उद्देश्य समस्या के वास्तविक कारणो का पता लगाकर उनके समाधान प्रस्तुत करना होता है। समाधान प्रस्तुत करने का लक्ष्य रखने के कारण इन्हें निदानात्मक अभिकल्प (Diagnostic design) कहा जाता है। यदि भारतीय राजनीति मे दल-बदल का अध्ययन करके उसके समाधान सम्बन्धी सुझाव रखे जायेंगे तो उसे निदानात्मक शोध अभिकल्प कहा जायेगा। ऐसा करने के लिए कारणों का वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा पता लगाया जाता है। उसके सहारे प्रकल्पना निर्माण किया जाता है तथा समाधान को साक्ष्य द्वारा प्रामाणिक बनाने का प्रयास किया जाता है।

कारणात्मक सम्बन्धो (Causal relationships) का अध्ययन राजनैतिक शोध की सर्वोच्च अवस्था होती है। 'कारणत्व' (Causality) की धारणा जटिल होती है। उसे सामान्य ज्ञान (Common sense) से पृथक् करने के लिए यह आवश्यक है कि कारणो का वैज्ञानिक अथवा आनुभविक आधार पर पता लगाया जाये। किसी घटना या समस्या के अनेक कारण (Multiplicity of determining conditions) होते हैं। इन कारणों या चरो (Variables) का पता लगाया जाता है। प्रत्येक चर का प्रभाव ज्ञात करने के लिए एक-एक करके चरो को अलग किया जाता है अथवा ऐसी परिस्थितियों को अध्ययन के लिए काम म लिया जाता है कि चर उनमे अलग अलग प्रकार से न रहें। साम्प्रदायिक दगो के कारणो का पता लगाने मे ऐसी परिस्थितियो को लिया जायेगा कि किसी मे गरीबी तो किसी मे शिक्षा, तो किसी म सगठन या धर्मान्ध नेतृत्व चर बन जाय।

निदानात्मक शोध-कार्य मे समस्या का पूर्ण एव वैज्ञानिक अध्ययन करते हुए समस्या की गहराई तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है। इससे समस्या के प्रत्येक सम्भावित कारण का पता लगाया जा सकता है। कारणो का पता लगाने के बाद निदान या समाधान का क्रम आता है। निदान के लिए प्रकल्पना विकसित की जाती है। निदान का वैज्ञानिक ढग से अध्ययन किया जाता है किन्तु उस व्यापक रूप मे लागू करना समाज सुधारक, प्रशासक, राजनेता आदि का कार्य होता है।

वर्णनात्मक एव निदानात्मक शोध मे अन्तर पाया जाता है—(i) वर्णनात्मक शोध किसी भी समस्या से सम्बन्धित हो सकती है, किन्तु निदानात्मक शोध किसी राजनैतिक सकट, अव्यवस्था या समस्या से ही सम्बन्ध रखती है। (ii) वर्णनात्मक शोध मे कोई समाधान नही होता, किन्तु निदानात्मक शोध का लक्ष्य ही समाधान खोजना होता है। (iii) वर्णनात्मक शोध ज्ञान को स्वय साध्य (An end in itself) मानती है, जबकि दूसरी उसे एक साधन (Means) मानती है।

4. प्रयोगात्मक अनुसंधान अभिकल्प
(Experimental Research Designs)

भौतिक विज्ञानो की भाँति राजविज्ञान मे भी प्रयोगात्मक पद्धतियो का उपयोग किया जाने लगा है। इसमे नियन्त्रित दशाओ मे निरीक्षण एव परीक्षण किया जाता है। नियन्त्रण दशाओ मे घटनाओ को रखकर व्यवस्थित अध्ययन करने सम्बन्धी रूपरेखा को 'प्रयोगात्मक अनुसधान अभिकल्प' कहा जाता है। इसे प्रयोगशाला पद्धति (Laboratory Method) भी कहा जाता है। ये प्रयोग तीन प्रकार के होते हैं—(i) पश्चात् परीक्षण (After-only experiment), (ii) पूर्व-पश्चात् परीक्षण (Before-after experiment) तथा (iii) कार्यान्तर तथ्य परीक्षण (Ex-post-facto experiment)।

इन प्रयोगो मे सभी दृष्टियो से समान समूह लिए जाते हैं। एक नियत्रण समूह तथा दूसरा प्रायोगिक समूह कहलाता है। नियन्त्रण समूह मे किसी भी प्रकार का परिवर्तन नही लाया जाता है। प्रायोगिक या परीक्षणात्मक समूह के किसी चर या कारक द्वारा प्रयोग करके परिवर्तन लाया जाता है तथा उसके प्रभाव या परिणाम का अध्ययन किया जाता है। दोनो मे परिवर्तन आने पर चर को परिणाम का कारण मान लिया जाता है। पश्चात् परीक्षण मे दो समूह होते हैं किन्तु पूर्व-पश्चात् परीक्षण मे एक ही समूह होता है। उसी का अध्ययन एक अवस्था के पहले तथा कुछ समय बाद में किया जाता है। उदाहरण के लिए, आपातकाल के समय (1976) मे बुद्धिजीवी-वर्ग की गतिविधि तथा आपातकाल की समाप्ति के बाद बुद्धिजीवी-वर्ग की गतिविधि ऐसा ही 'प्रयोग' है। तीसरा, कार्यान्तर—तथ्य परीक्षण ऐतिहासिक या बीती हुई घटनाओ के तुलनात्मक अध्ययन के लिए वैसी ही घटनाओ को उपस्थित करके किया जाता है। या इसमे ऐसे दो समूह लिए जाते हैं, जिनमे से एक मे वह (ऐतिहासिक) घटना घट चुकी हो, दूसरे मे नही।

दो चरो के मध्य कारणात्मक सम्बन्ध के अस्तित्व का पता लगाने के तीन आधार या तरीके हो सकते हैं :

(क) सहपरिवर्तन (Concomitant variation),

(ख) चरो के दिखाई देने का समय क्रम (Time order of occurence variables), तथा

(ग) दूसरे कारणात्मक तत्त्वो को हटाना (Elimination of other causal factors)

(क) सहपरिवर्तन (Concomitant Variation)—इसमे यह ज्ञात किया जाता है कि किस सीमा तक 'क' और 'ख' एक साथ प्रकट होते या नही होते है। इसमे हम यह

देखेंगे कि 'क' और 'ख' को एक साथ प्रकट होने वाली घटनाएँ कौन-कौनसी है ? उन घटनाओं मे 'क' और 'ख' वाली इकाइयाँ कौन-कौनसी हैं ? इन इकाइयों मे 'क' गुण वाली इकाइयाँ अधिक हैं अथवा 'ख' गुण वाली इकाइयाँ ? यदि 'क' के अधिक होने पर 'ख' भी अधिक होता है, या 'क' नही होने पर 'ख' भी नही होता है, तो हम 'क' को 'ख' का कारण मान सकते हैं। उदाहरण के लिए, इस प्रकल्पना को लें कि एक अच्छी पदोन्नति व्यवस्था से सगठन मे कार्यकुशलता (Efficiency) की वृद्धि होती है। तो हम अच्छी पदोन्नति-व्यवस्था अर्थात् 'क' तथा कार्यकुशलता अर्थात् 'ख' के मध्य सम्बन्धो की मात्रा का पता लगा सकते हैं। इसके लिए हम ऐसे दो समान सगठनो का अध्ययन करेंगे जिनमे से एक मे अच्छी पदोन्नति-व्यवस्था हो तथा दूसरे मे नही हो। इनके सम्बन्धो की मात्रा का काई स्क्वायर परीक्षण (Chi Square Test), रेखीय सहसम्बन्ध (Linear Correlation) तथा क्रम सह-सम्बन्ध (Rank Correlation) मे पता लगाया जा सकता है। इनसे हम यह जान सकते हैं कि सम्बन्धो के घनत्व, दिशा आदि का क्या प्रभाव है ?

(ख) चरों के दिखाई देने का समय चक्र (Time Order of Occurence of Variables)– एक घटना को दूसरी घटना का 'कारण' नही माना जा सकता, यदि पहली घटना दूसरी घटना के बाद मे घटित होती हो। या तो वह पहले घटनी चाहिए या साथ-साथ। किन्तु कोई एक घटना एक साथ ही कारण एवं परिणाम दोनों हो सकती है। ऐसा दो भिन्न घटनाओं के सन्दर्भ म होता है। होमन्स की प्रकल्पना मे यह बात देखने को मिलती है। उसकी प्रकल्पना है कि 'एक समूह मे एक व्यक्ति का पदक्रम (Rank) जितना अधिक ऊँचा होगा, उतनी अधिक मात्रा मे उसकी गतिविधियाँ समूह के मानकों (Norms) के अनुकूल होगी।' इससे सम्बन्धो की पारस्परिकता (Mutuality) प्रकट होती है। इस प्रकल्पना म पदक्रम तथा समूह के मानक, इन दो स्वतन्त्र चरो का सम्बन्ध बताया गया है। दोनो चरो की समानता यानि ऊँचाई बताने के कारण ऐसे सम्बन्धो को समनित कारण रमक सम्बन्ध (Sysmmetrical causal relationship) कहते हैं। दोनो चर एक दूसरे का स्थान ग्रहण कर सकते हैं।

(ग) दूसरे कारणात्मक तत्वों को हटाना (Elimination of Other Possible Causal Factors)—प्रत्येक घटना कई कारकों या कारणो का परिणाम या प्रभाव होती है। इनमे से यह देखना आवश्यक हो जाता है कि एक विशिष्ट चर का क्या प्रभाव है ? यह प्रायोगिक (Experimental) प्ररचना बनाकर ज्ञात किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, दो समान समूह के लिए जांच एक प्रायोगिक समूह (Experimental group) तथा दूसरा नियन्त्रण समूह (Control group) कहलायेगा। प्रायोगिक समूह को उस कारण या चर से प्रभावित किया जाये। नियन्त्रण समूह को उस कारण या चर से प्रभावित न किया जाये। अन्त में, परिणाम या प्रभावित होने की दृष्टि से दोनों की तुलना की जा सकती है। इस प्रकार प्रयोग के द्वारा एक चर का प्रभाव देखा जा सकता है। परिणाम को उस (स्वतन्त्र) चर के साथ जोड़ दिया जाता है। परिणाम को आश्रित चर (Dependent variable) तथा कारण को स्वतन्त्र चर (Independent variable) कहा जाता है। उदाहरणार्थ, दो गांवो मे परिवार नियोजन अपनाने, न अपनाने का अध्ययन किया गया। एक म परिवार नियोजन सम्बन्धी प्रचार कार्य किया गया, दूसरे म बिल्कुल नहीं। इसमे पता चला कि प्रचार-कार्य ने एक स्वतन्त्र चर के रूप मे कार्य किया। परिवार-

नियोजन को अपनाना आश्रित चर था। ऐसे प्रयोगो मे आवश्यकता इस बात की है कि सभी प्रायोगिक इकाइयाँ एक समान हो।

अन्य प्रकार (Others)

इन अभिकल्पो के अलावा और भी कई प्रकार हो सकते हैं, जैसे तुलनात्मक अध्ययनों के अभिकल्प तथा सांख्यिकीय शोध प्ररचनाएँ। ये कठिन एव जटिल प्रकार के शोध कार्य हैं। इनके पहले अन्वेषणात्मक तथा वर्णनात्मक अनुसधान किये जाने चाहिएँ ताकि सभी पृष्ठभूमिगत सूचनाएँ एव प्रकल्पनाएँ उपलब्ध रहें। इनके बाद निदानात्मक अथवा प्रयोगात्मक अनुसधान हाथ मे लिए जा सकते है। अभिकल्प अभिकल्प ही है वह सेवक है, स्वामी नही। इस बात को सदैव ध्यान मे रखना चाहिए।

सल्टिज के अनुसार व्यवहार मे इन अभिकल्पो को एक दूसरे से सर्वथा अलग नही किया जा सकता। कोई भी शोध एक से अधिक कार्य करती है। इन कार्यों के आधार पर प्राय अनुसधान का वर्गीकरण किया गया है किन्तु इसमे कठोरता से काम नही लिया जाना चाहिए। प्राय किसी एक लक्ष्य या कार्य के कारण अनुसधान को किसी एक वर्ग मे रख दिया जाता है। उसे उसका अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य कहा जा सकता है। अन्यथा ये एक-दूसरे के पूरक एव सहायक हैं।

सन्दर्भ

1. G A Lundberg Social Research, New York, Longman, Gree and Co, 1951, p 119
2. Ibid, p 9
3. W G Goode and Hatt, Methods in Social Research, New York, Mc-Graw Hill Book Co, 1952, pp 55-56
4. J Galtung, Theory and Methods of Social Research, London, George Allen and vrwin 1967, p 310
5. Dickinson McGraw and George Wa son, Political and Social Inquiry, New York, John Wiley & Sons, 1976, pp 98–100
6. P V Young op cit, pp 97–99
7. Lundberg, op cit, p 9
8. Goode and Hatt, op cit, pp 63–67,
9. Hanan C Selvin, 'A Critique of Tests of Significance in Survey Research', American Sociological Review, 22 Oct, 1957, 522–23, For details see Gideon Sjoberg and Roger Nett, V Methodology for Social Research, New York, Harper and Raw, 1968, pp 280–82, Galtung, op, cit, pp 321–24,

10. Wesley Salmon, Logic, Englwood Cliffs, N. J, Prentice-Hall, 1963, pp 80–81.

11. Goode and Hatt, *op. cit*, pp 59–67.

12. R. L. Ackoff, Design of Social Research, Chicago, University of Chicago Press, 1958, p 5.

13. Claire Saltiz and Others, Research Methods in Social Relations, New York, Holt, Rinehart and Winston, 1959, p 50.

14. C. A. Moser, *Survey Methods in Social Investigation, op. cit.*

अध्याय 8

तथ्य-सामग्री : प्रकार एवं स्रोत

[Data : Kinds and Sources]

राजनीति विज्ञान के एक 'विज्ञान' के रूप म प्रगति न कर सकने का एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि उसने कभी और कहो भी अपने तथ्यो के स्रोतो पर विचार नही किया। राजविज्ञान मे तथ्य तो अपने आप में महत्त्वपूर्ण हैं ही, किन्तु उनसे भी अधिक उनके स्रोत महत्त्वपूर्ण हैं। ये स्रोत विश्वसनीय, वास्तविक तथा अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक होने चाहिएँ। राजनीति व्यक्तियो, समूहो, सगठनो तथा राजनेताओ से सम्बन्ध रखती है, अतएव वे ही उसकी मूल सूचनाएँ दे सकते हैं। उनसे उनके बारे मे सूचना देने वाले, कहने या लिखने वाले अधिक महत्त्वपूर्ण अथवा उपयोगी नही हो सकते। यदि वे स्वय या उनकी कृतियाँ उपलब्ध हैं, तो दूसरे व्यक्ति या जानकारी के अन्य साधन गौण हो जाएँगे। किन्तु स्वय उन मूल व्यक्तियो से सूचनाएँ एव तथ्य प्राप्त करना कोई सरल कार्य नही है। जब तक उन व्यक्तियो को शोधकर्ता एव राजविज्ञानियो मे पूर्ण विश्वास एव सौहार्द नही है, वे उन्हें सही रूप म सूचनाएँ नही देंगे। राजनीति सत्ता, शक्ति, सघर्ष, द्वन्द्व, प्रभाव आदि से सम्बन्ध रखती है और उसका तात्कालिक प्रभाव होता है। कोई भी सूचनादाता अपनी इच्छा के विपरीत ऐसी गतिविधि मे भाग नही लेना चाहेगा कि वह विवाद का स्रोत बन जाए। कोई भी राजनीति-कर्त्ता या राजकर्त्ता (Political Actor) अपने शक्ति एव प्रभाव के वास्तविक स्रोतो को सहज रूप मे नही बताता। हो सकता है कि वह स्वय भी उन्हें नही जानता हो, अथवा जानने पर भी, या चाहते हुए भी वह उन्हें प्रश्नकर्त्ता को पूरी तरह नही बता पाये। ऐसी स्थिति मे प्रश्नकर्त्ता को एक ओर, प्रत्यक्ष सूचनादाता के अलावा अन्य स्रोतो का सहारा लेना पड़ेगा, दूसरी ओर, उसे अनेकानेक विशिष्ट प्रविधियो (Techniques) को अपनाना पड़ेगा कि उसे सही रूप मे विषय से सम्बन्धित सभी सूचनाएँ या तथ्य प्राप्त हो जायें। ये प्रविधियाँ आकाश मे उड रहे वायुयान को देखने के लिए राडार के समान होंगी।

क्षेत्र कार्य (Field Work)

पद्धतिवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य (Methodological prespective) से सुसज्जित होने के बाद,[1] एक राजनीति-शोधक या राजशोधक (Political researcher) जब समस्या का निर्धारण, प्रकल्पनाओ का निर्माण तथा अभिकल्प का स्थापन कर चुकता है, तो उसे वास्तविक कार्य करने के लिए मैदान मे उतरना पड़ता है। यह कार्य शोध भाषा मे क्षेत्र-कार्य (Field work) कहलाता है। क्षेत्र-कार्य की सबसे बड़ी चुनौती सही एव सम्पूर्ण तथ्यों या आधार-सामग्री (Data) का सकलन है। यह आधार-सामग्री अध्ययन के विषय से सम्बन्धित

होनी चाहिए तथा कम से कम समय, धन और मानव-शक्ति खर्च करके एकत्रित की जानी चाहिए। सीमित साधनों वाले विकासशील देशो मे ऐसा किया जाना और भी अधिक आवश्यक है।

स्वय शोधक मे सफल अनुसधान कार्य करने के लिए अनेक गुणो का होना आवश्यक है। उसमे केवल पुस्तकीय ज्ञान ही पर्याप्त नही है। उसका कार्य प्रयोगशाला मे बैठकर शोध कार्य करने वाले प्राकृतिक विज्ञानवेत्ताओं की अपेक्षा कही अधिक कठिन है। राजविज्ञानी की सामग्री राजनीति–कर्त्ताओ (Political actors) एव राजनीतिज्ञो (Politicions) के मन, मस्तिष्क एव क्रियाओ म रहती है। उस सामग्री को किसी भी निर्धारित यन्त्र, मापन या सकेत द्वारा नही जाना जा सकता। जो कुछ जैसे तैसे जाना जाता है, वह भी परिवर्तनशील, अस्पष्ट, अमूर्त तथा व्यक्तिश भिन्न भिन्न होता है। जिस क्षण से उसे जाना जाता है, उसी क्षण से उसका वास्तविक स्वरूप बदलना शुरू हो जाता है। साथ ही, जानने वाला स्वय एक मानव है जो ससार की वस्तुओ को अपने निजी ज्ञान, भावना, मूल्य-योजना तथा महत्त्वाकाक्षा के प्रकाश मे देखता है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि वह जो, जिस तरह तथा जिस रूप म देखता है, दूसरे उसे वैसा ही नही देखते। अतएव राजविज्ञान का शोधकर्त्ता विशेष व्यक्ति होता है। शोधकार्य के लिए राजशोधक का व्यक्तित्व आकर्षक, स्वस्थ, अध्यवसायी तथा सहनशील होना चाहिए। उसमे कल्पनाशीलता, शीघ्र निर्णय लेने की क्षमता, विचारो की स्पष्टता, तर्कशक्ति तथा बौद्धिक ईमानदारी होनी चाहिए। कोई भी व्यक्ति राजनीति के क्षेत्रो मे अनुसधान कार्य नही कर सकता यदि उसमे राजनीतिक वास्तविकता (Reality) या सत्य को जानने की तीव्र अभिलाषा, आकाक्षा और जिज्ञासा नहीं है[2] उसमे यह 'मिशनरी' (Missionary) भावना होनी चाहिए कि वह उस राजनीतिक वास्तविकता को निर्भीक होकर सुस्पष्ट एव प्रभावशाली शब्दो मे सार्वजनिक रूप से रखना अपना सर्वोच्च दायित्व समझे। यद्यपि सभी सुकरात या मसीहा नहीं बन सकते, किन्तु ऐसी भावना के प्रभाव मे कोई वास्तविक रूप से राजशोधक भी नहीं बन सकता। शोधक का व्यवहार सुसस्कृत (Refined) होना चाहिए तथा उसमे अनुकूलनशीलता (Adaptibility) तथा आत्मनियन्त्रण बहुत अधिक मात्रा मे होना चाहिए। उसमे वार्तालाप का कौशल तथा सतर्कता (Alertness) होना बहुत जरूरी है। वही व्यक्ति शोधकार्य कर सकता है जिसे अपने विषय का पूरा ज्ञान हो तथा उसमे उसकी तीव्र अभिरुचि हो। उसमे एक ओर अपने विषय म एकाग्र होकर कार्य करने की क्षमता तथा दूसरी ओर, उसमे अपना मौलिक योगदान करने की भावना होनी चाहिए।

अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह भी आवश्यक है कि उसे विभिन्न अध्ययन-पद्धतियो, प्रविधियो, युक्तियो एव उपकरणो का ज्ञान हो। वह उनका सही समय पर सही प्रकार से उपयोग कर सके। उनकी सीमाओ, पारस्परिक एव पूरक प्रकृति तथा क्षमता से उसे परिचित होना चाहिए।* उसे उत्तरदाताओ (Respondents) की दिनचर्या,

---

* Perhaps the greatest difficulty the scientist experiences in effectively utilizing the material collected by lay observers results from the failure of the latter to specify how informants are chosen

—Sjoberg and Nett

व्यक्तित्व, मिलने का उचित स्थान तथा समय का पता होना भी आवश्यक है। जहाँ तक सम्भव हो उसे शोध कार्य का प्रारम्भिक प्रशिक्षण प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। यदि उसका शोध कार्य अपेक्षाकृत बडा है तो उसमे एक से अधिक विषयो का ज्ञान, अन्तर्वैयक्तिक दृष्टि (Inter-disciplinary approach), तथा सगठन-क्षमता भी होनी चाहिए? यह कहने की आवश्यकता नही है कि उसके पास पर्याप्त धन, समय तथा उपयुक्त उपकरण आदि भी होना चाहिए। सबसे बढकर उसमे सत्य को जानने की जिज्ञासा, त्याग और बलिदान की भावना तथा वस्तुपरक दृष्टिकोण होना चाहिए।

चाहे इसकी समस्या कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यो न हो, अथवा उसकी प्रकल्पनाएँ उपयोगी या अभिकल्प विस्तृत क्यो न हो, यदि उसमे एक अच्छे शोधक के आवश्यक गुण नही होंगे तो वह सही तथ्यो या आधार सामग्री का सकलन नही कर सकेगा। आगे चलकर इसी आधार पर तथ्यो का प्रस्तुतिकरण तथा विश्लेषण किया जाता है। तथ्यो के अनुकूल ही सामान्यीकरण विकसित किये जाते हैं। शोधक को चाहिए कि वह तथ्यो को, जैसे है वैसे ही, प्राप्त करे और उन्हे अपनी मन-पसन्द अथवा सम्भावना के आधार पर नही तोडे-मरोडे। उसको इस लालच मे भी नहीं पडना चाहिए कि तथ्य, यदि सम्भव नही हो, तो उन्हें सख्यात्मक आँकडो की आवश्यकतानुसार बना दिया जाये।[3] यद्यपि राजविज्ञान के शोध-कर्त्ता को तथ्य प्राप्त करने मे बडी भारी कठिनाइयो का सामना करना पडता है, लेकिन उसे अपना दायित्व प्रत्येक अवस्था मे निभाना ही होगा। जहाँ वह ऐसा न कर सके, उसे अपनी स्थिति स्पष्ट कर देनी चाहिए।

तथ्यों के प्रकार (Kinds of Data)

राजवैज्ञानिक शोध सम्बन्धी तथ्यो या आधार-सामग्री को अवधारणात्मक योजना के सन्दर्भ मे, प्राप्त सूचनाओ, घटनाओ, व्यक्तियो के विचारो आदि मे से ग्रहण किया जाता है। इस आधार सामग्री या तथ्यो को दो वर्गों मे रखा जा सकता है—

(1) प्राथमिक तथ्य (Primary data)

(2) द्वैतीयक तथ्य (Secondary data)

यह वर्गीकरण तथ्यो की विश्वसनीयता, शोधक के निजी प्रयास तथा स्रोत की उपलब्धता के आधार पर किया गया है।

प्राथमिक तथ्य (Primary Data)

प्राथमिक तथ्य मौलिक सूचनाएँ अथवा आँकडे होते हैं। इन्हे शोधकर्ता क्षेत्र (Field) मे जाकर समस्या से सम्बन्धित प्रत्यक्ष निरीक्षण या जीवित व्यक्तियो से साक्षात्कार, प्रश्नावली, अनुसूची आदि के द्वारा प्राप्त करता है। यग के अनुसार, प्राथमिक तथ्य पहली बार इकट्ठे किये जाते हैं तथा इनके सकलन तथा प्रकाशन का दायित्व उसी अधिकारी का होता है जिसने मूल रूप से उन्हें एकत्रित किया था।[4] इन्हे एकत्र करने के दो स्रोत हैं—(1) समस्या से सम्बन्धित जीवित व्यक्ति—ये समस्या से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं तथा उसका उनको विशेष ज्ञान होता है। ये न केवल एक विषय की वर्तमान अवस्थाओ को बताने की योग्यता रखते हैं अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया मे निहित महत्त्वपूर्ण कदमों तथा अवलोकनीय प्रवृत्तियों के सम्बन्ध मे भी सकेत कर सकते हैं।[5] (2) प्रत्यक्ष अवलोकन या प्रेक्षण—यदि सावधानी तथा अपक्षपात से काम लिया जाये तो यह स्रोत अतिशय महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है। वस्तुत अन्य सारे स्रोत प्राथमिक अथवा द्वैतीयक किसी न किसी रूप

में अवलोकन पर ही आधारित होते हैं। सहभागी अवलोकन के द्वारा अनेक आन्तरिक एवं गुप्त बातों का भी पता लगाया जा सकता है।

प्राथमिक तथ्यों को एकत्र करते समय कुछ सावधानियाँ रखनी पड़ती हैं। तथ्यों का अनावश्यक तथा अव्यवस्थित ढंग से इकट्ठा नहीं किया जाये। उनको एकत्र करते समय पक्षपात, पूर्वाग्रह, मिथ्या झुकावों आदि को दूर रखा जाये। जब किसी का अवलोकन किया जाये, उस समय उस व्यक्ति या समूह को यह अनुभव नहीं होने दिया जाये कि उसको देखा जा रहा है।

द्वैतीयक तथ्य (Secondary Data)

दूसरे व्यक्ति, संस्था आदि के द्वारा प्रकाशित या अप्रकाशित प्रलेखों, प्रतिवेदनों, पाण्डुलिपियों, डायरियों आदि को 'द्वैतीयक तथ्य' कहा जाता है। यंग के शब्दों में, द्वैतीयक आधार-सामग्री वह है जिसे मूल स्रोतों से एक बार प्राप्त कर चुकने के बाद एकत्र किया गया है तथा जिनका प्रकाशन अधिकारी उनसे पृथक् है जिसने पहली बार सामग्री-सकलन को नियन्त्रित किया था।[9] अनुसन्धानकर्त्ता इस तैयार सामग्री को अपने लिए उपयोग करता है। ये दो प्रकार के होते है, (i) व्यक्तिगत (Personal documents)--इसमें निजी डायरियाँ, पत्र, आत्मकथा आदि आते हैं। तथा (ii) सार्वजनिक (Public documents)—इसमें पुस्तकें, जनगणना रिपोर्ट, समाचार-पत्र, पत्र-पत्रिकाएँ आदि आते हैं। वुण्डवर्ग के अनुसार शिलालेख, स्तूप, खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ आदि द्वैतीयक तथ्यों के वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। इनको एकत्र करते समय उनका समस्या से सम्बन्ध देखना चाहिए। द्वैतीयक स्रोत प्राथमिक स्रोतों के समान विश्वसनीय भी नहीं होते।

तथ्यों के स्रोत (Sources of Data)

तथ्यों के उपर्युक्त दो प्रकार—प्राथमिक एवं द्वैतीयक—दो भिन्न स्रोतों से प्राप्त होते हैं। इनकी प्रकृति, क्षमता तथा सीमाएँ अलग अलग होती हैं। यंग ने इन स्रोतों को दो बड़े भागों में बाँटा है—(i) प्रलेखीय स्रोत (Documentary source), तथा, (ii) क्षेत्रीय स्रोत (Field source)। प्रलेखीय स्रोत में पुस्तकें, प्रतिवेदन, पाण्डुलिपियाँ, पत्र, डायरियाँ आदि आते हैं। क्षेत्रीय स्रोत में वास्तविक जानकारी रखने वाले व्यक्तियों अथवा अध्ययन-स्थल को रखा जाता है। बंगले ने भी दो स्रोत बताये हैं—(क) प्राथमिक (Primary), तथा, द्वैतीयक (Secondary) स्रोत। प्रथम के अन्तर्गत समस्या से सम्बन्धित व्यक्ति तथा प्रत्यक्ष अवलोकन आते हैं। द्वितीय के अन्तर्गत सरकारी एवं गैर-सरकारी व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा प्रकाशित या अप्रकाशित या लिखित प्रलेख आते हैं। वुण्डवर्ग ने तथ्यों के स्रोतों को निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत किया है—

(1) ऐतिहासिक स्रोत
  - (अ) प्रलेख, पत्र, शिलालेख आदि
  - (ब) खुदाई से प्राप्त वस्तुएँ

(2) क्षेत्रीय स्रोत
  - (अ) जीवित व्यक्तियों से प्राप्त विशेष सूचनाएँ
  - (ब) क्रियापूर्ण गतिविधियों का प्रत्यक्ष अवलोकन

प्राथमिक अथवा क्षेत्रीय स्रोत (Primary or Field Sources)

प्राथमिक स्रोत उन स्रोतों को कहा जाता है जिनसे शोधक पहली बार तथ्यों या सूचनाओं को प्राप्त करता है। वह इन तथ्यों को अपनी समस्या के सन्दर्भ में संकलित करता है। इनको एकत्रित करने के चयन, मात्रा, स्वरूप, कार्य-शैली में उसी की भूमिका प्रमुख रहती है। मैन (Peter H Mann) के शब्दों में, 'प्राथमिक स्रोत पहली बार एकत्रित की गई सामग्री देते हैं, अर्थात् वे तथ्यों के मूल समुच्चय हैं जिन्हें संकलन करने वाले व्यक्तियों ने प्रस्तुत किया है।'

मन के अनुसार प्राथमिक या क्षेत्रीय स्रोत निम्नलिखित हैं : प्रत्यक्ष अवलोकन, साक्षात्कार, प्रश्नावली तथा अन्य व्यक्ति। इन्हें पुन दो भागों में विभाजित किया जा सकता है– (क) प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत (Direct Primary Sources), (ख) अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत (Indirect Primary Sources)।

(क) प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत (Direct Primary Sources)

इन स्रोतों तक राजशोधक (*Political researcher*) स्वयं जाकर घटनाओं, वस्तुओं व्यवहारों, क्रियाविधियों आदि का प्रत्यक्ष अवलोकन करता है। इसमें सम्बद्ध व्यक्तियों के विचारों को सुनना तथा भावनाओं को ज्ञात करना भी शामिल है। निस्सन्देह ऐसा करने के लिए उसमें अत्यधिक कौशल तथा अनुभव होना चाहिए।[7] प्रत्यक्ष अवलोकन या प्रेक्षण को पुन तीन उप-वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

प्रत्यक्ष अवलोकन (*Direct Observation*)

इसके तीन प्रकार हैं—

(i) सहभागी अवलोकन (Participant Observation)—इसमें शोधक स्वयं उस समुदाय या समूह का एक सदस्य बन जाता है, जिसका उसे अवलोकन करना है। ऐसा करने से वह स्वयं समूह के वास्तविक स्वरूप को गहराई से जानने में सफल हो जाता है। किसी राजनैतिक दल का सक्रिय सदस्य बन जाने पर उसका अध्ययन गहराई से किया जा सकता है। किन्तु सभी समूहों का सदस्य बनना कठिन होता है। उदाहरण के लिए, मन्त्रि-मण्डल का अध्ययन करने के लिए उनका सदस्य बनना या सहभागी अवलोकन करना असम्भव होता है।

(ii) असहभागी अवलोकन (Non-Participant Observation)—इसमें शोधकर्ता समूह में स्वयं सक्रिय भाग न लेकर तटस्थ रहकर उसकी गतिविधियों का अवलोकन करता है। जैसे, लोकसभा की कार्यवाही को दर्शक दीर्घा से देखना।

(iii) अर्द्ध-सहभागी अवलोकन (Quasi-Participant Observation)—इसमें आंशिक रूप से सहभागी तथा असहभागी अवलोकनों की दोनों विशेषताएँ पाई जाती हैं। शोधक इसमें कुछ व्यवहारों में स्वयं भाग लेता है तथा शेष में तटस्थ होकर केवल अवलोकन करता है। यह भी हो सकता है कि वह समूह व्यवहार में शामिल होते हुए भी अपनी पृथकता बनाए रखे।

प्रत्यक्ष अवलोकन तथ्य प्राप्त करने का सर्वश्रेष्ठ स्रोत है। लेकिन यह भी अपने आप में अपूर्ण है। राजविज्ञान में केवल अवलोकन धोखा दे सकता है, अतएव इसे अन्य स्रोतों से या साधनों से पुष्ट करना या देखे हुए तथ्यों के विषय में और अधिक सूचना प्राप्त

करना आवश्यक हो जाता है। अनेक बार वैधानिक रूप से अथवा अन्य कारणों से प्रत्यक्ष अवलोकन करना असम्भव होता है, जैसे, कोरिया युद्ध सम्बन्धी घटनाओं का अवलोकन। ऐसी स्थिति में, प्राथमिक स्रोतों के अन्य रूपों का अवलम्बन किया जाता है। इनमें उन व्यक्तियों से सम्पर्क किया जाता है जिन्होंने स्वयं उन घटनाओं को देखा है अथवा उन गतिविधियों में भाग लिया है। इनके दो प्रकार हैं—(क) साक्षात्कार, (ख) अनुसूचियाँ।

(क) साक्षात्कार (Interview)

इसमें शोधक स्वयं उन लोगों से जाकर मिलता है तथा समस्या से सम्बन्धित मामलों में वार्तालाप के द्वारा तथ्य प्राप्त करता है। उन व्यक्तियों से निजी स्तर पर बातचीत करके गोपनीय बातों का भी पता लगाया जा सकता है। उनमें विश्वास और रुचि पैदा करके वास्तविक तथ्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

(ख) अनुसूचियाँ (Schedules)

यह एक प्रकार की प्रश्नावली (Questionnaire) है। इसमें प्रश्न तथा खाली सारणियाँ दी हुई होती हैं। इन्हें लेकर स्वयं शोधक सूचनादाताओं के पास जाता है तथा प्रश्न पूछता है। उन प्रश्नों के उत्तर एक एक करके अनुसूचियों में भरता जाता है। यह एक लोकप्रिय शोध-उपकरण है। इसका अशिक्षित, विशेष तथा दूरस्थ किन्तु कम संख्या वाले उत्तरदाताओं पर सरलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। केवल भाषा के भिन्न होने पर कुछ कठिनाई आ सकती है। इससे अध्ययन में वस्तुनिष्ठता (Objectivity) तथा क्रम (Order) लाया जा सकता है, क्योंकि प्रश्नों को मनमाने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता। उनके अर्थ भी मनमाने ढंग से नहीं किए जा सकते। साक्षात्कार में अनेक कमियाँ रह जाती हैं, उन्हें एक सीमा तक दूर करने में यह अनुसूची-प्रणाली बड़ी सहायक होती है। इस कारण प्रायः साक्षात्कार के साथ अनुसूचियों का भी प्रयोग किया जाता है।

(ख) अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत (Indirect Primary Resources)

इनको अप्रत्यक्ष इसलिए कहा जाता है कि इनमें शोधक सूचनादाता (Respondent के पास नहीं जाता। स्वयं जाने के स्थान पर वह अपनी समस्या से सम्बन्धित जिज्ञासाओं अथवा प्रश्नों को सूचनादाता के पास भेज देता है। सूचनादाता उन प्रश्नों या जिज्ञासाओं का उत्तर लिख कर भेज देता है। इसका लोकप्रिय एवं सुपरिचित रूप प्रश्नावली (Questionnaire) है।

प्रश्नावली (Questionnaire)

अध्ययन क्षेत्र के बहुत बड़ा होने पर अथवा सूचनादाताओं के एक बहुत बड़े क्षेत्र में बिखरे होने पर, शोधकर्ता के लिए यह सम्भव नहीं होता कि वह उक्त प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोतों का सहारा ले, जैसे, भारत के आई. ए. एस. अधिकारियों के बाईस शासनों में प्राप्त प्रशासनिक अनुभव के विषय में जानकारी, साक्षात्कार, अनुसूची आदि साधनों से नहीं प्राप्त की जा सकती। ऐसी अवस्था में एक विस्तृत प्रश्नावली तैयार करके डाक द्वारा सूचनादाताओं के पास भेज दी जाती है। उसमें अपनी समस्या की जानकारी देते हुए शीघ्र भरकर लौटाने के लिए अनुरोध किया जाता है। इसका उपयोग उसी समय किया जाता है जबकि (i) सूचनादाता शिक्षित हो, (ii) उनमें सहयोग की भावना हो, तथा (iii) समस्या

का स्वरूप बहुत अधिक गम्भीर नही हो। भारत मे इसका प्रयोग अधिक सफल सिद्ध नही हुआ है। सन् 1963 मे प्रशासनिक सुधार कमेटी, राजस्थान ने दो प्रकार के अतिशय शिक्षित एवं उच्च अधिकारियो को क्रमश 1834 तथा 2234 प्रश्नावलियाँ भेजी। उनमे केवल 196 तथा 372 के उत्तर प्राप्त हुए, जिनका प्रतिशत क्रमश 7 तथा 16 रहा।[8]

मिल्ड्रेड मार्टन ने अप्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोतो मे अन्य साधनो का भी विवेचन किया है :

(i) दूरभाष साक्षात्कार (Telephone Interviews) – इसके अन्तर्गत शोधक अपने द्वारा निर्धारित सूचनादाताओ से टेलीफोन पर बातचीत करके सूचनाएँ प्राप्त करता है। यह बहुत सुविधाजनक होता है तथा इससे समय की बड़ी बचत होती है। किन्तु दूरभाष की सुविधा सभी को उपलब्ध नही होती।

(ii) रेडियो अपील (Radio Appeal)—रेडियो के द्वारा सूचनाएँ प्रसारित की जाती हैं। रेडियो श्रोता अपनी प्रतिक्रिया रेडियो अधिकारी या शोध-कर्त्ता को भेज सकता है। किन्तु यह तरीका अधिक उपयोगी एवं विश्वसनीय नही होता।

(iii) पैनल प्रविधि (Panel Techeniques'—इसके अन्तर्गत कुछ व्यक्तियो का दल या 'पैनल' बना दिया जाता है। ये शोधक को आम लोगो के रुझान, रुचि तथा भावनाओ की सूचना देते हैं। यदि इनमे परस्पर सहयोग पाया जाये और योजनाबद्ध रीति से कार्य करें, तो शोधक को बड़ी सहायता मिल सकती है।

प्राथमिक स्रोतो मे ऐसी कई विशेषताएँ होती हैं जो द्वितीयक स्रोतो मे नही पाई जाती। इनके द्वारा अनुसधान-कर्त्ता को स्वाभाविक एवं वास्तविक सूचनाएँ मिलती हैं। शोधक का सीधे सूचनादाताओ से सम्पर्क हो जाता है तथा वे अपना दृष्टिकोण एक-दूसरे को अच्छी तरह बता सकते हैं। स्वय उत्तरदाताओ की रुचि अनुसधान कार्य मे बढ जाती है। उनके द्वारा अनेक गोपनीय बातो का भी पता लग जाता है। अनुसूची के प्रयोग द्वारा अध्ययन तथा प्रश्नकर्त्ता एवं उत्तरदाता के मध्य वस्तुपरकता (Objectivities) लाई जा सकती है। अध्ययन विश्वसनीय होता चला जाता है। विविध रीतियो से इसे कम खर्चीला भी बनाया जा सकता है।

किन्तु इस स्रोत का समुचित प्रयोग एक कुशल, ईमानदार और अनुभवी शोधक ही कर सकता है। अन्य शोधक स्वय निर्माता होने के कारण, तथ्यो को तोड मरोड सकता है। उसको निजी पूर्वाग्रहो तथा पक्षपातपूर्ण क्रिया प्रभावो से बचने का कोई कारगर उपाय नही है। अनपढ लोगो के साथ अनुसूचियो एवं प्रश्नावलियो का प्रयोग नही किया जा सकता।

द्वितीयक स्रोत (Secondary Sources)

द्वितीयक या अप्राथमिक स्रोत गौण या अमहत्वपूर्ण नही होते। सुण्डबर्ग के अनुसार वे शोधक को, मूल्यवान, महत्वपूर्ण तथा आवश्यक सामग्री देते हैं तथा उसे उसके कार्य मे व्यर्थ के दोहराव को रोकते हैं और अनेक त्रुटियो एवं कठिनाइयो से बचाते हैं।[9] इन स्रोतो मे प्रकाशित या अप्रकाशित, समस्त लिखित सामग्री आ मिल की जाती है। इसके अन्तर्गत समस्त लिखित सामग्री-ग्रन्थ, सर्वेक्षण रिपोर्ट, सस्मरण, यात्रा-विवरण, पत्र, डायरी, ऐतिहासिक प्रलेख, सरकारी आकडे आदि रखे जाते हैं। जॉन ए मेज (John A Madge) ने ऐतिहासिक सामग्री को भी बहुत महत्वपूर्ण माना है।

द्वितीयक स्रोतों को सामान्यतया दो भागों में विभाजित किया जाता है :
(क) व्यक्तिगत या वैयक्तिक प्रलेख (Personal documents)
(ख) सार्वजनिक प्रलेख (Public documents)

(क) व्यक्तिगत प्रलेख (Personal Documents)

व्यक्तिगत प्रलेख में वह सामग्री आती है जिसे विभिन्न व्यक्ति स्वयं अपने बारे में या राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं अन्य घटनाओं के बारे में अपने विचार लिखते हैं। इनमें लेखक की निजी भावनाओं, विचारों, मनोवृत्तियों तथा दृष्टिकोण का पता चलता है। ये स्वयं व्यक्ति के द्वारा लिखे जाते हैं। इनमें उसका अपना व्यक्तित्व तथा अनुभव प्रतिबिम्बित होता है।[10] इनको महात्मा गांधी, तिलक, नेहरू, एम एन राय आदि लोगों की जीवनियों में देख सकते हैं। अनेक ब्रिटिश शासकों एवं राजनेताओं की कृतियों में तत्कालीन राजनीति तथा उसके प्रति उनके दृष्टिकोण का पता चल जाता है। मोजर के अनुसार, व्यक्तिगत प्रलेख, न्यूनाधिक मात्रा में, अपने स्वाभाविक रूप में सर्वाधिक मूल्यवान होते हैं। विशेष सामाजिक सर्वेक्षणों में भी, जबकि अन्वेषण की अवस्थाएँ पार की जा रही हों, एक नये अभिमुखन (Orientation) तथा प्रकल्पना-स्रोत के रूप में वे अच्छा मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।[11]

इन्हें लिखने के अनेक कारण होते हैं। इनका उपयोग करते समय, शोधक को उनका पूरा ध्यान रखना चाहिए। हो सकता है कि वे अपने कार्य को सही सिद्ध करने अथवा धोखा देने या योग्यता-प्रदर्शन के लिए लिखे गए हों। कुछ लेख धन या सम्मान पाने के लिए होते हैं। कई बार प्रलेख अपने दोषों को स्वीकार करने, अपने आपको मानसिक तनावों से मुक्त करने अथवा जनकल्याण की भावना की दृष्टि से लिखे जाते हैं। इन विशिष्ट प्रयोजनों की पृष्ठभूमि में प्रलेखों को समझा या उपयोग किया जाना चाहिए। अन्यथा हो सकता है कि प्रलेखक की भावना के विरुद्ध उसके लेखों का अर्थ लगा लिया जाये।

व्यक्तिगत प्रलेखों के चार प्रकार होते हैं—
(i) जीवन-इतिहास (Life-histories),
(ii) डायरियाँ (Diaries),
(iii) पत्र (Letters)
(iv) संस्मरण (Memories)।

(i) जीवन-इतिहास (Life-Histories)—जॉन मेज के अनुसार, सच्चे अर्थों में जीवन-इतिहास व्यापक आत्म-कथा को कहते हैं। अब इसका प्रयोग ढीले-ढाले तौर पर किया जाता है तथा इसे किसी भी वर्णनात्मक सामग्री के लिए प्रयोग किया जा सकता है। नेहरू, गांधी, हिटलर, चर्चिल आदि द्वारा लिखित आत्मकथाओं में केवल उनके निजी जीवन की ही झांकी नहीं मिलती, अपितु उस समय के समस्त राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश का पता चल जाता है। इनके तीन प्रकार हो सकते हैं :

(1) स्वतःप्रेरित आत्मकथा (Spontaneous Autobiography),
(2) ऐच्छिक आत्म-अभिलेख (Volunteered Self-records), तथा
(3) संकलित जीवन इतिहास (Compiled Life-History)।

प्रथम मे व्यक्ति अपनी इच्छा से बीती बातों को स्मरण करके क्रमबद्ध रूप मे लिखता है। द्वितीय मे लेखक अन्य व्यक्तियो या सस्थाओ से प्रेरणा पाकर आत्म-कथा लिखता है। तृतीय को वह स्वय नही लिखता, अपितु मूल व्यक्ति के दिये गये भाषणो, प्रकाशित लेखो, प्रेस-वक्तव्यो आदि को कोई अन्य व्यक्ति छपवाता है।

आत्मकथाओ की शोध की दृष्टि से अपनी कई सीमाएँ हैं। इनमे समस्या से सबधित सामग्री अधिक मात्रा म नही मिलती। इनको लिखते समय व्यक्ति एकागी हो जाता है तथा सन्तुलन खो बैठता है।

(ii) डायरियाँ (Diaries)—बहुत से लोग व्यवस्थित रूप से जीवन की विभिन्न घटनाओ को लिखते हैं। इन्हें वे अपनी डायरियो मे लिखते हैं। इनम वे अपनी वास्तविक प्रतिक्रियाओ एव भावनाओ को व्यक्त करते हैं। इनम गोपनीय से गोपनीय बातो का भी उल्लेख मिल जाता है। जॉन मेज के अनुसार, डायरियाँ प्राय सबसे अधिक रहस्योद्घाटन करने वाली होती हैं, विशेप तौर पर जबकि वे नियमित रूप से लिखी जायें। वे सार्वजनिक दिखावे के भय से बँधी हुई नही होती तथा तत्काल घटित होने वाले सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यों एव अनुभवो को अधिकतम स्पष्टता के साथ उजागर कर देती हैं।

किन्तु डायरियाँ राजनीतिक शोध की दृष्टि से सर्वथा निर्दोष नही होती। ये पूरी तरह से व्यक्तिगत होती हैं तथा विशेष पक्षों को ही बताती हैं। उनमे भी किसी एक के बारे मे बहुत बढ़ा-चढा कर वर्णन किया जाता है तो किसी को छोड दिया जाता है। अनेक मिली-जुली बातो मे से समस्या-सम्बद्ध विषयो को छाटना कठिन हो जाता है। इनमे कुछ न कुछ मात्रा मे कृत्रिमता अवश्य होती है क्योकि लेखक जानता है कि उनसे एक न एक दिन रहस्योद्घाटन अवश्य होगा। गाँधी के विषय मे महादेव देसाई द्वारा लिखित डायरी से अनेक बातो का पता चलता है।

(iii) पत्र (Letters)—इसी प्रकार पत्र भी होते हैं। ये लेखक की निजी भावनाओ प्रतिक्रियाओ, विचारो आदि का परिचय देते हैं। राजनीतिक शोध मे इनका कम महत्त्व है, जैसे, गाँधी के नाम पटल एव नेहरू के पत्रों से काग्रेस के भीतर चल रहे आतरिक सघर्ष का पता चलता है। राजनेताओ के पत्रो से अनेक विदेश नीति सम्बन्धी तथ्य ज्ञात हो जाते हैं। मोरारजी देसाई को लिखे गये पत्रो के प्रकाशन से चरणसिंह तथा हेमवती नन्दन बहुगुणा के पारस्परिक सम्बन्धो का पता चलता है। किन्तु पत्रो की भी अपनी सीमाएँ होती हैं। ये विशेप सन्दर्भ मे किसी प्रयोजन के कारण विशिष्ट व्यक्ति के लिए लिखे जाते हैं। निजी एव गुप्त होने के कारण इन्हे प्राप्त नहीं किया जा सकता। इनका कोई अभिलेख या क्रम-बद्ध वर्णन नही मिलता। प्राय ये या तो गुम हो जाते हैं या नष्ट कर दिये जाते हैं। अनेक पत्र विशेष भावनाओं म डूब कर लिखे जाते हैं। फिर भी, पत्र लेखक की स्थिति, महत्त्व, ईमानदारी आदि को देख कर उन्हें शोध म साक्ष्य (Evidence) के रूप मे प्रयोग किया जा सकता है।

(iv) सस्मरण (Memories)—अनेक बार व्यक्तियों द्वारा जीवन की घटनाओ, यात्राओं, महत्त्वपूर्ण परिस्थितियो आदि के बारे म कुछ समय बाद सस्मरण लिखे जाते हैं। इनमें भी तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक समस्याओ तथा उनके विषय मे विचारों का पता चलता है। प्राचीनकाल मे ह्वेनसाग, फाह्यान, इब्नबतूता आदि ने तथा भारत मे ब्रिटिश शासको ने बडे उपयोगी सस्मरण लिखे हैं। प्राय सभी राजनेता एव प्रशासक कुछ

न कुछ संस्मरण अथवा अपने जीवन के अनुभव लिखते देखे गये हैं। इनके अध्ययन से राजनीति एवं प्रशासन की भीतरी बातों का पता चलता है।[12]

संस्मरण भी डायरियों, पत्रों आदि की तरह निजी होते हैं तथा उनमें सन्तुलन का अभाव रहता है। यदि तात्कालिक परिस्थितियों एवं लेखक के निजी व्यक्तित्व का ध्यान रखा जाये तो इनका शोध-कार्यों के लिए बहुत उपयोग किया जा सकता है।

व्यक्तिगत प्रलेखों के महत्त्व का मूल्यांकन
(Evaluation of the Importance of Personal Documents)

राजनीतिक शोध में व्यक्तिगत प्रलेखों का अत्यधिक महत्त्व है। इनमें घटनाओं एवं समस्याओं का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा तथ्यात्मक ज्ञान हो जाता है। ये सार्वजनिक प्रकाशन की दृष्टि से कम तथा निजी दृष्टिकोण से अधिक लिखे जाने के कारण अधिक विश्वसनीय तथा वास्तविक माने जा सकते हैं। उच्चस्तरीय राजनीति में विशिष्ट व्यक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इनके निजी दृष्टिकोण को समझकर सही तथ्यों का पता लगाया जा सकता है। मुस्लिम-लीगी नेताओं के निजी प्रलेखों को देखने से ज्ञात होता है कि राष्ट्रीय आन्दोलन तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के विषय में उनके क्या विचार थे?

किन्तु इनकी सीमाएँ, कमियाँ और त्रुटियाँ भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। ये गोपनीय होते हैं तथा इन्हें प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है। कानून इन्हें प्राप्त करने में स्वयं एक बड़ी बाधा है। शोधकों को उन्हें प्राप्त करने के विषय में कानूनी छूट या उन्मुक्तियाँ भी प्रदान नहीं की गई हैं तथा अनेक शोधकों को रहस्योद्घाटन करने के कारण जेल की सजा भी भुगतनी पड़ी है।[13] प्रायः व्यक्तिगत प्रलेखों में भावना, कल्पना तथा आदर्शोन्मुखता का आधिक्य होता है। इनके कारण वास्तविकता धूमिल हो जाती है। अनेक बार ये अपने वास्तविक व्यक्तित्व को छिपाने के लिए भी लिख दिये जाते हैं।

(ख) सार्वजनिक प्रलेख (Public Documents)

तथ्यों को प्राप्त करने का दूसरा प्रलेखीय स्रोत सार्वजनिक प्रलेख (Public documents) हैं। इन प्रलेखों को सरकारी, सार्वजनिक अथवा निजी संस्थाएँ तैयार करती हैं। ये प्रकाशित अथवा अप्रकाशित हो सकते हैं। इनसे आम जनता को विभिन्न दलों तथा उन संस्थाओं की गतिविधियों की जानकारी हो जाती है। जनगणना सम्बन्धी आँकड़े, रिजर्व बैंक के प्रतिवेदन, विभिन्न संस्थाओं द्वारा प्रकाशित साहित्य आदि सार्वजनिक प्रलेख कहे जाते हैं। इनको भी दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है

(i) प्रकाशित प्रलेख (Published documents),

(ii) अप्रकाशित प्रलेख (Unpublished documents)।

(i) प्रकाशित प्रलेख (Published Documents)

प्रकाशित प्रलेख आम जनता के लिए छपी हुई सामग्री को कहते हैं। यह पुस्तकालयों, पुस्तक विक्रेताओं, वाचनालयों आदि स्थानों पर सार्वजनिक रूप से मिलती है। इनको भी चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है : (i) अभिलेख (Record), (ii) प्रकाशित आँकड़े (Published statistics) (iii) पत्र-पत्रिकाओं की रिपोर्ट (Reports of Newspapers and Journals), तथा (iv) विविध सामग्री (Miscellaneous Material)।

(i) अभिलेख (Record)—विभिन्न सस्थाएँ अपने दैनिक काम-काज सम्बन्धी सूचनाएँ, आकडे या अभिलेख (Record) रखती हैं। जिलाधीश के कार्यालय मे जिले से सम्बन्धित सभी सामग्री रहती है। ऐसी सामग्री को प्रतिमाह तिमाही, छ माही अथवा वार्षिक आधार पर सकलित किया जाता है। नियुक्ति विभाग म सभी अधिकारियो की नियुक्तियो, स्थायीकरण, स्थानान्तरण, पदोन्नति निलम्बन आदि का ब्यौरा लगातार रखा जाता है। लोकसभा, उसकी समितियो, उप-समितियो आदि के अभिलेख भी इसी प्रकार के हैं। शोध कार्यों के लिये ऐसी सामग्री काफी विश्वसनीय एव उपयोगी होती है। प्रत्येक विभाग, मण्डल, निगम या सस्था ऐसे अभिलेख रखती एव प्रकाशित करती है।

(ii) प्रकाशित आकडे (Published Statistics)—प्रत्येक सरकारी तथा गैर-सरकारी सस्था आकडे सकलित एव प्रकाशित करती है। भारत सरकार एव राज्य सरकारो के पास एक अलग साख्यिकीय विभाग होता है। वार्षिक पुस्तको (Year Books) मे सभी प्रकार के आकडे मिल जाते हैं। आजकल राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विशुद्ध शोध-सम्बन्धी आकडे भी प्रकाशित होने लगे हैं।[14]

(iii) पत्र-पत्रिकाओं की रिपोर्ट (Report of Newspapers and Journals)—समाचार-पत्रो तथा साप्ताहिक एव पाक्षिक पत्रिकाओ मे समय समय पर राजनैतिक जीवन, घटनाओं आदि से सम्बन्धित सूचनाएँ एव रिपोर्ट प्रकाशित होती रहती हैं। ऐसी अनेक अनुसधान सम्बन्धी पत्रिकाएँ निकलती हैं, जिनमे विभिन्न समस्याओ का वैज्ञानिक विश्लेषण किया जाता है। अनेक शैक्षिक, व्यावसायिक तथा कर्मचारी सघ विभिन्न स्थानो पर सगोष्ठियाँ सम्मेलन आदि करते रहते हैं तथा उनको पत्रिकाओ के रूप मे प्रकाशित किया जाता है। यथा, इडियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, लोक प्रशासन, पॉलिटिकल साइन्स रिव्यू आदि।

(iv) अन्य-सामग्री (Other Material)—अनेक पत्र पत्रिकाएँ, पुस्तकें, उपन्यास आदि भी महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रदान करने मे सहायक हो सकते हैं। सरकार द्वारा जो अनेक जाच आयोग बिठाये जाते हैं, जैसे, शाह आयोग, गुप्ता आयोग आदि, उनसे भी अत्यन्त उपयोगी सामग्री प्राप्त होती है। आजकल चलचित्रों, दूरदर्शनो आदि को भी उपयोगी स्रोत माना जाने लगा है।

(2) अप्रकाशित प्रलेख (Unpublished Do_uments)

प्रलेखीय या द्वितीयक स्रोतो से प्राप्त सभी सामग्री प्रकाशित अवस्था मे नही पाई जाती। गोपनीयता, व्यय आदि कारणो से उसे कई बार प्रकाशित नही कराया जाता। अनेक बार प्रकाशित एव उपलब्ध होने पर भी उसे गोपनीय रखा जाता है। ऐसी समस्त सामग्री को अप्रकाशित प्रलेखो के अन्तर्गत रखा जाता है। इनके भी अनेक रूप है, यथा, (i) गोपनीय अभिलेख (Confidential Records), (ii) दुर्लभ हस्तलेख (Rare Manu-scripts), तथा (iii) शोध रिपोर्ट (Research Reports)।

(i) गोपनीय अभिलेख (Confidential Records)—इन अभिलेखों को सार्वजनिक होने पर भी अनेक कारणो से प्रकाशित नहीं किया जाता। राजनीतिक शोध की दृष्टि से ऐसे अभिलेखों की मात्रा बहुत अधिक होती है और शोधक को अत्यधिक कठिनाइयों का सामना करना पडता है। यह सही है कि राजनैतिक निर्णय गुप्त रूप मे लिये जाते हैं

तथा उन्हे गुप्त रखा जाता है। लोकसभा सदन मे अथवा सार्वजनिक रूप से बताये जाने पर भी, उनका वास्तविक स्वरूप कुछ और ही होता है। उदाहरण के लिए, जून 1976 की आपातकाल की घोषणा सम्बन्धी अनेक तथ्य अभी भी गोपनीय बने हुये हैं। राजशोधक इन्ही को खोजने मे व्यस्त रहता है। उसकी मूल समस्या ऐसे गोपनीय तथ्यो को विश्वसनीय एव आवशीय ढग से जानने और समझने से सम्बन्ध रखती है। न्यायालयों, मन्त्रिमण्डलो, सैनिक कार्यालयो, गृह-विभागो आदि के अभिलेख अत्यन्त गोपनीय ढग से रखे जाते हैं, तथा उनको जानने की कोशिश या प्रकाशित करना अपराध माना जाता है। किन्तु यह भी स्पष्ट है कि उनको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढग से जाने बिना उच्चस्तरीय राजनैतिक अनुसधान कई बार सम्पन्न नहीं किया जा सकता। शोधकर्त्ता को उस समय अधिक आत्मग्लानि का अनुभव होता है जबकि एक मामूली-सी बात भी अधिकारियो द्वारा 'गोपनीय' घत। दी जाती है, अथवा विदेशी अनुसधानकर्त्ताओ को जो कुछ बताया जाता है, स्वदेशी सीमित साधनो वाले शोधको से वही छिपाया जाता है। कई बार तथाकथित गोपनीय सामग्री विदेशो म खुले आम मिल जाती है। आश्चर्य उस समय अधिक होता है जबकि गैर-जरूरी विभाग, विश्वविद्यालय, कार्यालय आदि भी अनेक अमहत्त्वपूर्ण विषयो को 'गोपनीय' घोषित कर देते हैं। विदेशी शासनकाल मे जनता को दूर रखने के लिए ऐसा करना शायद एक शासकीय नीति थी, किन्तु लोकतन्त्र की स्थापना अथवा स्वाधीनता की प्राप्ति के बाद भी विकासशील देशो मे उनकी अपनी सरकारों द्वारा वैसा ही घृणित व्यवहार करना शोध कार्य म एक बहुत बडी बाधा है। अतएव सार्वजनिक हित मे शोधक एव जनता को, प्रतिरक्षा या विदेशी नीति सम्बन्धी गतिविधियो के अतिरिक्त, अन्य सभी तथ्यो को जानने का मूलभूत अधिकार तथा सरकार द्वारा उन तथ्यो की जानकारी देने का प्राथमिक दायित्व होना चाहिए।

(i) **दुर्लभ हस्तलेख** (Rare Manuscripts)—अनेक हस्तलेख राजनेताओं, प्रशासको, विचारकों आदि की असामयिक मृत्यु हो जाने या साधनो के अभाव के कारण प्रकाशित नहीं हो पाते। या तो वे इधर-उधर पडे रहते हैं या काल के गाल मे समा जाते हैं। ऐसी बहुत सी सामग्री सग्रहालयों म पडी रहती है। भारतीय रियासतो के राजा महाराजाओ ने ग्रन्थागारों मे भी ऐसी अपार सामग्री भरी पडी है। मौलाना अब्दुल कलाम आजाद के गोपनीय पत्र मोलवद अवस्था मे कलकत्ता सग्रहालय में पडे हैं, किन्तु उन्हें खोलने की अनुमति नही है। ऐसे दुर्लभ प्रलेखो का बडा उपयोग हो सकता है, यदि उन्हें शोध सस्थाओं को उपलब्ध करा दिया जाये।

(ii) **शोध रिपोर्ट** (Research Report)—विभिन्न विश्वविद्यालयो एव सस्थाओं द्वारा शोध-कार्य कराया जाता है तथा शोधकर्त्ताओ को एम फिल, पी-एच डी, डी. लिट् आदि की उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं। इनमें कुछ शोध-कार्य ही प्रकाशित हो पाते हैं और अधिकाश अप्रकाशित रह जाते हैं। यद्यपि भारत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसधान परिषद् आदि इनके प्रकाशन के लिए आर्थिक सहायता देते हैं, फिर भी अप्रकाशित शोध सामग्री की सूची बहुत लम्बी है।

प्रलेखीय स्रोतों के महत्त्व का मूल्यांकन

(Evaluation of the Importance of Documentary Sources)

राजनैतिक शोध की दृष्टि से प्रलेखीय अथवा द्वितीयक सामग्री अपेक्षाकृत कम

महत्त्वपूर्ण होती है। इसका कारण यह है कि प्रलेखन के पीछे अनेक ऐसी बातें होती हैं जिनका उसमें उल्लेख नहीं हो पाता। साथ ही, प्रलेखन के तुरन्त पश्चात् ही राजनैतिक परिस्थितियाँ एव सम्बन्ध बदलने लगते हैं। जैसे, भारत नेपाल सधि का वास्तविक स्वरूप, आवश्यकता एव प्रभाव बहुत कुछ बदल गया है। यही स्थिति बागलादेश के साथ की गई "शान्ति एव मैत्री" सधि की है। उनमें शोध-समस्या से सम्बन्धित प्रत्यक्ष या वास्तविक सामग्री नहीं मिल पाती। इन स्रोतों में प्राय क्रम का अभाव होता है। इनके लेखक निजी दृष्टिकोण एव भावनाओं में बहकर लेखन कार्य करते हैं। इस कारण उनमें निष्पक्षता तथा विश्वसनीयता का अभाव रहता है। यहाँ तक कि सरकारी आकड़े भी कई बार जनता को प्रभावित करने की दृष्टि से तैयार किये जाते हैं। गोपनीय अभिलेखों में राजनीतिक शोध के लिए उपयोगी सामग्री रहती है किन्तु वे शोधकों को उपलब्ध नहीं हो पाते।

परन्तु अतीत-कालीन सामग्री को प्राप्त करने के ये एकमात्र साधन हैं। प्राथमिक स्रोतों की अनेक दुर्बलताओं एव असफलताओं की ये स्रोत क्षति-पूर्ति कर देते हैं। डायरियों, पत्रों, आत्मकथाओं आदि से कई बार ऐसे रहस्यों का उद्घाटन हो जाता है, जिनका पहले आभास तक नहीं होता। गृह एव विदेश नीति को यथावत् जानने के लिए इनका बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। सरकारी रिकार्डों में, जैसे, जनगणना अथवा निर्वाचन सम्बन्धी आकड़ों में, सम्पूर्ण सामग्री व्यवस्थित रूप से एक साथ मिल जाती है। इनके द्वारा समय, धन तथा मानव-श्रम की बड़ी भारी बचत होती है। द्वितीयक सामग्री का अध्ययन करने से शोध-समस्या के व्यापक स्वरूप का पता चलता है तथा अनेक नयी प्रकल्पनाएँ प्राप्त होती हैं।

इनका प्रयोग करने में अधिक सावधानी से काम लिया जाना चाहिये। वस्तुत इनका प्रयोग करने वाले शोधक को आवश्यकता से अधिक, कल्पनाशील, अध्यवसायी तथा सन्तुलित होना चाहिये। उसे उक्त सामग्री के मूल प्रयोजन, अभिप्राय, सन्दर्भ तथा प्रस्तुतिकरण को पूरी तरह समझकर ही अपने अनुसधान में शामिल करना चाहिये। चेपिन (Chapin) ने बताया है कि एक ओर प्रलेखक के व्यक्तित्व, विचारधारा एव उद्देश्य को समझना चाहिये तथा दूसरी ओर, उसके कथन के गूढ़ अर्थ एव दुर्बल पक्षों का ध्यान रखना चाहिये।[15] यह मान्य तथ्य है कि जो सामग्री जितनी अधिक सुलभ होती है, उस पर उतनी ही अधिक मात्रा में ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। अनेक बार सरकारी आकड़े वास्तविकता का अवलोकन किये बिना ही तैयार कर दिये जाते हैं। राजनैतिक स्वार्थपूर्ति के लिये विदेशियों को निर्वाचन-सूची में शामिल कर लिया जाता है अथवा अच्छी वर्षा व सिचाई सुविधा होने पर भी 'अकाल' का होना घोषित कर दिया जाता है। इसी तरह, मजदूरों को बोनस, सरकार को आय-कर तथा अशधारकों को लाभाश से वचित करने के लिये प्रबन्धकों द्वारा घाटे के आकड़े प्रस्तुत कर दिये जाते हैं।

प्राथमिक एव द्वितीयक स्रोतों का पारस्परिक सम्बन्ध
(Relationship Between Primary and Secondary Sources)

वस्तुत. तथ्यों को प्राप्त करने के आधारों या स्रोतों का प्रचलित विभाजन—प्राथमिक एव द्वितीयक—इतना स्पष्ट नहीं है, जितना समझा जाता है। इस कारण उनके विषय में विश्वसनीयता (Reliability) का भी इतना अधिक स्पष्ट विभाजन नहीं हो सकता।

प्राथमिक स्रोतों के लिये कहा जाता है कि वे शोधक द्वारा सीधे ही सकलित किये जाते हैं। राबर्टसन एवं राइट के अनुसार, प्राथमिक सामग्री का सकलन अनुसंधानकर्त्ता अपने विशेष उद्देश्य से सम्बन्धित समस्या के समाधान के लिये सकलित करता है। किन्तु पॉलिन यग ने उसकी विशेषता यह बताई है कि उसे पहली बार शोधकर्त्ता द्वारा एकत्रित किया गया हो तथा उसको एकत्र करने का दायित्व स्वयं शोधकर्त्ता का माना गया हो। साख्यिकी मे, जब कोई *तथ्य पहली बार एकत्र किया जाता है, तो उसे प्राथमिक तथ्य कहा* जाता है। उसको जब प्रक्रम (Process) किया या काम मे लाया जाता है तब उसे द्वितीयक तथ्य कहने लग जाते हैं। स्पष्ट है कि प्राथमिक तथ्यों के वर्गीकरण का आधार स्पष्ट नही है। पुस्तकालय मे पढकर या किसी सेमिनार में सुन कर तथ्य को एकत्र करना उसे प्राथमिक' (Primary) नही बनाता। इसी प्रकार, द्वितीयक सामग्री सम्बन्धी दृष्टिकोण भी त्रुटिपूर्ण है। प्राय यह माना जाता है कि उसे किसी अन्य व्यक्ति द्वारा किसी अन्य लक्ष्य से सकलित किया गया हो तथा जिसे शोधक अपनी समस्या के समाधान या प्रकल्पना के सत्यापन के लिए प्रयोग करता हो। सकलन करने वाले के आधार पर किसी सामग्री को प्राथमिक या 'द्वितीयक' कहना उचित नही है। वस्तुत सामग्री का 'प्राथमिक' या 'द्वितीयक' स्तर सापेक्ष है। *ये विशेषण शोध के लक्ष्य से अधिक सम्बन्ध रखते हैं।* जैसे, मतदान अध्ययन की समस्या मे, स्वयं 'क' का 'छ' को मत देना एक प्राथमिक तथ्य है तथा उसका यह कहना कि 'ख' ने 'ज' को मत दिया है, एक द्वितीयक तथ्य है। जहाँ स्रोत स्वयं अपनी स्थिति कहता है, वही वह 'प्राथमिक' तथ्य होता है। यदि वही बात दूसरे के द्वारा, या दूसरे (ख) के द्वारा पहले (क) के बारे मे कही जाय, तो उक्त कथन द्वितीयक तथ्य हो जायेगा। 'सुभाषचन्द्र बोस की स्वाधीनता-सग्राम मे निर्णायक भूमिका' के विषय पर स्वयं *सुभाष के कथन, गतिविधियाँ आदि 'प्राथमिक' तथ्य, तथा उसके विषय में गांधी,* नेहरू आदि के कथन 'द्वितीयक' तथ्य कहलाएँगे।

इन तथ्यों का महत्त्व अनुसंधान की आवश्यकता पर निर्भर होता है। यह एक भ्रान्त धारणा है कि प्राथमिक स्रोत द्वितीयक स्रोतों से घटिया या कम विश्वसनीय होते हैं। कई बार द्वितीयक स्रोत अधिक प्रामाणिक हो सकते हैं जैसे, भारत की आर्थिक स्थिति के बारे म वित्तमन्त्री के कथन से अधिक विश्वसनीयता रिजर्व बैंक की रिपोर्ट एवं आंकड़ो मे होगी। किसी निजी कथन से सामूहिक दर्शकों का कथन अधिक प्रामाणिक होगा। बहुत कुछ तथ्यों के सकलन करने वाले अधिकारी पर भी निर्भर *करता है।* उसकी *विश्वसनीयता* एवं ईमानदारी कितनी है? स्वयं उपस्थित शोधक भ्रान्ति से ग्रसित हो सकता है। अनुपस्थित व्यक्ति तथ्य को सही ढग से रख सकता है। इसलिये यह उचित नही है कि सभी छपे हुए प्रलेखों Documents) को द्वितीयक स्रोत कह दिया जाय। सभी हस्तलिखित पत्रादि *प्राथमिक सामग्री नही बन जाते।* उदाहरणार्थ, किसी ऐतिहासिक समस्या का अध्ययन करते समय हस्तलिखित प्रलेख या पत्र भी 'प्राथमिक' तथ्य बन जाएँगे। इसी प्रकार, किसी तात्कालिक अधिकारों द्वारा अपने अधीनस्थ के कार्य का मूल्यांकन 'प्राथमिक' तथा उसके साथियो द्वारा मूल्यांकन 'द्वितीयक' तथ्य माना जायेगा।

पारस्परिक सम्बन्धों की दृष्टि से स्रोत दो के स्थान पर तीन प्रकार के बन जाते हैं— प्राथमिक, द्वितीयक तथा तृतीयक। उदाहरण के लिए, भारत सरकार द्वारा तैयार किये गये भारतीय जनसख्या के आकड़े 'प्राथमिक' तथ्य हैं। यू. एन. ओ. द्वारा तैयार विश्व आंकड़े

जिनमे भारतीय आंकड़ों को शामिल कर लिया गया है, 'द्वितीयक' तथ्य होंगे। किन्तु किसी विश्व जनसख्या पर लिखी गई पुस्तक मे यदि सयुक्त राष्ट्र सघ द्वारा प्रकाशित जनसख्या के आकड़ो का सन्दर्भ दिया गया है, तो वे तृतीय स्रोत बन जाएँगे। इस पुस्तक का सन्दर्भ देने वाला शोधक या लेखक तृतीय स्रोत का उपयोग कर रहा है।

शोध मे उपयोगिता की दृष्टि से, द्वितीयक तथा कुछ अशो म तीसरे स्रोत कार्यकारी प्रकल्पनाओ का निर्माण करने मे सहायक होते हैं। ये दो प्रकार के तथ्य या स्रोत प्राथमिक स्रोत द्वारा प्राप्त सामग्री के साथ तुलना करने का अवसर भी प्रदान करते हैं कि वे कहाँ तक सही हैं ? इस तुलनात्मक विश्लेषण के द्वारा विभिन्न स्रोतो म वर्तमान त्रुटियो को दूर किया जा सकता है। मौलिक अध्ययन प्राथमिक स्रोतो के आधार पर किया जा सकता है तथा अन्य द्वितीयक या तृतीयक स्रोतो वाली गवेषणाओ से उसकी तुलना की जा सकती है। या द्वितीय या तृतीय स्रोतो से प्राप्त तथ्यो से प्राथमिक तथ्यो की तुलना की जा सकती है। शोध-प्रक्रिया मे दोनो रीतियो—3, 2, 1 तथा 1, 2, 3 से जाँच कर लेनी चाहिये।

प्राय होता यह है कि अन्य पुस्तको यानि तृतीय स्रोत मे हम समस्या' (Problem) प्राप्त करते हैं। उनसे हमे समस्या ढूँढने की विषय सामग्री मिलती है। ये तृतीय स्रोत द्वितीय स्रोतो पर आधारित होते हैं। उनके मूल उद्धरणो या द्वितीय स्रोतो से हम प्रकल्पनाएँ प्राप्त करते हैं। इन द्वितीय स्रोतो में प्राप्त प्रकल्पनाओ का परीक्षण जाँच आदि प्राथमिक स्रोतो के द्वारा की जाती है। तुलना करने के लिये हम प्राथमिक स्रोतो से द्वितीयक तथा तृतीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यो की ओर देखते हैं। किन्तु एक बात को अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है कि तृतीय स्रोतो से प्रकल्पनाएँ विकसित नही की जाएँ, क्योकि शोधक तृतीय स्रोतो को देखकर यह नहीं जान सकता कि किन तथ्यो एव अवधारणाओ के आधार पर वे प्रकल्पनाएँ प्राप्त की गई हैं। प्राथमिक तथ्य का सकलनकर्ता तो यह जानता है और जान सकता है कि तथ्य कैसे हैं ? अथवा उनमे क्या त्रुटियाँ रह गई हैं ? किन्तु द्वितीय तथा तृतीय स्रोतों का सकलनकर्त्ता यह नही जानता। किन्तु द्वितीय स्रोत तृतीय की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय एव उपयोगी है, क्योंकि उसमे रह गई कमियो, सीमाओ एव त्रुटियो से हम सुगमतापूर्वक परिचित हो सकते हैं तथा उनका परिष्कार कर सकते हैं। निष्कर्ष यह है कि समस्या के अध्ययन से पूर्व उपलब्ध सामग्री 'द्वितीयक' होती है, यदि उसका उल्लेख किसी तीसरे ने किया है तो उसे तृतीयक कहा जायेगा। शोधक की समस्या से सम्बन्धित सामग्री को, यदि वह वैसे ही रूप मे अन्यत्र उपलब्ध नहीं है तो 'प्राथमिक' तथ्य कहा जाएगा।

तथ्य-संकलन की प्रविधियाँ (Techniques of Data Collection)

तथ्यो के प्रकारो एव स्रोतो को जानने के पश्चात् उनके सकलन का प्रश्न सामने आता है। राजविज्ञान में तथ्यों का सकलन एक जटिल समस्या है। राजनीति के तथ्य अपने आप मे अलग-अलग नहीं होते। वे अन्य सामाजिक, सास्कृतिक तथा आर्थिक गतिविधियो मे घुले मिले होते हैं। उन्हें अवधारणाओं के आधार पर छांटना या बनाना पड़ता है। अवधारणाएँ स्वय अमूर्त होती हैं, किन्तु उनको आनुभविक सकेतको (Empirical in actor) द्वारा परिचालनात्मक (Operationalize) बनाना पड़ता है। ऐसा करने से शोधक को 'परिचालनात्मक अवधारणाएँ' प्राप्त हो जाती हैं। इन 'परिचालनात्मक अवधारणाओं' (Operational concepts) के आधार पर तथ्यों को पहचाना एव निकाला जाता है।

पद्धति एवं प्रविधि में अन्तर (Distinction between Method and Technique)

यह पहले बताया जा चुका है कि पद्धति (Method) एवं प्रविधि (Technique) में पर्याप्त अन्तर होता है।[16] प्रायः इन दोनों को समान तथा पर्यायवाची समझ लिया जाता है। इनके मध्य अन्तर को तकनीकी दृष्टि से बनाये रखना चाहिये। पद्धति एक व्यापक प्रक्रिया या प्रणाली का नाम है, उसमे प्रविधि का एक भाग बन जाती है। पद्धति मे अपने अध्ययन के विषय के क्षेत्र, सीमा तथा प्रकृति पर विचार किया जाता है। उस पद्धति के अन्तर्गत आ सकने वाली विषय-वस्तु की विवेचना की जाती है। जैसे, मनोवैज्ञानिक या ऐतिहासिक पद्धतियाँ। प्रविधि उस विषय से सम्बन्धित सूचनाओ तथा तथ्यों को एकत्रित करने की रीति, तरीका या ढग है। प्रविधि एक क्रियात्मक तकनीक है। इसमे कुशलता प्राप्त करना, अभ्यास, अनुभव, रुचि और कौशल की वस्तु है। प्रविधियाँ न्यूनाधिक रूप से विभिन्न पद्धतियों, सिद्धान्तों आदि मे प्रयोग की जा सकती हैं। किन्तु अनुशासनों, विज्ञानों या विषयो के लिये प्रविधियों का स्वरूप विशेष होता है। जैसे, भौतिकशास्त्र या रसायन-विज्ञान की प्रविधियाँ, खगोल या भूगर्भ विज्ञान से भिन्न होती हैं। इसी तरह, इतिहास से राजविज्ञान की प्रविधियाँ परस्पर भिन्न होती। प्राकृतिक विज्ञानों के प्रयोगो (Experiments) का समाजशास्त्रों मे बहुत कम स्थान है।

पद्धति का सम्बन्ध सम्पूर्ण शोध तथा उसके अभिकल्प से रहता है। उसकी अवधारणाओ तथा प्रकल्पनाओ के अनुसार पद्धतियो का निर्धारण कर लिया जाता है। इन्हे प्राय बदला नही जाता। पद्धति का दौर-दौरा प्रारम्भ से अन्त तक रहता है, किन्तु प्रविधि का क्षेत्र सीमित होता है। यह तथ्य प्राप्त करने के अनेक उपायो मे से एक है। तथ्य-प्राप्ति के बाद प्रविधि की भूमिका समाप्त हो जाती है। पद्धति न्यूनाधिक रूप से स्वतन्त्र तथा आत्मनिर्भर मानी जाती है, किन्तु प्रविधि पद्धति के ऊपर निर्भर रहती है। प्रविधि पद्धति के द्वारा निर्धारित की जाती है, न कि पद्धति प्रविधि के द्वारा। मनोविज्ञानात्मक पद्धति को अपनाने पर वैसी ही प्रविधियो का प्रयोग किया जायेगा। पद्धति बदलने पर प्रविधियों मे भी आवश्यक परिवर्तन कर दिया जाता है। प्रविधि म सुधार, परिवर्तन, विकास आदि होता रहता है, किन्तु पद्धति न्यूनाधिक रूप से वैसी ही बनी रहती है। पद्धति के कुछ निश्चित चरण या अवस्थाएं होती हैं, उनमे फेर बदल नही होता। प्रविधियो की प्रक्रिया म स्थानीय या सामयिक परिवर्तन होते रहते हैं। प्रविधि तथा उसका प्रयोग कला का विषय है। वह व्यावहारिक अधिक होती है, विज्ञानात्मक कम।

तथ्य-संकलन की प्रमुख प्रविधियाँ
(Important Tnchniques of Data Collection)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रविधियाँ साधन (Means) होती हैं। इनके माध्यम से शोध के लिए महत्त्वपूर्ण वास्तविक तथ्यों, सूचनाओ तथा आंकड़ो को एकत्रित किया जाता है। मोजर के शब्दों में, "प्रविधियाँ समाजविज्ञानी के लिए वे स्वीकृत तथा सुव्यवस्थित रीतियाँ, जिन्हें वह अपने अध्ययन विषय से सम्बद्ध विश्वसनीय तथ्यो को प्राप्त करने के लिए काम मे लाता है।' इस प्रकार प्रविधियाँ तथ्य एकत्रित करने से सम्बंधित क्रियाएँ होती हैं। इन्हें मान्य, स्वीकृत या सुविदित रीति से प्रयोग किया जाता है। इनके अनेक रूप हैं तथा पद्धति या विषय मे परिवर्तन के साथ-साथ इनमें भी परिवर्तन होता जाता

है। सभी अनुशासन अपनी-अपनी प्रकृति एव आवश्यकतानुसार प्रविधियों का विकास करते जाते हैं।

राजविज्ञान म जिन प्रविधियो को उपयोगी एव महत्त्वपूर्ण माना गया है, उनकी सूची बड़ी लम्बी है। उनम स कुछ अधिक महत्त्वपर्ण प्रविधियाँ इस प्रकार हैं अवलोकन (Observation), साक्षात्कार (Interview), अनुसूची (Schedule), प्रश्नावली (Questionnaire), व्यक्तिवृत्त अध्ययन (Case Study), विषयवस्तु विश्लेषण (Content Analysis), प्रक्षेपण (Projection), प्रयोग (Experiment), समाजमिति (Sociometrics) आदि। इनका अगले अध्यायो म विवेचन किया गया है।

सन्दर्भ

1 'पद्धतिवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य' का प्रथम खण्ड के अध्याय दो, तीन, चार, पाँच और छ म विवेचन किया गया है।

2 राजविज्ञान म अधिकाश अनुसधान, विशेषत भारत म, अ राजवैज्ञानिक क्षेत्रो मे किये गए हैं। ये या तो इतिहास, लोक प्रशासन या समाजशास्त्र के विषयो से सम्बन्ध रखते हैं, या ऐसे लघु महत्व के जैसे, एक दो ग्राम पचायतो का सर्वेक्षण, विधानसभाओ मे मतदान, राजनेताओ की आत्मगाथाएँ आदि विषया से सम्बद्ध हैं। ये शोधकर्त्ता अप्रत्यक्ष रूप म शोधको म उच्चस्तरीय शोध-भावना के अभाव को बताते हैं।

3 Stephen L Wasby, Political Science—The Discipline and its Dimensions, Indian edition Calcutta, Scientific Book Agency, 1970, pp 160–61

4 Pauline V Young, Scientific Social Surveys and Research, Indian edition, op. cit , p 136

5 V. M Palmer, Field Studies in Sociology, Chicago, University of Chicago Press, 1928, p 57

6 Young, op cit , p 136

7 अवलोकन या प्रेक्षण के विषय म आगे देखिए, अध्याय–9।

8 Government of Rajasthan, Administrative Reforms Committee, pp XXX and XXXII, Appendix–III

9. Lundberg, op cit , p 122

10 John A Madge, The Tools of Social Science, New York, Garden City, Double Day, 1965

11 C A Moser, Survey Methods in Social Investigation, op cit

12 कुछ उदाहरण—Bernard Law Montgomery, The Memoirs of Field—Marshal the Viscount Montogomery of Alamein, Cleveland, World Publishing, 1958 , Dwight Eisenhower, Crusade in Europe, Garden City, N Y , Double Day, 1948, Omar Nelson Bradley, A Soldier's Story, New York, Holt, Rinehart and Winston, 1951.

13. Gideon Sjoberg, ed , Ethics, Politics and Social Research, London Routledge & Kegan Paul, 1967.
14. United Nations Statistical Year Book, U. N Deptt of Economic and Social Affairs New York, Statistical Abstract of India, Central Statistical Organisation, Deptt of Statistics, Ministry of Planning, Govt. of India, New Delhi , Labour Statistics, Ministry of Labour, Govt of India New Delhi
15 F S Chapin, Field Work and Social Research, Century, 1922, pp 37-38
16. देखिए पीछे, अध्याय–4 ।

अध्याय 9

अवलोकन एवं साक्षात्कार

[Observation and Interview]

गार्नर ने 'विज्ञान' की परिभाषा देते हुए कहा है कि विज्ञान, किसी विषय से सम्बन्धित ज्ञान के उस एकीकृत भण्डार को कहते हैं, जिसकी प्राप्ति ऐसे तथ्यों के व्यवस्थित अवलोकन, अनुभव तथा अध्ययन से हुई हो जिन्हें समन्वयित, क्रमबद्ध एवं वर्गीकृत किया गया है ।[1] लार्वेल का यह दृष्टिकोण सही है कि राजनीति का अध्ययन 'पर्यवेक्षणात्मक विज्ञान है, प्रयोगात्मक नहीं (An observational and not an Experimental Science) ।'[*] उसका वास्तविक कार्यक्षेत्र प्रयोगशाला या पुस्तकालय न होकर राजनीति का बाहरी संसार है । यह सही है कि राजनीति का अध्ययन करने के लिए विभिन्न पद्धतियों का प्रयोग किया जाता रहा है तथा आज भी किया जाता है, किन्तु उन सभी पद्धतियों का आधार 'अवलोकन', 'प्रेक्षण', 'पर्यवेक्षण', 'निरीक्षण', या देखने (Observation) को ही माना गया है । व्यवहारवाद के आने के पश्चात् अवलोकन को प्रमुख सामग्री 'व्यवहार' को बनाया गया है ताकि उसका वैज्ञानिक अध्ययन करके उक्त विषय को वास्तविक रूप से 'विज्ञान' बनाया जा सके ।[2] इसमें कोई सन्देह नहीं है कि राजनीति की समस्त सामग्री मूर्त या प्रेक्षणीय नहीं है तथा उसका निर्माण राजनीति, राजनैतिक विचारों तथा राजनैतिक सम्बन्धों के अमूर्त रूपों से भी हुआ है, किन्तु अन्ततोगत्वा ये सभी ठोस व्यवहार में ही मूर्त होते हैं । मूर्त राजनैतिक व्यवहार राजनीति का आदि, मध्य एवं अन्त है । अतएव राजविज्ञान को अवलोकन पर आधारित मानने में कोई आपत्ति नहीं है । विज्ञान अवलोकन से प्रारम्भ होता है तथा अपने अन्तिम प्रमाणीकरण के लिए उसे अनिवार्यतः अवलोकन की ओर ही लौटना पड़ता है । वास्तव में, राजनीति का अध्ययन 'अवलोकन' से सम्बद्ध होकर ही 'विज्ञान' बन सकता है । 'अवलोकन' से पृथक् होकर वह दर्शनशास्त्र, इतिहास, साहित्य, गल्प या उपन्यास बन जाता है । मोजर ने अवलोकन को वैज्ञानिक शोध की 'शास्त्रीय पद्धति' (Classical method) कहा है । यह तथ्य प्राप्ति का स्रोत, पद्धति एवं तकनीक तीनों ही है ।

अवलोकन का सामान्य अर्थ है आँखों द्वारा देखना, निरीक्षण या प्रेक्षण करना ।[+]

[+]Science begins with observation and must ultimately return to observation for its final validation

— Goode and Hatt

In the strict sense observation implies the use of the eyes rather than of the ears and the voice

— C A Moser

Contd

शोध-क्षेत्र में अवलोकन का विशेष अर्थ है—'कार्य-कारण या पारस्परिक सम्बन्धों को जानने के लिए स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं का सूक्ष्म प्रेक्षण।' यद्यपि इस प्रक्रिया में कानों और आवाज की अपेक्षा आँखों का अधिक प्रयोग होता है, किन्तु उसमें आँखों को प्रमुखता देते हुए न्यूनाधिक रूप में सभी इन्द्रियों का प्रयोग किया जाता है। अवलोकन में उद्देश्य का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। सामान्य 'देखने' और वैज्ञानिक 'अवलोकन' में यही मुख्य अन्तर होता है। इस ग्रन्थ में प्रयुक्त अवलोकन, प्रेक्षण, निरीक्षण आदि शब्दों का प्रयोग शोध, विज्ञान अथवा वैज्ञानिक अध्ययन के सन्दर्भ में ही किया गया है। इसके अन्तर्गत अध्ययन प्रत्यक्ष (Direct) अर्थात् शोधक और घटना या तथ्य के मध्य सीधा सम्बन्ध होता है। शोधकर्ता घटना में कार्य कारण अथवा चरों और तथ्यों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों या अन्तर्सम्बन्धों का पता लगाता है।

अवलोकन के प्रकार (Kinds of Observation)

तथ्यों की प्राप्ति एवं विश्वसनीयता की दृष्टि से अवलोकन दो प्रकार का होता है—

(1) प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation),

(2) अप्रत्यक्ष अवलोकन (Indirect Observation),

प्रत्यक्ष अवलोकन में शोधकर्ता घटनाओं या तथ्यों को पहली बार देखता या अनुभव करता है। अप्रत्यक्ष अवलोकन में वह सूचनादाता के ऐन्द्रिक प्रभावों के निर्वचन पर निर्भर करता है। दूसरे शब्दों में, वह उस घटना या तथ्य को सूचनादाता के माध्यम से देखता है। वस्तुतः दोनों के मध्य इतना अधिक स्पष्ट अन्तर नहीं पाया जाता। व्यवहार में, ये दोनों घुले मिले रहते हैं। साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि को अप्रत्यक्ष अवलोकन में शामिल किया जाता है।

प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation)

प्रत्यक्ष अवलोकन में शोधक अपनी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा, घटनाओं के कार्य-कारण अथवा पारस्परिक सम्बन्धों को, अपने यथावत् रूप में देखता है। वास्तव में देखा जाये तो सीधे रूप में केवल दो वस्तुएँ—भाषायी चिह्न तथा भौतिक गतिविधियाँ—ही दिखायी पड़ती हैं। ये वे वस्तुएँ नहीं हैं जिनकी हम राजनैतिक शोध में तलाश करते हैं। इन भाषायी चिह्नों भौतिक गतिविधियों, प्रतीकों आदि को देखकर हम राजनैतिक मूल्यों, विचारों, घटकों, सम्बन्धों आदि का अभिज्ञान या अनुमान करते हैं। अवलोकन द्वारा हम अभिज्ञान का प्रत्यक्षण (Perception) कहा जाता है। प्रत्यक्ष अवलोकन में राजशोधक, मानव व्यवहार अथवा अपने तात्कालिक परिवेश की वस्तुओं के उस प्रत्यक्षण से सम्बन्ध रखता है, जिसे उसने अवधारणाओं के रूप में ग्रहण किया है। इसकी एक शर्त यह भी है कि उसे दूसरों को बताया जा सके। मनोवृत्तियों, मानक, अवधारणाएँ आदि मानव-व्यवहार के प्रत्येक अवलोकन से ही ग्रहण की जाती हैं। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति का अवलोकन

Observation includes all forms of sense-perceptions used in the recording of responses, as they impinge on our senses

—Galtung

परस्पर समान नही होता। अनुसधान कार्यों मे हमे सामान्य व्यक्तियो तथा राजवैज्ञानिको के मध्य किये गये अवलोकनो म अन्तर बनाये रखना पड़ता है।

सामान्य एवं वैज्ञानिक अवलोकन में अन्तर

सामान्य व्यक्तियो (Laymen) तथा समाज-विज्ञानियो (Social Scient sts) के मध्य अवलोकनो मे अन्तर होता है। *अधिकाश राजविज्ञानी एव राजशोधक जिस सामग्री* को अपना आधार बना कर चलते हैं, वह अराजविज्ञानियो द्वारा सकलित या विश्लेषण की हुई होती हैं। ये व्यक्ति समाचार पत्र लेखक, प्रशासक, शिक्षक, समाज-सुधारक, व्यापारी, प्रबन्धक आदि होते हैं। प्राय सभी लोग समाचार-पत्रो द्वारा सूचित समकालीन घटनाओ को अपना अनिवार्य स्रोत मानकर चलते हैं। वे *राजविज्ञानियो के लिए आँख और कान* का काम करते हैं। इसका कारण उनका सर्वत्र बढता हुआ प्रभाव है। एक सस्था के रूप मे *उनका स्तर बहुत ऊँचा होता है और वे सभी जगह जा सकते हैं। इसी प्रकार विभिन्न* पत्र लेख, सस्मरण आदि हैं। इन सभी का राजवैज्ञानिकों के लिए बहुत महत्व है। *राजविज्ञानी न तो उन घटनाओ तक पहुँच पाते हैं और न ही उन्हें पहुँचने दिया जाता* है। बडे सगठन उन्हें घुसने नही देते या उनको कोई अधिक उपयोगी सामग्री नही देते, *क्योकि उन्हें अपनी सार्वजनिक छवि (Image) बिगडने का भय होता है। भला नाजियो* के मौत शिविरो का अवलोकन कैसे किया जा सकता था? *उनका पता उन यातना-शिविरो से बचे हुए व्यक्तियो या नाजी-अधिकारियो के लेखन द्वारा ही लगता है।*

इनकी उपयोगिता एव कभी-कभी अनिवार्यता को मानते हुए भी शोधकर्त्ताओ को उनका प्रयोग करते समय बडा सावधान रहना चाहिए। कभी कभी ये तथाकथित प्रत्यक्ष अवलोकन स्वय दूसरों के अवलोकन पर आधारित होते हैं। दस-बीस वर्ष बाद याद करके लिखे सस्मरण[3] आदि भी पूरी तरह से विश्वसनीय नही होते। सबसे बढकर वे शोधक की समस्या से सम्बद्ध नही होते। अराजविज्ञानियो द्वारा लिखी हुई सामग्री का एक बहुत बडा भाग, उसके किसी काम का नही होता। वे अपना अवलोकन किसी सिद्धान्त या प्रकल्पना के प्रकाश मे नही करते और बहुत-सी महत्त्वपूर्ण घटनाओ या सामग्री का विवेचन ही नही करते। *सवाददाता अपने समाचार-पत्रो के बन्दी होते हैं।* द्वितीय महायुद्ध के महारथियों अथवा राष्ट्रीय स्वाधीनता सग्राम के सेनानियो ने अपने कार्यों अथवा दृष्टिकोण का अपने सस्मरणो मे विवेकीकरण (Rationalization) *प्राय किया है।*[4] किन्तु इसका अर्थ यह नही है कि कोई भी व्यक्ति समसामयिक घटनाओं का वैषयिक (Objective) अध्ययन नहीं कर सकता। *सामान्य व्यक्तियो के द्वारा भी वस्तुपरक अवलोकन किये हैं।*[5] *अन्तर इतना ही है कि राजविज्ञानी एक विशेष प्रयोजन को लेकर तथा कतिपय नियन्त्रणो के नीचे रहकर अवलोकन करता है। उसके अवलोकन म विश्वसनीयता एव प्रामाणिकता अधिक होती है।* वह अनुभव पर आधारित अवधारणाओ के द्वारा घटनाओ का प्रत्यक्षण (Perception through conception) करता है। ऐसा करते समय वह तथ्यो से *सिद्धान्त की ओर तथा सिद्धान्त या अवधारणाओं से तथ्यो की ओर आ-जाकर अपने अवलोकन की जाँच करता रहता है।*

शोधक की इस प्रक्रिया म दो बातें देखने को मिलती हैं – प्रथम, स्वय उसके सिद्धान्त या अवधारणात्मक व्यवस्था (Conceptional system) का साथ या अवलोकन

पर प्रभाव पड़ता है तथा द्वितीय, अवलोकन-कर्त्ता या प्रेक्षक की प्रस्थिति (Status) तथा भूमिका (Role) का भी शोध पर प्रभाव पड़ता है।[6] यही कारण है कि कई बार उसे निर्धारित *प्रकल्पना का परीक्षण करने के बजाय स्वयं अभिकल्प एवं प्रकल्पना को ही* बदलना पड़ता है। वह एक समाज-व्यवस्था का सदस्य भी होता है। इस नाते, शोध-कार्य को उसके अपने विचार, विश्वास तथा मूल्य भी प्रभावित करते हैं। कई बार स्वयं शोधक इन प्रभावों को पहचान भी नहीं पाता।[7] उसकी *व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताएँ* भी अपना प्रभाव दिखाती हैं। इन प्रभावों से वही शोधक छुटकारा पा सकता है जिसने एक विशेष विचारवाद, मूल्य-योजना या दल-विशेष से अपने आपको प्रतिबद्ध (Commit) नहीं कर लिया हो। साथ ही वह अपने अनुसंधान पर प्रभाव डालने वाले कारकों के प्रति सजग और सक्रिय भी हो।[8]

इसी प्रकार, उसकी अपनी सामाजिक स्थिति, आयु, लिंगभेद, पद एवं व्यक्तित्व से भी अनुसंधान कार्य प्रभावित होता है। कई बार अनुसंधान कराने वाली तथा आर्थिक सहायता देने वाली संस्थाओं की अपनी मांगें होती हैं। स्वयं,प्रेक्षक (Observer) तथा प्रेक्षित *(The observed) के मध्य सामाजिक अन्तर भी तथ्यों के स्वरूप को बदल देता* है।[9] कई बार तथ्यों एवं आंकड़ों को प्राप्त करने के बाद शोधक के सम्मुख यह नैतिक धर्मसंकट (Dilemma) उपस्थित हो जाता है कि वह उन्हें प्रकाशित करे या न करे? वह प्रेक्षितों को अपना वास्तविक प्रयोजन तथा अपनी पहचान बताये या न बताये? विभिन्न प्रेक्षकों के अवलोकनों में भी अन्तर हो जाता है। इतना होने पर भी वैज्ञानिक अवलोकन, जैसा भी है, अपने आप में स्पष्ट होता है। उसकी विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता तात्कालिक समाज-व्यवस्था तथा उसके अपने व्यक्तित्व से जुड़ी हुई होती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सामान्य अवलोकन तथा वैज्ञानिक अवलोकन में कोई अन्तर नहीं होता। *वैज्ञानिक अवलोकन प्रगतिशील, सन्तुलित एवं अग्रगामी होते हैं।* अपनी कमियों के बावजूद भी, वे पद्धति एवं प्रक्रियात्मक संकेतों के आधार पर पहचाने तथा मूल्यांकन किये जा सकते हैं। राजवैज्ञानिक शोध-कर्त्ताओं का अवलोकन समाचार-पत्रों, राजनेताओं, प्रतिबद्ध लेखकों आदि से पृथक् प्रकृति का होता।

प्रत्यक्ष अवलोकन के प्रकार (Kinds of Direct Observation)

नियन्त्रण, सहभाग तथा संख्या की दृष्टियों से अवलोकन के निम्नलिखित प्रकार पाये जाते हैं —

(1) अनियन्त्रित अवलोकन (Uncontrolled observation)
(2) नियन्त्रित अवलोकन (Controlled observation)
(3) *सहभागी अवलोकन (Participant observation)*
(4) असहभागी अवलोकन (Non-Participant observation)
(5) अर्द्ध-सहभागी अवलोकन (Quasi-Participant observation)
(6) सामूहिक अवलोकन (Mass observation)

अनियन्त्रित अवलोकन (Uncontrolled observation)

जिन व्यक्तियों, वस्तुओं और घटनाओं का अवलोकन किया जा रहा है, यदि उन पर अवलोकक (Observer) या प्रेक्षक का कोई नियन्त्रण नहीं हो तो ऐसे अवलोकन

को अनियन्त्रित अवलोकन (Un-Controlled Observation) कहा जायेगा।[+] ऐसा अवलोकन स्वाभाविक या प्राकृतिक अवस्था म रहकर किया जाता है, जैसे, किसी दल या सघ द्वारा प्रदर्शन का अवलोकन। यग के अनुसार इसमे हमे वास्तविक जीवन की परिस्थितियो की सूक्ष्म जांच करनी होती है, उसम परिशुद्धता—उपकरणो (I st uments of Percesion) का उपयोग अथवा अवलोकन किये गये तथ्यो की शद्धता की परीक्षा नही की जाती।[10] इस प्रक्रिया मे सामान्य राजनैतिक घटनाओ एव परिस्थितियो का अवलोकन किया जाता है किन्तु अवलोकन के सही गलत होने की जाँच करने का प्रयास नहीं किया जाता। अधिकाश सार्वजनिक गतिविधियो का अवलोकन इसी प्रकार किया जाता है। वास्तविक राजनैतिक घटनाओ को किसी भी प्रकार से प्रयोगशाला या बन्द कमरे मे नही घटित किया जा सकता। ऐसे प्रयास घोर अपराध तथा अनैतिक माने जाते हैं।

ऐसे अनियन्त्रित अवलोकनो म अनेक कमियाँ रह जाती हैं। (i) अवलोकन अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहो, मिथ्या झुकावो आदि स ग्रसित होता है, इसस उसका अवलोकन दोषपूर्ण हो जाता है, (ii) उसके दोषपूर्ण अवलोकन को शुद्ध बनाने का कोई उपाय नहो किया जाता, (iii) साधारण व्यक्ति तथा शोधकर्त्ता के अवलोकन म कोई अन्तर नही रह जाता, तथा (iv) समस्या या प्रकल्पना के बिना ऐसा अवलोकन वैज्ञानिक दृष्टि से उपयोगी नही होता।

2. नियन्त्रित अवलोकन (Controlled observation)

समाजविज्ञानो का विकास अनियन्त्रित से नियन्त्रित अवलोकन की दिशा में हो रहा है। जब अवलोकन, अवलोकक (Observer) तथा अवलोकित (Observed) मे से किसी एक या सभी पर किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण रहता है, तब उस नियन्त्रित अवलोकन (Controlled ob ervation) कहा जाता है। ऐसा करने के लिए एक योजना या कार्यक्रम बनाया जाता है तथा उपयुक्त उपकरणो एव साधनो को एकत्रित किया जाता है। इसमे नियन्त्रण तीन प्रकार का होता है—(i) राजनैतिक घटना पर नियन्त्रण (Control over politi al phenomena) इन्हे हम राजनीतिक प्रयोग (Political experiments) भी कह सकते हैं। अनेक राजविज्ञानियो ने छोटे छोटे समूहो मे नेतृत्व सम्बन्धी प्रयोग किये हैं। नय कानूनो, मतदान प्रणालियो, शासन के प्रकारो या प्रशासन-शैलियो का प्रयोग इसके अन्तर्गत रखा जा सकता है। (ii) दूसरा प्रकार, अवलोकक पर नियन्त्रण (Control over observer) द्वारा होता है। इसम प्रेक्षक या अवलोकनकर्त्ता को कुछ साधनों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। अनुसूची, प्रश्नावली आदि का प्रयोग तथा डायरी, कैमरा, टेपरेकार्डर, फिल्म आदि का उपयोग, ऐसे ही साधन होते हैं। (iii) स्वय अवलोकन (Control over observation itself) पर नियन्त्रण करने के

+In the non controlled observation we resort to careful scrutiny of real life situations making no attempt to use instruments of precision or check for accuracy of phenomena observed

—Young

Observers may also be a source of unreliability and invalidity

—Smith

मशीनी साधन होते हैं। ये अवलोकन की सीमा, शुद्धता, गणना आदि बताते रहते हैं। दूरबीन या सूक्ष्म दर्शक यन्त्र इसके अनुपम उदाहरण हैं।

नियन्त्रित तथा अनियन्त्रित अवलोकनों में अन्तर

(Distinction between Controlled and Uncontrolled Observations)

नियन्त्रित अवलोकन में अवलोकित घटना, अवलोकक या अवलोकन तीनों में से किसी एक पर या तीनों पर न्यूनाधिक नियन्त्रण किया जाता है। प्रेक्षक निर्दिष्ट परिस्थितियों में जैसे जेल में चुने हुए राजनैतिक कैदियों का अथवा मशीनी उपकरणों द्वारा अवलोकन कर सकता है। एक उच्चाधिकारी द्वारा थोड़े समय के लिए विशेष अधिकारों के दिये जाने पर किसी अधीनस्थ अधिकारी के व्यवहार का अवलोकन किया जा सकता है। अनियन्त्रित अवलोकन में तीनों ही उन्मुक्त या बन्धनहीन होते हैं। इसमें स्वाभाविकता होती है। नियन्त्रित अवलोकन में कृत्रिमता होती है तथा नियन्त्रण का भेद खुल जाने का डर बना रहता है। नियन्त्रण के कृत्रिम साधनों—अनुसूची, नोट्स, मानचित्र, टेपरेकार्डर आदि का कुछ न कुछ दुष्प्रभाव होता ही है। इसमें योजना बनानी पड़ती है, फिर भी अध्ययन गहन नहीं हो पाता। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि मिथ्या झुकावों, पूर्वाग्रहों आदि का अवलोकन पर प्रभाव सीमित हो जाता है। शोधक शोधकार्य में स्वयं एक चर (Variable) होता है तथा वह स्वयं अनेक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक कारकों से प्रभावित होता है। नियन्त्रित अवलोकन उसकी भूमिका (Role) को अप्रभावपूर्ण बनाने की युक्ति है। इसके लिए अनेक सुझाव दिये गये हैं, यथा, (i) अनेक शोधक या अवलोकक एक साथ काम करें, (ii) अवलोकन से पूर्व शोधकों का विभिन्न प्रकार से अभिमुखन (Orientation) किया जाये, (iii) वेल्स की तरह कतिपय प्रयोगशाला-प्रयोग शुरू किये जायें,[15] तथा (iv) मशीनी युक्तियों का सहारा लिया जाये।

3. सहभागी अवलोकन (Participant observation)

सहभागी अवलोकन इस तर्क पर आधारित है कि किसी घटना का विश्लेषण तभी शुद्ध रूप में किया जा सकता है जबकि उसमें आन्तरिक तथा बाह्य दृष्टिकोण मिल लिये हों अर्थात् जिसमें अवलोकित तथा अवलोकक के परिप्रेक्ष्य एकाकार हो गये हों। जॉन मेज के अनुसार, इसमें अवलोकक के हृदय की धड़कनें अवलोकित समूह के अन्य व्यक्तियों के हृदयों की धड़कनों से मिल जाती हैं। गुड एवं हैट के शब्दों में, *इस कार्य-प्रणाली का उस समय प्रयोग किया जाता है जबकि गवेषक (Investigator) अपने आपको इतना छिपा लेता है कि उस समूह के सदस्य के रूप में स्वीकार कर लिया जाये।*[12] 'इस पद्धति को लागू करने में यह अनुभव करना आवश्यक है कि न केवल शोधक ही यह अनुभव करे कि वह समूह के जीवन में भाग ले रहा है बल्कि समूह के सदस्य भी उसके बारे में ऐसा *ही अनुभव करें' (लुण्डबर्ग एवं लॉरिंग)। शोधक की व्याख्या, निर्वाचन या अवलोकन* तभी अधिक विश्वसनीय हो सकता है जबकि वह परिस्थितियों की गहराइयों में पहुँच जाय। कोई भी समूह या दल यह पसन्द नहीं करता कि कोई उसका अवलोकन करे तथा उसके भेद ले जाये। राजनीतिक अवलोकन[13] तभी सम्भव है जबकि शोधक समूह का अंग बनकर अवलोकन करे। उस समूह के बीच में रहकर वह उसके जीवन में भाग लेता है, चर्च या मन्दिर में जाता है, त्यौहार-पर्वों में भाग लेता है, तथा हँसी-खुशी में साथ देता है।

किन्तु इस विषय में शोध-पद्धति विज्ञानियो (Research methodologists) के दो विचार हैं—एक, शोधक को समूह की सम्पूर्ण गतिविधियो में भाग लेना चाहिए तथा अपना परिचय एवं उद्देश्य भी नही बताना चाहिए, तथा दूसरा, उसे अपना परिचय देते हुए समूह जीवन बिताना तथा अध्ययन करना चाहिए।[14] ऐसा करना नैतिकता तथा दीर्घकालीन दृष्टि से आवश्यक माना जाता है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि विभिन्न सरकारें एक दूसरे के देशो में अपने गुप्तचर भेजती हैं जो वर्षों वही रहते तथा नागरिक बन जाते हैं। वे सभी गतिविधियो की सूचना बेतार-उपकरणो से भेजते रहते हैं। अमेरिकी गुप्तचर सस्था (CIA) की गुप्तचर कार्य-वाहियाँ सारे ससार तक फैली हुई हैं। सोवियत रूस भी इस कार्य में पीछे नही। स्वय एक ही देश में अनेक गुप्तचर-सस्थाएँ काम करती हैं। कई बार ये सस्थाएँ स्वय शोधकर्त्ताओं, समाजविज्ञानियो तथा अधिकारियो को गुप्त-सूचनाओं का एकत्रित करने का माध्यम बना लेती हैं। अनेक सैनिक सस्थान एवं विदेश विभाग अपने उद्देश्यो की पूर्ति के लिए दूसरी अनुसधान सस्थाओं से शोध कार्य कराती हैं। प्रोजेक्ट कैमलॉट (Project Camelot), स्प्रिंगडेल अध्ययन (The 'Springdale' case) आदि इसी प्रकार के थे। किन्तु जब वैज्ञानिक लोग सैनिक उद्देश्यो की पूर्ति के उपकरण बन जाते हैं तो अनुसधान का मूल उद्देश्य समाप्त हो जाता है तथा शोधकर्त्ताओ पर से जनता एवं सरकार का विश्वास उठ जाता है। इसके सम्बन्ध में बडे वाद विवाद उठ खड़े हुए हैं।[5]

'सहभागी अवलोकन' शब्द का प्रयोग सबसे पहले सन् 1924 में लिंडमैन द्वारा किया गया था। किन्तु अब इसका प्रयोग सर्वत्र किया जाने लगा है। इसे बहुत उपयोगी अवलोकन प्रणाली मान लिया गया है। इसके अन्तर्गत शोधक घटना का प्रत्यक्ष (Direct) अनिगहन (Intensive) तथा सूक्ष्म (Minute) अध्ययन कर सकता है। इसका प्रयोग करना सरल (Simple) होता है। वास्तविक व्यवहार का अवलोकन तथा सग्रहीत सूचनाओं की जाँच कर सकने में सक्षम होने के कारण इसका उपयोग बढता ही जा रहा है। इसमें शोध-प्रक्रिया एक सीमा तक वस्तुपरक तथा मानकीकृत (Objective and standardize) हो जाती है।

किन्तु सहभागी अवलोकन, विशेष रूप से जिसमें अवलोकक अपना परिचय या उद्देश्य नहीं बताता, खतरो से खाली नही है। इसका प्रयोग करते समय शोधक कभी-कभी आत्म विस्मृत हो जाता है और वह सुध-बुध खो बैठता है। वह तटस्थ नही रह पाता। उसे कभी कभी गुप्तचर या सरकारी एजेन्ट समझ लिया जाता है। सहभागी अवलोकन अधिक से अधिक अर्द्ध-सहभागी अवलोकन हो पाता है। शोधक अवलोकित समूह का कभी भी पूरा सदस्य नही हो पाता।[16] उसके शामिल होने ही समूह के व्यवहार मे परिवर्तन (Change in group behaviour) आना शुरू हो जाता है। कभी-कभी शोधक को प्राणो के सकट का भी सामना करना पडता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, उसके सहभाग का अवलोकन पर विपरीत प्रभाव भी पडता है। घटनाओं के समीप रहने के कारण वह अनेक सूक्ष्म बातो को नहीं पाता। अवलोकन को 'अपरिचित मूल्य' (Stranger value) का लाभ नहीं मिल पाता। यह प्रविधि अत्यन्त खर्चीली सिद्ध होती है। व्यय या समय की मात्रा का कोई पूर्वानुमान नहीं लगाया जा सकता। ऐसे अध्ययनो मे वैयक्तिकता (Objectivity) का आना कठिन रहता है। सूचना का क्षेत्र सकुचित अर्थात् उसका अपना समूह ही होता

है। सभी शोधकर्त्ता ऐसा दोहरा अभिनय (Double role) नहीं कर सकते। एक राजविज्ञानी एवं राजशोधक इतने लम्बे समय तक अभिनय का नाटक नहीं रचा सकता। थोड़े समय तथा सीमित मात्रा में ही इस प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से सहभागी अवलोकन से प्राप्त अवधारणाओं, प्रकल्पनाओं, सामान्यीकरणों आदि में आगमन (Induction) तथा प्रामाणिकता की समस्याएँ बनी रहती हैं। कोई शोधक अपनी निजी धारणाओं को कैसे स्थगित अथवा त्याग सकता है? इस प्रणाली पर अनेक नैतिक आक्षेप भी लगाये गये हैं? वह अपनी गतिविधियों के उद्देश्य के बारे में बताये या न बताये? ऐसा करके क्या शोधक एक व्यक्ति या समूह के 'निजी क्षेत्र' को भंग नहीं करता? राजनीति में ऐसा करने के परिणामस्वरूप निक्सन जैसे राष्ट्रपति को पद त्याग करना तथा सार्वजनिक अपमान सहना पड़ा था। क्या शोधक को विद्युत उपकरणों का प्रयोग करना चाहिए? आदि।[17] अधिकांश पद्धतिविज्ञानियों ने 'खुले समाज में खुली शोध' की नीति का समर्थन किया है। किन्तु इस नीति का अनुगमन करके सभी राजनैतिक तथ्यों का पूरी तरह से पता नहीं लगाया जा सकता। अलोकतन्त्रात्मक देशों में तो ऐसा करना और भी अधिक कठिन होता है।

4. असहभागी अवलोकन (Non participant Observation)

असहभागी अवलोकन अनियन्त्रित अवलोकन का एक प्रकार होता है। इसमें अवलोकक, वैज्ञानिक भावना से, अवलोकित इकाई या घटना का एक तटस्थ द्रष्टा बनकर अवलोकन करता है। न वह समूह की गतिविधियों में भाग लेता है और न वह उसमें घुलता-मिलता है। वह जो कुछ देखता और सुनता है, उन्हें लेखबद्ध करता रहता है। ऐसे अवलोकन में वैषयिकता अथवा यथार्थता आने की अधिक सम्भावना रहती है। उसे विश्वसनीय तथ्य प्राप्त होते हैं, क्योंकि प्रश्न पूछने से, राजनैतिक बातों या राज छिपाये जाने की अधिक सम्भावना होती है। उसकी स्थिति नैतिक तथा सम्मानप्रद होती है। उसका लक्ष्य, परिचय तथा शोध का स्वरूप 'खुला' होता है। असहभागी अवलोकन में सहभागी अवलोकन की तुलना में समय और धन भी कम खर्च होता है। खुली राजनीति के स्वरूप को समझने या देखने के लिये इसका पूर्ण उपयोग किया जा सकता है।

किन्तु इस प्रविधि द्वारा राजनीति की गहराइयों का पता नहीं लगाया जा सकता। राजनीति का स्वरूप शिलाखण्ड (Iceberg) की तरह आंशिक रूप से प्रकट किन्तु बहुतायत से 'सतह के नीचे' छिपा रहता है। अवलोकक बहुत-सी बातों तथा उनके वास्तविक अर्थों को देखकर पता नहीं लगा सकता। उसका अपना अवलोकन भावात्मक, एकपक्षीय, त्रुटिपूर्ण तथा मूल्यभारित हो सकता है। उसे पृथक् निरीक्षणकर्त्ता समझकर समूह के सदस्य अपना व्यवहार बदल लेते हैं। किसी मजदूर-आन्दोलन की रूपरेखा बनाने वाली कार्यकारिणी अपने सच्चे रूप में किसी प्रेक्षक के समक्ष अपनी कार्यवाही नहीं करती। ब्रिटिश युग में, जब गवर्नर अपनी कार्यकारिणी की अध्यक्षता करता था, तो निर्वाचित मन्त्रीगण अपने निर्णय अपनी गुप्त बैठकों में तैयार करके लाते थे। गुड एवं हैट की यह धारणा सही है कि 'विशुद्ध असहभागी अवलोकन कठिन होता है।' स्वयं अवलोकनकर्त्ता का व्यवहार कृत्रिम हो जाता है और लोग उससे घृणा करने लग जाते हैं। वह घटनाओं को अवलोकितों के दृष्टिकोण से अनभिज्ञ होकर अपने दृष्टिकोण से देखता है। इससे वह घटनाओं का वास्तविक महत्त्व नहीं समझ पाता।

सहभागी एवं असहभागी अवलोकनों में अन्तर
(Distinction Between Participant and Non-participant Observation)

सहभागी अवलोकन में शोधक अपनी विषयवस्तु का एक भाग बन जाता है और अवलोक तथा अवलोकित की दो भूमिकाएँ अदा करता है। असहभागी अवलोकन में प्रेक्षक तटस्थ दर्शक बना रहता है, इससे अध्ययनकर्ता तथा अध्ययन-विषय में पृथकता बनी रहती है। इस पृथकता के कारण वह विषयवस्तु की गहराई में तो नहीं जा पाता, किन्तु उसमें तटस्थता एवं वैषयिकता बनी रहती है। सहभागी अवलोकन राजनैतिक घटनाओं के सभी गहरे एवं गुप्त पक्षों को खोलने में समर्थ हो जाता है। यद्यपि यह समय, धन, मानव-शक्ति आदि दृष्टियों से *अधिक खर्चीली है, किन्तु इसमें वास्तविकता का पता लगाया जा* सकता है।

5. अर्द्ध-सहभागी अवलोकन (Quasi-Participant Observation)

ऊपर बताया जा चुका है कि कोई भी अवलोकन पूर्णत सहभागी या असहभागी नहीं होता। इसलिए दोनों के मिश्रित रूप को अपनाने का समर्थन किया है। यंग ने इसे 'अर्द्ध-सहभागी अवलोकन' कहा है। इसमें शोधक समूह के कुछ कार्य-कलापों में भाग लेता है तथा शेष में तटस्थ दर्शक बना रहता है। उदाहरण के लिये, किसी विधानसभा समिति के सदस्यों के साथ रहने तथा उनकी समिति की कार्यवाही को अवलोकन करने को 'अर्द्ध-सहभागी अवलोकन' कहा जायेगा। इसमें दोनों के दोषों से बचकर शोध को पूर्ण बनाया जा सकता है।

6 सामूहिक अवलोकन (Mass Observation)

इस अवलोकन में अनेक शोधकर्त्ता भाग लेते हैं तथा इसमें नियन्त्रित एवं अनियन्त्रित दोनों प्रकार के अवलोकनों का प्रयोग होता है।* विभिन्न शोधक अपने-अपने क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते हैं तथा कोई एक अनुसंधानकर्त्ता उनके अवलोकनों का समन्वयन करता है। प्रायः सामुदायिक जीवन, नगर, समाज या व्यापक घटना का अध्ययन करने के लिये इस प्रविधि का उपयोग किया जाता है। राजविज्ञान में सफल अनुसंधान कार्य करने के लिये *यह प्रविधि बहुत ही लाभप्रद है किन्तु इसका सफलतापूर्वक प्रयोग तभी किया जा सकता* है, जबकि विभिन्न शोधकों में सहयोग एवं समन्वयन (Co-ordination) की भावना हो।

अवलोकन की सीमाएँ एवं समस्याएँ
(Limitations and Problems of Observation)

प्रत्यक्ष अवलोकन की अनेक सीमाएँ है।[18] इस प्रकार के अवलोकन का प्रयोग शोधक के अपने समाज या समुदाय के बाहर नहीं हो सकता। वह, जैसे एक भारतीय शोधक टर्की के किसी ग्रामीण समाज में जाकर, भाषा, परम्परा आदि की अनभिज्ञता के कारण, नये समूहों या समाजों में अध्ययन नहीं कर सकता। राष्ट्र तथा सम्पूर्ण समाज भी अवलोकन

---

* Mass observation is a combination of controlled and uncontrolled observation.

—Hsin Pao Yang

द्वारा अध्ययन नहीं किये जा सकते। प्रत्येक शोधक को प्रत्यक्ष के साथ-साथ अप्रत्यक्ष या परोक्ष (Indirect) अवलोकन प्रविधियों का भी सहारा लेना पड़ता है। उदाहरण के लिये ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ के जाने बिना राजनैतिक तथ्यों का अर्थ ग्रहण नहीं किया जा सकता। प्रत्येक समाज में, कुछ क्षेत्र ऐसे पवित्र, निजी, गुप्त अथवा अगम्य समझे जाते हैं, जिनमें किसी शोधक की ताक झाँक बर्दाश्त नहीं की जा सकती। किसी व्यक्ति ने मतदान किस दल को किया, या मन्त्रिमण्डल बैठकों में किस प्रकार निर्णय लिया गया आदि शोधक के अवलोकन के विषय में नहीं हो सकते। अनेक क्षेत्रों में, प्रेस या संवाददाता तो जा सकते हैं, किन्तु राजविज्ञानी या शोधक नहीं जा पाते। यही कारण है कि राज-विज्ञान का एक बहुत बड़ा भाग सामान्य लोगों के अवलोकन पर आधारित है। अवलोकन प्रत्यक्ष होते हुए भी स्वयं शोधक की धारणाओं, प्रशिक्षण, मूल्यों, सामाजिक स्थिति, लक्ष्य आदि से प्रभावित होता है। इन सामाजिक सांस्कृतिक कारकों को तथ्यों से अलग करना कठिन होता है। नियन्त्रित के अवलोकन में वैषयिकता लाने के लिए 'आनुभविक संकेतक' (Empirical Indicators) निर्धारित कर दिये जाते हैं, किन्तु ऐसा करते समय अवलोकन कृत्रिम एवं टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। प्रत्यक्ष अवलोकन में अनेक कानूनी एवं नैतिक अड़चनें आती हैं। स्वयं संयुक्त राज्य जैसे खुले समाज में शोधक को कानूनी उन्मुक्तियाँ (Legal Immunities) नहीं प्रदान की गई हैं।[19]

अवलोकक के अपने पूर्वाग्रह, मिथ्या झुकाव, लक्ष्य, सामाजिक-आर्थिक सीमाएँ आदि होती हैं। अवलोकन के समय उसका व्यवहार कृत्रिम (Artificial) हो जाता है। घटनाओं एवं शोधक में भी तालमेल नहीं हो पाता। कभी घटनाएँ होती हैं तो शोधक उपस्थित नहीं होता, तो कभी शोधक होता है तो घटनाएँ घटित नहीं होतीं। 1857 के स्वातन्त्र्य-संग्राम के बारे में यही कहा जा सकता है। इसी तरह, जो कुछ अवलोकन किया जाता है, उसकी विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता के विषय में भी लम्बी-चौड़ी दार्शनिक एवं शास्त्रीय समस्याएँ हैं। मनुष्य उस तथ्य या वस्तु की तुलना में अपनी ज्ञानेन्द्रियों पर कहाँ तक विश्वास करे? उनकी अपनी सीमाएँ हैं। सभी शोधकों के देखने, सुनने और समझने की शक्ति एक-सी नहीं होती। अनेक बार अवलोकन शरीर की दशा, ताजगी, आराम, चिन्ताओं से मुक्ति, आत्मविश्वास आदि से प्रभावित हो जाता है। हो सकता है, कि जितना असहभागी अवलोकन किया जा रहा है, वे अपना व्यवहार कृत्रिम बनाये हुए हों। कई बार राज-नेताओं को उनके अनुयायी बनने और साथ देने का वादा कर देते हैं, किन्तु उनसे पीठ फेरते ही अन्य दलों में जा मिलते हैं। कभी कभी घटनाएँ भी अपूर्ण होती हैं, उनको देखकर सम्पूर्ण वास्तविकता का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वर्तमान समय में बांगला देश या नेपाल के व्यवहार को देखकर यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें 'मित्र' माना जाये या 'शत्रु'?

इन समस्त दुर्बलताओं एवं समस्याओं के होते हुए भी अवलोकन अधिक सार्थक तथा विश्वसनीय बनाने के लिए कुछ कदम उठाये जा सकते हैं। अवलोकन की एक योजना या प्ररचना (Observation plan) बनायी जा सकती है। शोधक अनुसूची बनाकर (Use of schedule) अपने अवलोकन को सुनिश्चित बना सकता है। प्रवलता निर्माण के द्वारा भी अवलोकन विशिष्ट एवं केन्द्रित हो जाता है। अवलोकन को विशुद्ध बनाने के लिए वैज्ञानिक उपकरणों (Scientific Instruments) का प्रयोग किया जा सकता है। कई

प्रविधियों का एक साथ अथवा समुचित प्रयोग करके अवलोकन की त्रुटियों से बचा जा सकता है।

जैसा कि प्रारम्भ में कहा जा चुका है, अवलोकन शोध का प्राण है। इसी से शोध में विशुद्धता (Accuracy), विश्वसनीयता तथा आनुभविकता आती है। यह प्रकल्पनाओं के निर्माण एवं सत्यापन (Varification) का मूलाधार है। अवलोकन एक सरल, लोकप्रिय तथा वैज्ञानिक प्रविधि है। किन्तु उसका प्रयोग उसकी सीमाओं को समझते हुए तथा अन्य प्रविधियों द्वारा उसकी कमियों को दूर करते हुए करना चाहिए।

अप्रत्यक्ष अवलोकन (Indirect Observation)

जिस अवलोकन या प्रेक्षण में शोधक या अवलोकक (Observer) स्वयं राजनैतिक तथ्यों को न देखकर उन लोगों पर निर्भर रहता है जिन्होंने उनको स्वयं देखा या अनुभव किया है, उसे 'अप्रत्यक्ष अवलोकन' (Indirect observation) कहा जाता है। ये दूसरे देखने या अनुभव करने वाले शोधकर्त्ता को तथ्यों के बारे में अपने विचार बताते या कहते हैं। शोधकर्त्ता अप्रत्यक्ष अवलोकक बन जाता है तथा प्रत्यक्ष देखने वाले उत्तरदाता या सूचनादाता (Respondents) कहलाते हैं। प्रायः सूचनादाता सामान्य अवलोकक (Laymen) होते हैं। सभी घटनाओं, वस्तुओं एवं तथ्यों का अवलोकन न तो सम्भव होता है और न वांछनीय इस कारण अप्रत्यक्ष अवलोकन की आवश्यकता पड़ती है। अप्रत्यक्ष अवलोकन की प्रविधियाँ दिन-प्रति-दिन लोकप्रिय होती जा रही हैं। राजविज्ञान का एक बहुत बड़ा भाग अप्रत्यक्ष अवलोकन पर ही टिका हुआ है।[20]

अप्रत्यक्ष अवलोकन अनेक प्रकार से किया जा सकता है। साक्षात्कार, अनुसूची तथा प्रश्नावली अप्रत्यक्ष अवलोकन की प्रमुख प्रविधियाँ हैं।

साक्षात्कार (Interview)

सम्बन्धित व्यक्तियों की भावनाओं, मनोवृत्तियों, प्रवृत्तियों, उद्वेगों, रुझानों आदि का पता लगाने के लिए इस प्रविधि का उपयोग किया जाता है। इसमें सम्बद्ध व्यक्ति से आमने सामने बैठकर वार्तालाप किया जाता है। कुछ विषयों के बारे में बातचीत करने तथा जानकारी लेने के लिए मिलन को साक्षात्कार कहा जाता है।* यंग के अनुसार, यह एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसके द्वारा एक व्यक्ति कल्पनात्मक ढंग से 'दूसरे व्यक्ति के, जो सामान्यतया उसकी तुलना में अपेक्षाकृत अधिक अपरिचित है, आन्तरिक जीवन में प्रवेश करता है।'[1] साक्षात्कार क्षेत्र-अध्ययन की प्रविधि है, जिसमें अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को देखा तथा कथनों को लिखा जाता है। यह दो व्यक्तियों के मध्य अन्तर्क्रिया (Interaction) का परिणाम होता है। इस सामाजिक स्थिति में दो व्यक्ति एक दूसरे

---

* Interv ewing is fundamentally a process of social interaction.

—Goode ana Hatt

The interview may be regarded as a systematic method by which one person enters more or less imaginatively into the inner life of another who is generally a comparative stranger to him

—Yonng

के साथ अनुसंधान के सम्बन्ध में अनुक्रिया (Respond) करते हैं। गुड एवं हैट ने इसे मूल रूप से 'एक सामाजिक अन्तर्क्रिया की प्रक्रिया' (A process of social interaction) माना है।[22] इस प्रक्रिया में व्यक्तिगत सम्पर्क द्वारा सूचना एकत्रित की जाती है तथा उसे क्रमबद्ध ढंग से लिखा जाता है। इसमे दो या अधिक व्यक्ति शोध के सन्दर्भ मे परस्पर बातचीत, संवाद या प्रश्नोत्तर करते हैं।

साक्षात्कार के अनेक उद्देश्य होते हैं। (i) साक्षात्कार में समस्या पर बातचीत तथा तथ्य एकत्रित करते समय अनेक प्रकल्पनाएँ प्राप्त होती हैं, (ii) प्रत्यक्ष सम्पर्क हो जाने से व्यक्तियों के आंतरिक जगत् के विषय में सूचनाएँ एवं सामग्री मिल जाती है, (iii) अवलोकक स्वयं व्यक्ति, उसके परिवार और परिवेश का अवलोकन कर लेता है। इससे वह तथ्यों का सन्दर्भ सहित पा लेता है, तथा (iv) व्यक्तियों के विचार, विश्वास, उद्वेग आदि जानने की इससे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ प्रविधि नहीं है।

साक्षात्कार के प्रकार (Kinds of Interview)

साक्षात्कारों को अनेक आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है :

(i) कार्यों (Functions) के आधार पर

(ii) औपचारिकता (Formality) के आधार पर

(iii) सूचनाओं की संख्या (Number of Informants) के आधार पर

(iv) अध्ययन-पद्धति (Methodology) के आधार पर।

(i) कार्यों का आधार

कार्यों के आधार पर साक्षात्कार तीन प्रकार के होते हैं :

(क) निदानमूलक साक्षात्कार (Diagnostic Interviews)—इसका उद्देश्य किसी गम्भीर राजनैतिक घटना, समस्या या संकट के कारणों का पता लगाना होता है। जैसे, साम्प्रदायिक दंगों या हरिजनों पर अत्याचार के कारकों की गवेषणा करने के लिए किये गये साक्षात्कार।

(ख) उपचार-साक्षात्कार (Treatment Interview)—ऐसे साक्षात्कारों में राजनैतिक समस्या, घटना या संकट के कारणों को दूर करने से सम्बन्धित प्रश्नोत्तर या वार्तालाप किये जाते हैं। उच्चस्तरीय राजनेताओं की पारस्परिक भेंट-वार्ताएँ कुछ इसी प्रकार की होती हैं।

(ग) खोज सम्बन्धी साक्षात्कार (Research Interview)—इनमें सामाजिक-राजनैतिक घटनाओं तथा समस्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार किये जाते हैं।

(ii) औपचारिकता का आधार

इन साक्षात्कारों के दो प्रकार होते हैं

(अ) औपचारिक साक्षात्कार (Formal Interview)—ऐसे साक्षात्कारों को नियन्त्रित, नियोजित या संरचित (Structured) साक्षात्कार भी कहते हैं। इनमें साक्षात्कारक या साक्षात्कारकर्ता (Interviewer) एक अनुसूची में दिये गये प्रश्नों को ही पूछता है। इस अनुसूची (Schedule) में पहले से ही तैयार किये हुए प्रश्न होते हैं। साक्षात्कारक साक्षात्कृत (Interviewee) से प्राप्त उत्तरों को लिखता जाता है। पहले से

ही दिये गये प्रश्न होने के कारण साक्षात्कारक पर नियन्त्रण रहता है। उसे अन्यान्य प्रश्न पूछने या शब्दावली में हेर-फेर करने की स्वतन्त्रता नहीं होती। इससे साक्षात्करण-प्रक्रिया (Interviewing process) मानकीकृत (Standardize) हो जाती है।

संरचित (Structured) साक्षात्कारों का उद्देश्य वर्तमान सिद्धान्तों तथा प्रकल्पनाओं की जाँच अथवा सत्यापन (Verify) करना होता है। वह नयी खोज करने के बजाय उपलब्ध प्रकल्पनाओं का परीक्षण करता है। मानकीकृत कर देने से प्राप्त तथ्यों की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। साथ ही तथ्यों की प्राप्ति में समय, श्रम और धन की बचत के साथ-साथ कार्यकुशलता (Efficiency) भी बढ़ जाती है। प्रश्नों के मानकीकृत हो जाने से उनका संकेतीकरण (Coding), सगणन (Computing) तथा सारणीयन (Tabulation) सरल हो जाता है। आधुनिक समाज में बढ़ते हुए विशालकाय संगठनों के सन्दर्भ में इनका भी महत्त्व बढ़ता जाता है। प्रश्नों के मानकीकरण के बिना बड़े अनुसंधान दल एक साथ सहयोग नहीं कर सकते।

ऐसे साक्षात्कारों में अनेक दुर्बलताएँ भी पायी जाती हैं, (i) इसमें साक्षात्कारक अपने विचार-वर्ग (Categories) पर आधारित प्रश्न पूछता है और उन्हीं सीमाओं में साक्षात्कृत से उत्तर माँगता है। इससे तथ्यों में तोड़-मरोड़ आ जाता है। (ii) इसमें शोधक का पूर्वाग्रह साफ झलकता है। जैसे प्रश्न पूछे जायेंगे, वैसे ही उत्तर आयेंगे। प्रश्नों की समाननाएँ धोखा एवं उलझनें उत्पन्न कर देती हैं। (iii) ऐसे साक्षात्कारों में वास्तविकता का अतिसरलीकरण (Oversimplification) हो जाता है। होता यह है कि साक्षात्कारक साक्षात्कृत पर अपने 'विचारों और अर्थों की दुनिया' थोप देता है। साक्षात्कृत के सही विचार जानने के लिए गहनता-साक्षात्कार (Depth-interview) लिये जाने चाहिए। इसलिए अनेक शोध प्रविधियों ने इसके साथ अनौपचारिक या अनियन्त्रित साक्षात्कार प्रणाली को मिश्रित करने की सिफारिश की है। वह संगठनों के सर्वेक्षण तथा प्रकल्पनाओं की औपचारिक जाँच करने के लिये संरचित साक्षात्कार उपयोगी होते हैं। प्रश्नों के अनुसार ही मापन प्रविधियाँ अपनायी जाती हैं। प्रश्न साक्षात्कारक के सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य के अनुसार बनते हैं। अतएव साक्षात्कारक को 'दूसरे की भूमिका' को अपनाने का भी अवसर दिया जाना चाहिए। संवेदनशील मामले साक्षात्कृत या कर्त्ता (Actor) के अर्थ जगत् (World of meaning) को जानने पर ही समक्ष में आ सकते हैं। ये बातें औपचारिक साक्षात्कार द्वारा नहीं जानी जा सकतीं। विशेषकर विकासशील देशों में इनका प्रयोग करना वर्ग, जाति, भाषा, धर्म आदि से सम्बन्धित विभिन्नताओं के कारण और भी अधिक कठिन है। औद्योगीकरण या लोकतन्त्र की स्थापना से ये विभिन्नताएँ मिटी नहीं हैं। किन्तु ऐसी समप्रकृति प्रश्नावलियों से, वास्तविकता के विपरीत, उच्चस्तरीय सामाजिक तथा साम्प्रतिक एकरूपता (Uniformity) झलकने लगती है।

(ब) अनौपचारिक साक्षात्कार (Informal Interview)—ये अनियन्त्रित, स्वतन्त्र या असंरचित (Unstructured) साक्षात्कार भी कहलाते हैं। ऐसे साक्षात्कारों में कोई अनुसूची या प्रश्नावली नहीं होती। साक्षात्कारक के पास कुछ मुख्य प्रश्न या कोई विषय होता है। उस पर वह साक्षात्कृत से उत्तर पूछता या सुनता चला जाता है। इनके आधार पर साक्षात्कारक अपने निष्कर्ष निकाल लेता है। ऐसे साक्षात्कार मनोवैज्ञानिक अध्ययनों के लिये अनुकूल होते हैं। इनके द्वारा संगठनों के मानकीय (Normative) स्वरूप, वर्गों की स्थापना तथा सम्भावित सामाजिक प्रतिमानों की रचना का अध्ययन किया जा सकता है।

संरचित साक्षात्कारों में केवल प्रश्नों पर ही ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए। उसमें यह भी आवश्यक है कि दोनों—साक्षात्कार एवं साक्षात्कृत में सौहार्द हो। सही साक्षात्कारकों का चयन करके उन्हें प्रशिक्षण (Training) दिया जाना चाहिए। विकासशील देशों में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रति आस्था जगाने के लिए यह और भी अधिक आवश्यक है। प्रायः विविध क्षेत्रों में काम करने का अनुभव वाले लोग साक्षात्करण के लिए अधिक अनुकूल होते हैं। अच्छे साक्षात्कर्त्ता में उसकी प्रस्थिति (Status), समाज में भूमिका (Role) तथा वैज्ञानिक पद्धति के प्रति निष्ठा पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।[23] विकासशील देशों में शोधक या साक्षात्कर्त्ता की सामाजिक शासनिक स्थिति बहुत महत्त्व रखती है। इन देशों में साक्षात्कृत (Interviewee) शोध के प्रति संदेहास्पद दृष्टिकोण रखते हैं। सभी साक्षात्कारों के प्रति अलग-अलग प्रकार से अनुक्रिया करते हैं। गाँवों में स्त्रियाँ अपने पति तथा ग्रामीण अपने सरपंच या मुखियों को प्रश्न का उत्तर देने का अधिकारी मानते हैं। इन कठिनाइयों का अनुमान तो कोई भुक्तभोगी क्षेत्र-शोधक ही लगा सकता है। वस्तुतः संरचित साक्षात्कार तथा उसके अन्तर्गत प्रश्न विकसित देशों या विकसित क्षेत्रों के ही अधिक अनुकूल होते हैं।

ये साक्षात्कार, काफी हद तक, औपचारिक साक्षात्कारों की सीमाओं एवं कमियों को दूर करते हैं। इन्हें अनौपचारिक या असंरचित (Unstructured) कहने का अर्थ यह नहीं है कि इनकी कोई संरचना या ढाँचा होता ही नहीं है। प्रत्येक राजशोधक (Political Researcher) साक्षात्कार करने में पूर्व कोई न कोई लक्ष्य या समस्या अपने मन में रखता ही है। असंरचित साक्षात्कार अनेक प्रकार के होते हैं तथा प्रत्येक के पीछे विशिष्ट सैद्धान्तिक मान्यताएँ होती हैं। किन्तु सभी, संरचित साक्षात्कारों की तुलना में, प्रश्न करते समय स्वतन्त्रता प्रदान करते हैं तथा अनौपचारिकता का वातावरण बनाये रखते हैं। सबसे बढ़कर वे सूचनादाता या साक्षात्कृत की भावनाओं तथा अर्थ-जगत् की प्रमुखता देते हैं। तथ्य संकलन करने के पश्चात् राजविज्ञानी उस सामग्री का अपने विचार-बंध में रखकर विश्लेषण कर सकता है।

असंरचित साक्षात्कारों के चार प्रकार पाये जाते हैं

(1) मुक्त सहचार साक्षात्कार (Free Association Interview)
(2) केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview)
(3) वैषयिकतावारक साक्षात्कार (Objectifying Interview) तथा
(4) समूह साक्षात्कार (Group Interview)

(1) मुक्त सहचार साक्षात्कार (Free Association Interview)

इस प्रविधि का व्यापक प्रयोग फ्रायड ने अवचेतन (Unconcious) मन की भूमिका जानने के लिए किया था। अवचेतन मन चेतन तथा अर्द्धचेतन मन एवं व्यवहार को संचालित करता है। इस अवचेतन मन को जानने के लिए साक्षात्कृत या उत्तरदाता से मुक्त सहचार (Free association) किया जाता है। वास्तव में, यह शोध-उपकरण (Research tool) न होकर चिकित्सा सम्बन्धी (Therapeutic) युक्ति है। इस पद्धति या साक्षात्कार की मान्यता के अनुसार कर्ता का मानसिक जगत् अस्त-व्यस्त तथा समझ के बाहर होता है। स्वयं कर्ता नहीं जानता कि वह किनका और क्या विश्वास करता है। वह अपने अवचेतन मन को देखने में असमर्थ रहता है। वह न तो विवेकपूर्ण तरीके से सोचता है

और न कार्य करता है। इस कारण, साक्षात्कर्त्ता को सूचनादाता का अनुगमन करना पड़ता है। उसे कुछ न कुछ बोलने के लिये खुला छोड़ दिया जाता है। धीरे-धीरे वह अपने अवचेतन, गुप्त तथा अज्ञात मन को खोलता है। इन वक्तव्यों का साक्षात्कर्ता निर्वचन करता तथा अर्थ निकालता है। लिंडनर ने अपने मरीजों का ऐसे ही इलाज किया था।[24]

लेकिन अपने आदर्श रूप में यह फ्रायडीय प्रविधि राजविज्ञानियों द्वारा बहुत कम काम में लायी गयी है। लेकिन रोजर्स जैसे व्यक्तियों ने इसका अनुसंधान-कार्यों में उपयोग किया है। प्राय: सभी शोधकर्त्ता कुछ न कुछ प्रश्न अवचेतन मन, मनोवृत्तियों आदि को जानने के लिए अवश्य पूछते हैं। यदि कर्त्ता 'जगत्' को 'विवेकपूर्ण' (Rational) ढंग से समझने में असमर्थ है, तो मुक्त सहचार पद्धति का उपयोग करना शोधक के लिए अनिवार्य सा बन जाता है। व्यक्तिवृत्त अध्ययन में इसका और भी अधिक उपयोग है। इसे साक्षात्करण का अप्रत्यक्ष साधन माना जा सकता है। साथ ही, अन्य व्यक्तियों के लिए इसे लागू नहीं किया जाना चाहिए। सूचनादाता या रोगी के अवचेतन मन को जानने में महीनों और वर्षों लग सकते हैं। अनेक सूचनादाता अपने मन को बताने का ही विरोध करते हैं। विभिन्न साक्षात्कर्त्ता यदि एक ही रोगी का साक्षात्कार करने लगें, तो उनको अलग-अलग परिणाम प्राप्त होंगे।

(2) केन्द्रित साक्षात्कार (*Focused Interview*)

केन्द्रित साक्षात्कार रॉबर्ट के. मर्टन तथा उसके सहयोगी की उपज है। इसको उन्होंने कोलम्बिया विश्वविद्यालय में (Bureau of Applied Social Research) में सार्वजनिक सचार-साधनों जैसे रेडियो के प्रभाव को जानने के लिए विकसित किया था। इस प्रकार का साक्षात्कार किए जाने से पूर्व सूचनादाता का पहले से ही किसी निश्चित या विशेष परिस्थिति में रहा होना आवश्यक है। यह परिस्थिति साक्षात्कर्त्ता की समस्या या शोध-विषय से सम्बन्धित होती है। इस परिस्थिति का समाज विज्ञानी अस्थाई तौर पर पहले से ही अध्ययन कर चुका होता है। ऐसी परिस्थिति का विश्लेषण करके, शोधक, कतिपय निश्चयात्मक तत्त्वों के बारे में, जिसका सूचनादाता से सम्बन्ध रहा हो, प्रकल्पनाएँ विकसित कर लेता है। अपने विश्लेषण के आधार पर वह साक्षात्कार निर्देशिका (Interview guide) तैयार कर लेता है। इसमें जाँच के क्षेत्र, प्रकल्पनाओं, सामग्री का चयन करने के आधार आदि का उल्लेख किया हुआ होता है। अन्त में, साक्षात्कृत या सूचनादाता के वैयक्तिक अनुभवों को जानने का प्रयास किया जाता है। उसे परिस्थिति को अपने दृष्टिकोण से परिभाषित करने के लिए कहा जाता है।[25] प्रश्न अनिर्धारित होते हैं। नये आविष्कारों या व्यवस्थाओं के प्रभाव को जिनका सूचनादाताओं ने उपभोग किया है, जानने के लिए इस प्रविधि का उपयोग किया जा सकता है। इससे नयी राजनैतिक संरचनाओं अथवा प्रक्रियाओं के प्रति सम्बद्ध लोगों की निजी प्रक्रियाओं का पता लगाया जा सकता है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि फ्रायडीय मुक्त सहचार पद्धति से यह साक्षात्कार प्रणाली अधिक श्रेष्ठ है। इसमें साक्षात्कार-प्रक्रिया संगठित हो जाती है, साथ ही साक्षात्कृत (Interviewee) को भी अपनी प्रतिक्रिया बताने का पूरा अवसर मिल जाता है। ऐसे साक्षात्कार व्यापक, गहन तथा विशिष्ट भी हो सकते हैं। लेकिन इससे मुक्त-सहचारी साक्षात्कारों की तरह अवचेतन मन को नहीं जाना जा सकता।

(3) वैषयिकताकारक साक्षात्कार (Objectifying Interview)

ऐसे साक्षात्कार सामाजिक या राजनैतिक संगठनों के अध्ययनार्थ उपयोग किये जाने

इसमें साक्षात्कृत या सूचनादाता के निजी चिन्तन की क्षमता का भी उपयोग किया जा
है। वैषयिकता कारक (Objectifying) साक्षात्कारों में सूचनादाता की बातों के
त्यों या अवचेतन मन की प्रेरणाओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। स्वयं साक्षात्कर्ता
दाता को प्रारम्भ से तथा बीच-बीच में बताता रहता है कि वह किस प्रकार की
एं और क्यों चाहता है? *वैज्ञानिक शोध की प्रक्रिया में, सूचनादाता का महत्त्व बताया*
है। उसे अपनी अवलोकन तथा निर्वचन करने की क्षमता को बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित
जाता है उसके छिपे हुए मन को भी समझने का प्रयास किया जाता है किन्तु सबसे
जोर सूचनादाता के कार्य पर दिया जाता है। उसे कहा जाता है कि वह अपने
के साथ-साथ, समूह के अन्य सहयोगियों के व्यवहार का अवलोकन तथा व्याख्या
बताये। *राजविज्ञानी या शोधक उस अपने समकक्ष व्यक्तियों (Peer) मानकर चलता*
सके साथ वह न केवल समस्त समूह व्यवस्था के बारे में विचार विमर्श करता है,
सूचनादाता को स्वयं शोधक के अवलोकनों तथा निर्वचनों की आलोचना करने के
भी उत्साहित किया जाता है।

नौकरशाही संगठनों, छोटे समुदायों आदि के अध्ययन में, प्रत्यक्ष अवलोकन के
साथ ऐसे वैषयिकताकारक साक्षात्कारों का प्रयोग किया जाता है। सूचनादाता शोधक
ए एक प्रकार का क्षेत्र कार्यकर्ता (Field-worker) बन जाता है। वही अन्य लोगों से
-जुलता, बातचीत करता तथा साक्षात्कार लेता है। इसमें सारे समूह का, उसी
न एक वर्ग से सम्बद्ध होने के कारण विश्वास होता है। स्वयं सूचनादाता को नेतृत्व
आत्माभिव्यक्ति करने का अवसर मिल जाता है। इससे मिलते जुलते साक्षात्कारों का
विलियम वायट ने *'स्ट्रीट कॉर्नर सोसाइटी' में किया है।*[26]

यद्यपि राजविज्ञानियों ने इस प्रणाली का उपयोग नहीं किया है, किन्तु उनके लिए
विधि बहुत उपयोगी है। इसमें शोधक, कोलवर्ड के अनुसार सूचनादाता के साथ
ीय सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। वह शोधक का मित्र एवं सहयोगी बन जाता है।
सूचनादाताओं का शोषण नहीं होता। स्वयं सूचनादाता अपने समूह का सदस्य होता
स स्थिति का लाभ उठाकर वैज्ञानिक अनुसंधान के काम को आगे बढ़ाया जा सकता
वह शोधक का उपकरण (Tool) मात्र नहीं होता। उसमें वैज्ञानिक शोध को आगे
का गर्व भी होता है। यहाँ तक कि वह उस शोध के लिए प्रतिबद्ध हो जाता है।
दाता के मन में शोधक के प्रति शंका और संदेह भी नहीं रह जाता। स्वयं सूचनादाता
[illegible], मनोवृत्तियों, समस्याओं आदि को शोध में महत्त्वपूर्ण सामग्री माना जाता है।
क भावात्मक विषयों को सामने रखकर, उनकी प्रतिक्रिया, (सूचनादाता के माध्यम से)
क सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक सन्दर्भ में रखकर जान लेना है।

इस प्रविधि की अपनी सीमाएँ भी हैं। शोधक सूचनादाता का लगभग 'बन्दी'
ptive) बन जाता है। वह शोधक को गलत दिशाओं में ले जा सकता है। अपेक्षाकृत
र सामाजिक स्थिति के होने पर सूचनादाता राजशोधक को उसके मन को प्रसन्न
ा वाली बातें कहकर शोध को मटियामेट कर सकता है। यदि वास्तव में इस साक्षात्कार
ैषयिकता लाना है तो सूचनादाता को स्वतन्त्र रूप से, अच्छा या बुरा लगने का ध्यान
ए बिना, कार्य करना चाहिए तथा प्राप्त सूचना की जाँच करने का शोधक के पास कोई
कोई साधन होना चाहिए। कई बार बुद्धिमान सूचनादाता न मिलने पर सारी योजना

गुड़-गोबर हो जाती है। वैयक्तिकतावारक साक्षात्कार में सूचनादाता की बौद्धिक क्षमता मुख्य निर्णायक तत्त्व होती है।

(4) समूह साक्षात्कार (Group Interview)

समूह-साक्षात्कार में, एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों का साक्षात्कार लिया जाता है। शोधक समस्त समूह में वारी-बारी से कुछ प्रश्न करता जाता है तथा सूचनादाता—सभी या कोई-कोई—उनका उत्तर देते हैं। एस एल ए मार्शल ने युद्ध की प्रगति पर पुनर्विचार करने के लिए इसका प्रभावशाली प्रयोग किया था।[27] समाज-विज्ञानियों एवं मानवशास्त्रियों ने समय समय पर असरचित अप्रत्यक्ष अवलोकन के रूप में इस प्रविधि का उपयोग किया है। सभी सामाजिक व्यवस्थाओं में मूल्यों, मानकों या बड़ी समस्याओं के प्रति अस्पष्ट विचार होते हैं। सामूहिक विचार-विमर्श द्वारा उनका स्पष्टीकरण किया जा सकता है। इसे कभी-कभी वाद विवाद प्रणाली भी कहा जाता है। समाज, समुदाय या दल के संगठन तथा उसके लक्ष्यों को स्पष्ट करने के लिए इस प्रविधि को अर्द्ध-संरचित समूह साक्षात्कार के रूप में काम में लाया जा सकता है। उक्त प्रणाली के द्वारा व्यवस्थाओं का मूल्यात्मक स्वरूप जाना जा सकता है तथा त्रुटिपूर्ण स्मृतियों को रद्द किया जा सकता है। इसमें एक खतरा यह है कि प्रभावशाली वक्ता-सूचनादाता अन्य लोगों को प्रभावित कर देते हैं। इन आत्म नियुक्त वक्ता-नेताओं से बचने के उपाय कर लिए जाने चाहिएँ। अन्यथा, इस प्रविधि में बड़ी जनसंख्या से सामग्री कम समय, व्यय तथा कुशलता के होते हुए भी प्रभूत सामग्री प्राप्त की जा सकती है। इसमें पक्षपातपूर्ण उत्तर प्राप्त होने का डर भी नहीं रहता।

(iii) सूचनादाताओं की संख्या का आधार

साक्षात्कार में दो या दो से अधिक व्यक्तियों का होना आवश्यक है। इस प्रकार, *संख्या के आधार पर दो वर्ग बनाये जा सकते हैं—*

(अ) व्यक्तिगत साक्षात्कार (Personal Interview)— इसमें एक समय में एक व्यक्ति से साक्षात्कार किया जाता है। इसे 'शोधक-सूचनादाता-अन्तःक्रिया' का नाम दिया गया है। इसमें अनुसंधान-कर्ता किसी दूसरे व्यक्ति से शोध-समस्या के सम्बन्ध में मिलता है। एक प्रश्न पूछता है, दूसरा उत्तर देता है। कभी-कभी दोनों ही प्रश्नोत्तर करते हैं।

ऐसी पद्धति में सूचनाएँ सत्य एवं विश्वसनीय प्राप्त होती हैं। गलत प्रतीत होने वाले उत्तरों को टोक कर ठीक किया जा सकता है। इसमें प्राय सभी प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं। अकेले में साक्षात्कार होने के कारण संवेदनशील प्रश्नों के भी उत्तर मिल जाते हैं। किन्तु यह प्रणाली समय और धन की दृष्टि से बड़ी खर्चीली है। इसमें पक्षपात आने तथा दोनों व्यक्तियों के मध्य सामाजिक स्थिति के अन्तर द्वारा प्रभावित होने की सम्भावना रहती है। इसलिए कुशल एवं अनुभवी व्यक्ति ही इसका ठीक से उपयोग कर पाते हैं। राजनीतिक शोध में इसका प्रयोग बड़ी सावधानी से करना चाहिए।

(ब) समूह साक्षात्कार (Group Interview)—समूह-साक्षात्कार प्रविधि का विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

(iv) अध्ययन पद्धति का आधार

अध्ययन-पद्धति (Methodology) के आधार पर साक्षात्कारों को दो वर्गों में रखा जा सकता है—

(क) अनिर्देशित साक्षात्कार (Non-Directive Interview)—ये साक्षात्कार अनियन्त्रित (Non controlled) अथवा असचालित (Unguided) साक्षात्कारों के समान होते हैं। इनका विवेचन पीछे किया जा चुका है। इनमें साक्षात्कर्ता साक्षात्कृत के समक्ष कोई समस्या या प्रश्न रखता है। साक्षात्कर्ता या शोधक उसके उत्तर, विवरण या कथन धैर्यपूर्वक सुनता रहता है। उत्तरदाता को टोका भी नहीं जाता। इनमें कोई अनुसूची या पूर्व-निर्धारित प्रश्नावली नहीं होती। साक्षात्कर्ता स्वेच्छानुसार मनगढन्त ढग से प्रश्न पूछता चलता जाता है।

(ख) केन्द्रित साक्षात्कार (Focused Interview)— इसका विवेचन ऊपर किया जा चुका है।

(ग) पुनरावृत्ति साक्षात्कार (Repetitive Interview)—राजनैतिक परिवर्तन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। कई बार नये परिवर्तनों का तुरन्त कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। इसलिए उन परिवर्तनों के प्रभावों को जानने के लिए बारम्बार साक्षात्कार करने की आवश्यकता पड़ती है। इन साक्षात्कारों का उपयोग नये कानूनों, नेतृत्व, व्यवस्था, कार्यविधियों आदि का प्रभाव जानने के लिए किया जा सकता है। औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण, लोकतन्त्रीकरण आदि प्रक्रियाओं को अनेक बार साक्षात्कार करके जाना जा सकता है।

इस प्रविधि की अपनी सीमाएँ भी हैं। यह अत्यधिक समय एव धन चाहती है। इसके लिए स्थायी शोधक-मण्डल, शोध-संस्था तथा निश्चित एव सीमित सूचनादाता होने चाहिएँ। विशेष रूप से शोधक उस समस्या के साथ प्रतिबद्ध होने चाहिएँ।

साक्षात्कार-प्रक्रिया (Interview Process)

साक्षात्कार-प्रक्रिया को पाँच प्रमुख भागों म विभाजित किया जा सकता है—(क) साक्षात्कार की तैयारी, (ख) मुख्य प्रक्रिया, (ग) साक्षात्कार का नियन्त्रण, निर्देशन एव प्रमापीकरण, (घ) साक्षात्कार की समाप्ति; तथा (ङ) प्रतिवेदन। इनको क्रमबद्ध ढग से समझने की आवश्यकता है।

(क) साक्षात्कार की तैयारी (Preparation for Interview)

साक्षात्कार के लिए जाने से पूर्व उसकी तैयारी करना अत्यावश्यक है। शोधकर्त्ता को अपनी समस्या तथा उसके विभिन्न पहलुओं को अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। उसमे सम्बन्धित साहित्य का उसे भली-भाँति अध्ययन कर लेना चाहिए क्योंकि कई बार सूचनादाता उसम टेढे मेढे प्रश्न पूछ बैठते हैं। उसे एक साक्षात्कार निर्देशिका (Interview-guide) तैयार करनी पड़ती है। उसमें समस्या से सम्बद्ध सभी पक्षों का क्रमबद्ध उल्लेख होता है तथा सूचनाएँ एकत्रित करने के निर्देश लिखे रहते हैं। ये प्रश्न नहीं होकर साक्षात्कार सम्बन्धी निर्देश होते हैं। इसमें पादटिप्पणियों (Foot-Notes) में कठिन शब्दों के अर्थ इकाइयों की परिभाषाएँ आदि दी हुई होती हैं। इसमें समस्त अध्ययन-योजना का सक्षिप्त वर्णन कर दिया जाता है। इससे कई लाभ होते हैं, जैसे (i) अध्ययन मे एकरूपता, (ii) बिना भूले समस्या के सभी पहलुओं का अध्ययन (iii) एक साथ अनेक साक्षात्कर्ताओं द्वारा प्रयोग की सम्भावना, (iv) सूचनादाता से प्रभावित होने से बचने के लिए रक्षा-कवच, आदि।

साक्षात्कार-निर्देशिका तैयार करने के बाद शोधक को सूचनादाताओं या उत्तर-

दाताओं का चयन (Selection of Interviewers) करना पड़ता है। इसमें अत्यधिक सावधानी से काम लेना चाहिए क्योंकि वे सही तथ्यों के स्रोत होते हैं। इनकी संख्या अधिक होने पर निदर्शन प्रविधि (Sampling Technique) से काम लिया जाता है। सूचना-दाताओं की प्रकृति, व्यवसाय, काम, समय, अनुभव आदि के बारे में सामान्य ज्ञान होना चाहिए। उनसे मिलने के पूर्व समय एवं स्थान का निर्धारण कर लिया जाना चाहिए, ताकि निराश नहीं होना पड़े। प्रथम बार मिलते समय अपना परिचय-पत्र भी साथ रखना चाहिए।

(ख) साक्षात्कार की मुख्य प्रक्रिया (Main Process of Interview)

मूल रूप से साक्षात्कार 'एक सामाजिक अन्तःक्रिया' (A Social Interaction) है। साक्षात्कार की तैयारी हो चुकने के पश्चात् पहला कदम सम्पर्क की स्थापना (Establishment of contact) होता है। उसके व्यक्तित्व, व्यवहार और शिष्टाचार का पहला प्रभाव अन्तिम प्रभाव (First impression is the last impression) सिद्ध होता है। इसके बाद साक्षात्कर्त्ता अपना उद्देश्य बतलाता है तथा सहयोग की प्रार्थना करता है। उसे यह विश्वास दिला देना चाहिए कि उसका उद्देश्य किस समस्या का समाधान खोजना या विशुद्ध वैज्ञानिक अनुसंधान करना है। उसे सूचनाएँ गोपनीय रखने का आश्वासन भी देना चाहिए। पहले सरल एवं परिचयात्मक प्रश्न पूछे जाते हैं, उसके बाद समस्या से सम्बन्धित मूल प्रश्न पूछे जाते हैं। साक्षात्कर्त्ता को कम तथा सूचनादाता को अधिक बोलने का अवसर दिया जाना चाहिए। उसे दूसरे सूचनादाताओं के अनुभव नहीं बताने चाहिए। उसकी भूमिका सार्थ, तटस्थ तथा तथ्य प्राप्त करने से सम्बन्धित है। अतएव उसे बीच-बीच में रुचि एवं निरन्तरता बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ उत्साहवर्द्धक वाक्य भी बोलते रहना चाहिए। शोधक प्रश्न उचित, समयानुसार तथा संगतिपूर्ण होने चाहिए। साक्षात्कारक को चाहिए कि वह उत्तेजना दिखाने पर भी क्रोधित न हो तथा सूचनादाता के भावों में बह जाने पर युक्तिपूर्वक अपनी समस्या की ओर ले जाय। साक्षात्कार लेना एक बड़ी भारी कला (Art) मानी गई है।[29] प्रश्नों में ही उत्तर छिपे हुए नहीं होने चाहिए—न वे जटिल हों और न अति सरल। सूचनाओं को संक्षेप में लिख लेना चाहिए। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि लिखने के कारण वार्तालाप के प्रवाह में बाधा उत्पन्न नहीं हो।

(ग) साक्षात्कार का नियन्त्रण, निर्देशन तथा प्रमाणीकरण

(Controlling, Directing and Validating of Interview)

कभी कभी साक्षात्कृत व्यक्ति भावनाओं में इधर उधर बहुत ज्यादा बहने लगता है। ऐसी स्थिति में, सूचनादाता के अहम् को चोट पहुँचाये बिना साक्षात्कार का नियन्त्रण एवं निर्देशन करना आवश्यक होता है। इसका अर्थ यह है कि समस्या से सम्बन्धित बातचीत ही हो। ऐसा न होने पर सूचनादाता का अप्रत्यक्ष रूप से निर्देशन किया जाये। 'प्रमाणीकरण' का भावार्थ यह है कि प्राप्त सूचनाओं में कोई विरोधाभास न हो। इसके लिए खण्डन करने वाले प्रश्न (Cross questions) पूछे जा सकते हैं।

(घ) साक्षात्कार की समाप्ति (Closing of Interview)

अन्त में, साक्षात्कार की सामग्री समाप्त होने लगती है। उस समय पर सूचनादाता के पास बनाने तथा साक्षात्कारक के पास जाने के लिए कुछ नहीं बचता किन्तु उसे यह आभास नहीं होने देना चाहिए कि उसने सूचना देकर कोई गलत काम किया है अथवा

सूचनादाता ने चालाकी से अपना स्वार्थ पूरा कर लिया है। यदि किसी कारणवश साक्षात्कार अधूरा रह जाय, तो दोबारा समय एव स्थान निर्धारित कर लेना चाहिए। अन्यथा औपचारिक शिष्टाचार के बाद कृतज्ञतापूर्वक विदा लेनी चाहिए। शोध के अतिरिक्त अन्य कोई बात या स्वार्थपूर्ति नही की जानी चाहिए।

(ड) प्रतिवेदन (Report)

प्रतिदिन साक्षात्कार कर चुकने के बाद साक्षात्कर्ता प्रतिवेदन लिखता है। प्रतिवेदन लिखने का काम साक्षात्कार के समय लिए गए नोट्स की सहायता से किया जाता है। स्मरण शक्ति के अच्छे होने पर भी साक्षात्कार लिखने का काम प्रतिदिन कर लिया जाना चाहिए। प्रतिवेदन अपक्षपातपूर्ण तथा वास्तविक होना चाहिए।

साक्षात्करण पर अन्य प्रभाव (Other Influences on Interviewing)

किसी भी समूह या समुदाय म साक्षात्कार करने के लिए जाने से पूर्व उसकी सामाजिक सास्कृतिक स्थिति से साक्षात्कर्त्ता का अभिमुखन (Orientation) होना अनिवार्य है। यहाँ तक कि उसे वहां राजनैतिक एव कानूनी व्यवस्था से भी सुपरिचित होना चाहिए। विकासशील देशो मे साक्षात्कार करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए। साक्षात्कार पर साक्षात्कर्त्ता की सामाजिक प्रस्थिति, उसकी भूमिका तथा उससे शोध कराने वाली सस्थाओ के उद्देश्यो का भी गहरा प्रभाव पडता है। इसी तरह, कुछ सूचनादाता साक्षात्कार-प्रविधि के अधिक अनुकूल तथा कुछ अधिक प्रतिकूल होते हैं। कुछ लोग व्यक्तिगत मामला पर बात करना बिल्कुल पसन्द नही करते। ऐसी अवस्था म अनौपचारिक साक्षात्कार लगभग अनुपयोगी हो जाते हैं। कुछ सूचनादाता अपने समूह या दल से इतने घुले मिले होते हैं कि उनका अपना कोई व्यक्तित्व ही नही होता। कुछ सूचनादाता समूह से सर्वथा पृथक् प्रकृति के होते हैं। प्रश्न यह उठता है कि इनमे से किसे तथा कैसे चुना जावे? महत्त्वपूर्ण सूचनादाताओ का चयन करना सामान्य निदर्शन से सम्भव नहीं होता। स्वय शोधक की प्रकृति भी रूढ़िवादी अथवा परिवर्तनवादी हो सकती है।[28]

साक्षात्कार-प्रविधि का मूल्याकन (Evaluation of Interview Technique)

निस्सन्देह एक अच्छे साक्षात्कार की सफलता के लिए साक्षात्कर्ता म कतिपय गुणो का होना आवश्यक है। इसमे कुशलता, वाक्पटुता, ईमानदारी, निष्पक्षता, विनय तथा वैज्ञानिक निष्ठा होनी चाहिए। यह एक 'आदर्श' है और बहुत कम साक्षात्कर्त्ता इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। उनका व्यक्तित्व, भाषा, समस्या आदि प्रभावपूर्ण होने पर ही सूचनादाता कुछ कहने के लिए तैयार होता है। साथ ही उसे इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि उसे दी गई सूचनाएँ कहाँ तक विश्वसनीय एव प्रामाणिक हैं? हो सकता है कि कुछ सूचनाएँ जान बूझकर गलत या तोड-मरोड कर दी गई हो, या स्वय साक्षात्कर्त्ता ने पूर्वाग्रह के कारण प्रतिवेदन लिखते समय परिवर्तन न काम लिया हो। राजनीतिक शोध मे ऐसा होना स्वाभाविक है। इसके लिए अधिक महत्त्वपूर्ण मामलो पर विस्तृत सूचनाएँ एकत्रित करनी चाहिएँ। शोधक अपने अनुभव के आधार पर भी सूचनाओ की तुलना कर सकता है। अन्य प्रविधियो का, जैसे, समूह साक्षात्कार का प्रयोग करके भी त्रुटियों को दूर किया जा सकता है।

किन्तु यह स्पष्ट है कि राजनीतिक शोध म साक्षात्कार का अत्यधिक महत्त्व है। राजनेता तथा अन्य कर्त्ता अपने रहस्य इसी प्रकार न बता सकते हैं। इसमे सभी प्रकार की

सूचनाओ का सकलन किया जा सकता है। साक्षात्कार अमूर्त एव अदृश्य घटनाओ, ऐतिहासिक परिस्थितियों तथा मनोवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन करने की उपयोगी प्रविधि है। इससे न केवल दोनो—साक्षात्कर्त्ता तथा साक्षात्कृत—का पारस्परिक सम्मिलन होता है, अपितु अनेक शोध सम्बन्धी नैतिक समस्याओ का समाधान हो जाता है। व्यवस्थित साक्षात्कारो को दोहरा कर अथवा घटना की वास्तविकता के बारे पूछकर प्राप्त सूचनाओ का सत्यापन या जाँच भी की जा सकती है।

शोध म वैज्ञानिकता के दृष्टिकोण से साक्षात्कार की सीमाओ का ध्यान रखना चाहिए। साक्षात्कार म शोधक के अपने मूल्य मान्यताएँ अवधारणाएँ आदि प्रभाव डालते हैं। एक ओर सूचनादाता अपनी पक्षपातपूर्ण बात कहता है तो दूसरी ओर साक्षात्कर्त्ता भी उनका वर्णन करते समय अपनी मान्यताओ को घुसा देता है। साक्षात्कार की अधिकाश सफलता अच्छे सूचनादाता पर निर्भर रहती है। यह प्रविधि समय और धन की दृष्टि से कुछ अधिक खर्चीली भी है। अनेक साक्षात्कर्ता हीन भावना (Inferiority Complex) तथा दुर्बल स्मरण-शक्ति के शिकार होते हैं। वे शुद्ध सत्य तथा क्रमबद्ध प्रतिवेदन लिखना ही नही जानते। इसलिए, जहाँ साक्षात्कार एक उपयोगी प्रविधि है—वहाँ उसे सफलतापूर्वक प्रयोग करना एक जटिल समस्या भी है।

सन्दर्भ

1 J W Garner, Political Science and Government, Indian edition pp 19–20

2 विस्तार के लिए देखिए, पीछे अध्याय–4।

3 I M L Hunter, Memory, rev ed, Baltimore Penguin, 1964

4 M K Gandhi, The Story of My Experiments with Truth, 2 Vols 1927–29, Navajivan Publications, Ahmedabad

5 उदाहरण के लिए देखिए—Odd Nansen, *From Day to Day, Trans by* Katharine John, New York, Putman, 1949, Annon, A Woman *in Berlin Trans by James Stern, New York*, Harcourt, Brace and World 1954, etc

6 *Gideon Sjoberg and Roger Nett, A Methodology for Social Rese-*arch, New York, Harper and Row, 1968, Preface and pp 169–77, H W Smith, Strategies of Social Research New Jersey, Englewood Cliffs, Prentice Hall, 1975, p 200–220

7. John H Rohrer and Muzafer Sherif eds, Social Psychology at the Crossroads, New York, Harper and Row, 1951, Chap 7

8 Charles M Solley and Gardner Murphy, Development of the *Perceptual World*, New York, Basic Books, 1960

9 Martin Meyerson and Edward C Banfield, Politics, Planning and the Public Interest, New York, Free press, 1955, pp 14-18,

10 Young, op cit, p 201

11 Robert F Bales, *Interaction Process Analysis*, Mass, Addison Wesley, 1950, pp 5-40, quoted, विस्तार के लिए, श्यामलाल वर्मा आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, द्वितीय सस्करण, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1977, अध्याय दस।

12 Young op cit, p 121, Smith, op cit, pp 171–196

13 यहाँ 'राजनीतिक अवलोकन' का तात्पर्य अनुसधान और विज्ञान की दृष्टि से देखने से है।

14 Gerald Hursh—Cesar and Prodipto Roy, *Third World Surveys*, op cit., pp 56–57

15 Irving Louis Horowitz, "The Life and Death of Project Camelot", *Trams Action* (Nov, Dec, 1965), 3-7, 44-47

16 M N Basu, *Field Methods in Anthropology and Other Social Sciences*, Calcutta, Bookland Prv Ltd, 1961, pp 20–22

17 Herbert C Kelman, '*Human Use of Human Subjects The Problem of Deception in Social Psychological Experiments*," *Psychological Bulletin*, 67 (1967), 1–11, Kai T Erikson, "A Comment on Disguised Observation in Sociology", *Social Problems*, 14 (Spring, 1967), 366-373

18 Sjoberg and Nett, op cit, pp 161–162

19 Gideon Sjoberg ed, *Ethics, Politics and Social Research* London, Routledge & Kegon Paul, 1967, pp 50–77

20 अप्रत्यक्ष एव प्रत्यक्ष अवलोकन के अतिरिक्त एक और प्रकार भी है। इसे आत्म-अवलोकन (Self Observation) अथवा अन्तर्दर्शन (Introspection) या आत्म-विश्लेषण कहा जाता है। यद्यपि आधुनिक मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र इसे वैज्ञानिक प्रविधि नही मानते, किन्तु अनुभव, भावना, आकाक्षा आदि से सम्बन्धित तथ्यों को समझने के लिए इस प्रविधि की शरण लेना अनिवार्य हो जाता है। विस्तार के लिए, देखिए, Peter McKellor, "The Method of Introspection", in Jordan M Schere, ed, *Theories of Mind* New York, Free Press, 1962, pp 619–644

21 Young op cit, pp 242–43

22 Goode and Hatt, op cit, p 186, Hursh—Cesar and Roy, op cit, pp 57–58

23. Herbert H Hyman, *Interviewing in Social Research*, Chicago, University of Chicago Press, 1954, Myron Weiner, Political Interviewing in Robert E Ward et al, *Studying Politics Abroad*, Boston, Little, Brown, 1964, p 123, Sjoberg and Nett, op cit, pp 204–06

24 Llyod Rudolph and Susanne H. Rudolph, "Surveys in India : Field Experience in Madras State", Public Opinion Quarterly, 22 (Fall, 1958), 236; and, Walter C. Neale, 'The Limitations of Indian Village Survey Data", Journal of Asian Studies, 17 (May, 1958), 393-395.
Robert Lindner, The Fifty Minute Hour, New York, Bantom, 1956,

25 Robert K Merton et. al , The Focused Interview, New York, Free Press, pp 3-4

26 Colin M Turnbull, The Forest People : A Study of The Pygmies of the Congo, Garden City, N Y Doubleday, Anchor Books, 1962; William F Whyte, Steet Corner Society, 2nd ed , Chicago Univ of Chicago Press, 1955

27. S L. A Marshall, Pork Chop Hill, New York, Morrow, 1956.

28. Stanley L. Payne, The Art of Asking Questions, Princeton, N J., Princeton, 1951.

29. Allan F. Hershfield, Niels G. Roling, Graham B Kerr, Gerald Hursh-cesar, "Problems in Interviewing", in Third World Survey, op cit pp. 299-332.

अध्याय 10

अनुसूची एवं प्रश्नावली

[Schedules and Questionnaires]

अनुसूची एव प्रश्नावली की मिलती-जुलती प्रकृति होती है तथा विश्वसनीयता एव प्रामाणिकता की दृष्टि से इनका क्रम प्रत्यक्ष अवलोकन तथा साक्षात्कार के बाद म आता है। शोधक प्रत्येक घटना के होते समय स्वय उपस्थित नही रह सकता।[1] उस समय यह आवश्यक है कि वह सम्बन्धित व्यक्तियो से मिलकर सूचना एव तथ्य एकत्रित करे। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से सूचना प्राप्ति या तथ्यो को एकत्रित करने के तरीके को भी व्यवस्थित एव क्रमबद्ध करना आवश्यक होता है। यह कार्य अनुसूची के द्वारा किया जाता है। यद्यपि अनुसूची (Schedule) एव प्रश्नावली (Questionn ure) एक ही प्रकार के शोध उपकरण प्रतीत होते हैं, किन्तु शोधविज्ञानी के लिए दोनो के विशिष्ट अर्थ हैं। सर्वप्रथम अनुसूची को समझना आवश्यक है।

अनुसूची : व्याख्या एव महत्त्व (Schedule Definition and Importance)

अनुसूची प्रश्नो की एक लिखित सूची होती है जिसे साक्षात्कर्त्ता अपनी समस्या के सन्दर्भ मे तैयार करता है। उसे लेकर वह सम्बन्धित व्यक्तियो के पास जाता है, प्रश्न पूछता है तथा उत्तर लिखकर सूचना एकत्रित करता है। गुड एव हैट के अनुसार, अनुसूची उन प्रश्नो का समुच्चय है जिन्हें साक्षात्कर्त्ता द्वारा किसी दूसरे व्यक्ति के आमने सामने की स्थिति मे पूछे और भरे जाते हैं।[*] बोगार्डस ने इन तथ्यो को प्राप्त करने की औपचारिक प्रणाली (Formal method) माना है जो वस्तुपरक तथा सरलतापूर्वक समझने योग्य होती है।[*]

यह एक प्रपत्र (Proforma) होता है जिसमे समस्या से सम्बन्धित प्रश्नो को सोच-विचार कर क्रमबद्ध ढग से लिख दिया जाता है। यह आशा की जाती है कि यदि उन प्रश्नो का सही-सही उत्तर मिल जाये तो ऐसे तथ्य या सूचनाएँ एकत्रित हो जायेंगी, जिससे वास्तविकता का पता चल सके। अनुसूची सरचित (Structured) होती है अर्थात् साक्षात्कर्त्ता उन प्रश्नो के क्रम मे परिवर्तन करने के लिए स्वतन्त्र नही होता। ये प्रश्न तार्किक रूप से, एक-दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। मेक कार्मक के अनुसार, अनुसूची प्रकल्पनाओ (Hypotheses) को सत्यापित या परीक्षण करने के उपयोग म आती है। निरक्षर उत्तरदाताओ की

---

* Schedule is the name usually applied to a set of questions which are asked and filled in by an interviewer in a face to face situation with another person —Goode and Hatt

The schedule represents a formal method for securing facts that are in objective form and easily discernible —Bogarduas

दृष्टि से यह बड़ी उपयोगी होती है। इसे सर्वेक्षण-प्रणाली में क्षेत्रीय सामग्री एकत्रित करने के लिए काम में लाया जाता है।

अनुसूची का विशेष उद्देश्य प्रामाणिक (Valid) तथा वस्तुनिष्ठ (Objective) तथ्यों को एकत्रित करना माना गया है। प्रश्नों के निश्चित हो जाने से निरर्थक सूचनाएँ संकलन में नहीं आ पाती। साथ ही, प्रश्नकर्ता प्रश्नों को नहीं भूलता। 'याद दिलाने वाली' (Memory tickler) अनुसूची सामने ही रहती है। प्रश्न क्रमबद्ध होते हैं इसलिए उत्तर भी उसी क्रम से लेखबद्ध हो जाते हैं। क्रमबद्ध उत्तरों का सरलतापूर्वक वर्गीकरण (Classification), सारणीयन (Tabulation), विश्लेषण आदि किया जा सकता है। लेखबद्ध प्रश्नावली के रूप में अनुसूची वास्तविक शोधकर्त्ता के अतिरिक्त अन्य किसी प्रशिक्षित कार्यकर्ता द्वारा प्रयोग की जा सकती है। एक अच्छी अनुसूची की दो मूल विशेषताएं होती हैं—प्रथम, वह अपना मन्तव्य अच्छी तरह समझाने में सक्षम हो तथा द्वितीय, उसमें सही उत्तर प्राप्त करने की योग्यता या विशेषता हो। उसकी भाषा सरल, सरस, सुस्पष्ट तथा एकार्थक होनी चाहिए। उनके प्रश्न का निर्माण इस प्रकार किया जाये कि केवल सही तथ्य ही प्राप्त हो। अन्तर्गत, असम्बद्ध तथा भ्रमात्मक बातों का समावेश हो न हो पाये।

प्रश्नों की विषयवस्तु

प्रश्नों की विषयवस्तु विविध प्रकार एवं विषयों से सम्बन्ध रखने वाली हो सकती है। फिर भी समस्या से सम्बद्ध तथ्यों की दृष्टि से उनका सामान्य वर्गीकरण किया जा सकता है। सर्वप्रथम किस किस प्रकार के व्यक्ति उन तथ्यों से सम्बद्ध हैं? यथा, उनके नाम, आयु, धर्म, आय, जाति, राष्ट्रीयता, वैवाहिक स्थिति, व्यवसाय निवास-स्थान आदि। इनका तथ्यों एवं तथ्यों की जानकारी से बड़ा सम्बन्ध होता है, जैसे, रेगिस्तानी गाँव का निवासी शहरी प्रदूषण की समस्या के बारे में अधिक नहीं जानता होगा। द्वितीय, उस तथ्य, घटना या स्थिति के बारे में सूचनादाता क्या क्या जानता है? इससे उस घटना के प्रति रुचि, वृद्धि, सम्बद्धता, प्रभाव आदि का पता चलता है। जैसे, राजनैतिक सूचनाओं का फैलाव एक नागरिक होने के नाते सूचनादाता की जागरूकता का परिचायक माना जा सकता है। तृतीय, उत्तरदाता का दृष्टिकोण या मूल्य-व्यवस्था क्या, कितनी, क्यों और कैसे है? जैसे मुसलमानों के स्थान सुरक्षित होने चाहिए या नहीं? इस प्रश्न के उत्तर से उसके राष्ट्रीयता सम्बन्धी मूल्य का पता चल जायेगा। इसी तरह, उसकी भावनाओं, प्रवृत्तियों, विचारों आदि को भी ज्ञात किया जा सकता है। चतुर्थ, प्रश्नों में यह भी पूछा जा सकता है कि उत्तरदाता के अन्य व्यक्तियों, घटनाओं, विचारवादों (Ideologies) आदि के बारे में क्या विचार हैं? इनके द्वारा अन्य वस्तुओं के प्रति उसके प्रत्यक्षण (Perception) का पता लगाया जा सकता है। पंचम, प्रश्नों में मनुष्य या समूह के अमूर्त मानदण्डों, मानकों आदि को ज्ञात किया जा सकता है। उन पर कौन, कितना चलता है या मानता है? आदि। षष्ठ, इनकी विषयवस्तु बीती हुई घटनाओं की जानकारी या प्रत्यक्षदर्शियों की प्रतिक्रिया को समझना भी हो सकता है।

अनुसूचियों के प्रकार (Types of Schedules)

अनुसूचियाँ के सामान्यतः पाँच प्रकार पाये जाते हैं :

(1) अवलोकन अनुसूची (Observation Schedule)—इस अनुसूची का प्रयोग

अवलोकन-कार्य को क्रमबद्ध, व्यवस्थित एव प्रभावी बनाने के लिए किया जाता है। इसमें प्रश्नो के बजाय कुछ मोटी-मोटी बातो का उल्लेख होता है, जो अवलोकन के समय सामने आ सकती हैं। उस समय उन अवलोकित घटनाओ का विवरण स्वयं देख कर लिखा जाता है।

(2) प्रमापन या मूल्यांकन अनुसूची (Rating Schedule)—इसमे किसी घटना, समस्या या विषय से सम्बन्धित मामलों मे सूचनादाता की पसन्द, राय, मनोवृत्ति, विश्वास आदि का प्रमापन या मूल्यांकन किया जाता है। ऐसा करके उसे सांख्यिकीय आकड़ो मे व्यक्त किया जा सकता है। मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र के क्षेत्रों मे इस अनुसूची का काफी प्रयोग किया जाता है। राजनीतिक शोध मे, ऐसी अनुसूची के द्वारा 'राजनीति मे जाति की भूमिका', 'लोकतन्त्र बनाम स्थायी शासन' आदि विषयो मे प्रश्न पूछ कर उत्तरदाताओ की पसन्द को ज्ञात किया जा सकता है।

(3) सस्था सर्वेक्षण अनुसूची (Institution Survey Schedule)—ऐसी अनुसूची के द्वारा किसी सस्था, दल या समुदाय से सम्बन्धित समस्याओ को ज्ञात किया जा सकता है। सभी विभिन्न पक्षो को जानने का प्रयास करने वाली अनुसूची काफी लम्बी होती है। किन्तु किसी सीमित पक्ष या समस्याओं के सम्बन्ध मे अनुसूची अपेक्षाकृत छोटी भी बनायी जा सकती है।

(4) साक्षात्कार अनुसूची (Interview Schedule)—ये अनुसूचियाँ साक्षात्कार को व्यवस्थित तथा क्रमबद्ध बनाने के लिए होती हैं। इसके द्वारा पहले से ही योजना बनाकर सूचनाएँ एकत्रित की जा सकती हैं। साक्षात्कर्ता सूचनादाताओ के पास व्यक्तिगत रूप से जाता है तथा प्रश्न पूछ-पूछकर स्वय उत्तर लिखता जाता है। ये उत्तर उसके लिए तथ्य बन जाते हैं। इनका वह अपनी समस्या के सन्दर्भ मे वर्गीकरण, विश्लेषण आदि करता है।

(5) प्रलेखीय अनुसूची (Documentary Schedule)—यह अनुसूची विविध लिखित स्रोतो से सूचनाएँ एकत्रित करने के उपयोग मे आती हैं। ये स्रोत आत्मकथा, डायरी, सरकारी तथा गैर सरकारी अभिलेख, पुस्तकें, प्रतिवेदन आदि हो सकते हैं। विषय से सम्बन्धित अध्ययन-इकाइयो के विषय मे प्रारम्भिक जानकारी एकत्रित करने के अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। उदाहरण के लिए, मृत्युदण्ड या दल-बदल के समस्त प्रलेखीय सामग्री को अनुसूची के अन्तर्गत एकत्रित किए जाने पर उनसे सम्बन्धित सभी समस्याओ को ज्ञात किया जा सकता है। ऐसा करने से अध्ययन शुरू से ही व्यवस्थित हो जाता है।

वस्तुतः विभिन्न पद्धतिविज्ञानियो ने अनुसूचियो को अनेक प्रकार से विभाजित किया है। यग ने इन्हें चार वर्गों मे रखा है, यथा, (i) अवलोकन, (ii) मूल्यांकनपरक, (iii) प्रलेखीय तथा, (iv) सस्था-सर्वेक्षण अनुसूचियाँ। लुण्डबर्ग ने इन्हें तीन श्रेणियो मे विभाजित किया है - (क) वस्तुपरक तथ्यो से सम्बन्धित, (ख) सम्मति तथा दृष्टिकोण के मापन से सम्बन्धित तथा (ग) सस्थाओं एव सगठनो के अध्ययन से सम्बन्धित।

अनुसूची-निर्माण की प्रक्रिया (Process of Schedule Preparation)

अनुसूची-निर्माण की प्रक्रिया को कुछ अवस्थाओं (Stages) या चरणों (Steps) मे बाँटा जा सकता है : प्रथम अवस्था मे, शोधक अपनी समस्या के सम्बन्ध मे पूर्ववर्ती या पृष्ठभूमिगत तैयारी करता है। वह यह देखता है कि कौन-कौन से पक्ष अधिक महत्वपूर्ण हैं?

किन-किन पक्षों का किस क्रम से अध्ययन किया जाना चाहिए ? इस अवस्था में वह विषय के पहलुओं, प्राथमिक पक्षों तथा क्रम का निर्धारण करता है। द्वितीय अवस्था मे, वह विभिन्न पक्षों या पहलुओं को उपविभागों और खण्डो में विभाजित करता है। इन उपविभागों की प्रकृति, महत्त्व तथा पारस्परिक सम्बन्धों पर विचार किया जाता है। तीसरी अवस्था में, प्रश्नों का निर्माण किया जाता है। उनको उपयोगी स्पष्ट तथा व्यवस्थित बनाया जाता है। प्रश्नों के विषय म आगे विस्तार मे बताया गया है। चतुर्थ अवस्था मे प्रश्नों के क्रम पर ध्यान दिया जाता है ताकि तथ्यों की प्राप्ति उसी क्रम या सिलसिले से की जाये। ऐसा करने से साक्षात्कार में कुशलता, सौहार्द एव रुचि बढ़ती है। क्रमबद्ध होने से तथ्यों के वर्गीकरण, सारणीयन आदि करने में बड़ी सहायता मिलती है। पचम अवस्था मे अनुसूची की वैधता (Validity) की जांच की जाती है। इसका उद्देश्य यह देखना है कि जिस उद्देश्य के लिए प्रश्नों का निर्माण किया गया है, उस उद्देश्य की पूर्ति हो रही है अथवा नहीं ? नमूने के तौर पर इन प्रश्नों का सूचनादाताओं से पूछकर जांच कर ली जाती है कि अनुसूची तैयार करने के उद्देश्य फलीभूत हो रहे है अथवा नहीं ? आवश्यकतानुसार नये प्रश्न जोड़े, पुराने हटाये या सशोधित किए जा सकते हैं।

अनुसूची का स्वरूप (Form of Schedule)

अनुसूची की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि उसका बाह्य तथा आतरिक स्वरूप आकर्षक एव उपयोगी हो। बाह्य दृष्टि से अनुसूची का कागज तथा आकार (Size) ठीक होना चाहिए। सामान्यत 8 × 11 इन्च का आकार ठीक माना जाता है। उत्तर लिखने के लिए उसमें अच्छे हाशिये (½ तथा ¼ इन्च) का पर्याप्त स्थान छोड दिया जाना चाहिए। प्रश्नों की अनुसूची को या तो छपवा या 'साइक्लोस्टाइल' (Cyclostyle) करवा लिया जाये। किन्तु पक्तियों के बीच में पर्याप्त जगह (Space) छोड़ देनी चाहिए ताकि आवश्यकतानुसार बीच में लिखा जा सके। अनुसूची को आकर्षक एव बोधगम्य बनाने के लिए चित्रों का भी उपयोग किया जा सकता है।

अनुसूची की अतर्वस्तु (Content) या आतरिक स्वरूप को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है (1) प्रारम्भिक सूचनाएँ (Introductory informations)—इसमें अध्ययन विषय का नाम, क्रम सख्या, सूचनादाता का नाम, पता, कार्यालय, आयु, लिंग, शिक्षा, जाति, भाषा, साक्षात्कार का स्थान, समय आदि से सम्बन्धित प्रश्न या उत्तर भरने के लिए खाली जगह होती है, (2) मुख्य प्रश्न एव सारणियाँ (Main questions and tables)—प्रथम भाग के बाद शुरू होती हैं। प्रश्नों को पूछ-पूछ कर साक्षात्कर्ता उत्तर लिखता तथा रिक्त स्थानों को भरता जाता है। तथा (3) साक्षात्कर्ताओं के लिए निर्देश (Instructions for investigation)—इसमें साक्षात्कार करने वाले व्यक्तियों के लिए आवश्यक निर्देश दिए जाते हैं ताकि तथ्य प्राप्त करने का काम सरल तथा समरूप ढग से हो सके।

प्रश्नों के प्रकार (Kinds of Questions)

अनुसूची में प्रश्नों को शामिल करने से पूर्व प्रश्नों के प्रकारों को भलीभांति समझ लिया जाना चाहिए। विभिन्न प्रश्नों के अलग-अलग उद्देश्य होते हैं तथा उनके निर्माण करने की रीतियाँ भी भिन्न होती हैं—

(1) खुले प्रश्न (Open-end Questions)—ये प्रश्न सूचनादाता के अपने विचारों, भावनाओं, विश्वासों आदि को जानने के लिए किये जाते हैं। इनके उत्तर अलग-अलग प्रकार के—लम्बे या छोटे, सम्बद्ध या असम्बद्ध—प्राप्त होते हैं। जैसे, दल-बदल का भारतीय राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ता है? या आपकी सम्मति में मतदान प्रणाली में क्या-क्या बुराइयाँ हैं? आदि।

(2) संरचित या आयोजित प्रश्न (Structured questions)—इन प्रश्नों में उनके सम्भावित उत्तरों को भी प्रश्न के सामने रख दिया जाता है। साक्षात्कृत को उनमें से किसी एक का उत्तर चुनने के लिए कहा जाता है। ये उत्तर संख्या, वाक्यांश या वाक्य के रूप में हो सकते हैं। जैसे, भारत में एक/द्वि/बहुदलीय व्यवस्था पायी जाती है।

(3) दोहरे प्रश्न (Dichotomous Questions)—किसी किसी प्रश्न के केवल दो ही उत्तर—सकारात्मक या नकारात्मक हो सकते हैं। इन्हें लिख दिया जाता है। उत्तरदाता द्वारा किसी एक को चुन लिया जाता है। जैसे, क्या आप समाचार-पत्र रोज पढ़ते हैं? हाँ/नहीं।

(4) बहुवैकल्पिक प्रश्न (Multiple Choice Questions)—इन प्रश्नों में प्रत्येक प्रश्न के अनेक सम्भावित उत्तर दिए हुए रहते हैं। इनमें से सूचनादाता कोई एक या एकाधिक उत्तर छाँट लेता है। अन्त में एक उत्तर 'अन्य कोई' भी जोड़ दिया जाता है। जैसे, आप श्रमिक संघ के सदस्य बनना क्यों पसन्द करते हैं?—संगठन में पद ग्रहण करने के लिए/अधिक वेतन तथा सुविधाएँ हासिल करने के लिए/भाई-चारा बढ़ाने के लिए/प्रबन्धकों से टक्कर लेने के लिए/अन्य कोई।

(5) निर्देशक प्रश्न (Leading Questions)—ऐसे प्रश्न में उत्तर का संकेत दिया हुआ रहता है। प्रायः उत्तरदाता उसी संकेत के अनुसार ही उत्तर दे देता है। जब ऐसे प्रश्न में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संकेत भी दिया हुआ रहता है, तो प्रश्न पूछने का प्रयोजन ही समाप्त हो जाता है। जैसे, क्या चुनावों में राजनैतिक दलों द्वारा प्राइवेट कम्पनियों से चन्दा लेना भ्रष्टाचार का कारण नहीं है?

(6) अनेकार्थक प्रश्न (Ambiguous Questions)—जब प्रश्न की भाषा या विषयवस्तु ऐसी होती है कि विभिन्न सूचनादाता उसके अपने-अपने ढंग से अनेक अर्थ लगा लेते हैं, तो ऐसे प्रश्न 'अनेकार्थक (Ambiguous)' कहे जाते हैं। जैसे, क्या आप किसी राजनैतिक विचारधारा में विश्वास करते हैं? इसमें 'राजनैतिक विचारधारा' के अनेक अर्थ लगाये जायेंगे।

(7) अस्पष्ट प्रश्न (Vague Questions)—ऐसे प्रश्न किसी सुनिश्चित उत्तर को प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। इनका अनेक अस्पष्ट तरीकों से उत्तर दिया जा सकता है। जैसे, क्या आप सुनिश्चित हैं? अथवा क्या आप एक योग्य नागरिक हैं?

(8) क्रमसूचक प्रश्न (Ranking Item Questions)—ऐसे प्रश्न के अनेक उत्तर दिए हुए होते हैं। सूचनादाता को उन उत्तरों का क्रम से लगाना होता है। यह कार्य 1,2, 3, 4 लगा कर किया जाता है।

प्रश्नों की सामान्य वांछनीय विशेषताएँ
(General Desirable Characteristics of Questions)

अनुसूची में प्रश्न आमने-सामने बैठकर पूछे जाते हैं। उनका निर्माण करते समय

अपने अध्ययन-विषय के उद्देश्य एव क्षेत्र, सम्भावित उत्तरदाताओ के स्वभाव, क्षेत्र के कार्यकर्ताओ की योग्यता तथा उपलब्ध सुविधाओं का पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए। इन सभी पक्षो का ध्यान रखते हुए प्रश्न बनाना चाहिए। प्रश्नो का मूल उद्देश्य समस्या से सम्बन्धित स्पष्ट, विश्वसनीय तथा सांख्यिकीय तथ्य प्राप्त करना होता है। इसके लिए उनमे कतिपय विशेषताओ का होना आवश्यक है—

1 वे छोटे, सुगम, सरल तथा समस्या एव सूचनादाता से सम्बन्धित हो।

2. वे सूचनादाता के बौद्धिक स्तर के अनुसार बनाए जाएँ। वे अधिक कठिन या अति-सरल नही होने चाहिए।

3 प्रश्नों में वैषयिकता (Objectivity) होनी चाहिए। उन्ह अनुभवपरक उत्तर देने की दृष्टि से बनाया जाना चाहिए। इससे वर्गीकरण, सारणीयन आदि करने मे सुविधा प्राप्त होगी।

4. केवल आवश्यक प्रश्न ही पूछे जाएँ। अनावश्यक प्रश्नो को अनुसूची म शामिल करन से वह लम्बी हो जाती है तथा सूचनादाता पर बुरा प्रभाव डालती है।

5 यदि प्रत्यक्ष प्रश्नो से सूचना प्राप्त करने म कठिनाई होती है तो अप्रत्यक्ष (Indirect) प्रश्न पूछे जाने चाहिए। जैसे, किसी को, क्या आप दल-बदलू है? पूछने के बजाय, पहले आप किस दल म थे? तथा अब आप किस दल मे हैं? ये दो प्रश्न पूछे जाने चाहिए।

6 प्रश्न क्रमबद्ध तथा परस्पर सम्बद्ध होने चाहिए। एक ही विषय या उपविषय से सम्बधित बार-बार तथा विभिन्न स्थानो पर नही पूछने चाहिए। जैसे, श्रमिक सघ की आय से सम्बद्ध प्रश्न एक ही स्थान पर होने चाहिए। उन्हे नेताओ के पारस्परिक सम्बन्धो के साथ नही पूछना चाहिए।

7 ऐसे प्रश्न भी पूछे जाने चाहिए जिनसे उत्तरो की सत्यता, प्रामाणिकता आदि की जाँच हो सके। किसी एक प्रश्न क उत्तर की अन्य प्रश्नो या उत्तरो के सन्दर्भ मे जाँच की जा सकती है। जैसे, दलीय निष्ठा तथा कानून के प्रति निष्ठा से सम्बन्धित प्रश्न एक दूसरे के उत्तरों की जाँच कर सकते हैं।

8 गुप्त जीवन अथवा निषिद्ध क्षेत्र से सम्बन्धित प्रश्न नही पूछे जाने चाहिए। ऐसे प्रश्नो का या तो उत्तर ही नही दिया जायेगा या गलत उत्तर दिया जायेगा। लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष यह कभी नही बतायेगा कि उसने अपनी जाति के कितने आशार्थियों (Candidates) का चयन कराया या उसने प्रत्येक आशार्थी से चयन करने हेतु कितनी रिश्वत ली? ऐसे प्रश्न पूछने ही साक्षात्कार की इतिश्री (End) हो जायेगी।

9 प्रश्न ऐसे होने चाहिए कि उनके उत्तर लिखने म कम समय लगे। इसके लिए विभिन्न चिह्न (✓ या ×) या नक्शा का उपयोग किया जा सकता है।

10 विचारात्मक प्रश्नो को गहनता के साथ पूछा जाना चाहिए। उनको पूछते समय क्यो, कब, कैसे आदि प्रश्नो को भी जोड़ा जा सकता है।

11 प्रश्न एकार्थक होने चाहिए, बहुनार्थक (Ambiguous) नही। उन्हें अस्पष्ट, धृष्टतापूर्वक या व्यंग्यात्मक बोली म नही पूछा जाना चाहिए। तकनीकी एव भावात्मक शब्दों के प्रयोग स भी बचना चाहिए।

12 प्रश्नों में प्रयुक्त शब्दों और वाक्यांशों को निश्चित एवं विशिष्ट बनाने के लिए स्पष्ट कर देना चाहिए। जैसे, युवा शक्ति के संगठन का राजनैतिक दलों के स्वरूप पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? इस प्रश्न में 'युवा' शब्द को स्पष्ट करना आवश्यक है।

ऐसे प्रश्न नहीं किये जाने चाहिए जिनके अनेक अर्थ निकलते हों अथवा जो निर्देशक (Leading) तथा अस्पष्ट हों। सर्वविदित तथा सर्वस्वीकृत ज्ञान से सम्बन्धित प्रश्न करना भी उचित नहीं है, जैसे, क्या आप समझते हैं कि भारत जनसंख्या की दृष्टि से एक बड़ा देश है ? इसी तरह, गुप्त जीवन से सम्बद्ध, जटिल और लम्बे प्रश्न भी नहीं पूछने चाहिए। किसी के ज्ञान की परीक्षा (Examination) लेने वाले प्रश्न भी पूछना उचित नहीं होता। उससे सूचनादाता के आत्मसम्मान को चोट लगती है। यदि अवलोकन अथवा प्रलेख साधनों से तथ्य प्राप्त हो सकते हैं, तो प्रश्नों पर निर्भर रहने की अधिक आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

अनुसूची का प्रयोग (Application of Schedules)

एक अच्छी अनुसूची का होना ही पर्याप्त नहीं है। वह साक्षात्कार को सफल एवं निर्भर योग्य बनाने का एक प्रमुख साधन है। किन्तु साक्षात्कार को सफल बनाने के लिए अनेक बातों का होना आवश्यक है। सर्वप्रथम, उत्तरदाताओं का चयन किया जाता है। यह कार्य समुदाय या समूह के सभी व्यक्तियों, जैसे, विधानसभा के सभी सदस्यों का साक्षात्कार करके किया जा सकता है। या समस्त जनसंख्या या समग्र (Population or Universe) में से निदर्शन (Sampling) करके या न्यादर्श निकालकर सूचनादाताओं का चयन किया जा सकता है। उनके नाम, पते, परिचय आदि पहले से ही सकलित कर लिये जाते हैं। द्वितीय चरण में कार्यकर्ताओं का चयन किया जाता है। केवल परिश्रमी, निष्ठावान, प्रशिक्षित तथा अनुभवी व्यक्तियों को ही क्षेत्र-कार्यकर्ता (Field-Worker) या गवेषक (Investigator) बनाना चाहिए। अन्यथा, वे घर पर बैठकर ही सभी अनुसूचियाँ भर देंगे। तृतीय चरण में, क्षेत्र-कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्रशिक्षण में उन्हें समस्या के समस्त पहलुओं का ज्ञान कराया जाता है। चतुर्थ चरण में, कार्यकर्ताओं को क्षेत्र (Field) में सूचनाओं का सकलन करने के लिए भेजा जाता है। सूचनाओं का सकलन करने के लिए साक्षात्कर्ता को उत्तरदाताओं से ठीक समय पर तथा ठीक तरीके से सम्पर्क करना पड़ता है। इन दो बातों का राजनीतिक शोध में बहुत अधिक ध्यान रखना पड़ता है। सम्पर्क स्थापित कर लेने के पश्चात् वास्तविक साक्षात्कार (Interview) प्रारम्भ हो जाता है। साक्षात्कार के विषय में पिछले अध्याय में विस्तार-पूर्वक समझाया जा चुका है।[3] साक्षात्कर्ता को साक्षात्कार को रुचिकर बनाये रखने के लिए निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए। साक्षात्कार के समय अधिक से अधिक तथा वास्तविक सूचनाएँ प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए। यदि उत्तरदाता प्रश्नों को समझने में कठिनाई अनुभव करे तो उसे व्याख्या करके समझा देना चाहिए।

पाँचवें चरण में, अनुसूची के सही भर जाने की जाँच (Checking) की जाती है। व्यापक क्षेत्र में शोध-कार्य करते समय अनेक क्षेत्र-कार्यकर्ता नियुक्त करने पड़ते हैं। ये कार्यकर्ता अनुसूचियाँ भरकर मुख्य शोध-निदेशक या अनुसंधान कर्ता को भेजते हैं। मुख्य शोधक के लिए यह आवश्यक है कि वह समय-समय पर क्षेत्र में जाकर अनुसूची भरने के कार्य स्वयं निरीक्षण करे अथवा अविश्वसनीय अनुसूचियों को पुनः सही तरीके से भरवाए।

इस कार्य में अधिक विलम्ब नहीं करना चाहिए। छठे चरण में अनुसूचियों का सम्पादन (Editing) किया जाता है। सम्पादन के कार्य में अनेक क्रियाएँ शामिल होती हैं, यथा, अनुसूचियों को व्यवस्थित करके रखना, प्रत्येक कार्यकर्ता द्वारा भेजी गई अनुसूचियों को अलग-अलग फाइलों में रखना, प्रत्येक क्षेत्र से प्राप्त अनुसूचियों में से उत्तरदाताओं की संख्या आदि का हिसाब रखना तथा विभिन्न अनुसूचियों की जाँच करना। उसे अनेक बार अधूरी तथा अस्पष्ट अनुसूचियों को ठीक करना पड़ता है। सारणीयन या वर्गीकरण करने से पूर्व अनुसूचियों के विभिन्न प्रश्नों तथा उत्तरों को संकेत या प्रतीक देने पड़ते हैं। यह कार्य गणित के अंक या सांख्यिकीय संकेताक्षर देकर किया जाता है। सातवें चरण में, प्राप्त तथ्यों एवं आँकड़ों का विश्लेषण किया जाता है तथा समस्या या प्रकल्पना के सन्दर्भ में उसकी व्याख्या की जाती है।

उपयोगिता एवं मूल्यांकन (Utility and Evaluation)

अनुसूची राजवैज्ञानिक शोधकर्ताओं के अनुसंधान-कार्य का प्रमुख सहारा बन गई है। उसके द्वारा शोधकों को वास्तविक तथा ठोस तथ्यों की प्राप्ति होती है। अनुसूची का प्रयोग करते समय, प्रश्न पूछने के साथ-साथ प्रश्न के वातावरण तथा उत्तरदाता के परिवेश का अवलोकन करने का भी अवसर मिलता है। प्रश्न निश्चित एवं विशिष्ट होने से उत्तर भी स्पष्ट तथा अध्ययन-विषय से सम्बद्ध एवं यथार्थ ही मिलते हैं। साक्षात्कार करते समय प्रश्नकर्त्ता एवं उत्तरदाता दोनों मिल जाते हैं, इससे उनके मध्य वर्तमान अविश्वास, शंका, संकोच आदि बाधाएँ दूर हो जाती हैं और वे उन्मुक्त वातावरण में, बिना मन की बातों को छिपाये, विचारों का आदान-प्रदान करने लग जाते हैं। अनुसूची-प्रक्रिया में शोधक या साक्षात्कर्त्ता अपने व्यक्तित्व एवं कौशल का पूरा प्रभाव डालकर अनेक महत्वपूर्ण बातों को निकलवा लेता है, जिसे सामान्यतः सूचनादाता बिल्कुल नहीं कहता। अनुसूची के सहारे प्रश्नकर्त्ता की अवलोकन शक्ति, आत्मविश्वास तथा साक्षात्कार-कौशल में अपरिमित वृद्धि होती है। इसमें तथ्य-संग्रह की प्रक्रिया संक्षिप्त, सुनिश्चित और लेखबद्ध हो जाती है। उसे अधिकतर प्रश्नों के उत्तर मिल जाते हैं क्योंकि साक्षात्कर्त्ता स्वयं सामने बैठा रहता है और उसके मनुहार भरे निवेदन को टाला नहीं जा सकता। अनुसूची-प्रणाली की एक बड़ी विशेषता यह है कि मानवीय तत्व अर्थात् मनुष्य तथा मनुष्य के मध्य सम्बन्ध प्रारम्भ से अन्त तक बना रहता है। वे ज्ञान-वृद्धि की प्रक्रिया में एक-दूसरे के साथ सहयोग करते हैं। अनुसंधान एक लेन-देन अथवा विचारों के आदान-प्रदान की प्रक्रिया बन जाता है।

किन्तु इस प्रविधि की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं। ऐसे सार्वभौमिक प्रश्न बनाना अत्यन्त कठिन होता है, जिनके शब्दों के अर्थ सभी सूचनादाता एक-ही तरह के लगायें। भाषा, बोली, स्थानीय विशेषताओं तथा धर्म आदि की विभिन्नताएँ उनकी समझ एवं उत्तर-सामग्री को प्रभावित करती हैं। अनुसूची का प्रयोग सीमित रूप से ही किया जा सकता है। व्यापक या बड़े क्षेत्र में घर-घर जाकर साक्षात्कार करना तथा अनुसूचियों को भरना सम्भव नहीं है। न तो ऐसे प्रशिक्षित क्षेत्र-कार्यकर्त्ता ही मिल पाते हैं जो मूल शोधक की योजना के अनुसार साक्षात्कार कर सकें और न ही इतना समय और धन उन्हें प्रशिक्षित करने में लगाया जा सकता है। सबसे बढ़कर, सम्पर्क करने तथा मिथ्या-सुझावों से बचने की समस्याएँ बड़ी जबरदस्त होती हैं। अधिकांशतः सूचनादाता साक्षात्कार से बचने का प्रयास करता है। इसके द्वारा विभिन्न संस्कृतियों के शोधों (Cross Cultural Research) का सम्पादन करना कठिन होता है।

शोध-वैज्ञानिक दृष्टि से यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अनुसूची तथा प्रश्नावली (आगे) से प्राप्त सूचनाएँ अप्रत्यक्ष अवलोकन का परिणाम होती हैं। सूचनादाता जो देखता, सोचता या अनुभव करता है, वही शोधकर्त्ता के लिए सूचनाओं का प्राथमिक स्रोत बन जाता है। ये सूचनादाता साधारण लोग (Laymen) होते हैं और इनके अपने अवलोकन को वैज्ञानिक (Scientific) नही कहा जा सकता। ये सूचनादाता सामान्य व्यक्ति, राजनेता नागरिक, प्रशासक, अधिकारी, सवाददाता, विद्यार्थी, मजदूर आदि हो सकते हैं। शोधकर्त्ता को इन्ही के अवलोकन पर निर्भर रहना पडता है। अतएव यह आवश्यक है कि उनके अवलोकन को जाँच एव सुधार लिया जाये। सभी समाचार-पत्र, सरकारी एव गैर-सरकारी सगठन, सस्थाएँ आदि अपने ढग से ऐसे अवलोकनो का अभिलेख एव आँकडो के रूप मे सकलन करती हैं। किन्तु वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से उन्हें शुद्ध कर लिया जाना चाहिए। अनुसूची की तुलना मे प्रश्नावलियो से प्राप्त उत्तरो को शुद्ध करने की और भी अधिक आवश्यकता होती है।

प्रश्नावली (Questionnaire)

प्रश्नावली का उद्देश्य भी, अनुसूची की समस्या से सम्बन्धित प्राथमिक तथ्यों का सकलन करना है। अनुसूची की भाँति वह भी प्रश्नो की एक व्यवस्थित एव क्रमबद्ध सूची होती है। अतर केवल यही है कि अनुसूची मे साक्षात्कर्त्ता स्वय या उसकी तरफ से कोई कार्यकर्ता सूचनादाता के पास जाता है तथा प्रश्न पूछ पूछकर अपने हाथ से अनुसूची को भरता है। प्रश्नावली डाक द्वारा सूचनादाता के पास भेज दी जाती है, उसमे यह अनुरोध किया जाता है कि सूचनादाता स्वय उन प्रश्नो के उत्तर भरकर वापिस शोधक को लौटाने का कष्ट करे। इस कारण, अनुसूची की तुलना मे, प्रश्नावली तैयार करते समय अनेक विशेष बातों को ध्यान मे रखना पडता है।

राजनीतिक शोध मे प्रश्नावली एक उपयोगी प्रविधि है। यह व्यापक क्षेत्र मे बिखरे हुए व्यक्तियों के सामान्य विचारो, भावनाओ, प्रतिक्रियाओ, सुझावो तथा व्यवहारो को जानने की सरलतम, मितव्ययी, शीघ्रगामी तथा उपयुक्त विधि है। ये लोग ऐसे होने चाहिए जो सत्ता या सरकार मे शामिल नहीं हो। प्राय शक्ति या सत्ताधारक लोग विभिन्न मामलों पर अपनी प्रतिक्रिया लिखित रूप मे व्यक्त करना पसन्द नहीं करते। राजनेता, मन्त्री, उच्च-प्रशासक, उच्च पदधारी व्यक्ति आदि प्रश्नावलियों से उत्तर नहीं भेजते। उदाहरण के लिए, इनके द्वारा यह जानना तो सरल है कि कौन लोग किस किस प्रकार के समाचार-पत्र पढ़ते हैं, किन्तु कोई नेता या सासद यह नही बतायेगा कि वह राजनीति से क्या-क्या लाभ स्वय अपने तथा निजी रिश्तदारो के लिए उठा रहा है। उच्च प्रशासक भी प्रश्नावली के माध्यम से यह नही बतायेगा कि वह राजनीतिज्ञो के साथ किस प्रकार अच्छे सम्बन्ध बनाए हुए है ? आदि।

परिभाषा एव व्याख्या (Definition and Explanation)

प्रश्नावली क्रमबद्ध प्रश्नों की उस सूची को कहते हैं जिसे डाक द्वारा भेजा जाता है तथा सूचनादाताओं से वापिस डाक द्वारा उत्तरों को प्राप्त करके तथ्य एकत्रित किए जाते हैं।*

---

* A questionnaire is a list of a questions to a number of persons for them to answer —Bogardus

Contd

एवं प्रविधि के रूप में प्रश्नावली उत्तर प्राप्त करने की एक युक्ति (Device) है जिसमें एक प्रपत्र (Form) का उपयोग किया जाता है, जिसे उत्तरदाता स्वयं भरता है।[4] लुण्डबर्ग के अनुसार, वह प्रेरणाओं का एक ऐसा समुच्चय (Set) है, जिसके अन्तर्गत शिक्षित व्यक्तियों को अपने मौलिक व्यवहार का अवलोकन करने के लिए सामने लाया जाता है।[5] पोप के कथनानुसार, प्रश्नावली में सूचनादाता को शोधकर्त्ता या प्रगणक (Enumerator) की व्यक्तिगत सहायता के बिना प्रश्नों के उत्तर लिखना होता है। विल्सन गी की दृष्टि से, इस प्रविधि का प्रयोग बड़ी संख्या में बहुत से लोगों अथवा एक छोटे चुने हुए समूह में, जिसके सदस्य किसी बड़े फैले हुए क्षेत्र में हो, सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए किया जाता है। एमरी एस. बोगार्ड्स ने लिखा है कि 'यह विभिन्न व्यक्तियों को, उत्तर देने के लिए दी गई तालिका है।' अपने सरलतम रूप में यह डाक द्वारा भेजी गई प्रश्नों की अनुसूची है जिसे एक सूची या सर्वेक्षण-निदर्शन के अनुसार व्यक्तियों को भेजा जाता है। ये व्यक्ति इन्हें भरकर वापिस डाक द्वारा प्रश्नकर्त्ता को लौटा देते हैं।

इस प्रकार, प्रश्नावली प्राथमिक सामग्री प्राप्त करने की अप्रत्यक्ष विधि है। इस डाक द्वारा कतिपय चुने हुए शिक्षित सूचनादाताओं को भेजा जाता है, ताकि वे स्वयं इन्हें भरकर डाक द्वारा ही वापिस लौटा दें।

प्रश्नावली के प्रकार (Types of Questionnaire)

प्रश्नावलियों के कई प्रकार पाये जाते हैं। इन्हें रचना, प्रश्नों की बनावट तथा उपयोगिता के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। लुण्डबर्ग के अनुसार प्रश्नावलियाँ दो प्रकार की होती हैं—(i) तथ्य सम्बन्धी तथा (ii) मत तथा मनोवृत्ति सम्बन्धी। यंग ने भी उन्हें दो वर्गों में रखा है—(क) संरचित (Structured) तथा (ख) असंरचित (Unstructured)। संरचित प्रश्नावली शोध आरम्भ करने से पूर्व तैयारी की जाती है। यह निश्चित, ठोस तथा पूर्वनिर्धारित प्रश्नों से युक्त होती है। असंरचित प्रश्नावली में केवल अध्ययन के विषयों, क्षेत्र आदि का उल्लेख रहता है। अन्य प्रश्नावलियाँ प्रश्नों की प्रकृति के आधार पर वर्गीकृत होती हैं, जैसे बन्द, खुली या मिश्रमय।

(1) संरचित प्रश्नावली (Structured Questionnaire)—यह शोध के प्रारम्भ होने से पहले तैयार की जाती है। बाद में इसमें कोई फेरबदल नहीं किया जाता। केवल कुछ अधिक या विस्तृत उत्तर पाने के लिए कुछ और प्रश्न जोड़ दिये जाते हैं। अध्ययन-क्षेत्र के बहुत विस्तृत होने तथा प्राथमिक सूचनाओं को एकत्रित करने या एकत्रित सूचनाओं की जाँच करने के उद्देश्य से संरचित प्रश्नावलियों का प्रयोग किया जाता है। प्रश्न सभी उत्तरदाताओं के लिए समान होते हैं, इसलिये व्यवस्थित, प्रामाणिक तथा क्रमबद्ध सूचनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। किसी समस्या के विषय में विचारों या मतों, प्रशासकीय नीति में परिवर्तन, सुझावों को माँगने आदि के विषय में इसका उपयोग अधिक उपयुक्त माना गया है।

It does constitute a convenient method of obtaining a limited amount of information from a large number of persons or from a small selected group which is widely scattered

— Wilson Gee

(2) असरचित प्रश्नावली (Unstructured Questionnaire)—ऐसी प्रश्नावली म केवल कुछ विषयो अथवा उपविषयो का उल्लेख रहता है तथा पहले से ही कोई प्रश्न दिए हुए नही होते। इसका स्वरुप साक्षात्कार निर्देशिका (Interview Guide) के समान होता है। इस प्रश्नावली मे साक्षात्कार नहीं होता। वस्तुत यह प्रश्नावली ही नही है। यग ने इसे व्यर्थ ही प्रश्नावली मान लिया है।

(3) बन्द या सीमित प्रश्नावली (Closed Questionnaire)—ऐसी प्रश्नावली मे प्रत्येक प्रश्न के सामने सम्भावित उत्तर भी लिखे रहते है। उत्तरदाता को अपना उत्तर उनम से ही छांटना होता है। जैसे दल-बदल को किस प्रकार रोका जाना चाहिए? (अ) कानून द्वारा, (ब) जनमत सगठित करके, (स) राजनैतिक दलो मे समझौते के द्वारा, (द) प्रत्यावर्तन (Recall) का अधिकार देकर, (य) सदन की सदस्यता से वचित करके। इनमे से सूचनादाता किसी एक उत्तर को चुनकर निशान लगा सकता है। ऐसी प्रश्नावली के उत्तरो से वर्गीकरण मे बहुत सहायता मिलती है तथा उत्तरदाताओ को बहुत अधिक सोचना भी नही पडता।

(4) खुली या असीमित प्रश्नावली (Open Questionnaire)—ऐसी प्रश्नावलियो मे उत्तरदाता को अपने विचार या उत्तर व्यक्त करने की पूरी स्वतन्त्रता दी जाती है। प्रश्नो के सामने काफी स्थान उत्तरो के लिये खाली छोड दिया जाता है। इसम वे अपनी वास्तविक तथा आन्तरिक भावनाओ को अप्रतिबन्धित रूप से लिख सकते हैं। इसीलिए इन प्रश्नावलियो को खुली या असीमित (Open) प्रश्नावलियां कहा जाता है।

(5) चित्रमय प्रश्नावली (Pictorial Questionnaire)—ऐसी प्रश्नावलियो में समस्त या कुछ प्रश्नों के सम्भावित उत्तर चित्रो के रूप म छाप दिये जाते हैं। सूचनादाता इनमें से किसी एक पर निशान लगाकर अपना उत्तर व्यक्त कर देता है। ये प्रश्नावलियां बडी आकर्षक होती हैं तथा अशिक्षित, बच्चे तथा कम बुद्धिमान लोग भी अपने उत्तर अकित कर सकते हैं।

(6) मिश्रित प्रश्नावली (Mixed Questionnaire)—इनम उपर्युक्त अनेक प्रश्नावलियो का स्वरूप मिश्रित रहता है।

अनिवार्यताएं (Essentials)

प्रश्नावली प्रविधि को सफल बनाने के लिये कतिपय अनिवार्यताओ अथवा आवश्यक परिस्थितियो का होना वाछनीय है। प्रश्नो को समझने तथा उनका लिखकर उत्तर देने के लिए सूचनादाताओं का शिक्षित होना जरूरी है। निदर्शन शिक्षित वर्ग से ही लिया जाना चाहिए। यद्यपि सूचनादाताओ को प्रश्नावली के प्रारम्भ मे ही अनुरोध-पत्र लिखकर शोध-कार्य म सहयोग देने के लिये कहा जाता है किन्तु प्रश्नावली की सफलता इस बात पर निर्भर है कि उनम उत्तर देने की इच्छा (Willingness) हो। उन्हें किसी न किसी तरह इस कार्य के लिये प्रेरित किया जाये। जिन सूचनादाताओ के पास प्रश्नावलियां भेजी गई हैं उन्हें सम्बद्ध समस्या या विषय का ज्ञान भी होना चाहिए। वे प्रश्नो को अपने अनुभव तथा ज्ञान म जाडकर उत्तर लिख सकें।

अनुसूची की तुलना म प्रश्नावली का निर्माण और भी अधिक सावधानी से किया जाना चाहिए। इसके लिए समस्या या घटना से सम्बन्धित सभी पक्षों का विस्तृत एव गहन अध्ययन कर लिया जाना चाहिए, ताकि यह पता लग जाये कि किन किन पक्षों पर क्या-क्या

सूचनाएँ प्राप्त करनी हैं। एक ओर, कोई भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न नहीं छूटना चाहिए तथा दूसरी ओर विभिन्न पक्षों में सन्तुलन भी बना रहना चाहिए। प्रश्न बनाते समय स्वयं एवं सूचनादाता के अनुभव, उपलब्ध साहित्य, विशेषज्ञों के मत तथा स्थानीय परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं का ध्यान रखना चाहिए। केवल उपयोगी प्रश्नों को ही प्रश्नावली में स्थान दिया जाये। इसमें समय, श्रम, धन आदि की बचत होगी। निरर्थक प्रश्नों से उत्तरदाता चिढ़ जाता है।

अच्छी प्रश्नावलियों की विशेषताएँ
(Characteristics of Good Questionnaires)

अच्छी प्रश्नावली में अच्छे तथा उपयोगी प्रश्न होने चाहिए। अच्छे प्रश्नों की विशेषताओं के विषय में अनुसूची के प्रकरण में उल्लेख कर दिया गया है।[6] प्रश्नावली के प्रश्न, संख्या में कम, स्पष्ट, एकार्थक सरल तथा परस्पर पूरक होने चाहिएँ। उनका विषय से सीधा सम्बन्ध होना चाहिए। उनकी भाषा स्पष्ट तथा विशिष्ट (Clear and Specific) होनी चाहिए। पारिभाषिक, सापेक्षिक, विभागीय तथा संक्षिप्त शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। प्रश्नों का निर्माण इस ढंग से किया जाये कि वे सही सूचना प्राप्त करने में सक्षम हों। कुछ विशेष प्रकार के प्रश्न, जैसे, निर्देशक, प्रकल्पनात्मक, वैयक्तिक, भावात्मक, परीक्षात्मक आदि प्रकार के प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिएँ। असमंजस में डालने वाले तथा मूल्यांकनात्मक प्रश्न पूछना भी ठीक नहीं होता।

अनुसूची की तुलना में प्रश्नावली के बाहरी स्वरूप पर और भी अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। उसका आकार-प्रकार आकर्षक हो। उसे किसी भी दशा में 40-50 पृष्ठों से अधिक नहीं बढ़ने दिया जाये। यदि उसे आधा घंटा में भर दिया जा सके तो उसे सूचनादाता द्वारा भर दिया जायेगा। उसके प्रश्नों को क्रमबद्ध तथा रुचिकर ढंग से रखा जाना चाहिए।

प्रश्नावली का प्रयोग (Appliaction of Questionnaire)

प्रश्नावलियों को डाक द्वारा भेजने में अति शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। उसकी सफलता को सुनिश्चित बनाने के लिये उसका प्रयोग (Experiment) के तौर पर पूर्व-परीक्षण (Pre-testing) किया जाना चाहिए। इसके लिए किसी छोटे समूह को कार्यक्षम बनाया जा सकता है। इससे प्रश्नावली में सभी सम्भावित दोषों का पता चल जाता है तथा उन्हें सभी को भेजने से पूर्व ठीक किया जा सकता है। प्रत्येक प्रश्नावली के प्रारम्भ में एक सहगामी पत्र (Accompanying letter) अवश्य होना चाहिए, जिसमें कुछ बातें शामिल की जानी चाहिए, यथा, शोध-विषय का महत्त्व, सूचनादाता की महत्त्वपूर्ण भूमिका, उसके लिये उत्साहवर्धक वाक्यों का समावेश, सन्देह, भय आदि को दूर करने के लिये उपाय, व्यक्तिगत नाम न लिखने तथा हस्ताक्षर न करने के लिये निवेदन, प्रश्नावली लौटाने के लिये टिकट सहित जवाबी लिफाफा आदि। प्रश्नावली का कागज, छपाई, टाइप आदि प्रभावपूर्ण होना चाहिए। सहगामी पत्र में शोधकर्त्ता को अपने लक्ष्य, संस्था से सम्बन्ध तथा शोधकार्य से जनसमाज को सम्भावित लाभ आदि बातें भी स्पष्ट कर देनी चाहिए।

प्रश्नावली भेजने में भी सावधानी की आवश्यकता है। प्रश्नावलियाँ सही पते पर तथा एक साथ भेजनी चाहिए। एक-दो दिन के अवकाश या सप्ताहान्त से पूर्व भेजने से

उत्तरदाताओं को उन्हें भरने का अवसर मिल जाता है। साथ में वापिस लौटाने के लिये टिकट सहित लिफाफा अवश्य संलग्न कर देना चाहिए। इतना प्रयास करने पर भी बहुत कम प्रश्नावलियां वापिस लौट कर आती हैं। अतः भेजने के 15 दिन पश्चात् एक अनुगामी-पत्र (Follow up Letter) भेजना चाहिए। इसके बाद 7–7 दिन पश्चात् दो बार अथवा तार या टैलीफोन से पुनर्स्मरण करा देना चाहिए।

उत्तर न पाने की समस्या (Problem of Non response)

प्रश्नावली प्रविधि में प्रायः बहुत कम प्रश्नावलियां भर कर लौटाई जाती हैं। इसके अनेक कारण होते हैं--(i) कई बार सूचनादाता के पास प्रश्नावली पहुँच ही नहीं पाती। हो सकता है कि वह बाहर चला गया हो, व्यस्त हो, या जान-बूझ कर उसे भरना ही नहीं चाहता हो। कतिपय विशेष प्रकार के लोग प्रश्नावलियां भरना ही पसन्द नहीं करते। (ii) उच्च आय-वर्ग वाले लोग व्यस्तता, आयकर के डर, लापरवाही, गोपनीयता आदि तथा निम्न आय-वर्ग वाले अज्ञानता, शंका अशिक्षा आदि के कारण प्रश्नावलियाँ भरकर नहीं भेजते। (iii) अनुसंधान संस्था के साधारण होने पर भी प्रश्नावलियां कम आती हैं। यदि शोधकर किसी प्रसिद्ध शोध संस्था से सम्बद्ध है तो प्रश्नावलियां अधिक संख्या में भरकर लौटाई जाती हैं। (iv) समस्या या विषय के महत्त्वपूर्ण होने पर प्रश्नावलियां अधिक भरी जाती हैं। (v) छोटे आकार की प्रश्नावलियां अधिक तथा बड़े आकार वाली कम लौट कर आती हैं (vi) प्रश्नों की प्रकृति भी प्रश्नावलियों की संख्या को निर्धारित करती है। लघु, सरल तथा आकर्षक प्रश्नावलियां सूचनादाता को जल्दी भरकर लौटा देने को प्रेरित करती हैं। (vii) प्रश्नों का अनुक्रम तथा सूचनादाता की समस्या के प्रति रुचि पर प्रश्नावलियों को लौटाने का काम निर्भर रहता है। कार्टज एवं कैन्ट्रिल ने कहा है कि जो लोग प्रश्नावलियों को भरकर लौटाते हैं उनमें ऊँचा प्रतिशत उन व्यक्तियों का होता है जो उस समस्या के पक्ष अथवा विपक्ष में तीव्र भावनाएँ रखते हैं। उदासीन अथवा तटस्थ उत्तरदाता बहुत कम मात्रा में प्रश्नावलियों को भरते हैं।

उत्तर-प्राप्ति की युक्तियां (Techniques of getting Response)

प्रश्नावली प्रणाली का प्रयोग करते समय अधिकाधिक मात्रा में प्रत्युत्तर प्राप्त करने की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। इसके लिये अनेक युक्तियां या प्रविधियां अपनाई जा सकती हैं। शोधकर्त्ता अपने अनुगामी-पत्र के साथ मार्मिक शब्दों में सहयोग प्रदान करने के लिये सूचनादाता को व्यक्तिगत प्रार्थना कर सकता है। आजकल सूचनादाताओं को आर्थिक लाभ पहुँचाने, पारिश्रमिक देने, लॉटरी निकालने आदि कार्य भी किये जाते हैं। सभी शोधकर्त्ता साथ में डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा तो भेजते ही हैं।

प्रश्नावलियों के नहीं लौटाये जाने पर अनुगामी-पत्र स्मरण-पत्र, आदि लिखे जाने चाहिएँ। दूसरा स्मरण-पत्र भेजते समय साथ में प्रश्नावली की एक प्रति और भेज देनी चाहिए। हो सकता है कि वह खो गई हो। रजिस्टर्ड पत्र भी भेजे जा सकते हैं। स्टैण्टन ने 9 पृष्ठ की प्रश्नावली के 94 प्रतिशत उत्तर तीन स्मरण-पत्रों के माध्यम से प्राप्त कर लिये थे। जहां तक हो सके प्रश्नावलियों को उपयुक्त समय तथा पते पर भेजना चाहिए।

प्रश्नावलियों में विश्वसनीयता का प्रश्न (Reliability in Questionnaires)

प्रश्नावलियों में विश्वसनीयता (Reliability) एवं प्रामाणिकता लाने के लिये उन्हें त्रुटिरहित बनाना चाहिए। प्रश्नावली निर्माता को इन सामान्य त्रुटियों से परिचित होना

चाहिए। यथा, (i) गलत भाषा, (ii) तारतम्य एवं क्रम का अभाव, (iii) अप्रासंगिक एवं गलत प्रश्नों का समावेश, (iv) अनुसंधान-कर्ता का पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण, (v) प्रश्नावलियों की रचना में अपूर्णताएँ, (vi) प्रतिनिधित्वपूर्ण सूचनादाताओं का न होना, (vii) समस्या, स्थितियों एवं घटनाओं की त्रुटिपूर्ण एकांगी व्याख्या, तथा (viii) सूचनादाताओं से प्राप्त उत्तरों में विभिन्नता। इन त्रुटियों से प्रश्न निर्माता को बचना चाहिए। जितनी अधिक त्रुटियाँ होंगी, प्रश्नावली की विश्वसनीयता उसी मात्रा में घटती जायेगी।

किन्तु अच्छे प्रश्नों का निर्माण स्वयं अपने आप में एक कठिन कार्य है। प्रश्न प्रश्नकर्ता के व्यक्तित्व का परिचायक होता है। अच्छे प्रश्न बनाने में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं जैसे, भाषा सम्बन्धी कठिनाई। शब्दों के थोड़े से हेर फेर से अर्थ बदल जाता है तथा अलग अलग व्यक्ति शब्दों के अलग अलग अर्थ लगाते हैं। उस पर अपनी संस्कृति, स्थानीयता, अशिक्षा, रीति-रिवाज आदि का प्रभाव होता है। वस्तुतः विभिन्न व्यक्तियों से भिन्न भिन्न शैलियों में प्रश्न पूछे जाने चाहिएँ। वैसे सबके लिए लागू होने वाले प्रश्न बनाना कठिन होता है, किन्तु यदि बना भी लिए जायें तो सांस्कृतिक विभेदों के कारण उनको समान रूप से लागू करना कठिन हो जाता है। निदर्शन को लागू करना भी कई बार बड़ा कठिन होता है। अनेक व्यक्तियों के नाम पते या तो मिलते ही नहीं हैं, यदि मिल भी जायें तो उनमें से अनेक घर-शहर बदले हुए मिलेंगे। आखिरकार उनके स्थान पर दूसरे सूचनादाताओं को चुनना पड़ता है। प्रश्नावली के द्वारा पूरी सूचना प्राप्त भी नहीं होती। अनेक सूचनादाताओं को पर्याप्त ज्ञान तथा समय नहीं होता। वे अपना फालतू समय प्रश्नावली भरने में नष्ट नहीं करना चाहते। उसमें उनकी कोई रुचि, स्वार्थपूर्ति या खुशी नहीं होती। जो भी सूचना भरी जाती है, वह मिथ्या झुकाव तथा पूर्वाग्रहों से लदी हुई होती है। अनेक बार प्रश्नावली का लेख भी सुस्पष्ट नहीं होता। कुछ का कुछ लिख दिया जाता है, जिसके मसौदे लेखन को समझना बड़ा कठिन होता है। कई बार रिक्त स्थान खाली ही छोड़ दिये जाते हैं। प्रश्नावली की विश्वसनीयता को परखना भी एक कठिन समस्या है। एक सूचनादाता द्वारा दी गयी सूचना की जाँच करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। जाँच करने के लिए जाते समय तक अनेक राजनैतिक परिवर्तन हो चुके होते हैं। व्यक्तियों के दृष्टिकोण बदल जाते हैं तथा घटनाएँ नये मोड़ ले लेती हैं।

कई बार निदर्शन (Sample) भी मिथ्या झुकावों से ग्रसित होते हैं। वे समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं करती। बहुत कम प्रश्नावलियाँ लौट कर आती हैं। अशिक्षित व्यक्तियों के द्वारा उत्तर देने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इस कारण शोध परिणाम असन्तुलित हो जाता है। उसमें केवल शिक्षित एवं उच्च वर्ग से ही उत्तर आ पाते हैं। परिणामस्वरूप शोध निष्कर्ष भी पक्षपात से ग्रसित हो जाते हैं।

प्रश्नावली की विश्वसनीयता को परखने के अनेक उपाय एवं विधियाँ सुझायी जाती हैं, यथा, प्रश्नावली को पुनः लौटाकर ठीक कराना या सूचनादाताओं के समकक्ष अन्य समान वर्ग का अध्ययन करना। यदि दोनों में अधिक अन्तर नहीं है तो उसके द्वारा प्राप्त उत्तरों को विश्वसनीय माना जाएगा। विश्वसनीयता की जाँच के लिये प्रधान निदर्शन में से एक उप निदर्शन चुन लिया जा सकता है। इन दोनों के अध्ययन निष्कर्षों की तुलना करके विश्वसनीयता का अनुमान लगाया जा सकता है। इसी तरह, प्रश्नावली के अलावा अन्य प्रविधियों का भी प्रयोग किया जा सकता है। शोधकर्ता अपने क्षेत्र में सम्बन्धित पूर्वज्ञान के आधार पर प्रश्नावली के उत्तरों की जाँच कर सकता है।

अनुसूची एवं प्रश्नावली में अन्तर
(Distinction Between Schedule and Questionnaire)

अनुसूची और प्रश्नावली में अनेक समानताएँ एवं अन्तर पाये जाते हैं। दोनों ही प्राथमिक तथ्यों का एकत्रित करने की उपयोगी प्रविधियां है। दोनों में सोच विचार कर तैयार किये गये प्रश्नों की एक सूची होती है। प्रश्नों के लागू करने की प्रक्रिया आदि बातें भी दोनों के लिए एक समान पायी जाती हैं।

किन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर भी पाया जाता है अनुसूची में उत्तर लिखने का काम स्वयं शोधकर्त्ता को करना पड़ता है। किन्तु प्रश्नावली में उत्तर लिखने का काम स्वयं सूचनादाता को ही करना पड़ता है। यह उसे शोधकर्त्ता की सहायता के बिना ही करना पड़ता है। अन्य अंतर इस प्रकार है—

(i) सम्पर्क माध्यम—अनुसूची में साक्षात्कर्ता को सूचनादाता से स्वयं सम्पर्क स्थापित करना तथा मिलना पड़ता है। उसमें प्रश्नावली को डाक द्वारा पहुँचा दिया जाता है। वहाँ साक्षात्कर्ता स्वयं उपस्थित नहीं रहता।

(ii) सहायता—अनुसूची को भरने में सहायता देने के लिए सूचनादाता के पास साक्षात्कर्ता स्वयं उपस्थित रहता है। प्रश्नावली में उत्तरदाता को ऐसी कोई सहायता नहीं मिलती। उसे अपनी समझ के अनुसार प्रश्नों का उत्तर देना पड़ता है।

(iii) निर्देशन—अनुसूची में कार्यकर्त्ता (Field worker) के उपस्थित रहने के कारण अलग से निर्देश या टिप्पणियां देने की आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु प्रश्नावली में कार्यकर्त्ता के उपस्थित न रहने के कारण उक्त निर्देश देने पड़ते हैं।

(iv) सूचनादाता का स्तर—अनुसूची की सहायता से प्रत्येक क्षेत्र तथा स्तर के लोगों से सूचना प्राप्त की जा सकती है। प्रश्नकर्त्ता प्रश्नों के अर्थ समझाकर सभी उत्तर प्राप्त कर सकता है। सूचनादाता केवल मौखिक उत्तर देता है। उसका शिक्षित होना आवश्यक है। किन्तु प्रश्नावली केवल शिक्षित लोगों के लिए ही होती है। सूचनादाता स्वयं ही प्रश्नों को समझता तथा उत्तर लिखता है।

(v) कार्य क्षेत्र का विस्तार—अनुसूची सीमित क्षेत्र में सूचनाएँ एकत्रित करने के लिए काम में आती है। केवल थोड़े से सूचनादाताओं से ही व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। प्रश्नावली का प्रयोग व्यापक क्षेत्र में फैले हुए अथवा बहुत अधिक संख्या वाले सूचनादाताओं के लिए किया जाता है। एक प्रविधि व्यष्टि (Micro) प्रकृति की है तो दूसरी समष्टि प्रकृति की।

(vi) उत्तरदाता की स्वतन्त्रता—अनुसूची प्रणाली में उत्तरदाता उन्मुक्त वातावरण में नहीं रहता। उस पर साक्षात्कर्त्ता की उपस्थिति का प्रभाव रहता है। वह बँध जाता है कि उसे तत्काल और वहीं उत्तर दे। प्रश्नावली में उत्तरदाता को समय, स्थान तथा मनोदशा (Mood) सम्बन्धी स्वतन्त्रता रहती है। वह स्वेच्छानुसार प्रश्नों के उत्तर लिख सकता है। वह चाहे तो कुछ भी न लिखे।

(vii) निदर्शन की सीमा—प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन (Representative sample) की दृष्टि से अनुसूची अधिक अनुकूल बैठती है, क्योंकि उसमें सभी प्रकार के सूचनादाताओं—शिक्षित-अशिक्षित, अमीर-गरीब, वृद्ध-युवा आदि को शामिल किया जा सकता है। प्रश्नावली में तो केवल शिक्षित व्यक्तियों को ही सूचनादाता बनाया जा सकता है।

(viii) उत्तर प्राप्ति का प्रतिशत—अनुसूची प्रणाली में उत्तर प्राप्त करने का

प्रतिशत ऊँचा रहता है। उसमे शोधकर्त्ता स्वयं उपस्थित होकर, निवेदन, प्रोत्साहन आदि के द्वारा मानवीय प्रभाव का उपयोग कर लेता है। प्रश्नावली म केवल अनुरोध-पत्र ही होता है। हो सकता है कि उत्तरदाता उसे पढ़ने का कष्ट भी कर।

(ix) मितव्ययिता—अनुसूची समय, धन, श्रम तथा कौशल की दृष्टि से एक खर्चीली प्रणाली है। प्रश्नावली उनकी अपेक्षा सरल एवं मितव्ययी प्रविधि सिद्ध होती जा रही है।

(x) अवलोकन एव साक्ष्य—अनुसूची म साक्षात्कारकर्त्ता स्वयं उपस्थित होकर साक्षात्कृत या उत्तरदाता को देख सकता है तथा उसके परिवेश को समझ सकता है। वह तथ्यों को एकत्रित करने के साथ साथ उन्हें देख भी लेता है। वह तथ्यो का स्वयं साक्षी भी बन जाता है। प्रश्नावली सूचनादाता-केन्द्रित प्रणाली है। अनुसूची उत्तरदाता एव सूचनादाता दोनों पर आधारित होती है।

(xi) स्पष्टता एव लोचशीलता—अनुसूची में सामने बैठे हुए सूचनादाताओं के स्तर, मनोदशा आदि को देखकर प्रश्नों के पूछने की शैली म तदनुरूप परिवर्तन किया जा सकता है। स्वय प्रश्नकर्ता उत्तरों को लिखता जाता है, इस कारण प्रश्नो को न तो बडा या विस्तृत रूप से बनाने की आवश्यकता पडती है और न ही लिखने की। उसे सब कुछ स्पष्ट हो जाता है। प्रश्नावली में प्रश्न भी लम्बे तथा विस्तार से लिखने पडते हैं, साथ ही उसमें परिवर्तन की कोई गुंजाइश नही होती।

(xii) गहनता – अनुसूची सूचनादाता से वास्तविक, गहन तथा आन्तरिक सूचनाओ को प्राप्त करने का अवसर देती है। एक कुशल शोधक या साक्षात्कर्त्ता उत्तरदाता की समस्या से सम्बन्धित भावनाओ, विश्वासों आदि का गहन अध्ययन कर सकता है। प्रश्नावली से केवल सामान्य प्रतिक्रिया, सूचना या तथ्य ही प्राप्त हो सकते हैं। उनकी विश्वसनीयता का कोई भरोसा नही होता।

दोनों प्रविधियों की मूल विषयवस्तु 'प्रश्न' (Question) होते हैं। वास्तव मे, देखा जाये तो पता चलेगा कि इन प्रश्नों के द्वारा शोधकर्त्ता अपनी विचारधारा को सूचनादाता पर आरोपित कर देता है। अतएव उसे पहले अपनी विचारात्मक परियोजना को वस्तुपरक बना लेना चाहिए। तभी उपयुक्त प्रश्नों का निर्माण किया जा सकता है। साथ ही उसे सूचनादाता के 'विचारों की दुनिया' को भी अच्छी तरह से समझ लेना चाहिए। अपने, सूचनादाता तथा शोध-संस्था के मूल्यों म तालमेल बिठा कर ही अच्छे प्रश्न बनाये जा सकते हैं। पायने ने प्रश्न बनाने को एक 'कला' माना है।[8]

प्रश्नावली का मूल्यांकन (Evaluation of Questionnaire)

प्रश्नावली-प्रणाली की सहायता से विशाल जनसंख्या (Larger population), बड़े क्षेत्र मे बिखरे हुए व्यक्तियों, व्यवस्थाओं आदि का अल्प समय मे तथा सीमित खर्च मे अध्ययन किया जा सकता है। इसमें सूचनाएँ प्राप्त करने के लिए कार्यकर्त्ताओं को नियुक्त करने, उनके आने-जाने का खर्च देने, समय नष्ट करने आदि की कोई आवश्यकता नही होती। सूचनादाताओ से उनकी सुविधा एव इच्छा के अनुसार स्वतन्त्र तथा प्रामाणिक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। वहाँ साक्षात्कर्त्ता स्वयं उपस्थित नहीं होता। इससे सूचनादाता अप्रभावित होकर सूचनाएँ लिखता है। उससे आवश्यकता पडने पर, बार-बार सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। प्रश्नावली एक स्वय-चालित (Self operative) प्रणाली

है। उन्हें डाक मे डाल देने के पश्चात् सूचना संग्रह का काम स्वत होने लगता है। सम्भवत इससे अधिक सुगम और सुविधाजनक प्रविधि और कोई नही है। किसी विषय या व्यक्ति पर जनमत, किसी विधेयक पर प्रतिक्रिया, सम्भावित सुधारो या योजनाओ पर सुझाव अथवा सम्बद्ध व्यक्तियों की कठिनाइयो को ज्ञात करने के लिए इसे उपयोगी माना गया है।

किन्तु राजशोधक (Political Researcher) को इसकी सीमाओं से भी अवगत रहना चाहिए। इस प्रविधि द्वारा गहन, भावात्मक तथा मूल्यात्मक विषयो का अध्ययन करना सम्भव नही है। सूचनाएँ अपूर्ण, अविश्वसनीय तथा असम्बद्ध आती हैं। हो सकता है कि सूचनादाता प्रश्नो का अर्थ समझे बिना ही उत्तर दे रहा हो। ऐसी सूचनाएँ तथ्य नहीं बन सकती। केवल शिक्षित मतदाताओ के लिए लागू हो सकने के कारण निदर्शन कभी भी प्रतिनिधित्वपूर्ण नही हो सकता। सूचनादाता को उत्तर लिखने तथा भेजने के लिए कोई प्रेरणा या रुचि नहीं होती। प्राय 5 से लेकर 15 प्रतिशत लोग ही उत्तर दे पाते हैं। उत्तरदाता के पास प्रश्नो को समझाने तथा सही उत्तर लिखाने के लिए कोई भी नही होता। ऐसे प्रश्नो का निर्माण भी नही हो पाता जो सार्वभौमिक (Universal) अर्थात् सबके लिए एक से प्रभाव एव अर्थ वाले हो। अनेक उत्तरदाताओ की वर्तनी (Writing) खराब होती है—'अक्षर लिखे गये हैं ऐसे आप से, न हम से पढ़े जाये न हमारे बाप से।' पेन्सिल से लिखना, काटा-फाँसी करना, पुनर्लेखन (Overwriting) करना आदि सामान्य बातें है। प्रश्नावली द्वारा प्राप्त उत्तरो से यह जानना कठिन है कि कौनसा उत्तर अनुमान या गप्प है और कौनसा सत्य है। भारतीय उत्तरदाता तो प्रश्नकर्त्ता होता है, वह प्रश्नावली भरना समय की बरबादी और निहायत बेवकूफी समझता है। इससे सही सूचनाएँ प्राप्त करने की अधिक आशा नहीं होनी चाहिए।

किन्तु उपर्युक्त गुण-दोषो के होते हुए भी उक्त प्रणाली को उपयोगी माना गया है। इसमे अनुसूची की कमियाँ—सूचनादाता का सकोच, अधिक खर्च, दूरी आदि—दूर हो जाती हैं। यदि शोध-समस्या अधिक गहन प्रकृति की न हो तथा सामान्य सूचनाएँ एकत्रित करनी हो, तो इसका खुलकर प्रयोग किया जा सकता है। लुण्डबर्ग ने लिखा है कि इस प्रणाली मे, कम समय मे तथा कम से कम व्यय म अधिक विस्तृत क्षेत्र का अध्ययन सम्भव हो जाता है। इसकी निर्वैयक्तिक (Impersonal) प्रकृति के कारण तटस्थ सूचनाएँ एव प्रतिक्रियाएँ मिलना सम्भव हो जाता है। इसकी सरलता, सुगमता, मितव्ययिता, अध्ययन-क्षेत्र की व्यापकता आदि विशेषताएँ इस प्रणाली की लोकप्रियता का मूलाधार हैं।

अवलोकन, प्रश्नावली, अनुसूची आदि का प्रयोग यदि प्रत्येक इकाई के अध्ययन के लिए किया जाने लगे तो शोधक को अपार धन, श्रम तथा समय खर्च करना पड़ेगा। इससे खर्च को कम करने के लिए समस्या से सम्बन्धित जनसख्या में से कुछ प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का चयन कर लिया जाता है। इस क्रिया को न्यादर्श या निदर्शन (Sampling) कहा जाता है। इसका विवेचन अगले अध्याय मे किया गया है।

सन्दर्भ

1. Sjoberg and Nett op cit., p. 187.
2. William J Goode and Paul K Hatt, Methods in Social Research, New York, McGraw—Hill Book Co, 1952, p 133

Jahoda, Maris Morton Deutsch and Stuorl W. Cook, Research Methods in Social Relations, New York, Dryden, 1951, Part II, Chap 12.
Parten, Surveys, Polls and Samples, Practical Procedures, New-York, Harper, 1950, Chap. 6.
3 देखिये, पीछे, अध्याय—आठ ।
4 Goode and Hatt, op. cit, p. 133; Sjoberg and Nett, op. cit., pp. 187–93
5 Lundberg, op. cit., p. 183.
6. ऊपर देखिए, पृ॰ 10–12
7 Charles E Osgood et al, The Measurement of Meaning, Urbana, Ill, University of Illinois Press, 1957.
8 Stanley L Payne, The Art of Asking Questions, Princetion, N J., Princetion, 1951.

अध्याय 11

निदर्शन

[Sampling]

पिछले अध्यायों में शोध-प्रविधियों का विवेचन इस आधार पर किया गया है कि शोधकर्त्ता अपने विषय या प्रकल्पना से सम्बन्धित सभी इकाइयों, घटकों या सम्बद्ध व्यक्तियों का अध्ययन करेगा। किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता और न ही समस्त इकाइयों का अवलोकन अथवा साक्षात्कार करने की आवश्यकता पड़ती है। अपने अनुसंधान विषय, समस्या या प्रकल्पना से सम्बन्धित समस्त इकाइयों, व्यक्तियों, घटकों या वस्तुओं को शोध की भाषा में 'समग्र' या जनसंख्या (Universe or population) कहा जाता है। अब अनुसंधान-जगत् में निदर्शन पद्धति (Sampling method) या प्रविधि का आविष्कार हो जाने के बाद, समग्र की प्रत्येक इकाई का अवलोकन करने की जरूरत नहीं होती। निदर्शन-पद्धति के आने के बाद समाजविज्ञानों के विकास में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। इससे अनुसंधान कार्य में धन, समय तथा श्रम की भारी बचत और सुगमता हुई है। शोध-क्षेत्र में निदर्शन-पद्धति अत्यन्त लोकप्रिय हो चुकी है।[1] अब यह ज्ञात हो चुका है कि निदर्शन के द्वारा भारी मात्रा में उपलब्ध आँकड़ों और तथ्यों की विशेषताओं का पता लगाया जा सकता है।

निदर्शन तथा जनगणना पद्धतियों में अन्तर

(Distinction Between Sampling and Census Methods)

मोटे तौर पर शोध कार्य दो आधारों पर किया जाता है : (i) जनगणना पद्धति तथा (ii) निदर्शन अथवा सांख्यिकीय पद्धति। जनगणना या जनसंख्या सर्वेक्षण पद्धति में विषय से सम्बन्धित समस्त जनसंख्या या इकाइयों का अध्ययन किया जाता है। जैसे, इस पद्धति के अन्तर्गत, यदि विधानसभा सदस्यों के आर्थिक स्तर का पता लगाना है, तो समस्त सदस्यों का एक-एक करके साक्षात्कार किया जायेगा। इस पद्धति का प्रयोग विविध कठिनाइयों के कारण बहुत कम किया जाता है। निदर्शन-पद्धति में सम्पूर्ण जनसंख्या या समस्त इकाइयों का अध्ययन न किया जाकर उनमें से 'कुछ' ऐसी इकाइयों का अध्ययन किया जायेगा जिनमें उन समस्त जनसंख्या या समग्र (Universe) की विशेषताएँ आ जायें। इस पद्धति में शोधकर्त्ता अपना ध्यान सीमित संख्या में कुछ इकाइयों पर केन्द्रित कर लेता है। इससे उसका अध्ययन कम समय, कम खर्च तथा कम श्रम का उपयोग करके ही पूरा हो जाता है।

विशिष्ट तथा सामान्य समग्र (Special and General Universes)

शोधकर्त्ता को, कोई भी शोध-कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व अपना 'समग्र' (Universe) निर्धारित करना पड़ता है। वह इस समस्त समग्र अथवा उसकी कुछ इकाइयों का वैज्ञानिक प्रविधियों की सहायता से अध्ययन करता है। इस समग्र तथा उसकी इकाइयों को चुनना

वैज्ञानिक शोध की दृष्टि से बहुत महत्व रखता है। शोध-कर्त्ता जितनी अधिक स्पष्टता से अपने समग्र को समझेगा तथा उसकी इकाइयों का सावधानीपूर्वक चुनेगा, उतनी ही अधिक मात्रा में, उसका शोध सफल तथा दूसरों द्वारा सत्यापन-योग्य माना जायेगा।[2] वस्तुतः शोधक 'सम्पूर्ण' समूह का अध्ययन न करके उसके किसी 'पक्ष' या 'सारभाग' का अध्ययन करता है। उसे यह बता देना चाहिए कि वह किस पक्ष या सारभाग का अध्ययन कर रहा है। इस स्पष्टीकरण की दृष्टि से समग्र या जनसंख्या के दो प्रकार होते हैं—(i) विशिष्ट, विशेष या कार्यकर समग्र (Special or Working Universe) तथा (ii) सामान्य समग्र (General Universe)। विशेष या कार्यकर समग्र वह विशिष्ट मूर्त्त (Concrete) तथा स्पष्ट व्यवस्था होती है जिसमें से शोधक अपने सूचनादाताओं (Respondents) का चयन करता है। इस व्यवस्था को सांख्यिकी में जनसंख्या या समग्र कहा जाता है। शोध-कर्त्ता प्राय इस समग्र की सीमाओं तक ही सीमित रहकर कार्य करते हैं। किन्तु सिद्धान्त-निर्माण में रुचि रखने वाला राजवैज्ञानिक (Political Scientist) या राजशोधक सामान्य समग्र से सम्बन्ध रखता है। वह अध्ययन तो किसी विशेष समूह, व्यवस्था या उपव्यवस्था का करता है, किन्तु उसकी इच्छा यह होती है कि उसके निष्कर्ष उस विशेष व्यवस्था या समूह पर ही लागू न रहकर अन्य सभी समान व्यवस्थाओं एवं समूहों पर लागू हों। उसके सामान्यीकरण उस समूह से सम्बद्ध होते हुए भी स्थान और समय से आबद्ध न रहें। इन समस्त समूहों या व्यवस्थाओं के अमूर्त्त समग्र को, जिस पर शोधक अपने निष्कर्ष लागू करना चाहता है, 'सामान्य समग्र' कहा जाता है।[3] जैसे, यदि किसी ने राजस्व मण्डल, राजस्थान का अध्ययन किया है, तो वह यह चाहता है कि उसके निष्कर्षों को सभी राजस्व मण्डलों पर लागू कर दिया जाये। सेल्जनिक तथा गोल्डनर ने भी ऐसा ही किया है।[4]

शोधकर्त्ता अपने शोध निष्कर्षों को अपने समकालीन विशेष समग्रों पर ही लागू करके सन्तुष्ट नहीं होता, अपितु यह भी चाहता है कि उन्हें अन्य सांस्कृतियों वाले (Cross-Cultural) देशों के समग्रों पर भी लागू किया जाये। ये सभी शोधक विभिन्न समग्रों में से अपने समग्र को 'प्रतिनिधित्वपूर्ण' मानकर अध्ययन नहीं करते। किन्तु यह चाहते हैं कि उनके समग्र सम्बन्धी निष्कर्ष सभी समग्रों की 'व्याख्या' (Explain) कर सकें। इसे एक 'महत्त्वाकांक्षी सैद्धान्तिक कूद' कहा जा सकता है, जिसके प्रतिनिधित्वपूर्ण होने की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। अपने विशिष्ट समग्र से सामान्य समग्र तक उछाल मारने में अनेक कारण होते हैं (i) विभिन्न समग्रों के मध्य मौलिक एकरूपता मान बैठना, (ii) उनकी व्यापक सैद्धान्तिक अवधारणाएँ, तथा (iii) अज्ञानता। वास्तव में, यह एक महान पद्धति वैज्ञानिक भूल है जिसे सभी इसलिए भूल जाते हैं कि सभी इस भूल को दोहराते हैं।

विशिष्ट समग्र का चयन (Selection of Special Universe)

निदर्शन शोधक के विशिष्ट समग्र के भीतर होता है। इसलिए, विशिष्ट समग्र के विषय में पहले विचार किया जाना चाहिए। व्यवहार में, विशिष्ट समग्र के चयन का आधार बनाना अत्यन्त कठिन कार्य माना जाता है। ऐसा करते समय दो बाधाएँ सामने आती हैं प्रथम, विशिष्ट समग्र शोधक की सैद्धान्तिक मान्यता आ या रचाना है, तथा द्वितीय, समग्र के स्थायित्व या बने रहने का पता तब जाना है जो हो सकता है कि नहीं नहीं हो। [illegible] एक ही अध्ययन विषय से सम्बन्धित समग्र, जैसे—समुदाय के

प्रमुख निर्णायकों के विषय में अपने भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्यों के कारण अलग-अलग निष्कर्ष निकालते हैं।[5] 'बुद्धिजीवियों' (Intellectuals), 'बेरोजगारों' (Unemployeds) आदि विषयक समग्रों के बारे में एकमत होना सम्भव नहीं है। विभिन्न संस्कृतियों वाले देशों में ऐसे विवादास्पद समग्र लेकर शोध करना और भी अधिक कठिन होता है।[6] 'गाँव' सभी देशों में एक से नहीं होते। सभी देशों के शहरी औद्योगिक क्षेत्र भी समान नहीं हैं। जिन कारणों से विशिष्ट समग्रों में भिन्नता आ जाती है उनमें से तार्किक एवं सैद्धान्तिक कारण प्रमुख होते हैं। शोधकर्ता की किसी सिद्धान्त के प्रति निष्ठा तथा वैसा ही शोध-अभिकल्प (Research Design) होने के कारण समग्र भिन्न हो जाता है। जो शोधकर्ता नये सिद्धान्तों या सामान्यीकरणों का विकास करना चाहते हैं, उनके समग्र उन शोधकों से भिन्न हो जाते हैं जो विद्यमान प्रकल्पनाओं तथा सिद्धान्तों का परीक्षण या प्रमाणीकरण करना चाहते हैं।

समग्रों के चयन के अनेक आधार होते हैं :

(i) नये सिद्धान्त या सामान्यीकरण की खोज—ऐसा करने के लिए शोधक ऐसा समग्र चुनता है जिससे नये तथ्य, सामान्यीकरण आदि ज्ञात हो सकें। वह किसी संघ, दल या समूह का लगातार अध्ययन कर सकता है।

(ii) विद्यमान प्रकल्पनाओं या सिद्धान्तों का परीक्षण—इसके अन्तर्गत शोध-कर्ता वर्तमान सामान्यीकरण या सिद्धान्त को प्रमाणित करना चाहता है। जैसे, शोधक भारत में गिरते हुए अनुशासन के लिए बढ़ते हुए विद्यार्थी राजनेता सम्बन्धी को प्रमाणित करने के लिए राजनीति-प्रेरित विद्यार्थियों एवं उनसे सम्बन्धित नेताओं के समग्र को ले सकता है।

(iii) प्रकल्पना या सिद्धान्त का अप्रमाणीकरण—इसमें विद्यमान प्रकल्पना या सिद्धान्त को असिद्ध करने के लिए समग्र चुना जाता है। लिप्सेट ने मिचैल के 'अल्पतन्त्र की लौह विधि' (Ironlaw of Oligarchy) को असिद्ध के लिए एक संघ का अध्ययन किया है।[7]

(iv) प्रकल्पना या सिद्धान्त का पुनर्परीक्षण—कुछ शोधक अपने पहले के निष्कर्षों या निर्वचनों का पुनर्परीक्षण करने के लिए पुष्टिकारक सामग्री लेते हैं। ये स्वयं या दूसरे के अनुसंधान कार्यों का प्रतिवलन (Replication) करते हैं, अर्थात् दुबारा शोध करके सत्य की परख करते हैं। लेविस ने रैडफील्ड द्वारा किये गये एक गाँव के अध्ययन का प्रतिवलन किया था।[8] हॉथोर्न प्रयोग का भी इसी प्रकार पुनर्परीक्षण किया जा चुका है। ऐसा करके पूर्ववर्ती शोधकर्ताओं के पूर्वाग्रहों का पता लगाया जा सकता है। लेकिन समाज, समुदाय आदि स्थैतिक (Static) नहीं होते, अतएव प्रतिवलन अनेक समस्याओं को उत्पन्न कर देता है। राजनीति में तो परिवर्तन बहुत ही तीव्र गति से हो सकते हैं। अतः प्रतिवलन और भी अधिक सीमित हो जाती है।

(v) सामान्य प्रकार (Typicality) की खोज—ऐसे समग्र को शोधकर्ता इसलिये चुनता है कि वह असामान्य या विपथगामी (Deviant) नहीं है। एक समग्र का चयन करने में पूर्व शोधक को विस्तृत अध्ययन करना पड़ता है। इस विषय में काट्ज तथा लज़ार्सफेल्ड का अध्ययन (Personal influence) काफी प्रसिद्ध है।[9]

(vi) प्रयोगात्मक अभिकल्प में प्रयोग—ऐसा प्रयोग कृत्रिम या प्राकृतिक हो सकता

है। इसमे शोधकर्ता यह आशा करता है कि उस समग्र मे प्रयोग (Experiment) करना सम्भव हो सकेगा। उदाहरण के लिए, वोग्ट तथा एल्बर्ट ने मिलकर पाँच सस्कृतियो का प्रयोगात्मक अध्ययन किया है।[10]

(vii) सामाजिक कारक--इस शीर्षक के अन्तर्गत समग्र को चयन करने के सामाजिक कारको (Social factors) को शामिल किया गया है, जैसे, आधार-सामग्री की सुविधाजनक प्राप्ति, समय, धन तथा मानवशक्ति की सीमा, सुगमता तथा व्यावहारिक लाभ (Practical ends)। व्यावहारिक लाभ मे शोध कराने वालो का आदेश, प्रसन्नता, उपाधि की प्राप्ति आदि बातें विचाराधीन रहती हैं। कभी-कभी आकस्मिक घटना या दैवयोग भी कारण बन जाता है। जेम्स वेस्ट की प्लेनविल (U S A) गाँव के पास मोटर कार खराब हो गयी और उसे वहाँ कुछ दिन रहना पडा। उसने शोध के लिए उसी गाँव को समग्र बना लिया।

(viii) अन्य कारण—सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एव राजनैतिक दवाव भी विशेष समग्र को चुनने के लिए विवश करते है। समाज की विभिन्नताएँ और परिवर्तनशीलता के साथ-साथ शोध-दल (Research team) का सगठन भी विशेष निदर्शन के चयन का आधार बन जाता है।

समग्रो के चयन के उपर्युक्त आधारो के अध्ययन से पता चलता है कि उनके चयन के अनेक विज्ञानेतर कारण होते हैं। इन आधारो का समग्रो, निदर्शनो, प्रविधियो आदि सभी पर प्रभाव पडता है।

निदर्शन : अर्थ एवं व्याख्या (Sampling Meaning and Explanation)

'कुछ' को देखकर या परीक्षा करके 'सब' के बारे में अनुमान लगाने की क्रिया को निदर्शन (Sampling) पद्धति कहा जाता है। इस पद्धति की मूल मान्यता यह है कि यदि 'सब' की मूल विशेषताएँ 'कुछ' म पायी जाती हैं तो 'कुछ' का अध्ययन कर लिया जाना चाहिए। इससे समय, धन तथा मानव-श्रम की बचत होती है। सामान्य जीवन एव राजनीति मे सभी लोग किसी न किसी प्रकार से निदर्शन-पद्धति का ही प्रयोग करते हैं। खिचडी का चावल या गेहूँ की बोरी का नमूना देखकर सम्पूर्ण के बारे मे अनुमान लगा लिया जाता है। मुखिया से बातचीत करके सारे परिवार की विचारधारा का पता लग सकता है। अतएव समग्र मे से चुने गये ऐसे 'कुछ' को, जो कि समग्र का उचित प्रतिनिधित्व करते हो, निदर्शन कहा जाता है। गुड एव हैट के अनुसार, निदर्शन "किसी विशाल सम्पूर्ण का छोटा प्रतिनिधि होता है।"[11] यग की दृष्टि से, "साख्यिकीय निदर्शन उस सम्पूर्ण समूह या योग का एक लघु चित्र या प्रतिवर्ग (Cross Section) है जिसमे से निदर्शन लिया गया है।"[12] निदर्शन-प्रविधि के अन्तर्गत शोधकर्ता समस्या से सम्बन्धित सम्पूर्ण जनसख्या या समग्र मे सावधानीपूर्वक कुछ ऐसी इकाइयो का चयन कर लेता है जो कि समग्र की आधारभूत विशेषताओ का उचित प्रतिनिधित्व करती हो।* इसमे निदर्शन के

---

* A Sample, as the name implies, is a smaller representation of a larger whole —Goode and Hatt

Contd

आधार पर सम्पूर्ण के विषय में सामान्यीकरण निकाले जाते हैं। बोगार्डस के शब्दों में, वह एक पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार मदों के समूह में से एक निश्चित प्रतिशत में मदों (Items) का चयन है। फेयर चाइल्ड के अनुसार वह गवेषणा के लिए समस्त समूह के एक भाग का चयन करते हुए किसी विशिष्ट समग्र में से निश्चित संख्या में व्यक्तियों, मामलों या अवलोकनों को लेने की प्रक्रिया या पद्धति है। निदर्शन सिद्धान्त दो विचार नियमों (Principles) पर आधारित है –(i) सांख्यिकीय नियमितता (Statistical regularity) तथा (ii) बड़ी संख्याओं का जड़त्व (Inertia of large numbers)।

निदर्शन की प्रमुख विशेषताएँ निम्न होती हैं—

(i) वह किसी शोध-समस्या से सम्बन्धित होता है,

(ii) उसे किसी समग्र या जनसंख्या में से लिया जाता है,

(iii) यह लेना आवश्यकतानुसार निश्चित मात्रा, प्रतिशत या भाग के अनुपात में होना है,

(iv) निदर्शन समग्र का छोटा भाग होता है,

(v) इसमें सभी इकाइयों को समान माना जाता है,

(vi) सभी इकाइयों को निदर्शन (Sample) में आने का समान अवसर रहता है; तथा

(vii) समग्र की प्रमुख विशेषताएँ अधिक से अधिक मात्रा में निदर्शन में भी आ जाती हैं।

निदर्शन के आधार एवं विशेषताएँ

(Bases of Sampling and Characteristics)

निदर्शन (Sample) को समग्र (Universe) का 'प्रतिनिधि' मानने के लिए उसकी इकाइयों या घटकों (Units) की दो विशेषताएँ होनी चाहिएँ। प्रथम, वे सब एकरूप या समरस (Homogenous) हों, तथा द्वितीय, उनमें सबको चयन किये जा सकने का समान अवसर हो। जनसंख्या या समग्र की समरसता का अर्थ यह है कि उनकी इकाइयों की प्रकृति लगभग समान होनी चाहिए। भिन्नताएँ होने पर निदर्शन समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। हलवाई की दुकान में लड्डुओं के ढेर में कोई से दो-चार लड्डू सारे लड्डुओं की विशेषताएँ बता देंगे। इसी तरह प्रत्येक इकाई या घटक को निदर्शन में आने का अवसर दिया जाना चाहिए। निदर्शन में शामिल होने का समान अवसर न दिये जाने पर कुछ इकाइयाँ कभी भी निदर्शन में शामिल नहीं हो पायेंगी और निदर्शन सम्पूर्ण या समग्र का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकेगा। यदि विद्यार्थियों के समग्र में से विज्ञान के विद्यार्थियों को अयोग्य मानकर निदर्शन तैयार किया जायेगा तो वह निदर्शन कभी भी 'प्रतिनिधित्व' (Representative) नहीं बन सकेगा।

A statistical sample is a miniature picture or cross section of the entire group or aggregate from which the sample is taken.

—Young

Sampling is the selection of certain percentage of a group of items according to a predetermined plan.

—Bogardus

यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि सामाजिक एवं राजनैतिक समग्र गेहूँ की बोरी के दानों की तरह समान नहीं होते। राजनैतिक समग्र में इकाइयाँ, आकाश के तारों की तरह भले ही समान दिखती हों, किन्तु उनके मध्य बहुत अधिक अन्तर हो सकता है। आधुनिक बड़े समाजों में विभिन्न जाति, धर्म, व्यवसाय आर्थिक स्थिति, विचारधारा, महत्त्वाकांक्षा, रुचि, *राष्ट्रीयता आदि के लोग रहते हैं, उनमें विविध प्रकार की विभिन्नताएँ* होती हैं। ऐसी विविधता वाले *समग्र का निदर्शन प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होता है।* इसके लिए अनेक युक्तियाँ (Devices) तथा प्रविधियाँ (Techniques) अपनाई जाती हैं। नागरिक-समूह के समग्र में पहले समानताओं तथा फिर असमानताओं का पूरा पता लगाया जायेगा। फिर निदर्शन इस प्रकार से बनाया जायेगा कि निदर्शन उस समग्र का वास्तव में प्रतिनिधि, नमूना या लघु चित्र रूप दिखाई दे।

निदर्शन के विषय में एक महत्त्वपूर्ण बात और यह है कि यह समग्र का 'शत प्रतिशत' सही प्रतिनिधि (Representative) न होकर 'लगभग' (Approximate) प्रतिनिधि होता है।* शोध में *यथासम्भव प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।* जैसे यदि किसी बड़े मजदूर-संघ का निदर्शन बनायें तो यह सम्भव है कि उसमें जितनी संख्या या अनुपात में शराब पीने वाले हों, वे उसमें उसी अनुपात में न आ पाएँ। राजनीतिक शोध में निदर्शन को प्रतिनिधित्वपूर्ण बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसमें प्रभावशाली, सत्ताधारी तथा शक्तिधारक व्यक्ति तो अवश्यमेव निदर्शन में शामिल किये ही जायें। वे संख्यात्मक की अपेक्षा गुणात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होते हैं। राजनीतिक निदर्शन संख्यात्मक की अपेक्षा गुणात्मक अधिक होता है। उदाहरण के लिए, यदि विद्यार्थी राजनीति का *अध्ययन करते समय यदि निदर्शन में विद्यार्थी संघ के अध्यक्ष अथवा प्रमुख नेता ही नहीं* आयेंगे तो निदर्शन ही निरर्थक हो जायेगा।[13]

एक 'आदर्श रूप' (Ideal type) निदर्शन की कतिपय विशेषताएँ होती हैं। सर्वप्रथम, वह समग्र का उचित एवं सही प्रतिनिधि होना चाहिए। प्रतिनिधित्वपूर्णता (Representativeness), लुण्डबर्ग के अनुसार दो बातों पर निर्भर होती है, (i) अवलोकित तथ्यों की प्रकृति, तथा (ii) उनके चयन करने की पद्धति।[14] एक अच्छा निदर्शन प्राप्त करने के लिए समग्र की विशेषताओं, उसके उपसमूहों तथा उपवर्गों के गुणों आदि को ध्यान में *रखा जाता है।* द्वितीय, *उस निदर्शन का आकार (Size) पर्याप्त होना चाहिए। वह न* छोटा और न बड़ा होना चाहिए। उससे अध्ययन के उद्देश्य की पूर्ति होनी चाहिए। उदाहरण के लिये, किसी विधानसभा के 400 सदस्यों की विचारधारा का निदर्शन 5 या 7 विधायकों को लेकर नहीं बनाया जा सकता। निदर्शन समग्र अनुपात निश्चित नहीं होता। न ही इसे बनाने का सूत्र (Formula) है। यंग ने लिखा है कि निदर्शन का आकार उसकी प्रतिनिधिपूर्णता की कोई आवश्यक गारंटी नहीं है। अपेक्षाकृत रूप से, अच्छी तरह चयन किये गये छोटे निदर्शन घटिया तरीके से चयन किये गये बड़े निदर्शन से अधिक *विश्वसनीय हो सकते हैं।* *निदर्शन की तीसरी विशेषता यह है कि उसके निर्माण करने में* पक्षपात तथा मिथ्या-झुकावों (Prejudices and Biases) को सर्वथा दूर रखा गया हो।

---

* The size of a sample is no necessary insurance of its representativeness. Relatively small samples properly selected may be much more reliable than large sample poorly selected. — Young

निदर्शन की इकाइयों का चयन न तो इस आधार पर किया जाना चाहिए कि वे आकर्षक, मनोरंजक, स्वार्थपूरक अथवा सुगम हैं और न इस आधार पर उन्हें छोड़ देना चाहिए कि वे कठिन, दुर्गम तथा कष्टकारक हैं। उनका चयन अपने मन, आदर्श या धारणा के आधार पर नहीं करना चाहिए। जैसे, एक साम्यवादी विचारधारा के राजशोधक को केवल वामपंथी व्यक्तियों को या समाजवाद विरोधी व्यक्तियों को अपने निदर्शन में स्थान देना उचित नहीं होगा। चतुर्थ, वह निदर्शन समस्या या विषय के अनुकूल बनाया जाये। उसका समग्र समस्या के क्षेत्र द्वारा निर्धारित किया जाये। जैसे, यदि निर्वाचकों के मतदान करने के विविध आधारों को जानना अध्ययन का विषय है, तो वयस्क नागरिकों में से मतदान करने के इच्छुक व्यक्तियों को समग्र बनाया जायेगा तथा उनमें से विभिन्न विशेषताओं के आधार पर निदर्शन (Sample) लिया जायेगा। पंचम, निदर्शन सामान्य ज्ञान, तर्क एवं अनुभव पर आधारित होना चाहिए। उसमें विवेक तथा सामान्य ज्ञान से काम लिया जाये। उसे सामाजिक अनुभवों सम्बन्धी तथा विचारों से जोड़ा जाये। राजनीतिक समाज में रहने वाले आर्थिक-भौतिक दृष्टिकोण वाले सचेत व्यक्ति से सम्बन्धित होती है। निदर्शन भी 'राजनीतिक व्यक्ति' की प्रकृति के अनुसार बनाया जाना चाहिए।

निदर्शन-निर्माण की प्रक्रिया (Sample Making Process)

निदर्शनों के अनेक प्रकार होते हैं। किन्तु उन सभी की कतिपय सामान्य क्रियाओं का उल्लेख किया जा सकता है। सर्वप्रथम, अपने अध्ययन-विषय, समस्या या प्रकल्पना (Hypotheses) के सन्दर्भ में समग्र या जनसंख्या (Universe of Population) को निश्चित किया जाता है। जैसे, 'गरीबी' राजनैतिक अलगाव (Alienation) उत्पन्न करती है' की प्रकल्पना का समग्र एक निश्चित आय से कम तथा राजनीति में भाग लेने वाले व्यक्तियों से बनेगा। भौतिकविज्ञान, मानवशास्त्र आदि की तुलना में राजनीतिक समग्र का निर्धारण कठिन होता है। सामान्यतः समग्र चार प्रकार के होते हैं — (i) निश्चित समग्र—ऐसे समग्र को सुगमतापूर्वक निश्चित किया जा सकता है, जैसे किसी जिले में निवास करने वाले पंच या सरपंच। (ii) अनिश्चित समग्र—इसमें समग्र की इकाइयों के अमूर्त या परिवर्तनशील होने के कारण अनिश्चय की स्थिति रहती है, जैसे, धर्मनिरपेक्ष मुसलमानों का समग्र अथवा समाजवादी लोगों के मध्य एकता का समग्र। (iii) वास्तविक समग्र—इसमें समग्र की इकाइयों की संख्या निश्चित हो जाती है, जैसे, राजस्थान विधान-सभा के सदस्यों का समग्र, तथा (iv) काल्पनिक समग्र—इसमें वास्तविक संख्या ज्ञात नहीं होती और केवल अनुमान से काम लिया जाता है, जैसे, भारत के राष्ट्रीय दलों में गांधी-वादियों की संख्या का समग्र। (v) सामान्य एवं विशिष्ट समग्र—इनका विवेचन पीछे किया जा चुका है।[15]

दूसरे चरण में निदर्शन की इकाइयों या घटकों (Sampling units) का निर्धारण किया जाता है। राजनीतिक समग्र की इकाइयाँ अवधारणाओं के द्वारा निर्मित होती हैं तथा अमूर्त होती हैं। उन्हें केवल कतिपय चिह्नों, प्रतीकों या संकेतकों द्वारा ही पहचाना जाता है। जैसे, भ्रष्टाचार, राष्ट्रवादी, गांधीवादी आदि को विशेष संकेतकों अथवा व्यवहार के आधार पर ही जाना जा सकता है। पार्टन ने लिखा है कि 'सर्वेक्षक यह विचार सम्बन्धी भूल कर बैठते हैं कि मनुष्यों के समग्र का अध्ययन करते समय केवल व्यक्ति (Individual) ही उनके समग्र की इकाई बन सकते हैं।' वास्तव में बहुत कम शोध-अध्ययनों में व्यक्ति का

अध्ययन की इकाई बनाया जाता है। राजनीतिक शोध मे व्यक्ति के मतदाता, दलीय-सदस्यता, राजनेता, अनुयायी आदि पक्ष शोध-समग्र की इकाई बनते हैं। समग्र की अनेक इकाइयाँ हो सकती हैं, जैसे,

भौगोलिक इकाइयाँ—राज्य, जिला, ग्राम, नगर, वार्ड, गली तहसील आदि

राजनैतिक इकाइयाँ—राजनैतिक दल, राज्य, जिला परिषद् पचायत समिति, पचायत, दबाव समूह, विधानसभा, ससदीय समितियाँ, राष्ट्र, राष्ट्रीयता समूह, राजनैतिक अभिजन, विरोध पक्ष, मतदाता-वर्ग आदि,

प्रशासनिक इकाइयाँ—विभाग, कर्मचारी सघ निगम, अधीनस्थ कार्यालय, नौकरशाह, प्रशासनिक निर्णय, प्रशासनिक कार्यविधि, स्वविवेकीय क्षेत्र, भर्ती आयोग, प्रशासनिक अधिकरण, सचिवालय आदि,

सामाजिक इकाइयाँ—परिवार, जाति, क्लब, चर्च, सस्कृति, धर्म, समाजीकरण आदि,

आर्थिक इकाइयाँ—बजट, कर, आय, राष्ट्रीय अथवा व्यक्तिगत आय, उत्पादन विनिमय, बैंक, मन्दी, उद्योग आदि

व्यक्ति सम्बन्धी इकाइयाँ—सम्पूर्ण व्यक्ति, पुरुष, स्त्री, बालक, युवा, हिन्दू, मुस्लिम, ग्रामीण, शहरी, नागरिक, तस्कर, व्यापारी, मजदूर आदि।

निदर्शन की इकाई कोई भी क्यो न हो वह स्पष्ट, सुनिश्चित एव भ्रमरहित होनी चाहिए। वह प्रामाणिक (Valid) तथा विषय के अनुकूल होनी चाहिए। सबसे बढ़कर वह अवलोकनीय, सम्पर्क योग्य अथवा उपयोगी होनी चाहिए।

तीसरे चरण में, इकाइयो के सम्बन्ध मे साधन सूची (Source list) को उपलब्ध किया जाता है। इसकी सहायता से समग्र की इकाइयो को जाना जाता है। जैसे, टेलीफोन वाले व्यक्तियों में राजनैतिक जागरूकता का अध्ययन करने के लिए टेलीफोन डाइरेक्टरी साधन-सूची मानी जायेगी। मतदाताओ का अध्ययन करने के लिए निर्वाचक सूची (Electoral list) साधन-सूची बन जायेगी। किन्तु, अनेक समस्याओ का अध्ययन करने के लिए कोई भी साधन सूची उपलब्ध नही होती, या अधूरी उपलब्ध होती है। ऐसी अवस्था मे स्वय शोधकर्ता को साधन-सूची तैयार करनी पड़ती है। कभी कभी उसे तैयार करना भी बड़ा कठिन होता है। जैसे, राष्ट्रीय स्वय सेवक सघ के राजनीति मे भाग लेने वाले सदस्यो की सूची को तैयार करना पड़ेगा। इसी तरह राजनीतिक दलो को चन्दा देने वाले पूँजीपतियों के नाम जानना अत्यन्त कठिन होगा। कुछ भी हो, वैज्ञानिक शोध के लिए यह आवश्यक है कि साधन-सूची मे समस्त इकाइयाँ शामिल कर ली जावें। कोई भी इकाई नही छूटे। राजनीतिक शोध मे हो सकता है कि छूटी हुई इकाइयाँ बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण हों। साधन सूची अद्यतन (Uptodate) तथा ताजा (Latest) होनी चाहिए। दो वर्ष पुरानी विद्यार्थियो की सूची वर्तमान विद्यार्थी सघो का अध्ययन करने के लिए उपयोगी सिद्ध नही हो सकती। सूची में सूचनाएँ पूरी होनी चाहिएँ ताकि आवश्यकता पड़ने पर उनके आधार पर वर्गीकरण किया जा सके तथा निदर्शन मे विभिन्न विशेषताओ वाले वर्गों को शामिल किया जा सके। साधन-सूची मे कोई भी नाम एक से अधिक बार नही आना चाहिए। साधन-सूची अध्ययन विषय की या समग्र अथवा निदर्शन की इकाइयो के अनुकूल होनी चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि हम व्यापारिक सस्थाओ के नाम चाहिए तो

टेलीफोन डाइरेक्टरी अथवा निर्वाचक सूची को साधन सूची नहीं बनाया जा सकता। साधन सूची का विश्वसनीय एवं प्रामाणिक होना भी जरूरी है। मतदान व्यवहार सम्बन्धी समग्र के लिए निर्वाचक-सूची एक विश्वसनीय साधन-सूची है। यदि साधन सूची उपलब्ध होने योग्य हो तो शोध का कार्य सुगम हो जाता है। कई बार सूची होते हुए भी शोधक को मिल नहीं सकती, जैसे, आयकर विभाग के पास आयकरदाताओं की सूची अथवा पुलिस के पास सन्देहात्मक चरित्र के लोगों की या गुण्डों की सूची। किसी निदर्शन को तैयार करने से पूर्व साधन सूची अवश्य बनानी पड़ती है।

निदर्शन निर्माण का चौथा तथा पाँचवा चरण निदर्शन के आकार का निर्धारण (Size of Sample) तथा निदर्शन-पद्धति का चयन (Selection of Sample-method) होता है। साधन-सूची (Source list) तैयार हो जाने के पश्चात् निदर्शन का आकार निर्धारित करना पड़ता है। इसका कोई निश्चित आधार नहीं बताया जा सकता है कि निदर्शन कितना बड़ा या छोटा होना चाहिए। अर्थात् यह नहीं कहा जा सकता है कि निदर्शन में कितनी इकाइयों को शामिल किया जावे। निदर्शन का आकार अध्ययन के विषय पर निर्भर होता है। किसी ग्राम पंचायत की गतिविधियों का निदर्शन छोटा तथा भारत के श्रमिक संघों की राजनीति का निदर्शन बड़ा होगा। विषय के अनुसार ही समग्र की प्रकृति, अनुसंधान का प्रकार, इकाइयों के स्वरूप का निर्धारण, अध्ययन की प्रविधियाँ आदि होंगी। इन सब के अलावा उपलब्ध साधन, समय, धन, मानव श्रम, सुविधा तथा आवश्यकता के अनुसार निदर्शन का आकार तय किया जायेगा। धन एवं साधनों की सुविधा के बिना समस्त भारतीय राजनैतिक दलों की कार्य कारिणी के सदस्यों की निर्णय क्षमता का अध्ययन नहीं किया जा सकता। निदर्शन का आकार निर्धारित करते समय सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि उसमें समग्र की सभी प्रमुख विशेषताएँ आ जाएँ। निदर्शन का आकार निर्धारित करने के पश्चात् निदर्शन-पद्धति का चुनाव आता है। निदर्शन-पद्धति के चुनाव का प्रमुख आधार यह होना चाहिए कि निदर्शन, विषय या समस्या के अनुरूप अधिकाधिक मात्रा में प्रतिनिधित्वपूर्ण Representative) बन सके। इन पद्धतियों या प्रविधियों का विवेचन अगले पृष्ठों में किया गया है।

निदर्शन-पद्धति का चयन हो जाने के पश्चात् निदर्शन का निर्माण आरम्भ हो जाता है। प्रत्येक दशा में विश्वसनीय, प्रामाणिक तथा प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयों का ही चयन किया जाना चाहिए ताकि निदर्शन के आधार पर वैज्ञानिक ढंग से शोध कार्य किया जा सके। यह बताया जा चुका है कि अनेक कारणों से निदर्शन तथा इकाइयों का चयन वैज्ञानिक आधार पर नहीं हो पाता। फिर भी पद्धति विज्ञानियों ने निदर्शन का (अवैज्ञानिक आधार पर ही सही) चयन कर चुनने पर इकाइयों के चयन के सम्बन्ध में अनेक विधियों या प्रकारों का उल्लेख किया है।

निदर्शन के प्रकार (Types of Sampling)

निदर्शन में समग्र (Universe) की सभी प्रतिनिधित्वपूर्ण विशेषताओं को लाने का मूल आधार सम्भावना (Probability) होता है। सम्भावना में हम ऐसी इकाइयों (Units or cases) की ओर देखते हैं जो शोधकर्त्ता के कार्यक्षेत्र समग्र की जटिलताओं या विशेषताओं को प्रतिबिम्बित करती हैं। इस सम्भावना को लेकर निदर्शन के अनेक प्रकार निर्धारित किए गए हैं —

(1) दैव निदर्शन (Random Sampling)
(2) सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)
(3) सस्तरित निदर्शन (Stratified Sampling)

(1) दैव निदर्शन (Random Sampling)

सम्भावना की धारणा दैव निदर्शन का मूलाधार होती है। दैव निदर्शन का अर्थ यह है कि समग्र से इकाइयाँ इस प्रकार ली जाएँ कि प्रत्येक इकाई का चयनित हो जाने का अवसर बना रहे। इसमें सभी इकाइयों को समान माना जाता है। यह प्रणाली इस लोकतन्त्रात्मक धारणा के निकट है कि 'प्रत्येक व्यक्ति के मत का समान मूल्य है।' शोध-कार्य में यह पद्धति शोधकर्ता को स्वयं अपने मिथ्या-झुकावों या पूर्वाग्रहों से बचकर समग्र में से इकाइयाँ चुनने का अवसर प्रदान करती है। उनका चयन शोधक की इच्छा या निर्णय से परे जाकर होता है और पूर्णतः संयोग या दैवयोग पर निर्भर करता है। दैवयोग से चुनाव होने के कारण किसी भी इकाई या घटक को प्राथमिकता नहीं दी जाती। पार्टन के अनुसार, यह पद्धति समग्र में से प्रत्येक व्यक्ति या तत्त्व को चयनित होने की गारण्टी देती है।* मैक्ग्रोमुख के शब्दों में, 'दैव निदर्शन (इकाई के) चयनित होने या नहीं होने का अवसर घटना की प्रकृति में स्वतन्त्र होना है'। हार्र ने भी ऐसे ही शब्दों में कहा है कि ऐसे निदर्शन में, 'प्रत्येक घटक का इस तरीके से चयन किया जाता है कि उसे जनसंख्या में सम्मिलित होने का समान अवसर बना रहे।'

दैव निदर्शन को समानुपातिक निदर्शन (Proportionate Sampling) भी कहा जाता है, क्योंकि उसमें प्रत्येक विशेषता, वर्ग या समूह का प्रतिनिधित्व उसी अनुपात या अंश में होता है, जिस अनुपात या अंश में वह समग्र में वर्तमान है। यदि 500 विधानसभा सदस्यों में 100 साम्यवादी दल के हैं तो 50 विधायकों के समग्र में उनका अनुपात भी 10 ही बना रहना चाहिए। किन्तु यह आकस्मिक निदर्शन से भिन्न है। आकस्मिक निदर्शन (Chance Sampling) में सहसा या अचानक कुछ इकाइयाँ ले ली जाती हैं और वे शोधक की इच्छा से प्रभावित भी हो सकती हैं। दैव निदर्शन के सही होने की कुछ दशाएँ एवं शर्तें होती हैं। कभी-कभी दैव निदर्शन तथा आकस्मिक निदर्शन संयोगवश एकाकार भी हो जाते हैं।

दैव निदर्शन की निष्पक्षता में दो बातों को महत्त्वपूर्ण माना गया है—(i) इसमें नियमों या शर्तों का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए, तथा (ii) जितनी अधिक सूचना समग्र के बारे में दी जायेगी उतना ही दैव निदर्शन अच्छा बन सकेगा।

राजनीतिक शोध में इसका प्रयोग करते समय ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि लोकतन्त्र की दृष्टि में सभी व्यक्ति बराबर होते हैं, उनके विचार और प्रभाव एक-से नहीं होते। इन राजनैतिक इकाइयों की समानता को स्थापित करना भी, विशेष रूप से विभिन्न मतदाताओं में सरल नहीं है। छोटे समग्र में, जैसे मन्त्रि-मण्डल में सभी इकाइयाँ बड़ी महत्त्वपूर्ण होती हैं।

---

* Random sampling is the form applied when the method of selection assures each individual or elements in universe an equal chance of being chosen. —Parten

दैव निदर्शन चुनने की भी अनेक विधियाँ होती हैं (क) लॉटरी प्रणाली, (ख) कार्ड या टिकट प्रणाली, (ग) नियमित अंकन प्रणाली, (घ) अनियमित अंकन प्रणाली, (ङ) टिप्पेट प्रणाली, (च) ग्रिड प्रणाली, तथा (छ) कोटा प्रणाली।

(क) लॉटरी प्रणाली (Lottery Method)—इस *प्रणाली में समग्र या जनसंख्या* की समस्त इकाइयों का नाम या नम्बर समान कागज की चिटों या चौकोर कार्डों पर लिख दिया जाता है। फिर किसी बड़े ड्रम, बॉक्स या झोले में उन सबको रखकर हिलाया जाता है। उसके बाद आँख बंद करके या किसी बच्चे के द्वारा, जितनी इकाइयों का अध्ययन करना है, उतनी संख्या में पर्चियों या कार्डों को निकाला जाता है। इन दैव योग से आयी हुई इकाइयों का अवलोकन, साक्षात्कार आदि किया जाता है।

(ख) कार्ड या टिकट प्रणाली (Card or Ticket Method)—यह प्रणाली लॉटरी प्रणाली से मिलती जुलती होती है। सबसे पहले एक से आकार, रंग या बनावट के कार्डों या टिकटों पर जनसंख्या या समग्र की समस्त इकाइयों के नाम अथवा संख्या या कोई अन्य चिह्न अंकित कर दिया जाता है। सबको एकत्रित करके गोल तथा बड़े ड्रम में भर कर पचास बार घुमाया जाता है। प्रत्येक पचास बार घुमा कर एक बार एक कार्ड या टिकट निकाल लिया जाता है। जितनी इकाइयों का चुनाव करना होता है, उतने पचास बार घुमाकर कार्ड निकाले जाते हैं। निकाले गये कार्डों वाली इकाइयों का शोध-कर्ता द्वारा *अध्ययन किया जाता है। (क) में शोध-कर्ता स्वयं या अन्य कोई आँख बन्द* करके तथा (ख) में कोई भी आँख खुली रख कर इकाइयों का चयन करता है। दोनों के मध्य इतना ही अन्तर है।

(ग) नियमित अंकन प्रणाली (Regular Marking Method)—यदि इकाइयाँ किसी विशेष स्थान, काल या तरीके के आधार पर व्यवस्थित होती हैं, तो इस प्रणाली का उपयोग किया जा सकता है। सबसे पहले सभी इकाइयों को एक क्रम संख्या दे दी जाती है और उनकी एक सूची बना ली जाती है। उसके बाद यह निश्चय किया जाता है कि कुल कितनी इकाइयों का अध्ययन करना है। उस संख्या का समग्र की इकाइयों में भाग दे दिया जाता है। जैसे यदि 500 में से 50 इकाइयों का अध्ययन करना है तो 500 में 50 का भाग देकर 10 संख्या आ जायेगी। उस सूची में प्रत्येक 10 के अन्तर से, जैसे, 10वीं, 20वीं, 30वीं, 40वीं ... इकाइयों को निशान लगाकर अध्ययन के लिये ले लिया जायेगा।

(घ) अनियमित अंकन प्रणाली (Irregular Marking Method)—इसमें भी समग्र या जनसंख्या की समस्त इकाइयों की एक सूची बनायी जाती है। उस सूची में प्रथम और अंतिम अंक को छोड़कर शेष इकाइयों की क्रमसंख्या पर शोध-कर्ता निशान लगाता चलता है। ये निशान उतनी ही इकाइयों पर लगाये जाते हैं जितनी इकाइयों का अध्ययन करना है। ये निशान *अनियमित ढंग से* लगाये जाते हैं, इस कारण इसमें पक्षपात का समावेश हो जाता है।

(ङ) टिप्पेट प्रणाली (Tippet Method)—इसे टिप्पेट (1927) ने गणितीय अंकों के आधार पर तैयार किया था। उसने चार अंकों वाली 10400 संख्याओं की एक सूची बनायी। उन संख्याओं को दैव-निदर्शन का प्रयोग करने के लिये सुनिश्चित कर दिया

गया। यह मख्या बिना किसी क्रम के कई पृष्ठो पर लिखी हुई है। शोधकर्त्ता आवश्यकतानुसार, जितनी इकाइया का अध्ययन करना है उतनी इकाइया को किसी भी पृष्ठ से लगातार लेता जाता है। उदाहरण के लिये, यदि 100 मजदूरो के समग्र मे 10 मजदूरो की इकाइयो का अध्ययन करना है, तो उन 100 इकाइयो को क्रम से जमा कर टिप्पेट के क्रम मे लेगें। टिप्पेट के क्रम म प्रथम 20 सख्याएँ इस प्रकार हैं

2952	6641	3392	9792
4167	9524	1545	1396
2370	7483	3408	2762
0560	5246	1112	6107
2754	9143	1405	9026

इस तरह 52, 67, 70, 60, 54, 41, 24, 83, 46 और 83 क्रम वाली इकाइयाँ अध्ययन का विषय बन जायेंगी। इस प्रणाली का काफी प्रयोग किया जाता है। टिप्पेट की तरह फिशर एव येल्स (1936), केण्डल एव स्मिथ (1939), रैण्ड कारपोरेशन (1955), राव मित्रा, एव मथाई (1966) ने भी निदर्शन सारणियाँ बनायी है।

(च) ग्रिड प्रणाली (Grid Method)—यह क्षेत्र या भौगोलिक आधार पर निदर्शन निर्माण की प्रणाली है। इसमे किसी विशाल भौगोलिक क्षेत्र का जहाँ से निदर्शन लेना है, नक्शा या मानचित्र लिया जाता है। उस मानचित्र पर सेल्यूलॉयड की पारदर्शक ग्रिड प्लेट रख दी जाती है। इस प्लेट म वर्गाकार चौकोर खाने कटे हुए तथा उन पर नम्बर लिखे हुए होते हैं। यह पहले ही निश्चित कर लिया जाता है कि किस आधार पर किन किन नम्बरो वाली इकाइयो को अध्ययन का विषय बनाना है। इन नम्बरो का निर्णय आकस्मिक ढग से किया जाता है। मानचित्र के जिन हिस्सो पर निर्धारित नम्बरो के वर्गाकार खाने आते हैं, उनको चिह्नित करके अध्ययन के लिये चुन लिया जाता है। इसे क्षेत्र-निदर्शन (Area Sampling) भी कहते हैं। किन्तु यह थोडा-सा भिन्न प्रकृति का होता है।

(छ) कोटा निदर्शन (Quota Sampling)—इसमे समग्र या जनसख्या (Universe or Population) को अनेक वर्गों मे विभाजित कर दिया जाता है। बाद म प्रत्येक वर्ग से ली जाने वाली इकाइयो की सख्या निर्धारित की जाती है। शोध कर्त्ता प्रत्येक वर्ग से अपनी इच्छा के अनुसार उतनी ही इकाइयो का चयन कर लेता है। इन स्वेच्छानुसार चुनी हुई इकाइयों को निदर्शन मान लिया जाता है। स्वेच्छा से इकाइयों के चुने जाने के कारण इसम पक्षपात के प्रवेश करने की गुजाइश रहती है। वस्तुत यह एक अदैव निदर्शन (Non-random Sampling) का प्रकार है, किन्तु समय, धन और श्रम बचाने की दृष्टि से इसका प्रयोग किया जा सकता है।

दैव-निदर्शन का मूल्यांकन (Evaluation of Random Sampling)

दैव-निदर्शन निदर्शन-इकाइयो के चयन की लोकप्रिय एव उपयोगी पद्धति है। इसम शोध कार्य शोधक के पक्षपात तथा मिथ्या-झुकावों से मुक्त हो जाता है। प्रत्येक इकाई को चुनने का समान अवसर मिलने के कारण निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण हो जाता है।

व्यवहार मे, यह एक सरल तथा सुगम प्रणाली है। इसके प्रयोग मे आयी हुई त्रुटियो को सरलता से पता लगाकर निकाला जा सकता है। परन्तु इसको लागू करने से पूर्व अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। राजनीतिक शोध के लिये उपयोगी साधन सूचिया प्राय: नहीं मिल पाती। उन्हे तैयार करना पडता है। निदर्शन की इकाइयो पर शोधकर्त्ता का कोई भी नियन्त्रण नहीं रहता। कई बार ऐसी इकाइया चुन ली जाती हैं, जो है ही नही, चली गयी हैं, अथवा दूर दूर तक फैली हुई हैं। यह भी हो सकता है कि वहा तक शोधकर्त्ता की पहुँच ही न हो सके। ऐसी स्थिति मे और कोई विकल्प (Alternative) अर्थात् उस इकाई के स्थान पर दूसरी इकाई को लेना सम्भव ही नही है। अधिकाशत राजनीतिक समग्र की इकाइया प्रभाव, शक्ति या सत्ता की दृष्टि से समान नहीं होती। ऐसी स्थिति म सामान्य दैव निदर्शन का अधिक उपयोग नही हो सकता।

(2) सविचार निदर्शन (Purposive Sampling)

ऐसा निदर्शन किसी विशेष उद्देश्य को सामने रखकर बनाया जाता है। अत इसे उद्देश्यपूर्ण, सविचार या प्रयोजनयुक्त निदर्शन कहा जाता है। इसके अन्तर्गत शोधक समग्र मे से सोच-विचार कर इकाइयो का चयन करके अपना निदर्शन (Sample) बनाता है।* प्राय. शोध-कर्त्ता इकाइयों के लक्षणों से सुपरिचित होता है। वह अपने उद्देश्य को सामने रखकर समग्र स प्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयो का चयन करता है। यहा प्रतिनिधित्वपूर्ण होने का तात्पर्य विषय के अनुरूप' होना है। जैसे, विद्यार्थी-नेतृत्व (Student Leadership) का अध्ययन करने के लिए केवल नेताओं की इकाइया बनाया जायेगा। एडोल्फ जेन्सन के अनुसार उत्त निदर्शन का अर्थ है 'इकाइयों के समूहों की एक सख्या को इस तरह चुनना कि चुने हुए समूह यथासम्भव वही औसत या अनुपात दें जो कि समग्र म हो तथा जिसका साख्यिकीय ज्ञान पहले से ही है।' सविचार निदर्शन मे तीन बातें होती हैं. 1 समग्र की इकाइयों का शोधक को पूर्व ज्ञान, 2 अध्ययन विषय के अनुरूप निदर्शन मे से इकाइयो का चयन, तथा 3. शोधकर्त्ता द्वारा स्वेच्छापूर्ण निर्णय।

उक्त प्रणाली दैव निदर्शन की अपेक्षा कम खर्चीली, सरल एव अधिक कार्यकुशल होती है। राजनीतिक शोध-कार्यों के लिये यह अधिक उपयोगी मानी जा सकती है, क्योंकि कतिपय इकाइयाँ अन्य इकाइयो की तुलना मे अधिक महत्त्वपूर्ण होती हैं। उन्हे निदर्शन मे शामिल किया ही जाना चाहिए। इसकी मूल मान्यता यह है कि यदि निदर्शन का चयन अपक्षपातपूर्वक किया जाय तो छोटा निदर्शन भी अधिक प्रतिनिधित्वपूर्ण हो सकता है। किन्तु वैज्ञानिकता एव साख्यिकीय दृष्टिकोण से उद्देश्यपूर्ण निदर्शन को पक्षपातपूर्ण, निरर्थक तथा अवैज्ञानिक माना गया है। यदि शोधकर्त्ता को पहले से ही इकाइयों का ज्ञान है, तो अध्ययन करना ही बेकार सिद्ध हो जाता है। इसमे शोध कर्ता द्वारा इकाइयो का पक्षपातपूर्ण चयन करने पर कोई प्रतिबन्ध या नियन्त्रण नही हो पाता तथा निदर्शन की अशुद्धियो का भी पता नही लग सकता।

---

* Statisticians as a class have nothing to say in favour of purposive selection —Parten

(3) संस्तरित निदर्शन (Stratified Sampling)

इस निदर्शन में शोधकर्त्ता सर्वप्रथम समग्र की सभी मुख्य विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करता है। उनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं वाले वर्गों को लेकर निदर्शन को अनेक उप निदर्शनों (Sub samples) में विभाजित कर दिया जाता है। ये उप निदर्शन या वर्ग केवल एक ही प्रमुख गुण या विशेषता का प्रतिनिधित्व करते हैं। सामान्य या सभी वर्गों में पाई जाने वाली विशेषताएँ सम्पूर्ण समग्र का अंग होती हैं। समग्र-विशेषता, उनकी उप-विशेषताओं को तथा समस्या की आवश्यकता को देखते हुए यह निर्णय किया जा सकता है कि किन आधारों पर तथा कितने वर्गों में निदर्शन को विभक्त किया जाये। समग्र को वर्गों में विभाजित करने के पश्चात् प्रत्येक वर्ग से उचित संख्या में इकाइयों का चयन कर लिया जाता है। प्रत्येक वर्ग से उतनी ही इकाइयाँ चुनी जाती हैं जिस अनुपात से वे समग्र में हैं। यदि 220 सदस्यों वाली विधानसभा में 120 जनता पार्टी, 50 लोकदल, 40 कांग्रेस, 10 साम्यवादी दल के हैं तो संस्तरित निदर्शन में 10 प्रतिशत निदर्शन के अनुपात से 12+5+4+1=22 व्यक्ति अर्थात् इकाइयाँ ली जायेंगी। इसे वर्गीकृत निदर्शन भी कहा जाता है।

संस्तरित निदर्शन के तीन उप-प्रकार पाये जाते हैं (1) समानुपातिक (Proportionate)—इसमें प्रत्येक वर्ग से उसी अनुपात से इकाइयाँ चुनी जाती हैं जिस अनुपात से उस वर्ग की इकाइयाँ समग्र में हैं। उपर्युक्त उदाहरण समानुपातिक संस्तरित निदर्शन पर लागू होता है। (2) असमानुपातिक (Disproportionate)—इसमें प्रत्येक वर्ग से इकाइयाँ समान संख्या में ली जाती हैं, चाहे उनका अनुपात कुछ भी क्यों न हो। उपर्युक्त दृष्टांत में यदि सभी दलों के 5-5 व्यक्ति ले लिए जायें तो वह असमानुपातिक संस्तरित निदर्शन होगा। (3) भारित (Weighted)—इसे दोनों का मिश्रित रूप माना जा सकता है। इसमें प्रत्येक वर्ग से इकाइयाँ समान संख्या में चयन की जाती हैं, किन्तु बाद में उनके अनुपात, महत्व या भार के अनुसार इकाइयाँ बढ़ा दी जाती हैं। उदाहरणार्थ, प्रथम वर्ग में समान रूप से निर्धारित 4 को संख्या को 8 बनाया जा सकता है।

संस्तरित निदर्शन का मूल्यांकन (Evaluation of Stratified Sampling)

यह निदर्शन दैव निदर्शन के इस दोष को दूर करता है कि उसमें प्रतिनिधित्वपूर्णता न आ पाने या महत्वपूर्ण इकाइयों के छूट जाने की अवस्था में कोई उपाय नहीं किया जा सकता। राजनीतिक समग्र अधिकांशतः असमान एवं विविधतापूर्ण होते हैं। कुछ सीमा तक संस्तरित निदर्शन द्वारा उनकी कमी को दूर किया जा सकता है। इसमें किसी महत्वपूर्ण इकाई के उपेक्षित होने का डर नहीं रहता। इसमें यदि कोई इकाई शोधकर्त्ता की क्षमता के परे है तो ,उसी वर्ग से, उसके स्थान पर, वैसी ही इकाई को लिया जा सकता है। यह वर्ग-विभाजन अनेक आधारों पर किया जा सकता है तथा उनका अध्ययन उपयुक्त कार्यकर्त्ताओं को सौंपा जा सकता है। क्षेत्रीय या भौगोलिक आधार पर वर्गीकरण से समय और धन की बचत होती है।

किन्तु इस निदर्शन का प्रयोग करते समय अधिक सावधान रहने की आवश्यकता पड़ती है। वर्गों का विभाजन समस्या की आवश्यकता के अनुरूप तथा अपक्षपातपूर्ण ढंग से किया जाना चाहिए। कई बार वर्गों में आकार का अन्तर हो जाता है। भारित संस्तरित निदर्शन में तो पक्षपात या त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है।

अन्य प्रकार (Other Forms)

राजनीतिक शोध मे समस्या अथवा विषय के अनुसार अन्य कई प्रकार के निदर्शनो का उपयोग किया जा सकता है। ये निदर्शन अदैव (Non random) या असम्भावना-त्मक (Non-probability) निदर्शन कहलाते है। बहुस्तरीय निदर्शन को छोडकर अन्य मे निदर्शन त्रुटियो को निकालना सम्भव नही होता।

(4) बहुस्तरीय निदर्शन (Multistage Sampling)

यह निदर्शन बहुत बडे क्षेत्र एव जटिल शोध समस्या के लिए उपयुक्त होता है। इसमे निदर्शन-इकाइयो का चयन करने के लिए अनेक स्तरो या अवस्थाओ से गुजरना पडता है :

(1) सम्पूर्ण समग्र—देश, प्रान्त या व्यवस्था का समान क्षेत्रफल तथा समान विशेषताओ के आधार पर विभाजन,

(2) प्रत्येक क्षेत्र से कुछ गाँवो/शहरो आदि का दैव निदर्शन के अनुसार चयन,

(3) प्रत्येक गाँव या शहर मे कुछ गृहो या परिवारो के समूहो का दैव निदर्शन के आधार पर चयन,

(4) उन गृह-समूहो मे से कुछ परिवारो का दैव निदर्शन पद्धति के अनुसार चयन, तथा

(5) आवश्यकतानुसार ये स्तर और भी बढाए जा सकते हैं।

स्पड एव बूल्फ ने डिट्रॉयट शहर के परिवारो का अध्ययन इसी प्रकार किया है।[16] इस प्रक्रिया की मूल मान्यता यह है कि भौगोलिक क्षेत्र एव सामाजिक राजनैतिक विशेषताओ मे घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। यद्यपि यह मान्यता परीक्षण योग्य है।

(5) सुविधाजनक निदर्शन (Convenience Sampling)

इस निदर्शन का उपयोग शोधकर्ता अपनी सुविधा के अनुसार करता है। शोधकर्ता निदर्शन का चयन करने से पूर्व अपने धन समय, साधन-सूची की उपलब्धता, इकाइयों से सम्पर्क की क्षमता आदि मामलो की दृष्टि से सोचता है तथा उन्ही के अनुसार निदर्शन-रचना करता है। यह निदर्शन अनियमित, आकस्मिक, अवैज्ञानिक तथा अवसरवादी माना जाता है। किन्तु बहुत बडे तथा नये क्षेत्र मे प्राय सुविधाजनक निदर्शन पद्धति से ही काम लिया जाता है। इस 'चक' (Chunck) भी कहते हैं जिसम अपनी सुविधा के अनुसार इकाइयो का चयन करके अध्ययन किया जाता है। इसे प्रतिनिधित्वपूर्ण निदर्शन नहीं माना जा सकता।

(6) स्वय निर्वाचित निदर्शन (Self selected Sampling)

ऐसे निदर्शन म अनेक व्यक्ति स्वय अपना नाम देकर निदर्शन की इकाई बन जाते हैं। शोधकर्ता को इकाइयो का चयन नही करना पडता। अनेक व्यक्ति पत्र लिख कर रेडियो-कार्यक्रम के बारे मे अपनी प्रतिक्रियाएँ भेज देते है। धर्म एव राजनीति के वर्तमान सम्बन्धो के बारे मे लोगो को अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए आमन्त्रित किया जा सकता है। इसे दिखावटी या नकली निदर्शन (Pseudo-random selection) कहा जा सकता है।[17]

(7) क्षेत्रीय निदर्शन (Area Sampling)

पी-एच डी., एम फिल, छोटे शोध करने वाले शोधकर्त्ता अपनी सुविधा तथा निर्णय के अनुसार छोटे-छोटे क्षेत्र अनुसंधान कार्य के लिए चुन लेते हैं। फिर वे वहाँ के निवासियों का गहन अध्ययन करते हैं।

(8) स्वनिर्णय निदर्शन (Self judgement Sampling)

इसमें शोधकर्त्ता की इच्छा के अनुसार निदर्शन में इकाइयों का चयन कर लिया जाता है। इकाइयों की संख्या बहुत कम तथा उनके ही अधिक महत्त्वपूर्ण होने पर इस पद्धति को अपनाया जाता है। इकाइयों या समग्र की प्रकृति का बिल्कुल ज्ञान न होने पर प्रारम्भिक तौर पर इस काम में लिया जा सकता है। स्पष्ट ही है कि इसमें व्यक्तिनिष्ठता (Subjectivity) आ जायगी।

निदर्शन सम्बन्धी समस्याएँ (Problems of Sampling)

निदर्शन का निर्माण करते समय अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। ये समस्याएँ मुख्य रूप से ये हैं—(1) आकार की समस्या, (2) मिथ्या झुकाव से बचने की समस्या, (3) निदर्शन परीक्षण की समस्या, तथा (4) सामाजिक-राजनैतिक मानकों के अध्ययन की समस्या।

(1) आकार की समस्या (Problem of Size)

निदर्शन का आकार (Size) कितना हो ? यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण समस्या है। निदर्शन से इकाइयों की संख्या, समय, धन, मानव-श्रम, संगठन सम्बन्धी कठिनाइयों आदि का सीधा सम्बन्ध होता है। यदि आकार बहुत छोटा है तो उसके प्रतिनिधित्वपूर्ण तथा विश्वसनीय होने के विषय में शंकाएँ उठने लगती हैं। यदि बहुत बड़ा निदर्शन है तो समय, धन, श्रम आदि समस्याएँ उठ खड़ी होंगी। विशुद्ध शोध एवं वैज्ञानिकता की दृष्टि से निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण एवं विश्वसनीय होना चाहिए, चाहे उसकी कितनी ही कीमत क्यों न चुकानी पड़े, फिर भी आकार के निर्धारण का प्रश्न बना ही रहता है।

निदर्शन के आकार को प्रभावित करने वाले अनेक कारण (Factors) होते हैं— (1) समग्र की इकाइयों की प्रकृति—ये वे एकरूप हैं तो लघु आकार का निदर्शन भी प्रतिनिधित्वपूर्ण बन जायेगा। (2) विभिन्न वर्गों की संख्या—यदि उसमें विविधताएँ अधिक हैं तो अनेक वर्ग बनाने तथा उप निदर्शन लेने पड़ेंगे। इससे निदर्शन बड़ा हो जायेगा। (3) शोध का क्षेत्र एवं प्रकृति—यदि विभिन्न इकाइयों का गहन (Intensive) अध्ययन करना है तो छोटा, यदि सामान्य गवेषणा करनी है तो बड़ा निदर्शन लेना पड़ेगा। (4) साधनों की सुविधा, यदि वित्तीय साधन, पर्याप्त समय, प्रशिक्षित कार्यकर्त्ता आदि नहीं हैं तो निदर्शन को छोटा रखने के अलावा और कोई उपाय नहीं है। (5) निदर्शन का आकार—यदि दैव निदर्शन को काम में लाना है तो आकार बड़े तथा स्तरित या सुविधाजनक निदर्शन-पद्धति अपनाती है तो छोटे निदर्शन से काम लिया जायेगा।

स्टीफन एवं मेकार्थी ने आकार के विषय में कहा है कि यह प्रश्न बहुत कुछ शोधक के वित्तीय साधनों, समस्या, विश्लेषण-वर्गों, विशिष्ट समग्र की प्रकृति तथा अन्तिम लक्ष्य, जिसके लिए सामग्री-सामग्री एकत्रित की गई है पर निर्भर होता है।[16] इसमें कोई सन्देह

नहीं है कि चयनित इकाइयों की प्रकृति भी निदर्शन के आकार को घटा-बढा सकती है। दूर-दूर फैली हुई इकाइयाँ सम्पर्क करने मे व्यवधान एव अधिक व्यय कराने वाली होती हैं। यदि प्रश्नावली एव अनुसूचियाँ बहुत लम्बी है तो निदर्शन का आकार छोटा रखना पडेगा। पार्टन मे लिखा है कि 'अनावश्यक व्यय से बचने के लिए निदर्शन को काफी छोटा तथा असह्य अशुद्धि से बचने के लिए काफी बडा होना चाहिए।' निदर्शन का आकार, सोवर्ज एव नैट के अनुसार इस बात पर भी निर्भर करता है कि शोधक कितनी मात्रा मे अशुद्धियों और त्रुटियों को सहने के लिए तैयार है।

वास्तव मे आकार सम्बन्धी गुत्थी सुलझी नही है। यदि आकार छोटा रखा जाता है तो तथ्यों के सकलन तथा विश्लेषण पर अधिक कडा नियन्त्रण रखा जा सकता है। यदि उसे बडा बनाया जायेगा तो उसमे अधिक विश्वसनीयता आ जायेगी। छोटे आकार के समर्थक सूक्ष्मता, शुद्धता और गहनता की बात करते हैं, तो बडे आकार के पक्षपाती छोटे आकार की प्रामाणिकता को चुनौती देते है। यदि विविधता अधिक है, तो छोटे निदर्शनो मे प्रतिनिधित्वपूर्णता नही आ सकती। बडे आकार वाले निदर्शन, उधर, विश्वसनीयता और प्रामाणिकता लाने मे सहायक होते हैं। किन्तु प्रश्न समय, धन तथा मानव-श्रम की उपलब्धि से भी सम्बन्धित है।

(2) मिथ्या झुकावों से बचने की समस्या (Problem to Avoid Biases)

प्राय शोधकर्ता के मिथ्या-झुकाव या पक्षपातपूर्ण दृष्टिकोण के कारण निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण नही बन पाता। इसके अतिरिक्त और भी अनेक कारण होते हैं, जिनसे निदर्शन दूषित हो जाता है। यदि निदर्शन समस्या के अनुकूल आकार का न होकर छोटा बनाया गया है अथवा उसके वर्गों की सही आधार पर गठित नही किया गया है तो निदर्शन मिथ्या झुकावो से ग्रसित हो जायेगा। उद्देश्यपूर्ण निदर्शन अपने आप मे दोष-ग्रसित होता है। साधन-सूची का अपूर्ण या पुराना होना, इकाइयों का इधर-उधर हो जाना या असहयोग करना, अयोग्य कार्यकर्त्ताओं का चुनाव आदि मिथ्या झुकावो के लिए रास्ता खोल देते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सुविधाजनक निदर्शन, असावधानी, पूर्वाग्रह आदि से स्वतः दूषित हो जाता है। कई बार स्वय अध्ययन का विषय, समस्या या घटना ही बडी उत्तेजनायुक्त, जटिल, विविधतापूर्ण तथा विवादास्पद होती है कि उसमे निष्पक्ष रहने पर भी पक्षपात दिखाई देने लगता है।

राजनीतिक शोध मे शोधकर्त्ताओं को प्राय आदर्श निदर्शन से हटते देखा गया है। यहाँ तक कि स्टॉफर, लजार्सफेल्ड आदि पद्धति विज्ञानियों के अध्ययन भी पूरी तरह 'आदर्श' नहीं बन पाये हैं।[19] कुछ सीमा तक 'आदर्श' निदर्शन की तोड-मरोड को स्वाभाविक मान लिया गया है। प्रायः कहा जाता है कि 'इतना तो चलेगा'। वस्तुत राजविज्ञान के क्षेत्र मे सम्भावना-निदर्शनों (Probability sampling) का प्रयोग बहुत सोच-समझ कर किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, नये विचार या तथ्य खोजने से सम्बन्धित शोध मे निदर्शन-पद्धति अधिक उपयोगी नही है। उसमे अनोखी एव अप्रतिनिधित्वपूर्ण इकाइयाँ भी लाभकारी हो सकती हैं। मानवीय क्रियाओ की चरम सीमा, जैसे देश के लिए आत्म-बलिदान, गाँधी या जयप्रकाश नारायण की तरह जीवनभर कष्ट सहने आदि का अध्ययन करने मे 'निदर्शन' निरर्थक सिद्ध होता है। इसी प्रकार 'समाज के नैतिक नियमो' को ज्ञात

करने या राजनैतिक आदर्शों को समझने में दैव-निदर्शन हास्यास्पद सिद्ध होगा। निदर्शन के आधार पर शाश्वत प्रस्तावनाओं की स्थापना नहीं की जा सकती। प्रत्येक निदर्शन की पृष्ठभूमि में एक विशेष सामाजिक सुव्यवस्था (Social order) होती है, उससे लिये हुए निदर्शन दूसरे अविकसित अथवा विकासमान समाजो के लिए लागू नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि ब्रिटिश ससद से सम्बन्धित निष्कर्षों को भारतीय ससद के लिए यथावत् लागू नहीं किया जा सकता। इसी तरह, यदि पर्याप्त तथ्य या आधार-सामग्री ही उपलब्ध नहीं होगी तो निदर्शन कैसे बनाया जा सकेगा? राजनैतिक तथ्य या तो उपलब्ध ही नहीं होते, और यदि मिल भी जाते है तो वे कालातीत (Out of data) हो चुके होते हैं। शोधकर्ता के निदर्शन के तैयार होते होते ही हो सकता है कि सम्बद्ध इकाइयाँ अपने दल, विचार और कार्यक्षेत्र ही बदल लें। कानून या सगठन की नीति या शोधकर्त्ताओं के प्रति घृणाभाव के कारण हो सकता है कि शोधकों को कुछ भी नहीं बताया जाये। किसी भी अमेरिकी या भारतीय का सोवियत रूस, चीन या पाकिस्तान में जाकर उच्चस्तरीय शोध कर सकना सम्भव ही नहीं है।

(3) विश्वसनीयता-परीक्षण की समस्या (Problem of Testing Reliability)

यदि निदर्शन में किसी तरह पूर्वाग्रह या मिथ्या झुकाव आने की शका हो तो उसका परीक्षण (Testing) किया जा सकता है। इसके तीन तरीके हैं —(1) समानान्तर निदर्शन, (2) समग्र से तुलना, तथा (3) निदर्शन का निदर्शन।

(1) समानान्तर निदर्शन (Parallel Sample)—इसका अर्थ यह है कि उसी समग्र में उसी आकार का किन्तु किसी दूसरी प्रणाली से निदर्शन ले लिया जाये तथा उसकी मूल निदर्शन से तुलना की जाये। यह तुलना सांख्यिकीय रीतियों से की जाती है। यदि इनमें बहुत अधिक अन्तर आ जाता है तो मूल निदर्शन को दोषयुक्त मानकर रद्द कर देना चाहिए।

(2) समग्र से तुलना (Comparison with Universe)—कई बार स्वय शोधकर्त्ता को समग्र के बारे में बहुत कुछ मालूम होता है। वह अपने पूर्व-ज्ञान या अनुभव के आधार पर निदर्शन की तुलना करके अपना निर्णय दे सकता है। पर्याप्त समानता होने पर उसे 'कार्यकर' निदर्शन माना जा सकता है।

(3) निदर्शन का निदर्शन (Sampling from Sampling)—इसमें मूल निदर्शन में से कुछ इकाइयों का चयन दैव निदर्शन से कर लिया जाता है। इस निदर्शन की समग्र से लिये हुए मूल निदर्शन के साथ तुलना की जाती है। मूल निदर्शन से उप-निदर्शन की तुलना करके देख लिया जाता है कि वह कहाँ तक विश्वसनीय है।

(4) सामाजिक-राजनैतिक मानकों के अध्ययन की समस्या
(Problem of Studying Socio Political Norms)

अनेक राजनैतिक विषयों एव समस्याओं की तरह निदर्शन-पद्धति से सामाजिक एव राजनैतिक मानकों का भी अध्ययन नहीं किया जा सकता। जिन इकाइयों को निदर्शन में शामिल किया जाता है, वे अपने सकुचित क्षेत्र, व्यवहार एव कार्य को ही समझती हैं। समस्त सगठन या व्यवस्था के उद्देश्यों, सकेतों या नैतिक मानकों के विषय में उनका ज्ञान बहुत सीमित होता है। यही बात बड़े समूहों, नौकरशाही सगठनों आदि पर भी लागू होती

है।[20] पीटर ब्लाउ, डाल्टन, गोल्डनर आदि ने संगठनों का अध्ययन करने में सम्भावना-निदर्शनों का प्रयोग नहीं किया है। इसका एक कारण, सोबर्ग एवं नेट के अनुसार यह हो सकता है कि ये सभी संगठन प्रायः अलोकतन्त्रात्मक ढंग से गठित होते तथा काम करते हैं। विभिन्न स्तर पर ज्ञान, अधिकार, दायित्व आदि असमान ढंग से बिखरे होते हैं। केवल शीर्षस्थ व्यक्ति या नेता ही संगठनों को समग्र दृष्टिकोण से देख पाते हैं। अन्य लोगों के लिए निष्पक्ष होकर तथा मानकीय दृष्टि से समग्र संगठन को देखना कठिन होता है। यह कार्य केवल महत्त्वपूर्ण एवं केन्द्रीय व्यक्तियों को सूचनादाता बना कर ही किया जा सकता है। ऐसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों का पता निदर्शन से नहीं लगाया जा सकता है। सम्भवतः इस कार्य में उस क्षेत्र के अनुभवी, प्रतिष्ठित तथा निष्पक्ष लोगों के एक निर्णायक-मण्डल से सहायता ली जा सकती है, यद्यपि ये लोग भी यथास्थितिवादी होंगे तथा परिवर्तन से दूर रहना चाहेंगे।

ऐसी समस्याओं का समाधान अन्य प्रविधियों को अपनाकर किया जाना चाहिए। पूर्व अध्यायों में शोध प्रक्रिया के अन्तर्गत सामान्य प्रविधियों का विवेचन किया गया था। उन्हें अपेक्षाकृत सीमित क्षेत्र में लागू करने के लिए निदर्शन प्रणाली को अपनाया जाता है। किन्तु राजनीति के तथ्य इतने समरूप, सरल, मूर्त अथवा बोधगम्य नहीं हैं कि वे इन पद्धतियों एवं प्रविधियों मात्र से ही समझ लिए जायें। अनेक राजनीतिक तथ्यों, इकाइयों आदि का गहन अध्ययन करना आवश्यक होता है। अगले अध्याय में गहन-शोध-प्रविधियों का विवेचन किया जायेगा।

सन्दर्भ

1. Gerald Hursh–Cesar and Prodipto Roy, 'Problems in Sampling', in Third World Surveys, Hursh—Cesar and Roy, eds., op. cit, pp. 189-245.
2. Sjoberg and Nett, op cit, p. 129.
3. Margaret J Hagood and David O Price, Statistics for Sociologists, rev ed, New York, Holt Rinehart and Winston, 1952, pp 193-95, 287 94 and 419-23
4. S L Verma The Board of Revenue for Rajasthan, New Delhi, S Chand & Co, 1974, Philip Selznick, T V A and the Grass Roots, Berkeley, University of California Press, 1949; and Alvin W. Gouldner, Patterns of Industrial Bureaucracy, New York, Free Press, 1954.
5. Samuel A Stoufler, Communism, Conformity and Civil Liberties, New York Wiley, Science Editions, 1966, Floyd Hunter, Community Power Structure, Chapel Hill, University of North Corolina Press, 1953, and Nelson W Polsby, Political Power and Political Theory, New Haven, Yale, 1963.

6 Frank W Moore, ed., Readings in Cross-Cultural Methodology, New Haven, H R A F Press, 1961
7. Seymour M Lipset, "The Biography of a Research Project : Union Democracy" in Phillip E. Hammond, ed, Sociologists at Work, New York, Basic Books, 1964, Chap. 4
8 Oscar Lewis, Life in a Mexican Village Tepozlan Restudied, Urbana, Ill, University of Illinois Press, 1951.
9 Elihu Katz and Paul F Lazarsfeld, Personal Influence, New York, Free Press, 1955, p 235
10 Evon Z Vogt and Ethel M Albert, eds People of Rimrock : A Study of Values in Five Cultures, Cambridge, Mass, Harvard, 1966, pp 1-2
11. Goode and Hatt, op cit, p 209.
12 Young, op cit, p 302
13 M J Slonim, Sampling in a Nutshell, New York : Simon and Shuster, 1960
14 Lumberg, op. cit, p. 135.
15 देखिये पीछे, पृ 2
16 Robrt O Blood, Jr, & Ronald M Wolfe, Husbands and Wives, New York, Free Press, 1960.
17. Leslie Kish, Survey Sampling, New York, Wiley, 1965
18 Frederick F Stephan and Phillip J McCarthy, Sampling Opinion, New York, Wiley, Science editions, 1963, p 103
19 Samuel A Stouffer, Communism, Conformity and Civil Liberties, New York, Wiley, Science Editions, 1966, and Paul F Lazarsfeld and Wagner Thielens, Jr, The Academic Mind, New York, Free Press, 1958
20 W Richard Scott, "Field Methods in the Study of Organizations", in James G March, ed, Handbook of Organizations, Chicago, Rand McNally, 1965, Chap 6

अध्याय 12

गहन-शोध : अन्तर्वस्तु विश्लेषण, प्रक्षेपी प्रविधियाँ एवं व्यक्तिवृत्त अध्ययन

[Depth-Research : Content Analysis, Projective Techniques and Case-Study]

भौतिक घटनाओं या तथ्यों की तुलना में राजनैतिक घटनाएँ (आंशिक रूप से भौतिक या अवलोकन योग्य होते हुए भी) अधिक अमूर्त, जटिल, परिवर्तनशील, गुणप्रधान तथा अमापनीय होती है। भौतिक तथ्यों को तो सूक्ष्म यन्त्रों एवं साधनों द्वारा किसी-न-किसी तरह अनुभव करके परख या 'अवलोकन' कर लिया जाता है, किन्तु राजविज्ञान की मूल विषयवस्तुएँ अवलोकनीय न होकर भावात्मक रूप से अनुभव योग्य होती हैं। उदाहरण के लिए, शक्ति, प्रभाव, राष्ट्रीयता, सार्वजनिक हित, एकता आदि अपने मूल स्वरूप में अमूर्त तथा भावना-प्रधान हैं और इन्हें भौतिक उपकरणों से देखा परखा नहीं जा सकता। यही कारण है कि राजनीतिक अनुसन्धान में गुण गणनात्मक प्रविधियों (Quality quantitative-tehniques) का होना तथा विकसित किया जाना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, ऐसी पद्धतियों, प्रविधियों आदि का विकास किया जाना चाहिए जो गुणात्मक, भावात्मक, अमूर्त या मानसिक तथ्यों का पता लगा सकें तथा उन्हें बाह्य प्रतीकों, संकेतों या गणना में प्रकट कर सकें। मनुष्य में विभिन्नताओं के होते हुए भी, प्रकृति या स्वभाव सम्बन्धी सामान्य विशेषताएँ होती हैं। उसकी कतिपय प्रवृत्तियाँ, इच्छाएँ, इन्द्रियाँ, अनुभव करने की क्षमता तथा उनके अनुकूल आचरण करने या न करने की शक्ति न्यूनाधिक रूप से सभी लोगों में पायी जाती है। इसीलिए ऐसी प्रविधियों का प्रयोग सम्भव एवं वांछनीय है। इनके द्वारा अध्ययन की जाने वाली सामग्री या वस्तुएँ मानवीय अनुभव के दायरे में हैं, अतएव उनको जानना सम्भव है। मानव-इन्द्रियों से सम्बद्ध अनुभव से परे की अमूर्त वस्तुएँ, जैसे, आत्मा, परमात्मा आदि तक इन प्रविधियों द्वारा नहीं पहुँचा जा सकता। मानव के द्वारा अनुभव किये जाने योग्य अमूर्त वस्तुओं का अध्ययन करने के लिए कतिपय प्रविधियाँ विकसित की गयी हैं। इनमें से अन्तर्वस्तु विश्लेषण (Content analysis), प्रक्षेपी प्रविधियाँ (Projective techniques), तथा व्यक्तिवृत्त अध्ययन (Case study) प्रमुख हैं।

वस्तुतः ये प्रविधियाँ सर्वथा पृथक् और भिन्न न होकर पूर्ववर्णित पद्धतियों एवं प्रविधियों की पूरक हैं। पूर्ववर्णित प्रविधियाँ बाह्य पक्ष पर ध्यान केन्द्रित करती हैं, किन्तु उनका महत्त्व आन्तरिक, गुणात्मक, अमूर्त तथा मानसिक तथ्यों के कारण ही होता है। यदि हम प्रत्यक्ष अवलोकन में किसी को भूख हड़ताल या दंगा करते हुए देखते हैं तो हम उनके मानसिक स्वरूप या स्थिति का वैचारिक अनुमान करके ही महत्त्वपूर्ण तथ्य मानकर

अवलोकन करते हैं। इसी प्रकार, यदि शोधकर्त्ता किसी से साक्षात्कार या प्रश्न करता है, तो भी वह उसकी मानसिक प्रतिक्रिया या अनुक्रिया को जानने के लिए ही ऐसा करता है।

(1) अन्तर्वस्तु विश्लेषण (Content Analysis)

लिखित या व्यक्त विषय सामग्री का विश्लेषण किसी न किसी रूप में प्राचीनकाल से ही किया जाता रहा है। इसका सम्बन्ध व्यक्त सचारण (Express Communication) या किसी के लिए अभिव्यक्त विचारों की प्रक्रिया में है। इन्हें सकुचित अर्थों में सूचना या सम्प्रेषण भी कहा जा सकता है। सचार या सचारण (Communication) प्रत्येक समाज समुदाय, समूह, वर्ग या व्यवस्था का प्राणतत्त्व होता है। समूह, सस्थाएँ, सगठन, परिवार आदि सचारण के द्वारा ही गतिविधि करते है। प्रत्येक समूह तथा उसकी इकाई सचारण को समझकर ही अपनी क्रिया करती है। सचारण-बोध की इसी प्रक्रिया को शोध-पद्धति-विज्ञान (Research methodology) की भाषा में अन्तर्वस्तु-विश्लेषण या विषय-सामग्री-विश्लेषण (Content analysis) कहा जाता है। यह एक बहुउद्देश्यीय अनुसधान-पद्धति है, जो एक साथ ही तथ्यों के निर्माण की क्रिया एव सकलन की प्रविधि है। इनके साथ वह विश्लेषण प्रणाली भी है।*

इसका महत्त्व इसी से ज्ञात हो जाता है कि सबसे पहले इसका व्यवस्थित प्रयोग 1740 ई में किया गया। उसके बाद वर्तमान शताब्दी में इसका प्रयोग 2 5,13 8,22 8 तथा 43 3 प्रतिशत के हिसाब से बढता हुआ पिछले छठे दशक में 96 3 तक पहुँच गया। वर्तमान शताब्दी में इसका प्रयोग सन् 1926 में मेल्कोम विल्ली ने समाचार-पत्रों के अध्ययन में किया था। उसके सन् 1930 में इंग्लैण्ड तथा सन् 1930–40 की अवधि के दौरान हैरोल्ड डी लासवेल (Harold D Lasswell) तथा उसके साथियों ने प्रयोग किया। प्रारम्भ में इस प्रविधि का प्रयोग समाचार-पत्रों तथा जन सचारण (Mass Communication) के माध्यमों का अध्ययन करने के लिए किया। द्वितीय महायुद्ध के बाद इसका प्रयोग सभी क्षेत्रों—सगीत, साहित्य, शिक्षा, रेडियो-कार्यक्रम आदि में किया जाने लगा। एक शोध प्रविधि के रूप में इसका प्रयोग राजनीति विज्ञान के अतिरिक्त समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान के द्वारा किया जाता है।[1]

---

*Content analysis is a research technique for the objective, systematic and quantitative description of the manifest content of communication —Berelson

Content analysis is a research technique for the systematic, objective and quantitative description of the content of research data precured through interviews questionnaires, schedules, and other linguistic expressions, written or oral —Young

Content analysis is an objective research technique for infering the characteristics, causes, and effects of communications

—Ole Holsti

अन्तर्वस्तु विश्लेषण : परिभाषा एवं व्याख्या
(Content analysis : Definition and Explanation)

अन्तर्वस्तु विश्लेषण, मोटे तौर पर लिखित सामग्री को सावधानीपूर्वक पढकर अपनी अध्ययन समस्या से सम्बन्धित तथ्यो को निकालने तथा उपयोगी निष्कर्षों तक पहुँचने की प्रक्रिया है। कैपलन के अनुसार, यह 'राजनीतिक बातचीत का सांख्यिकीय है।' वेपल्स एव बेरेलसन के शब्दो मे, उसका उद्देश्य *'पाठकों या श्रोताओं को प्रदान की जाने वाली प्रेरणाओं* की प्रकृति तथा सापेक्षिक सत्य को वैषयिक रूप मे प्रकट करना है।'[2] बर्नार्ड बेरेलसन के अनुसार, विषयवस्तु-विश्लेषण 'सचारण मे व्यक्त सामग्री का वस्तुपरक, व्यवस्थित तथा मात्रात्मक विवरण देने वाली शोध-प्रविधि है।'[3] यग की दृष्टि मे, यह 'साक्षात्कारो, प्रश्नावलियो, अनुसूचियो तथा दूसरी लिखित या मौखिक भाषायी अभिव्यक्तियो द्वारा उपलब्ध शोध सामग्री की अन्तर्वस्तु (Content) की व्यवस्थित, वस्तुपरक तथा मात्रात्मक वर्णन की अनुसन्धान-प्रविधि (Research technique) है।'[4] कीटराइट के अनुसार, यह 'सकेतात्मक व्यवहार का वैषयिक, व्यवस्थित तथा परिमाणात्मक अध्ययन' है। जेनिस के दृष्टिकोण से इसमे सकेत-वाहनो, जैसे, भाषा, शब्द आदि को 'केवल निर्णयो के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।' विश्लेषण के परिणाम उन सकेतो के वर्गों के बार-बार घटित होने को बताते हैं। केरलिंजर ने भी इस प्रविधि को 'सचारण का व्यवस्थित, वस्तुनिष्ठ तथा परिमाणात्मक अध्ययन एव विश्लेषण' माना है। वार्क्स ने सक्षेप मे, इसे 'सचारण सदेशो का वैज्ञानिक विश्लेषण कहा है।' यह एक प्रक्रिया है जिसम, स्टोव के मतानुसार, एक प्रदिष्ट (Given) सन्देश या प्रलेख (Document) मे निहित विशेष प्रसगो, मनोवृत्तियो तथा विषयो का सापेक्षिक आकलन किया जाता है। उपर्युक्त परिभाषाओ के प्रकाश से अन्तर्वस्तु विश्लेषण की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी जा सकती है —

(i) यह एक क्रमबद्ध, व्यवस्थित एवं मात्रात्मक बोध प्रविधि है,

(ii) यह सचारण या भाषागत अभिव्यक्तियो से प्राप्त विषयवस्तु से सम्बन्धित होता है,

(iii) इसमे बाहरी तौर पर अभिव्यक्त या प्रकट सचारण का अध्ययन एव विश्लेषण किया जाता है,

(iv) यह अवलोकनीय होने के कारण सत्यापनीय, प्रामाणिक एव वस्तुनिष्ठ माना जाता है,

(v) यह गुणात्मक कथनो को गणनात्मक या मात्रात्मक तरीके से प्रस्तुत कर देता है।

केरलिंजर के मतानुसार यह एक अवलोकन एव मापन प्रविधि है। किन्तु यह कोरी विश्लेषण पद्धति नही है। इसके अन्तर्गत शोधकर्त्ता व्यक्तियो या समूहो के व्यवहारो का प्रत्यक्ष अवलोकन या साक्षात्कार करने के बजाय उनके सचारो को प्राप्त करता है। यद्यपि एक प्रकार से, शोधकर्त्ता, अवलोकन या साक्षात्कार कर रहा है, किन्तु यह सब उसी तक सीमित है। इस कारण, विषय-सामग्री का गहन एव सूक्ष्म अध्ययन किया जा सकता है। होल्स्टी के अनुसार, यह सचार की विशेषताओ, कारणो तथा प्रभावो से सम्बन्धित निष्कर्ष निकालने के लिए प्रयुक्त एक वस्तुपरक शोध प्रविधि है।[5] यह सचारण फिल्मों, दूरदर्शन, राजदूतों के सन्देशों, भाषाओं, पत्रों अथवा भाषा के दूसरे प्रकारो आदि माध्यमो से हो सकता है। अपने सरलतम रूप मे, *विषय-सामग्री विश्लेषण* मे अवलोकन किये जाने वाले

प्रलेखो का अध्ययन, सन्देशो का वर्गीकरण या सकेतीकरण किये जाने वाले सवर्गों (Categories) का निर्माण तथा सन्देशो मे इन सवर्गों के अन्तर्गत आने वाले दृष्टान्तो का परिगणन होना है। यह एक वस्तुपरक शोध-प्रविधि है क्योकि इसकी कार्यविधि (Procedure) ऐसी होती है कि उसका अनुपालन करके कोई भी वैसे ही निष्कर्षों को प्राप्त कर सकता है। सामाजिक एव राजनैतिक घटनाएँ (Phenomena) गुणात्मक एव अमूर्त्त होती हैं। इस प्रविधि के द्वारा उनको गणनात्मक या परिमाणात्मक तरीके से प्रस्तुत किया जा सकता है। राजनीति विज्ञान की परम्परागत विधियो को अन्तर्वस्तु विश्लेषण ने आनुभविक एव गणनात्मक दिशा की ओर एक महत्वपूर्ण मोड दिया है।

अब तक राजनीति विज्ञान के वैचारिक चिन्तन, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति आदि क्षेत्रो मे अधिकाश लेखन, विश्लेषण, अन्वेषण आदि व्यक्तिपरक (Subjective) अन्तर्प्रज्ञात्मक (Intuitive) तथा भावनात्मक ढग से होता रहा है। इन क्षत्रो मे वाद विवाद धीरे धीरे अस्पष्ट, अनिश्चित तथा व्यक्तिगत होना है। किसी वक्तव्य के पक्ष मे तर्क का उत्तर दूसरे व्यक्तिपरक तर्क से दिया जाता है। एक उद्धरण के सामने दूसरा प्रतिउद्धरण रख दिया जाता है। वस्तुत वास्तविकता एव सत्य का स्थान व्यक्तियो के पूर्वाग्रह, मिथ्या-झुकाव गलत फहमियाँ आदि ले लेती हैं। विवाद, अनुसन्धान आदि किसी निष्कर्ष पर पहुँचे बिना ही समाप्त हो जाते हैं। ऐसी स्थिति मे, अन्तर्वस्तु विश्लेषण वक्तव्यो, वाक्यो, शब्दो तथा अन्य अभिव्यक्तियो का वस्तुपरक विश्लेषण, परिगणन (Enumeration) आदि करके सही निष्कर्ष निकालने मे सहायता देता है। यही कारण है कि इसका प्रयोग निरन्तर बढता जा रहा है। सगणको या कम्प्यूटरो (Computers) ने अन्तर्वस्तु विश्लेषण के प्रयोग को अत्यधिक सुगम, सुविधाजनक एव उपयोगी बना दिया है।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण की प्रक्रिया (Procedure of Content analysis)

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण मे, सर्वप्रथम समस्या, विषय या लक्ष्य को ध्यान म रखकर शोध-प्रकल्प (Research design) बनाया जाता है। दूसरे चरण म, सम्बन्धित तथ्यो का सकलन आरम्भ होता है। यह चयन प्रलेखों, सन्देशो, वक्तव्यो, भाषणो आदि मे से किया जाता है। तीसरे चरण मे, विभिन्न इकाइयो शब्द, वाक्य, पात्र, प्रसग आदि का निर्धारण किया जाता है। चौथे चरण मे, इन इकाइयो (Units) को सवर्गों (Categories) मे विभाजित किया जाता है, जैसे, तटस्थ राष्ट्रो के परमाणु-शास्त्र विषयक वक्तव्य अथवा साम्यवादी देशों के सयुक्त राष्ट्र सघ विषयक वक्तव्य। पाँचवें चरण मे, इन सवर्गों का उपयोग एव प्रयोग किया जाता है कि ये कहाँ तक शोध विषय की दृष्टि से फलदायक हैं? यदि वे अधिक उपयोगी नही सिद्ध होते हैं तो उनमे सशोधन, परिवर्तन, स्थानापन्न आदि कर दिया जाता है। छठे चरण म, सवर्ग एव इकाइयो की विषयवस्तु का परिमापन (Quantification) अथवा मापन (Measurement) किया जाता है। इसके लिए साख्यिकीय विधियो का सहारा लिया जाता है। सातवें चरण म, परिमाणात्मक या मात्रात्मक मापन कर लेने के पश्चात् तथ्यो का उचित वर्गीकरण एव सारणीयन कर लिया जाता है। इससे तथ्यो का विश्लेषण करने मे सुगमता हो जाती है। अन्तिम चरण म, निष्कर्ष, सामान्यीकरण आदि निकाले जाते हैं तथा प्रतिवेदन (Report) तैयार की जाती है। यह प्रतिवेदन वैज्ञानिक ढग मे, पद्धतियों तथा प्रमाणो का विवरण देते हुए तैयार किया जाता है, ताकि जरूरत होने पर अन्य कोई शोध-कर्ता या अन्तर्वस्तु विश्लेषण पुन.

जांच या सत्यापन कर सके। मेरियट ने प्रक्रिया की छः अवस्थाओं में, (1) समस्या निर्धारण, (2) जनसंख्या की परिभाषा, (3) जनसंख्या का सवर्गीकरण, (4) विश्लेषण इकाइयों को निश्चित करना, (5) जनसंख्या का निदर्शन; तथा, (6) आधार सामग्री (Data) को विश्लेषण को गिनाया है।[6]

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण का शोध-प्रकल्प (Research design for content analysis)

राजवैज्ञानिक अन्तर्वस्तु विश्लेषण केवल अनुकूल विषयों के अध्ययन में ही काम में लाया जाता है। यदि अन्य प्रविधियों से उस विषय का अध्ययन अधिक प्रामाणिक ढंग से किया जा सकता है, तो इस प्रविधि को काम में लाना उचित नहीं होगा। प्राय: जहाँ विवादास्पद मामले या प्रमाणों के साथ प्रस्तुतिकरण की आवश्यकता हो, वहाँ अन्तर्वस्तु-विश्लेषण का प्रयोग अधिक उपयुक्त रहता है। किन्तु इसका उपयोग तीन बातों के होने पर ही किया जाना चाहिए– (1) एक निदर्शन का कुछ समय तक लगातार अध्ययन करना हो, (2) कुछ सहायक शोधकर्त्ता उपलब्ध हो, तथा (3) जब मूल तथ्य-सामग्री का अवलोकन या साक्षात्कार करने में कठिनाई हो।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण के शोध प्रकल्प में तीन बातें होती हैं––(1) सचारण की जानकारी एवं विशेषताएँ, (2) सन्देश भेजने की पृष्ठभूमि एवं कारण, तथा (3) सचारण का प्रभाव। ये तीन बातें सचारण (Communication) की प्रकृति से उत्पन्न होती हैं। सचारण के विश्लेषण में एक सूत्र है 'क्या-कैसे-किसको क्यों कौन-क्या परिणाम हुआ' (What How-Towhom-Why-Who-With–What Effect) सचारण का विश्लेषण करने के लिए उसके छ मूल तत्त्वों पर ध्यान दिया जाना चाहिए––(1) स्रोत (Source) या सन्देश भेजने वाला, (2) सकेतन-प्रक्रिया (Encoding process), (3) सन्देश (Message), (4) सचारण-मार्ग (Transmission channel), (5) सदेश का प्राप्त-कर्त्ता या पहचान-कर्त्ता (Recepient or detector); तथा, (6) असकेतन प्रक्रिया (Decoding message)। यह उपर्युक्त सचारण-सूत्र का ही विशिष्ट रूप है, किन्तु लासवेल एवं टर्नर ने इसमें एक सातवाँ आयाम 'क्यों' (Why) और जोड़ा है।

शोधवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'क्या' (What) के अन्तर्गत सचारण की विशेषताओं को जाना जाता है। इससे सचारण की विषयवस्तु (Content, में प्रवृत्तियों (Trends) का विवरण दिया जा सकता है। 'क्या' का प्रश्न अथवा प्रकल्प का अंश सचारण-स्रोत की विशेषताओं से सन्देश को जोड़ता है तथा निर्धारित मापदण्डों के सन्दर्भ में सचारण को तौलना या जाँचता है। केवल इसी के अन्तर्गत समाचार-पत्रों के सम्पादकीय लेखों का अध्ययन किया तथा उनसे युद्ध, प्रजातन्त्र, विदेश नीति आदि के सम्बन्ध में बदलती हुई प्रवृत्तियों का पता लगाया जा सकता है। 'कैसे' (How) के अन्तर्गत सचारण में अनुनय करने, (Persuasion) या समझाने की शैलियों एवं प्रविधियों का विवेचन किया जाता है। इस क्षेत्र में लासवेल ने प्रथम महायुद्ध में प्रचार शैलियों का अध्ययन करके उनके लक्ष्यों को ज्ञात किया था।[7] 'किनको' (To whom) में सन्देश के लिए उपयुक्त श्रोताओं तथा सचारण-प्रतिमानों को ढूँढा जाता है। इसके समुचित ज्ञान के अभाव में, प्रचार, जैसा कि सामर्टन ने पता लगाया, उल्टा असर देने लगता है। प्रभावी सचारण के लिए यह जानना आवश्यक है कि किसी सचारण या उसकी विषय-वस्तु के लिए कैसे श्रोता या पाठक होने

चाहिए। उपर्युक्त तीनों प्रश्न– क्या ? कैसे ? और किनको ? सचारण की अन्तर्वस्तु (Content) से सम्बन्ध रखते हैं।

शोध प्रकल्प के दूसरे भाग में क्यों तथा कौन से सम्बन्धित समस्याएँ आती हैं। क्यों (Why) तथा 'कौन' में सचारण के पूर्ववृत्तों (Antecedents) के विषय में समस्याएँ उठायी जाती हैं। 'क्यों' से सम्बन्धित चार बातों का अध्ययन किया जाता है (क) राजनैतिक तथा सैनिक गुप्त सूचनाओं की प्राप्ति, (ख) व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का विश्लेषण, (ग) सांस्कृतिक परिवर्तन के पारस्परिक पक्ष, तथा (घ) कानूनी परामर्श को बढ़ावा देना। इन समस्याओं के अध्ययन से सचारण करने से सम्बन्धित मूल्यों, अभिप्रायों तथा राजनीतियों का पता चल जाता है। 'कौन' में सचारण करने वाले व्यक्तियों के बारे में शंकाओं का समाधान किया जाता है कि किसने ऐसा कहा ? कई बार गुमनाम से, गलत नाम से या बिना नाम-पता बताये सचारण किया जाता है।

शोध प्रकल्प का तीसरा भाग सचारण के प्रभाव से सम्बन्ध रखता है। इसमें 'कितने प्रभाव से' (With what effect) का समाधान किया जाता है। स्पष्टतः इसमें सचारण के प्रभावों के बारे में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। इस कार्य के लिए तीन प्रकार की शोध समस्याओं को ध्यान में रखा जाता है (क) पठनीयता की जाँच, (ख) सचारण की गति या प्रवाह का विश्लेषण, तथा (ग) सचारण के प्रति अनुक्रियाओं (Responses) का आकलन (Assessment)। इसके लिए विषय सामग्री का सकेतन (Coding) किया जाता है। उसे विश्लेषण-सवर्गों एवं इकाइयों, परिगणन, विश्वसनीयता आदि की दृष्टियों से अध्ययन किया जाता है।

इस प्रकार अन्तर्वस्तु विश्लेषण केवल विवरण देने के बजाय पद्धति वैज्ञानिक उन्नत तथा सैद्धान्तिक दृष्टि को प्राप्त कर रहा है। उसे व्यापक समस्याओं के अध्ययन के योग्य मान लिया गया है। इसे विभिन्न विषयों में प्रयोग किये जाने के अलावा परिकल्पनाओं के परीक्षण में भी काम में लाया जाता है। कई बार इसे अन्य शोध प्रविधियों के साथ प्रयोग किया जाता है। आजकल स्वचालित सगणक अन्तर्वस्तु विश्लेषण का काम बड़ी बारीकी, कुशलता एवं शीघ्रता के साथ करने लग गये हैं। ये सचारण की विषय-सामग्री का विवरण देने तथा उनके कारणों के बताने के साथ-साथ प्रभावों के बारे में निष्कर्ष तैयार करने का काम भी करने लग गये हैं।

विश्लेषण की इकाइयाँ (Units of Analysis)

विश्लेषण की इकाइयों के स्वरूप या सख्या का निर्णय शोधक पर निर्भर होता है। किन्तु सामान्यतः ये इकाइयाँ 5 या 6 होती हैं, यथा, शब्द, वाक्य, अनुच्छेद, पात्र, मद, स्थान और समय। शब्द (word or symbol)—विश्लेषण-सामग्री में से कतिपय शब्दों या प्रतीकों (Key symbols) को चुन लिया जाता है, जैसे लोकतन्त्र, तानाशाही, युद्ध आदि। अध्ययन करते समय यह देखा जाता है कि उनकी आवृत्ति (Frequency) कितनी बार हुई ? लासवैल ने अपने अध्ययन (World attention survey) में आधुनिक राजनीति के प्रमुख प्रतीकों के रूप में स्वतन्त्रता, सवैधानिक सरकार, साम्यवाद, राष्ट्रीय समाजवाद आदि को चुना था। वाक्य एव अनुच्छेद (Substance or paragraph) में निश्चित विचार को व्यक्त करने वाले शब्द समूह को चुना जाता है। जैसे 'लोकतन्त्र बनाम

तानाशाही' का नारा शब्द-समूह है। पात्र (Character) में व्यक्ति या व्यक्ति समूह शोध की इकाई होता है। जैसे, जवाहरलाल या जयप्रकाश नारायण अथवा नक्सलवादी दल पात्र सम्बन्धित इकाइयाँ हैं। मद (Item) के अन्तर्गत पुस्तक, पत्रिका, लेख, भाषण, रेडियो कार्यक्रम सम्पादकीय, समाचार-पत्र, कोई प्रचार सम्बन्धी बात आदि को रखा जाता है। मूल विषय (Theme) में संचार-मूल्यों, अभिवृत्तियों आदि को रखा जाता है। स्थान एवं समय (Place and time) में विषय सामग्री के प्रस्तुतिकरण में, लेख छपवाते समय छोड़े गये, स्थान, समय का अन्तराल आदि को लिया जाता है।

विश्लेषण के संवर्ग (Categories of Analysis)

अन्तर्वस्तु विश्लेषण में केवल इकाइयों का चयन एवं अध्ययन करना ही पर्याप्त नहीं होता, इन इकाइयों को कतिपय संवर्गों या बड़े वर्गों के अन्तर्गत रखा जाता है, ताकि वर्गीकरण करने में सुविधा हो सके। ये संवर्ग अनेक आधारों पर बनाये जाते हैं, यथा,

(1) विषयवस्तु तथा उसका स्वरूप,
(2) स्तर—जैसे, नैतिक-अनैतिक, बलशाली-दुर्बल, अनुकूल-प्रतिकूल आदि,
(3) मूल्य—सत्ता, धन, प्रेम, जीवन आदि से सम्बन्धित,
(4) व्यक्तित्व—स्वार्थी, परार्थी, तानाशाह, नौकरशाह आदि,
(5) सामग्री स्रोत— दलीय साहित्य, सरकारी गजट, जनगणना या निर्वाचन सम्बन्धी, आँकड़े,
(6) कथन शैली—सकारात्मक, नकारात्मक, आज्ञा, उपदेश आदि
(7) वर्ग—श्रमिक, विद्यार्थी, नेता, सांसद, मन्त्री आदि।

उपर्युक्त इकाइयों एवं संवर्गों के निर्धारण का उद्देश्य संचारण की विशेषताओं तथा उसके पूर्ववृत्तों तथा कारणों को जानना होता है। इससे संचारक (Communicator) के व्यक्तित्व एवं अभिप्रायों का पता लग जाता है। राजदूत मुख्यतः ऐसे ही दृष्टिकोण को अपनाये रहते हैं। यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि जो कुछ सन्देशों में कहा जा रहा है, वह कहीं दिखावा या भुलावा मात्र तो नहीं है। शब्द लेखक के विश्वासों का प्रतिनिधित्व (Representational model) करते हैं अथवा उसके प्रभाव के उपकरण (Instrumental model) हैं ? यदि संचारण लेखक के प्रभाव का उपकरण मात्र है तो उसके आधार पर इसके मूल्यों, भावनाओं आदि का अनुमान लगाना धोखा मात्र है। इस विश्लेषण से संचारण-प्रभावों का भी अध्ययन किया जाता है। किन्तु जिस प्रकार सन्देश और अभिप्राय को समान मानना भ्रमपूर्ण हो जाता है, उसी तरह सन्देश और प्रभाव को तत्सम मानना भी भूल हो सकती है। प्रचार मात्र कर देने से लोग अनुयायी या अनुगामी नहीं बन जाते।

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण की उपयोगिता एवं सीमाएं
(Utility and Limitations of Content Analysis)

अन्तर्वस्तु-विश्लेषण एक वस्तुपरक, गुण-गणनात्मक, सरल एवं उपयोगी अनुसंधान-प्रविधि है। इसमें गुणात्मक विषयों का गणनात्मक ढंग से अध्ययन किया जाता है। संचार के विभिन्न माध्यमों, उनकी प्रकृति, स्रोतों तथा क्षमता का स्पष्टीकरण हो जाता है। इनके विश्लेषण से यह पता चल जाता है कि किस प्रकार के श्रोताओं के लिए कौनसा माध्यम

एवं शैली अधिक उपयुक्त है। इस प्रविधि का उपयोग अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों एवं राजनीति के क्षेत्र में प्रचार-साधनों तथा उनके प्रभावों का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। एक अवधारणात्मक परियोजना (Conceptual Scheme) बनाकर उनके तुलनात्मक प्रभावों का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रचार-सामग्री का सामान्य जनता पर प्रभाव तथा जनमत को जानने के लिए भी उसे प्रमुख उपकरण बनाया जा सकता है। आजकल इसके द्वारा व्यक्तियों तथा समूहों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति विशेष का रुझान किस तरफ है? वह किन-किन विषयों में रुचि रखता है? समुदाय या समूह की क्या क्या मनोवृत्तियाँ झुकाव, पूर्वाग्रह, गतिविधियाँ हैं? आदि बातें सामग्री-विश्लेषण से ज्ञात की जा सकती हैं।

विदेश नीति के क्षेत्र में माइकल ब्रेशर (Michael Brecher) तथा आर होल्स्टी ने निर्णय या निश्चयकर्त्ताओं की छवि (Image) तथा प्रत्यक्षण (Perception) जानने तथा उनके विशेष मामलों पर व्यवहार सम्बन्धी पूर्वकथन करने के लिए किया है।[7] ब्रेशर ने विश्व राजनीति पर कृष्ण मेनन के दृष्टिकोण तथा होल्स्टी ने सोवियत-संघ तथा जॉन फास्टर डलेस पर ध्यान केंद्रित किया है। ब्रेशर ने तीन स्तरों पर कृष्णमेनन के दृष्टिकोण का, उसे नेहरू-युग में भारत की विदेश-नीति का प्रभावशाली निर्माता मानकर, अध्ययन किया है, यथा (i) मदों (Items) की आवृत्ति (Frequency) के स्तर पर, (ii) मनोवृत्ति स्तर पर तथा (iii) कारक विश्लेषण (Factor Analysis) के स्तर पर। उसने कतिपय सवर्गों (Categories) का उपयोग किया है—(अ) समसामयिक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था में कर्त्ताओं (Actors) की भूमिका, (ब) विनिश्चय-कर्त्ताओं (Decision-makers) द्वारा प्रयोग किए गए प्रतीक (Symbols), (स) अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था के विभिन्न स्तर (Levels), (द) विनिश्चय-कर्त्ता के मूल्य (Values), (य) रणनीतियाँ (Strategies) तथा (र) प्रमुख समस्याएँ (Issues)। इनके अन्तर्गत अध्ययन करके उसने पूर्वकथन करने की दिशा में कदम उठाये है। होल्स्टी ने जॉन फास्टर डलेस का अध्ययन करने में चार्ल्स ई ओसगुड की 'मूल्यांकन विश्लेषण-प्रविधि'[8] (Evaluative Assertion Analysis) का प्रयोग किया है। इसके लिए उसने डलेस की विश्वास व्यवस्था तथा सोवियत संघ के बारे में उसके प्रत्यक्षणों का अध्ययन किया है। ऐसा करके वह फास्टर डलेस के सोवियत संघ के प्रति स्वाभाविक विद्वेष का तथ्य प्रस्तुत करने में समर्थ हुआ है।

विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की समस्याएं

(Problems of Reliability and Validity)

विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता लाने के लिए परिमाणन (Quantification) को प्रमुखता दी जाती है। परिमाणन करने में पूर्व इकाइयों को एकरूप (Uniform) बनाने का प्रयास किया जाता है। सामग्री विश्लेषण का लक्ष्य संचारण की विशेषताओं का व्यवस्थित एवं वस्तुपरक वर्णन करना है। इसके लिए एक विशेष काल से सम्बन्धित निदर्शन (Sampling) लिया जाता है। निदर्शन लेते समय तीन बातें तय करनी पड़ती हैं। प्रथम, संचारण स्रोत—समाचार-पत्र, पत्रिकाएँ, पुस्तकें, भाषण, रेडियो प्रसारण, फिल्म आदि में से कुछ या सभी निदर्शन के लिए चुन जा सकते हैं। द्वितीय, निदर्शन प्रलेख—यदि संचारण का समग्र अधिक बड़ा है, तो उसमें से कुछ ऐसे प्रलेखों को चुनना होगा, जिनमें विश्लेषण की सभी मदें आ जाएँ। तृतीय, स्वयं प्रलेखों के भीतर में ही निदर्शन लिया जा सकता है,

जैसे किसी पुस्तक के 30 पृष्ठ लिए जा सकते हैं। जिस तरह निदर्शन लिया जाता है, उसे स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए।

विश्वसनीयता (Reliability) का अर्थ यह है कि शोध के निष्कर्ष वस्तुपरक होने चाहिए ताकि कोई भी स्वतन्त्र अवलोकनकर्ता उनका सत्यापन कर सके। यह विश्वसनीयता तीन रीतियों से नापी जा सकती है—(i) व्यक्तिगत तौर पर निर्णायकों की सम्मति लेकर, (ii) मदों का आनुभविक रीति से इस तरह निर्माण किया जा सकता है कि उसके विषय में योग्य निर्णायक एकमत हो सकें, (iii) विश्वसनीयता का एक स्वीकार्य स्तर निर्धारित करके भी उसे प्राप्त किया जा सकता है।

प्रामाणिकता (Validity) किसी उपकरण से जो वस्तु जैसी है उसका उतना ही मापन करने को कहते हैं। यह प्रामाणिकता चार प्रकार की होती है—(1) अन्तर्वस्तु प्रामाणिकता—यह प्रायः विवरणात्मक होती है। (2) पूर्वकथनीय प्रामाणिकता—यह किसी उपकरण की घटनाओं का पूर्वकथन करने से सम्बन्धित होती है। भले ही उनके विषय में साक्ष्य न मिल पाये या वे घटनाएँ घटित न हो रही हों। (3) समवर्ती प्रामाणिकता—यह समय के अलावा अन्य बातों में पूर्वकथनीय प्रामाणिकता के समान होती है। यह प्रामाणिकता विभिन्न स्रोतों के मध्य अन्तर स्पष्ट कर देती है। (4) सैद्धान्तिक प्रामाणिकता—इसे विरचना (Construct) प्रामाणिकता भी कहते हैं। इसका सम्बन्ध प्रामाणिकता के मापन के साथ साथ सिद्धान्त से भी होता है।

अन्तर्वस्तु विश्लेषण में संगणकों का प्रयोग
(Use of Computers in Content Analysis)

अन्तर्वस्तु विश्लेषण जब मानव के द्वारा किया जाता है तो अनेक कठिनाइयाँ एवं सीमाएँ खड़ी हो जाती हैं। इसमें बेहद समय एवं धन खर्च होता है। कुशल संकेतक (Coders) नहीं मिलते। वे शीघ्र ही बार-बार घटित होने वाली इकाइयों को नोट करते-करते थक एवं ऊब जाते हैं। संगणकों द्वारा यह कार्य बड़ी कुशलता के साथ तथा थोड़े ही समय में कर लिया जाता है। संगणकों द्वारा विश्लेषण करने के लिए कई कार्य करने पड़ते हैं। इनका प्रयोग करने में बड़े कड़े अनुशासन एवं शुद्धता की आवश्यकता पड़ती है। इसमें शोध अभिकल्प (Research Design) तथा पदों को बिल्कुल स्पष्ट एवं निश्चित होना चाहिए। केवल आई बी एम (IBM) कार्डों को ही बहु-उद्देश्यीय कार्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है। परम्परागत ढंग से विश्लेषण करने में यह लोचशीलता नहीं होती। संगणकों के प्रयोग से जटिल से जटिल सामग्री का विविध रीतियों से उपयोग किया जा सकता है। कार्डों का परस्पर विनिमय हो सकता है तथा विभिन्न शोधक अपने अनुभवों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। स्वयं शोधकर्ता अनेक कठिनाइयों एवं कठोर श्रम से बच जाता है। संगणक मानव की अपेक्षा निष्पक्ष, वस्तुपरक, त्वरित तथा शुद्ध होते हैं, किन्तु उन्हें उनके खतरों से भी अवगत रहना चाहिए। बैरलसन ने लिखा है कि 'एक पद्धति के रूप में अन्तर्वस्तु विश्लेषण कोई जादुई गुण नहीं रखता, आप जितना उसके भीतर डालते हैं उससे ज्यादा शायद ही पा सकें और कभी-कभी तो कम।'

समस्याएँ (Problems)

अन्तर्वस्तु विश्लेषण में समय का परिभाषित अर्थात् स्पष्ट और निश्चित करने की बड़ी समस्या रहती है। उदाहरण के लिए, यदि 'राष्ट्रीय प्रेस' को समग्र बनाया जाये, तो

उसमें क्या-क्या शामिल किया जायेगा ? जनसंचार के साधनों से निदर्शन (Sampling) लेने के लिए अभी तक अच्छी प्रविधियाँ विकसित नहीं की जा सकी है। यदि सभी अखबारों से 1/10 या 1/30 सामग्री लें तथा अन्य नियन्त्रण भी लागू करें, ताकि प्रत्येक अखबार समस्त समुदायों, क्षत्रों और सस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करे, तो भी वह निदर्शन दोषपूर्ण बना रहेगा। प्रत्येक समाचार-पत्र की अपनी विशेषताएँ, प्रभाव, आकार आदि होता है। दैनिक नवज्योति और टाइम्स आफ इन्डिया एक से नहीं हो सकते। प्रत्येक समाचार-पत्र किसी न किसी दल स सम्बन्धित होता है या विशेष उद्देश्य को लेकर चलता है। वह किसी दल या व्यक्ति विशेष के प्रभाव म होता है। फिर उससे प्राप्त सामग्री निष्पक्ष और वैधिक कैसे हो ? समाज की समस्या भी कष्टकारक है, क्योंकि कई समाचार-पत्र अचानक अपनी नीतियों म परिवर्तन कर देते है। ऐसा समाचार-पत्र कई महिनों पूर्व से ही लेना पड़ेगा। गुणात्मक तथ्यों को गुणात्मक बनाना भी एक कठिन कार्य है। एक अध्ययन के आधार पर निकाले गये निष्कर्ष सभी अध्ययनों पर लागू नहीं किए जा सकते। स्वयं संचार साधनों की अन्तर्वस्तु बड़ी तीव्र गति से परिवर्तित होती है। आज तक किया हुआ अध्ययन शीघ्र ही कालातीत (Out of date) हो जाता है।

(2) प्रक्षेपी प्रविधिया (Projective Techniques)

सामान्यत शोधकर्ता व्यक्तियों के व्यवहार का केवल बाहरी या ऊपरी भाग ही देखता है तथा उसके आन्तरिक स्वरूप का उसके आधार पर अनुमान लगाता है। अवलोकन-कर्त्ता व्यक्ति को बाहरी तौर पर या उसके विशेष प्रतीकों, चिह्नों या विशेषताओं के आधार पर पहिचानता है। किन्तु वह शोधक अवलोकित व्यक्ति या वस्तु के बाह्य व्यवहार को उसके भीतर अमूर्त जगत—विचारों, भावनाओं, इच्छाओं, प्रवृत्तियों आदि से जोड़ने का काम स्वयं करता है। इस तरह अवलोकन (Observation) वस्तुपरक होते हुए भी, शोधक द्वारा उस अवलोकन की व्याख्या करने के कारण, व्यक्तिपरक (Subjective) तथा स्वैच्छिक (Arbitrary) बन जाता है। शोधक की व्याख्या या निर्वचन भ्रामक, व्यक्तिनिष्ठ, स्वयं आरोपित, विलोम अथवा अतिवादी हो सकती है। किस तरह और कौन कह सकता है कि कोई राजनेता (Political Leader) समाजवाद और लोकतन्त्र के नारे इसलिए लगा रहा है कि वह भीतर सम्पत्ति एकत्रित करने तथा अपने विरोधियों से बदला लेने के सपने साकार कर सके। इस तरह, अनुभवपरक शोध तथा उसके वास्तविक अमूर्त अर्थों के मध्य एक चौड़ी और गहरी खाई बनी हुई है। प्रक्षेपी प्रविधियाँ इस खाई को पाटने की दिशा में एक ठोस कदम हैं। मनुष्य के व्यवहार को पूरी तरह से तभी समझा जा सकता है जबकि उसके बाहरी व्यवहार तथा भीतरी व्यवहार दोनों का पता चले और उन दोनों के मध्य अन्तर्सम्बन्ध स्थापित किया जाये।

मनुष्य का व्यवहार बाहरी तौर पर आंशिक रूप से ही दिखायी पड़ता है। उसके व्यवहार का बहुत बड़ा एवं महत्वपूर्ण भाग छिपा रहता है और दिखायी नहीं देता। मनुष्य का चलना, फिरना, बोलना और काम करना तो दिखायी पड़ता है, किन्तु वह क्या सोच रहा है या क्या अनुभव कर रहा है, दिखायी नहीं पड़ता। उसकी इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, आवश्यकताओं आदि का अवलोकन नहीं किया जा सकता। उसके लिखित या मौखिक शब्दों का मर्म भी पूरी तरह स तभी ग्रहण किया जा सकता है जबकि उनके साथ सम्बद्ध भावनाओं एवं विचारों को समझ लिया जाय। अतएव ऐसी पूरक प्रविधियों का होना

आवश्यक है जो मन और मस्तिष्क के भीतर की स्थितियों को भी बताये और इस प्रकार
अवलोकन साक्षात्कार प्रश्नावली आदि प्रविधियो में रही कमियाँ दूर की जा सकें। खुला
व्यवहार भी पूर्ण रूप से तभी समझा जा सकता है जबकि भीतरी व्यवहार के उसी के
अनुरूप होने का आभास हो। फिलिप्स का यह कहना सही है कि कई बार सूचनादाता न तो
अपने मन की बातें बताने के लिए तैयार होता है, या जाने अनजाने गलत उत्तर देता है।
ऐसी स्थिति में उसके आन्तरिक व्यवहार का ज्ञान अन्य सहायक प्रविधियो द्वारा किया जाता
है जिनके द्वारा सूचनादाता अपनी वास्तविक भावनाओ को व्यक्त कर देता है।[9] किन्तु इन
प्रविधियो का विकास एवं प्रयोग राजविज्ञान तथा अन्य समाजविज्ञानो में बहुत कम किया
गया है। इनका क्षेत्र अब तक प्रमुख रूप में मनोविज्ञान ही रहा।[10] इनका मानव-
व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए उपयोग हुआ है।[11]

प्रक्षेपण व्याख्या (Projection Explanation)

प्रक्षेपण' का शाब्दिक अर्थ अपनी मान्य सीमाओ से बाहर फेंकना (Throw out
beyond its norm I boundaries) है। इसका अर्थ है 'उभार' अर्थात् किसी छिपी हुई
या दबी हुई वस्तु का विचार का प्रकट होना। व्यक्तित्व के सन्दर्भ में प्रक्षेपण का भावार्थ है
गुप्त या दबे हुए गुणो विचारो या भावनाओ का उभार। व्यक्तित्व सम्बन्धी तथ्यो को
जानने की प्रविधियो को तीन वर्गों में रखा जाता है—(1) व्यक्तिपरक (Subjective)
प्रविधियाँ जैसे, आत्मकथा, डायरी, पत्र आदि (2) वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रविधियाँ,
जैसे, अवलोकन अनुमापन, समाजमिति पैमाने आदि तथा (3) प्रक्षेपण (Projective)
प्रविधियाँ। प्रथम दो से प्राप्त तथ्य स्वयं उस व्यक्ति पर निर्भर होते हैं, जिनमें वह जाने-
अनजाने कुछ तथ्यो को छिपा लेता है अथवा अपनी या सामाजिक मान्यता के अनुसार
प्रस्तुत करता है। इन दोनो वर्गों से सम्बन्धित प्रविधियो से मनुष्य के अचेतन मन का कुछ
पता नहीं चलता। व्यक्ति के मस्तिष्क का 1/10 भाग अचेतन होता है किन्तु उसके चेतन
या बाहरी भाग पर बहुत प्रभाव डालता है। इस भाग में मनुष्य की प्रेरणाएं, रुचियाँ,
संवेग, विश्वास आदि रहते हैं और ये मनुष्य के व्यवहार को बहुत प्रभावित करती हैं। जब
इन बाहरी या भीतरी कारणो को दबा (Repress) दिया जाता है तो उनका प्रभाव और भी
अधिक गहरा हो जाता है। मानव की इन दमित या अचेतन स्थितियों को जानने के लिए
प्रक्षपी प्रविधियो का विकास किया गया है। इनकी वैचारिक पृष्ठभूमि फ्रायड की विचार-
धारा में जुड़ी हुई है।[12]

मनोविश्लेषक (Psycho analyst) प्रक्षेपण को एक रक्षात्मक युक्ति (Defence
mechanism) कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपनी दबी हुई ऐसी
इच्छाओ भावनाओं और प्रवृत्तियों का जो किसी परिस्थिति का सामना करने में असफलता
के कारण अचेतन मन (Unconscious mind) में रह जाती हैं, किसी नई परिस्थिति
या दशा में अभिव्यक्त कर देता है। उन्हें एक नया मोड़, स्वरूप या अभिव्यक्ति दे देता है।
जैसे, हिटलर की सारी गतिविधियो को उसके दबे हुए व्यक्तित्व के प्रक्षेपण या उभार के रूप
में देखा जा सकता है। कई बार ऐसे व्यक्तियो को मनस्तापीत या मनोविकृत (Neurotic)
व्यक्ति कहा जाता है। चूंकि प्रायः सभी व्यक्ति परिस्थितिवश अपनी अनेक इच्छाओं,
भावनाओं आदि को दबाने के लिए विवश हो जाते हैं, वे न्यूनाधिक रूप से मनोविकृत माने

जा सकते हैं। वे अपनी दमित इच्छाओं एवं प्रवृत्तियों का सचेतन व्यवहार में प्रक्षेपण करते रहते हैं। एक मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति मनोविकृतियों से मुक्त होता है। लासवैल ने ऐसे ही मनोविकृतियों से मुक्त समाज की कल्पना की है।[13]

'प्रक्षेपण' प्रविधि का सर्वप्रथम प्रयोग फ्रायड ने सन् 1841 में किया था। उसके मतानुसार प्रक्षेपण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी दमित इच्छाओं, भावनाओं, संवेगों, आन्तरिक संघर्षों आदि को अन्य व्यक्तियों या माध्यमों से इस तरह व्यक्त करता है कि उसका अहम् (Ego) बना रहे। वारेन के अनुसार, यह वह प्रवृत्ति है जिसमें कोई व्यक्ति अपनी दमित मानसिक प्रक्रियाओं को बाह्य जगत के किसी माध्यम द्वारा उभारता है। जेम्स डी पेज के शब्दों में, प्रक्षेपण एक मानसिक युक्ति (Mechanism) है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत दुर्बलताओं को अवचेतन रूप में किसी अन्य पर आरोपित करता है। अथवा उसका अहम् जिन बातों को स्वीकार नहीं करता उन्हें वह दूसरों पर लाद देता है। ब्राउन के अनुसार, उन तत्वों को जिन्हें व्यक्ति का अहम् स्वीकार नहीं करता, यह बाह्य जगत् की वस्तुओं या व्यक्तियों पर आरोपित करने की प्रक्रिया है। हीली, ब्राउनर एवं बोवर्स (Healy, Browner and Bowers) के अनुसार, यह सुख की खोज तथा दुःख से बचने के सुखवादी (Hedonistic) सिद्धान्त (Principle) की ही अभिव्यक्ति है। सारा विचार इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित है कि मन के दो भाग, चेतन (Conscious) तथा अवचेतन (Unconscious) होते हैं। दमित इच्छाएं मानसिक तनाव बनकर अवचेतन में डाल दी जाती है। जब यह अवचेतन चेतन में प्रवेश करता है तो पीड़ा और तनाव पैदा करता है। ऐसी स्थिति में चेतना प्रतिरक्षात्मक युक्ति (Defence mechanism) बनकर यह विश्वास करना पसन्द करती है कि इच्छाएँ प्रवृत्तियाँ आदि मन के बजाय बाहरी वस्तुओं से सम्बन्ध रखती हैं। इस तरह, जिस व्यवहार को व्यक्ति दूसरों का बाहरी दुनिया के कारण उत्पन्न हुआ समझता है, वे प्रत्यक्षी (Perceiver) के अपने व्यक्तित्व के दबे हुए भाग के कारण होता है।

प्रक्षेपण प्रविधि में एक प्रच्छन्न (Disguised) असंरचित (Unstructured) प्रेरक होता है, जिसे प्रक्षेपण हेतु उत्तरदाता के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। सिनेमा के प्रोजेक्टरों की तरह प्रक्षेपण-प्रविधि, अवचेतन मन रूपी फिल्म से उत्तर रूपी चित्र (Picture) को पर्दे पर फेंकती है। यह फिल्म व्यक्तित्व की वास्तविक गतिविधियों के आधार पर बनती है। फ्रायड के बाद एल के फ्रैंक ने इसे एक शोध प्रविधि के रूप में प्रयोग किया था।[14] मूलतः यह एक मनोविश्लेषणात्मक प्रविधि है जिसको गेस्टाल्टवादियों ने व्यापक रूप प्रदान किया है।

प्रकृति एवं विशेषतायें (Nature and Characteristics)

वर्तमान समय में प्रक्षेपणात्मक प्रविधियों का उपयोग भावनात्मक एवं सामाजिक विशेषताओं, कुसमंजनों (Maladjustments) रुचियों मनोवृत्तियों (Attitudes), भावनाओं आदि का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। प्रक्षेपी प्रविधियों में दबी हुई इच्छाएँ, रुचियाँ, संवेग आदि को बाह्य माध्यमों पर प्रक्षेपित कर उकसाया या उभारा जाता है। ऐसे उकसाने या उभारने से आन्तरिकता का पता चल जाता है। कोई भी दो व्यक्ति किसी वस्तु को एक ही प्रकार या विचार से नहीं देखते। यह अन्तर उनके व्यक्तित्व के आन्तरिक गुणों की भिन्नता के कारण होता है। इस कारण उनके प्रत्युत्तर या प्रतिक्रियाएँ भिन्न भिन्न होती हैं। इनके आधार पर उनके व्यक्तित्व की भिन्नताओं एवं

विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। प्रक्षेपी प्रविधियों में, बिना किसी निश्चित, स्पष्ट या परिचित के लिए, कोई विचारोत्तेजक या भावोद्दीपक वस्तु ली जाती है, या रूपरेखा प्रस्तुत की जाती है। उसे देखकर वह व्यक्ति प्रतिक्रिया करता है। इस प्रतिक्रिया में उसके आन्तरिक गुणों का संकेत मिल जाता है। वास्तव में ये प्रविधियाँ मनोवैज्ञानिक सत्य पर अधिक जोर देती हैं, अर्थात् किसी व्यक्ति के जीवन का इतिहास, ज्ञान आदि को जानने की अपेक्षा उसकी भावनाओं, विश्वासों, विचारों आदि को जानना अधिक महत्त्वपूर्ण होता है। ये विशेषताएँ उसकी क्रियाओं एवं व्यवहार को प्रभावित करती हैं।

सभी प्रविधियाँ मूलतः व्यक्ति की भावनाओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं, इरादों, झुकावों आदि का अध्ययन करती हैं। यह अध्ययन अप्रत्यक्ष रूप से बाहरी साधनों (External objects) के माध्यम से किया जाता है। ये माध्यम व्यक्तित्व की दमित इच्छाओं को उभारने में सहायक होते हैं। इनसे व्यक्तित्व के अवचेतन मन का अध्ययन करना सम्भव हो जाता है। माध्यम, वस्तु या प्रेरक का स्वरूप अप्रत्यक्ष, गुप्त एवं असंरचित होने से अनुक्रिया (Response) पर शोधक का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इससे काफी मात्रा में विश्वसनीयता तथा प्रामाणिकता का आना सम्भव हो जाता है। किन्तु इन प्रविधियों का प्रयोग करना सरल नहीं है। इनके लिए बहुत प्रशिक्षित एवं धैर्यवान शोधकर्ताओं की आवश्यकता पड़ती है। प्रयोग में बहुत समय व्यय करना पड़ता है। शोधक प्रयोग करते-करते थक जाता है और इस थकान का प्रभाव उत्तरों पर भी पड़ता है। ये प्रविधियाँ अवचेतन मन पर ही अधिकांशतः ध्यान केन्द्रित करती हैं जबकि अवचेतन तथा चेतन-मन, दोनों ही, एक दूसरे से सम्बद्ध होते हैं। वास्तविकता यह है कि ये शोध प्रविधियाँ न होकर उपचार एवं निदान विधियाँ हैं। उन्हें मानसिक रोगियों पर लागू करने के लिए विकसित किया गया है। ये व्यक्तित्व के असामान्य पक्षों को उजागर करती हैं। इन प्रविधियों के निष्कर्ष, उनकी कार्यविधि मान्य या मानकीकृत हो जाने के कारण, तो विश्वसनीय माने जाते हैं, किन्तु प्रामाणिकता (Validity) या सत्यापनीयता होने के बारे में सन्देह बना ही रहता है। इन निष्कर्षों पर स्वयं विश्लेषक के विचारों, भावनाओं आदि का भी प्रभाव पड़ सकता है। जब तक उत्तरदाताओं को अनुसंधान के उद्देश्य का पता नहीं लगता, तब तक तो ठीक है। पता लगने के बाद सारा करा-कराया मिट्टी हो जाता है।

प्रक्षेपी प्रविधियों के प्रकार (Kinds of Projective Techniques)

प्रक्षेपी-प्रविधियों के अनेक प्रकार पाये जाते हैं। उनमें से कुछ अधिक महत्त्वपूर्ण निम्नलिखित हैं—

(1) शब्द साहचर्य परीक्षण
 (क) मुक्त साहचर्य परीक्षण
 (ख) निश्चित साहचर्य परीक्षण
 (ग) नियन्त्रित साहचर्य परीक्षण
(2) चित्र साहचर्य परीक्षण
(3) वाक्यपूर्ति परीक्षण
(4) मनोनाटकीय विधि
(5) खेल प्रविधि
(6) मौखिक प्रक्षेपण परीक्षण

(7) स्याही के धब्बों का परीक्षण

(8) अभिबोध परीक्षण

शब्द साहचर्य परीक्षण (Word Association Test)—इस प्रकार के परीक्षण के सहचार तथा नियन्त्रण के आधार पर तीन प्रकार बताये गये हैं, यथा, मुक्त सहचार परीक्षण (Free Association Test) तथा नियन्त्रण सहचार परीक्षण (Constrained Association Test), तथा नियन्त्रण सहचार परीक्षण (Controlled Association Test) । यह परीक्षण शब्दों, वाक्यों या अधूरी रूपरेखात्मक कहानी के माध्यम से किया जाता है । उन्हे देखकर श्रोता या सूचनादाता अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है अथवा वाक्यपूर्ति करता है । वुण्ट (Wuntd), टरमन (Terman), माइल्स (Miles) आदि ने इसका प्रयोग किया है । इन परीक्षणो से रोगी या व्यक्ति की मनोदशा का पता चलता है ।

रोर्शाक प्रविधि (Rorschach Technique)—इस प्रविधि का प्रयोग सन् 1892 मे स्विस मनोचिकित्सक, हर्मन रोर्शाक ने किया । इसमें परीक्षण का आधार विभिन्न रग के कार्डों पर बनाए गए स्याही के धब्बे होते हैं जिनका वास्तव मे कोई अर्थ नही होता । रोगियो से इन धब्बो का अर्थ पूछा जाता है तथा उत्तरो का निम्नलिखित बिन्दुओ के अन्तर्गत विश्लेषण किया जाता है, यथा (1) स्थिति (Location), (2) निर्धारक तत्त्व (Determinants), (3) अन्तर्वस्तु (Content) एव (4) ख्याति (Popularity) । इस तरह का परीक्षण 6 से 12 माह तक किया जाता है । इस परीक्षण को 5 वर्ष पश्चात् फिर दोहराया जाता है ।

यद्यपि यह प्रविधि काफी प्रसिद्ध है, फिर भी अस्पष्ट मान्यताओ पर आधारित होने तथा बहुत लम्बे समय तक चलने वाली होने के कारण अधिक काम म नही लायी जा सकती । राजविज्ञान मे इसका प्रयोग बहुत ही सीमित है । यह केवल मानसिक रोगियो पर लागू होती है ।

विषय अभिबोध परीक्षण (Thermatic Apperception Test—T. A. T.)—रोर्शाच प्रविधि व्यक्तित्व के गठन एव ढांचे पर जोर देती है, किन्तु विषय-अभिबोध प्रविधि या टी. ए. टी. सम्पूर्ण व्यक्तित्व के सार को बताती है । इसका सर्वप्रथम प्रतिपादन एव उपयोग मूरे एव मार्गन (Muray and Morgan) द्वारा असामान्य तथा स्नायुदुर्बल व्यक्तियो के मापन के लिए किया था । यह एक प्रकार का चित्र कहानी परीक्षण है । इसमे रोगियो को चित्र की व्याख्या बताकर कहानी बनाने के लिये कहा जाता है । 30 चित्रो मे से 10 पुरुषो तथा 10 स्त्रियो तथा शेष दस दोनो को दिये जाते हैं । एक समय मे दस कार्ड तथा एक घटे का समय दिया जाता है । परीक्षण प्राय दो बैठको मे होता है । परीक्षण के अन्त मे कुछ सक्षिप्त प्रश्न पूछे जाते हैं या साक्षात्कार किया जाता है । सूचनादाता जो कहानी लिखता है, वह वस्तुत उसकी अपनी कहानी होती है । लिण्डजे (Lindzey), अनास्तासी (Anastasi), रोजन्जिग (Resenzwing) आदि ने विविध चित्रो को बनाकर प्रयोग किए हैं ।

प्रक्षेपी प्रविधियों का मूल्यांकन (Evaluation of Projective Techniques)

प्रक्षेपी प्रविधियो की भूमिका अपने आप मे अनोखी एव महत्त्वपूर्ण है । ये व्यक्तित्व के छिपे हुए या दबे हुये गुणो या तथ्यो को उभारने मे अतुलनीय मानी जाती है । इनका

अवचेतन मन मे दमित इच्छाओ, भावनाओं, विश्वासों आदि का पता लग जाता है। सूचनादाता के सामने शब्द, घब्बा या चित्र जैसी चीजें होती हैं, अतएव उनके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने मे वह पक्षपात, पूर्वाग्रह आदि से काम नही ले सकता। सारी परीक्षण सामग्री प्रकाशित या पूर्वनिश्चित होती है। इस कारण अध्ययन एकरूप, सुविधाजनक तथा निश्चित होता है। यदि प्रयास किया जाये तो इनका सामान्य तथा असामान्य दोनों प्रकार के व्यक्तियो के लिए प्रयोग किया जा सकता है। ये मनोवैज्ञानिक सत्य या वास्तविकता को ज्ञात करने मे सहायक होती हैं। इनकी विश्वसनीयता तथा वैधता अन्य प्रविधियो से कम नही मानी जा सकती। संस्कृति और व्यक्तित्व के विषय मे ड्यू बॉय ने सन् 1944 मे तथा हॉरविट्ज एव कार्टराइट ने सन् 1953 मे छोटे समुदायो की विशेषताओ का पता लगाने के लिये इन प्रविधियो को काम मे लिया था।

यह सब होते हुये भी ये प्रविधियाँ बडी तकनीकी, जटिल, लम्बा समय लेने वाली तथा अस्पष्ट होती हैं। इनका प्रयोग असामान्य मानसिक रोगियो के लिये किया जाता है। इनके उत्तरो की व्याख्या करने मे साक्षात्कारकर्ता या शोधक मनमानी कर सकता है। कई बार वह अपने विचारो या भावनाओ को इन अस्पष्ट उत्तरो पर थोप देता है। हेनरी ने लिखा है कि प्रक्षेपी प्रविधियाँ अकेले चित्रो, अन्तर्क्रिया गल्पो तथा नाटकीय उपकरणों को बताकर तथा रखकर कल्पना को उत्तेजित करने के तरीके हैं। लेकिन इनमे से सभी को प्रक्षेपी प्रविधियाँ नही कहा जा सकता। इनमे से कई तो बिल्कुल निरर्थक बकवास हैं। इनकी विश्वसनीयता एव प्रामाणिकता पर प्रश्न-चिह्न लगे हुए हैं। ये प्रविधियाँ मनोचिकित्सक के उपकरण हैं न कि राजविज्ञानी या समाजविज्ञानी के।

(3) व्यक्तिवृत्त पद्धति (Case Study Method)

व्यक्तिवृत्त पद्धति (Case Study Method) सामाजिक एव राजनैतिक तथ्यो तथा इकाइयो के अध्ययन की प्राचीनतम विधियो मे से एक है। इसे व्यक्तिगत या वैयक्तिक अध्ययन, एकल विषय पद्धति, एकवृत्त पद्धति, एकल विषय अध्ययन, एकल विषय दृष्टिकोण तथा जीवन-इतिहास प्रणाली भी कहा जाता है। यह तथ्य-सकलन की एक प्रविधि होने के साथ-साथ अध्ययन पद्धति (Method) एव उपागम (Approach) भी मानी जाती है। आजकल राजनीति विज्ञान के क्षेत्र मे इसका बहुत अधिक प्रयोग किया जा रहा है। ऐसे किसी विषय विशेष के गठन तथा उसके विकास का अध्ययन करने के लिये अत्यधिक उपयुक्त माना जाता है। विकसित एव विकासमान देशो मे इसका प्रयोग मुख्यत किसी सस्था, सघ, सगठन, राजनेता, राजनैतिक घटना या राजनैतिक प्रक्रिया के अध्ययन के लिए किया जाता है। इसके द्वारा राजनैतिक वास्तविकता या सत्य को गहराई से जानने का प्रयास किया जाता है, इसलिए इसे गहन-अध्ययन पद्धति या दृष्टिकोण भी कहा जाता है।

समाजी अनुसधान (Societal Research) की महत्त्वपूर्ण पद्धतियो को प्राय: दो वर्गों म रखा जाता है (1) सांख्यिकीय या अकीय (Statistical or Numerical) पद्धति, तथा (2) व्यक्तिवृत्त पद्धति (Case Study Method)। सांख्यिकीय पद्धति द्वारा गणनात्मक, मात्रात्मक या परिमाणात्मक अध्ययन किया जाता है। उसमे सख्या पर जोर दिया जाता है। गुणात्मक (Qualitative) अध्ययन के लिये प्राय व्यक्तिवृत्त प्रणाली को अपनाया जाता है। इसके अतर्गत किसी व्यक्ति, सस्था, समुदाय, सस्कृति या घटना का गहन अध्ययन किया जाता है। यह किसी एक "इकाई का सम्पूर्ण विश्लेषण होता है। आधुनिक काल म इसका

सर्वप्रथम प्रयोग हर्बर्ट स्पेन्सर (Herbert Spencer) ने किया था, किन्तु अधिक व्यवस्थित प्रयोग करने के लिए फ्रेडरिक ली प्ले (Frederic Le Play) का नाम अधिक प्रसिद्ध है। उसने व्यक्ति तथा सामाजिक संरचना के मध्य अन्तर्सम्बन्धों का अति गहन अध्ययन किया। प्रारम्भ में इसका अपने विचारों एवं मान्यताओं को सिद्ध करने के लिए प्रयोग किया गया किन्तु अब इसे नवीन प्रकल्पनाओं को प्राप्त एवं पुष्ट करने के लिए किया जाता है।

व्यक्तिवृत्त पद्धति व्याख्या (Case Study Method Explanation)

यंग के अनुसार, व्यक्तिवृत्त किसी सामाजिक इकाई के जीवन की गवेषणा तथा विश्लेषण की पद्धति है। चाहे वह एक व्यक्ति परिवार संस्था, सांस्कृतिक समूह या सम्पूर्ण समुदाय हो। इसमें शोधकर्त्ता, किसी सामाजिक इकाई जैसे राजनैतिक दल या मजदूर संघ की एकीकृत सम्पूर्णता (Integrated whole) के भीतर विभिन्न कारकों का विवेचन करता है। किम्बाल यंग ने इसे 'ऐतिहासिक जननिक पद्धति' (Historical-genetic Method) कहते हुए बताया है कि इसमें स्वयं या दूसरे के लम्बे समय के अनुभवों का कथन किया जाता है। यह नये अर्थों तथा अनुक्रियाओं से सम्बन्धित स्थितियों का चित्र प्रस्तुत करती है। गुड एवं हैट ने इसे किसी अध्ययन की जाने वाली 'सामाजिक वस्तु एकात्मक विशेषताओं को बनाए रखने वाले तथ्यों को संगठित करने का तरीका' बताया है। यह प्रत्येक सामाजिक इकाई को सम्पूर्णता से देखने का दृष्टिकोण है। ओडम होवर्ड के मतानुसार, यह प्रत्येक वैयक्तिक कारक का चाहे वह एक संस्था हो या एक समूह या व्यक्ति के जीवन की उपकथा (episode) मात्र हो, समूह में किसी दूसरे के साथ विश्लेषण करने की प्रविधि है। क्लिफोर्ड आर. शॉ के शब्दों में, व्यक्तिवृत्त पद्धति सम्पूर्ण परिस्थिति या कारकों के संयोग, प्रक्रिया या घटनाओं के क्रम के विवरण जिसमें व्यवहार घटित होता है, व्यापक परिवेश में वैयक्तिक व्यवहार के अध्ययन तथा प्रकल्पना के निर्माण की ओर ले जाने वाले मामलों के विश्लेषण और तुलना पर जोर देती है।[6] सरल शब्दों में, वीसेंज एवं वीसेंज ने बताया है कि यह गुणात्मक विश्लेषण का एक रूप है जिसमें किसी व्यक्ति, परिस्थिति या संस्था का बहुत सावधानी तथा पूर्णता के साथ अवलोकन किया जाता है।

बर्गेस ने इस पद्धति को 'सामाजिक सूक्ष्मदर्शन यन्त्र' (Social Microscope) कहा है। इसमें जीवन का कोई एक पक्ष लेने के बजाय इकाई के जीवन के अनेकानेक पक्ष अध्ययन

Case-study is a method of exploring and analysing the life of a social unit, be that unit a person, a family, an institution, cultural group or even entire community —Young

It is way of organizing social data so as to preserve the unitary character of the social object being studied

—Goode and Hatt

Case-study method emphasizes the total situation or combination of factors, the description of the process or sequence of events in which behaviour occurs, the study of individual behaviour in its total setting and the analysis and comparision of cases leading to formulation of hypothesis —Clifford R. Shaw

के लिए चुन लिये जाते हैं तथा उसके विभिन्न सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, मनोवैज्ञानिक तथा दार्शनिक चरों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों की गवेषणा की जाती है। गुड एवं हैट के दृष्टिकोण से अध्ययन में सम्पूर्णता लाने के लिए चार कारक होते हैं : (1) तथ्य-सामग्री के क्षेत्र की व्यापकता, (2) तथ्य सामग्री के स्तर, (3) विषय-सूचियों (Indexes) तथा प्रकारों का निर्माण, (4) विशेष कालावधि में अन्तःक्रिया का स्वरूप।

व्यक्तिवृत्त पद्धति से महत्त्वपूर्ण समस्याएँ (Problems) अध्ययन के लिए चुनी जाती हैं और उनका गहन विश्लेषण किया जाता है। ये समस्यायें एकल विषय या व्यक्तिगत रूप से अध्ययन की जाती हैं। अर्थात् एक समय में एक ही इकाई को अध्ययन के लिये लिया जाता है। चाहे वह इकाई कोई प्रशासनिक विभाग, व्यापारिक निगम, राजनैतिक दल, कोई जाति या व्यक्ति, कोई संस्कृति या कोई घटना जैसे, भारत चीन युद्ध या आपातकाल की घोषणा ही क्यों न हो। इस इकाई का सम्पूर्ण या सांगोपांग अध्ययन किया जाता है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें उस इकाई का गुणात्मक (Qualitative) एवं गहन अध्ययन किया जाता है।

मान्यतायें एवं उपयोग (Basic Assumption and Use)

जो राजशोधक किसी एक इकाई का गहन विस्तृत एवं विशेष अध्ययन करते हैं, उनकी इस पद्धति के विषय में कतिपय मान्यताएँ होती हैं। वे उस इकाई या मानव की 'मौलिक एकता' में विश्वास करते हैं। वे समझते हैं कि मानव की मूल प्रकृति सर्वत्र समान होती है। प्रायः सभी संस्थाएँ, संगठन, दल, निगम, मंडल आदि कतिपय विभिन्नताओं को छोड़कर समान प्रकृति के होते हैं। ये शोधकर्त्ता इस मान्यता को लेकर भी चलते हैं कि आज जो घटना घट रही है जैसे, ईरानी क्रान्ति या अफगानिस्तान में रूसी सैनिकों का हस्तक्षेप एवं अधिकार, उसके कारण या बीज बहुत पहले से ही वर्तमान रहते हैं। इसे 'समय तत्त्व का आयाम' (Dimension of time element) कहते हैं। ऐसे अध्ययन एक लम्बी अवधि को लेकर चलते हैं, अर्थात् वे जनगणना सूचनाओं की तरह नहीं होते। तीसरी मान्यता यह है कि मनुष्य का आचरण विशेष परिस्थितियों से सम्बद्ध होता है। मानव-व्यवहार परिस्थितियों से स्वतन्त्र तथा मुक्त नहीं होता। उदाहरणार्थ, गाँधीवादी सत्याग्रह आन्दोलन या आमरण-अनशन भारत जैसे देश में ही प्रभावी हो सकते थे।

अपनी मान्यताओं के कारण ही व्यक्तिवृत्त पद्धति बहुत अधिक लोकप्रिय रही है। अमेरिकी समाजशास्त्र में प्रारम्भिक काल में सबसे पहले इसका प्रयोग टॉमस एवं जानीकी ने किया।[27] उसके बाद इसका उपयोग निरन्तर बढ़ता ही रहा। पार्क, बर्गेस, लिण्ड, वार्नर, आमंड, ह्यूल आदि ने इस पद्धति का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। व्यक्तिवृत्त-पद्धति का उपयोग प्रमुख रूप से तीन उद्देश्यों के लिए किया जाता है : (क) प्रकल्पनाओं का पुष्टिकरण (Confirmation), (ख) प्रकल्पनाओं का स्पष्टीकरण, असत्यीकरण (Falsification) तथा खोज (Discovery), तथा (ग) वास्तविकता का अधिक बोध।

(क) प्रकल्पनाओं का पुष्टिकरण—जब पहले से ही स्थापित प्रकल्पनाओं के पुष्टिकरण (Confirmation) करना होता है तो सामान्य या औसत (normal or typical) व्यक्ति विषय (Cases) लिये जाते हैं। इस सामान्यता का निर्धारण निश्चित मानकों के आधार पर किया जाता है।

(ख) प्रकल्पनाओं का स्पष्टीकरण, असत्यीकरण तथा खोज—इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये असामान्य (Deviant) तथा निषेधात्मक व्यक्तिवृत्त लिये जात हैं। इनके द्वारा *शाश्वत प्रस्तावनाओ को असत्य (Falsify) या मिथ्या सिद्ध किया जाता है। प्राय* समाज-विज्ञानी या शोधक आच्छादक-विधि प्ररूप (Covering-law model) का व्यापक ढाँचा खडा करके ऐसी शाश्वत प्रस्तावनाएँ तैयार करते हैं। किन्तु यह कार्य प्राय निषेधात्मक मामलो को ध्यान म रखे बिना ही या जल्दबाजी म किया जाता है।"[8] लिण्डस्मिथ, कैसी (Opiate Addiction and Other Peoples Money) आदि की शोध-रचनाओ की इसी कारण आलोचना की गयी है। कई बार उक्त उद्देश्यो के लिये अतिगामी (extreme) व्यक्तिवृत्त भी, जैसे गाफमैन की शोधकार्य (The presentation of Self in everyday *Life*, 1959), *बहुत उपयोगी होते हैं।*

(ग) वास्तविक्ता का अधिक बोध—जो शोधकर्त्ता सांख्यिकीय पद्धतियो अथवा अधिक सख्या की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शोध-कार्य करने मे रुचि रखते हैं, उनको भी ऐसे ही व्यक्तिवृत्तो पर निर्भर रहना पडता है। *अन्यथा* उनके सख्यात्मक शोध बेकार हो जाते हैं। उनसे व्यक्ति विषयो (Case materials) की विविधताएँ, सदर्भ, गहनता आदि का पता नही चलता। इन अध्ययनो का उपयोग प्रकारणाओ (Typologies) को बनाने मात्र म ही नही अपितु उद्विकासात्मक (Evolutionary) तथा सरचनात्मक प्रकार्यात्मक सिद्धान्तो का परीक्षण *भी किया जा सकता है। किन्तु जो व्यक्तिवृत्तो (Case Studies) को अपने आप* मे स्वयसाध्य (Ends in Themselves) मानते हैं, वे इतिहासवादिता (Historicism) के शिकार हो जाते हैं। ऐसे लोग घटनाओ की विशिष्टता का ढिढोरा ऑक्शॉट के समान पीटते रहते हैं। उनके अनुसार सामान्यताएँ बना सकने वाला राजविज्ञान असम्भव है।

वास्तविकता यह है कि राजविज्ञान मे व्यक्तिवृत्त अध्ययनो की अधिकाधिक आवश्यकता है। राजनैतिक नथ्य घटनाएँ, व्यक्तित्व आदि गुणात्मक अधिक होती हैं और गणनात्मक कम। यद्यपि मतदान, कर सग्रह आदि मे सख्या का भी महत्त्व है, किन्तु नेतृत्व *निर्णयन, परिवर्तन तथा सत्ता जैसी प्रक्रियाओ म विशिष्टता, गुण, प्रस्थिति आदि का अधिक* महत्व है। इनकी विविधताएँ अपरिमित होने के साथ-साथ महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिये सांख्यिकीय पद्धतियो को एक सीमा से अधिक महत्व नही दिया जाना चाहिए। राजनीति की इकाइयो का अधिक से अधिक मात्रा मे व्यक्तिवृत्त अध्ययन किया जाना चाहिए। ये विशेष तो होनी हैं, किन्तु इसके साथ ही इनमें, अन्य सामाजिक इकाइयो की तुलना मे, अधिक शीघ्र एव गुणात्मक परिवर्तन भी होते रहते हैं।[29]

व्यक्तिवृत्त-अध्ययन-अभिकल्प एव कार्यविधि

(Case Study Design and Procedure)

व्यक्तिवृत्त या एकल-विषय अध्ययन दो प्रकार के होते हैं : (1) एक व्यक्ति या सख्यात्मक इकाई का अध्ययन, तथा (2) समुदाय या समूह का अध्ययन। पहले मे कोई एक व्यक्ति या घटना तथा दूसरे म एक वर्ग, जाति, समूह या समुदाय अध्ययन का विषय बनाया जाता है। गिडिन्स के अनुसार, समाज की तरह ही व्यक्तिवृत्त अध्ययन न्यूनाधिक रूप से अव्यवस्थित रहे हैं। लेकिन धीरे धीरे इस पद्धति म काफी सुधार एव विकास हुआ है। ऐसे अध्ययनों को कतिपय चरणों मे कार्यान्वित किया जाता है।

सर्वप्रथम समस्या का विवेचन किया जाता है कि उसका स्वरूप क्या है? यदि पहले से ही कुछ प्रकल्पनाएँ प्राप्त हैं तो उनका स्वरूप और क्षेत्र निर्धारित किया जाता है। इसके अन्तर्गत चार प्रकार के निर्णय लिये जाते हैं--(1) एकल विषय का चयन (Choice), (2) एकल-विषयो की संख्या (Number of Cases), (3) इकाइयो के प्रकारों का अवलोकन तथा (4) विश्लेषण का क्षेत्र। प्रथम मे एकल-विषय का प्रकार (Type) निर्धारित किया जाता है कि वह सामान्य या असामान्य प्रकार की हो। दूसरे में, ऐसे एकल-विषयो की सख्या निश्चित की जायेगी। यह केवल एक, या कई एक या कई एकल विषयो का समूह हो। यह व्यक्ति हो, समूह हो, अथवा समुदाय? तीसरे मे, यह निश्चय किया जाता है कि अवलोकन व्यक्तियो का किया जाये, या समुदायो या सस्थाओ या व्यापारिक दुकानो का? अन्त मे विश्लेषण के पहलुओ (Aspects) पर ध्यान दिया जायेगा। स्पष्ट ही है कि ऐसे अध्ययनो मे सम्पूर्णता की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। इससे उनकी व्यापकता या पूर्णता का भी निर्धारण हो जाता है।

द्वितीय चरण मे शोध कार्य के लक्ष्यो को स्पष्ट किया जाता है। ये सात हो सकते हैं: (1) किसी इकाई के वास्तविक परिचालन, पद्धतियो, परिपाटियो आदि के बारे मे विस्तृत सूचना प्राप्त करना, (2) किसी इकाई के सम्बन्ध मे सही तथ्यो का सकलन करना, (3) किसी इकाई को सम्पूर्णता की दृष्टि से तथा उसकी उपइकाइयो के मध्य अन्तर्सम्बन्धो को खोजना और अपने दृष्टिकोण को व्यापक बनाना, (4) विभिन्न इकाइयो में समान रूप से पायी जाने वाली किसी समस्या की पूरी जानकारी प्राप्त करना, तथा (5) विभिन्न इकाइयो का तुलनात्मक अध्ययन, (6) प्रकल्पनाओ का पुष्टिकरण, (7) नवीन प्रकल्पनाओं की खोज तथा वर्तमान का मिथ्याकरण, आदि। उद्देश्य चाहे कुछ भी हो, किन्तु प्रत्येक व्यक्तिवृत्त अध्ययन मे तीन बातें होनी चाहिए—(क) इकाई की अन्य इकाइयों के साथ समान विशेषताएँ, (ख) इकाई की अन्य वर्ग की इकाइयो के साथ भिन्नता तथा (ग) वे मामले जिनमें इकाई या व्यक्तिवृत्त विशिष्ट (Unique) है। इन तीनो बातो का स्पष्ट सकेत दिया जाना चाहिए।

तीसरे चरण में घटनाओ के अनुक्रम (Course of Events) तथा प्रविधियों एवं उपकरणों का निर्धारण किया जाता है। व्यक्तिवृत्त मे एक समय या काल को निर्धारित कर लिया जाता है, जैसे, सन् 1914 से 1920 के मध्य गांधी का भारतीय राजनीति मे उत्कर्ष। इन अध्ययनों मे साक्षात्कार-निर्देशिका (Interview) का प्रयोग किया जाता है जिससे प्रश्नो की भाषा तथा बनावट को परिस्थिति के अनुसार बदलने मे सुविधा रहती है। सहभागी अवलोकन के द्वारा अध्ययन को गहन बनाने मे सुविधा रहती है। वस्तुत: यह अध्ययन पद्धति आवश्यकतानुसार सभी प्रविधियो का प्रयोग कर सकती है। इस पद्धति के कतिपय महत्वपूर्ण उपकरणो मे, व्यक्तिगत साक्षात्कार, डायरियाँ, पत्र, लेख, सामयिक अभिव्यक्तियाँ, पुस्तकें, सम्बन्धित सरकारी एव गैर-सरकारी फाइलें, वंशावली, फोटो एलबम, मित्रमण्डली, घटनाओ की सूची तथा अन्य साधन हैं। ये सभी अध्ययन किये जाने वाली इकाई से सम्बन्ध रखते हैं। यंग ने इनका अध्ययन करते समय चार बातो का ध्यान रखने का आग्रह किया है—(1) प्रलेख के सम्बन्ध मे लेखक के इरादे, (2) लिखे गये तथ्यों को जानने के लिये, उसे प्राप्त अवसर, (3) सूचनादाता तथा शोधकर्त्ता के पूर्वाग्रह एवं पक्षपात, तथा (4) लेखक की गहन व्यक्तिगत अनुभवो के विषय में अन्तर्दृष्टि तथा उनका वर्णन

करने की क्षमता। इनमे से अनेक उपकरणों का विवरण विभिन्न स्थानो पर किया जा चुका है। इनमे एकल विषय के निजी अभिलेखों का विशेष महत्त्व होता है।

चतुर्थ चरण मे, एकल विषय के अध्ययन करने के उपरान्त प्राप्त तथ्यो का विश्लेषण किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

जीवन-इतिहास (Life-History)

व्यक्तिवृत्त अध्ययन मे जीवन इतिहास का अत्यधिक महत्त्व होता है। इसे व्यक्ति-वृत्त-अध्ययन का ही भाग माना जा सकता है। इसमे व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन का सार, इतिवृत्त, गतिविधियाँ, दृष्टिकोण, उसकी आर्थिक, सामाजिक, सास्कृतिक एव राजनैतिक पृष्ठभूमि आ जाती है। यह व्यक्ति विशेष द्वारा लिखा जाता है। बर्गेस ने लिखा है कि 'जीवन इतिहास प्रलेख जटिल व्यवहार और परिस्थितियो का विस्तारपूर्वक अध्ययन करने के कारण सामाजिक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र माना जा सकता है।' इनका क्रियात्मक समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण तथा राजनैतिक विचारधाराओ के अध्ययन मे विशेष उपयोग किया जाता है। जीवन-इतिहास व्यक्तिगत अनुभवो की दुनिया का गहन विश्लेषण करता है। राइस के अनुसार, यह 'स्वय व्यक्ति द्वारा अपनी भाषा मे, व्यापक तौर पर जीवन को अपने ऐतिहासिक विकास तथा सामाजिक परिवेश की अवस्थाओ मे बताने वाला विस्तृत विवरण है।'

टॉमस एव जानीकी ने जीवन-इतिहासो का व्यक्तियो एव समूहो के यथार्थ अनुभवो तथा मनोवृत्तियो को जानने के लिए इटकर उपयोग किया है। इनसे जटिल घटनाओ, परिस्थितियो, सास्कृतिक मूल्यो, समूह-सम्बन्धो तथा अन्य तथ्यो का गहन अध्ययन किया जाता है। मुरे के अनुसार, आत्मकथा या जीवन-इतिहास से प्रारम्भिक अनुभवो तथा बाद की प्रवृत्तियो के मध्य कारणात्मक सम्बन्धो का उद्घाटन होता है।' डोलार्ड ने जीवन-इतिहास प्रविधि का मूल्याकन करने के लिए निम्नलिखित मापदण्ड निर्धारित किये हैं :—

(i) व्यक्ति को सास्कृतिक तारतम्य मे एक नमूना माना जाये,

(ii) व्यक्ति की शारीरिक क्रियाओ को सामाजिक दृष्टि से देखा जाये;

(iii) संस्कृति का प्रसार करने के लिए परिवार या समूह की भूमिका (Role) पर जोर दिया जाये,

(iv) मानवीय सामग्री का सामाजिक व्यवहार पर प्रभाव पड़ने की पद्धति का विवेचन किया जाये,

(v) बचपन से लेकर वयस्कावस्था तक अनुभव मे निरन्तरता को बताया जाये;

(vi) सामाजिक परिस्थिति को निरन्तर तथा सावधानीपूर्वक एक कारक (Factor) के रूप मे स्वीकार किया जाये, तथा

(vii) स्वय जीवन-इतिहास की सामग्री को सगठित एव अवधारणीकृत किया जाये।

जीवन-इतिहास मे व्यक्ति के व्यक्तित्व के महत्वपूर्ण तत्त्वो का पता लगता है तथा उसके क्रमिक विकास का बोध होता है। उसमे व्यक्ति का समस्त सामाजिक-राजनैतिक परिवेश तथा स्वय उसकी राजनैतिक प्रवाह या आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का पता चलता है। ये इतिहास यदि उसी व्यक्ति या अन्य विश्वसनीय व्यक्ति द्वारा लिखे हुए होते हैं तो उन्हे प्रामाणिक माना जा सकता है। अनेक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रपुरुषो, नेहरू, अब्राहम

लिंकन, चर्चिल, गांधी, तिलक, नेहरू, जयप्रकाश आदि पर प्रामाणिक जीवन-इतिहास उपलब्ध है।

किन्तु ये पक्षपात, पूर्वाग्रह, भावना आदि से अप्रभावित नहीं होते तथा इनका प्रयोग बहुत ही सावधानी से अभिकल्प बनाकर किया जाना चाहिए। स्वयं व्यक्ति अनेक कारणों से तथ्यों को छिपा सकता है या साधारण बात को बहुत ही बढ़ा-चढ़ाकर कह सकता है।

व्यक्तिवृत्त अध्ययन एवं सर्वेक्षण में अन्तर
(Distinction Between Case-Study and Survey)

यहां व्यक्तिवृत्त अध्ययन तथा सर्वेक्षण के मध्य अन्तर पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। व्यक्तिवृत्त अध्ययन में उस व्यक्ति या इकाई का सम्पूर्णता के साथ अध्ययन किया जाता है। यह सम्पूर्णता शोधकर्त्ता के वैचारिक जगत् की उपज होती है। अन्यथा उसकी कोई मूर्त्त सीमा रेखा नहीं होती। उसका निर्धारण शोध के उद्देश्यों द्वारा किया जाता है। सर्वेक्षण में किसी विशेष मामले या पक्ष को लेकर व्यक्तियों के अभिमत (Opinion) तथा मनोवृत्तियों को ज्ञात किया जाता है। फिर उन्हें आयु, लिंग, व्यवसाय, आय आदि सामाजिक-आर्थिक विशेषताओं से जोड़ा जाता है। अनेक सारणियाँ तैयार की जाती हैं। सर्वेक्षण में व्यक्ति अदृश्य हो जाता है।

व्यक्तिवृत्त में तथ्यों का संकलन व्यापक आधार पर किया जाता है तथा व्यक्ति के जीवन का प्रतिमान निर्धारित करने का प्रयास किया जाता है। विभिन्न पक्षों का अध्ययन करने से कारकों तथा प्रक्रियाओं का अन्तर्सम्बन्ध जानने में सहायता मिलती है। तथ्य सभी स्तरों और स्रोतों से एकत्रित किये जाते हैं। हमारा ध्यान-केन्द्र प्रारम्भ से अन्त तक 'व्यक्ति' ही बना रहता है। सर्वेक्षण में तथ्य सीमित मात्रा में एकत्रित किए जाते हैं। उसकी कालावधि अपेक्षाकृत कम होती है। व्यक्तिवृत्त में जीवन के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण, तौलन, सारणीयन तथा मूल्यांकन किया जाता है। उसकी कालावधि काफी लम्बी होती है तथा उसमें विषय की एकात्मकता को बनाये रखा जाता है। यह जीवन के लगभग सभी पक्षों से सम्बद्ध होती है।

व्यक्तिवृत्त अध्ययन का महत्त्व (Importance of Case Study)

यह पद्धति राजनीतिविज्ञान के लिए आधारभूत, उपयोगी तथा विश्वसनीय प्रणाली है। इकाई या व्यक्ति विशेष का अध्ययन करने से अनेक उपयोगी प्रकल्पनाएँ (Hypotheses) प्राप्त होती हैं तथा नये तथ्य उभर कर सामने आते हैं। इसके द्वारा सामाजिक राजनैतिक घटनाओं का अति गहन तथा सूक्ष्म अध्ययन सम्भव है। सम्पूर्ण तथ्य प्राप्त हो जाने के कारण उनका वर्गीकरण एवं सारणीयन सरलतापूर्वक किया जा सकता है। इसे अमूर्त भावनाओं, इच्छाओं, महत्त्वाकांक्षाओं आदि की भूमिका को समझने का अवसर मिलता है। यह कार्य अन्य किसी पद्धति द्वारा सम्भव नहीं है। इससे जो भी सामग्री मिलती है वह अपने आप में पूर्ण होती है। सी. एच. कूले ने लिखा है कि यह पद्धति 'हमारे प्रत्यक्ष को गहरा करती है तथा जीवन में अन्तर्दृष्टि को अधिक स्पष्ट कर देती है।' यह किसी अप्रत्यक्ष तथा अमूर्त तरीके के बजाय व्यवहार का प्रत्यक्ष अध्ययन करती है।

सामाजिक अनुसंधान में यह एक विशिष्ट स्थान रखती है।* टॉमस एवं जानीकी ने

---

* *Case-Study depends our perception and gives us a clearer insight into life.*
—*Cooley*

बताया है कि इससे पूर्ण प्रकार की समाजशास्त्रीय सामग्री मिल जाती है। यह सामग्री सभी दृष्टियों से सम्पूर्णता लिए हुए होती है। इससे फलप्रद प्रकल्पनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं जिनका आगे चलकर व्यापक स्तर पर परीक्षण किया जा सकता है। ये अन्य प्रकल्पनाओं का परीक्षण करने की सामग्री भी प्रदान करती हैं। इनसे सिद्धान्तों और सामान्यीकरणों का स्पष्टीकरण एवं संशोधन होता है। विशुद्ध शोध परियोजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए इसे तथ्य संकलन की उपयोगी प्रविधि माना जा सकता है। साथ ही साथ, इससे प्राप्त सामग्री से अधिक उपयोगी अनुसूचियाँ एवं प्रश्नावलियाँ बनाई जा सकती हैं। इनसे साक्षात्कारों को अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है।

सीमाएँ (Limitations)

व्यक्तिवृत्त अध्ययन में अनेक कमियाँ और दुर्बलताएँ भी हैं। इनको दृष्टिगत करके उसकी सीमाओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। इनसे प्राप्त निष्कर्ष एकांगी, सीमित और संकुचित होते हैं। इसे कुछ क्षेत्रों में अवैज्ञानिक एवं असंगठित विधि माना गया है क्योंकि इसमें तथ्यों के संकलन पर कोई नियन्त्रण नहीं रहता। इसमें दो तरफ से पक्षपात, पूर्वाग्रह आदि का प्रवेश हो जाता है, एक स्वयं व्यक्ति या इकाई की ओर से तथा दूसरा शोधक की ओर से। जो तथ्य प्राप्त होते हैं वे अशुद्ध होते हैं तथा उनकी जाँच या सत्यापन नहीं किया जा सकता। निदर्शन (Sampling) के लिए तो इसमें कोई स्थान ही नहीं है। सबसे बढ़कर इसमें अत्यधिक धन, समय और श्रम लगाने की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी जीवन-इतिहास 'स्वयं के शब्दों में स्वयं की कहानी' होने के कारण यथार्थता से परे होता है। शोधकर्ता जीवन-इतिहास लिखते समय अपनी भावनाएँ एवं अनुभव भी शामिल कर लेता है। वह ऐसी घटनाएँ भी लिख देता है जो सूचनादाता या एकल विषय के जीवन में कभी घटित ही नहीं हुई।

रीड बेन ने बताया है कि व्यक्तिवृत्त अध्ययन अवैयक्तिक सूचनाएँ नहीं देता और कभी-कभी एक समूह में बहुत अधिक विभिन्नताएँ होने पर तुलना करना कठिन हो जाता है। सूचनादाता के उत्तरों में आत्म-समर्थन, कल्पना आदि शामिल हो जाते हैं। इससे मूल्य तटस्थ, बारम्बार घटित होने वाले तथा शाश्वत तथ्य प्राप्त नहीं होते। प्रायः व्यक्तिवृत्त अध्ययन कर चुकने के बाद ही शोधकर्ता अपने निष्कर्षों का सामान्यीकरण करने लगता है। वह दूसरे व्यक्तिवृत्तों के अध्ययन करने की भी प्रतीक्षा नहीं करता। ऐसा निगमन (Deduction) खतरनाक एवं विवादास्पद होता है। हो सकता है कि वह सामान्यीकरण असामान्य घटना या इकाई के अध्ययन पर आधारित हो। व्यक्तिवृत्त के अभिलेख प्रत्यक्ष, स्मृति, निर्णय तथा असामान्य घटनाओं पर बहुत जोर देने की विशेष प्रवृत्ति वाले अचेत पूर्वाग्रह से युक्त हो सकते हैं। लुण्डबर्ग के मतानुसार, इन व्यक्तिवृत्तों से प्राप्त सामान्यीकरणों में व्यक्तिनिष्ठता तथा अनौपचारिकता होती है और सामग्री के प्रलेखन तथा अवलोकन में वस्तुनिष्ठता का अभाव होना है। गुड एवं हैट के अनुसार एक मूलभूत खतरा 'शोधक की अनुक्रिया' के कारण होता है। शोधकर्ता यह समझने लगता है कि वह हर एक चीज को जानता है तथा हर एक चीज को समझता है। उसमें अपने निष्कर्षों के विषय में एक झूठी निश्चयात्मकता का भाव आ जाता है। दूसरे शब्दों में, वह यह मानने लगता है कि वह उसने विषय में सब कुछ पता लगा लिया है और सबकी व्याख्या कर सकता है। इस निश्चयात्मकता के भाव को सन्देह की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। हो सकता है कि शोधकर्ता

की निगाह म बहुत सी बातें न आ पायी हो। जीवन के कई पक्ष अज्ञात हो। इसी कारण शोधकर्त्ता एक ओर तो शोध-अभिकल्प के मूल नियमो की अवहेलना कर देता है, दूसरी ओर 'प्रमाण के व्यापक अभिकल्प' की जाँच नही करता। लेकिन यदि उपयुक्त निदर्शन प्रकल्प तैयार कर लिया जाये, तो बहुत सी त्रुटियो से बचा जा सकता है। साथ ही, शोध आरम्भ करने से पूर्व एक सैद्धान्तिक विचारबन्ध का विकास किया जा सकता है। इससे उसमे व्यक्तिवृत्त के अनुकूल कल्पनाएं करने या जबरदस्ती सामग्री को ढूढने का लोभ समाप्त हो जायेगा। वह गुणात्मक सकेतीकरण करके भी ऐसी त्रुटियो से बच सकता है। शोधक, इन सब के अलावा तथ्य सकलन, वर्गीकरण तथा प्रक्रमीकरण (Process) की प्रविधियो मे भी कुशल होना चाहिए।

व्यक्तिवृत्त-पद्धति तथा सांख्यिकीय पद्धति में अन्तर्सम्बन्ध
(Interdependence of Case-Study Method and Statistical Method)

राजनीतिविज्ञान के कुछ ही क्षेत्र साख्यिकीय पद्धतियो के उपयुक्त पाये गए हैं। अधिकाश क्षेत्र अभी भी 'गुणात्मक' (Qualitative) बने हुए है। ज्यों ज्यो अधिकाधिक 'गुणात्मक' शोध कार्य किया जायेगा, त्यों-त्यो साख्यिकीय पद्धतियो का आविर्भाव होता जायेगा। किंतु यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि प्रत्येक प्रकार की प्रविधि की अपनी भूमिका, कार्य एव उद्देश्य होते हैं। 'कोई भी पद्धति जो अपने उद्देश्य को प्राप्त कर लेती है वह उस उद्देश्य के लिए प्रामाणिक (Valid) है।'

व्यक्तिवृत्त अध्ययन एव साख्यिकीय पद्धतियाँ एक दूसरे के विरुद्ध न होकर, अन्त-निर्भर एव पूरक हैं। इनम जो विरोध दिखाई देता है, वह लुण्डबर्ग के अनुसार तीन कारणो से है (i) व्यक्तिवृत्त पद्धति अपने आप म वैज्ञानिक नहीं है, (ii) व्यक्ति या इकाइयो का अध्ययन 'वैज्ञानिक' तभी बन सकता है, जबकि वे एकरूपताएँ, प्रकार तथा व्यवहार-प्रतिमान उद्घाटित करने के लिए वर्गीकृत की जा सकें, तथा (iii) साख्यिकीय पद्धति बहुत-सी सख्याओं म इकाइयां होने पर ही उपयोगी बन पाती हैं ताकि वे वर्गीकरण आदि कर सकें। उसके अनुसार, दोनो पद्धतियाँ एक दूसरे क विरुद्ध नही हैं। उन्मर ने बताया है कि साख्यि-कीय पद्धति बारम्बार प्रकट होने वाली इकाइयों को बताती है। व्यक्तिवृत्त पद्धति विशिष्ट इकाई का गहन परिचय देती है जिस पर बाद मे साख्यिकीय पद्धति लागू की जा सके। यग ने भी कहा है कि दोनो प्राय एक दूसरे की पूरक हैं और अनेक सामाजिक परिस्थितियो म इकाइयों का अध्ययन करती हैं। व्यक्तिगत अध्ययन सामाजिक प्रक्रिया का निश्चयन करता है तथा विभिन्न कारको की जटिलता, परिणामो और अन्तर्सम्बन्धो को बताता है। साख्यिकीय पद्धति अपेक्षाकृत कम कारको से सम्बन्ध रखती है तथा सामाजिक परिस्थिति का विस्तार (Extent), बारम्बारता (Frequency) तथा सहचार की मात्रा (Degree of association) के आधार पर परिचय देती है।

राजनीति विज्ञान म गहन शोध की लघु या व्यष्टि (Micro) स्तर पर लागू हो सकने वाली प्रविधियो का ऊपर विवेचन किया गया है। गहन शोध के अन्तर्गत ही लम्बे समय तक चलने वाली व्यापक सापेक्ष तथा परिशुद्ध अध्ययन करने वाली प्रविधियां और भी हैं। इनका अगले अध्याय म उल्लेख किया जा रहा है।

सन्दर्भ

1 Greger A James, 'Political Science and the Uses of International Analysis', American Political Science Review, LXII, 1968

2 Waples and Berelson, What the Voters were Told An Essay in Content Analysis, University of Chicago Press, 1941, p 53

3 Bernard Berelson, Content Analysis in Communication Research, New York, Free Press of Glencoe 1952, p 18

4 P V Young, Scientific Social Surveys and Research, Indian ed, op cit, p 480

5. Ole Holsti, Content Analysis for the Social Sciences and Humanities, Readings, Mass, Addison—Wesley, 1969

6 Richard Merriot, Symbols of American Community, op cit, pp 1735-1775

7. Harold D Lasswell Propaganda Techniques in the World War, New York, Alfred A Knoff, 1927, p 4

8 Holsti, op cit

9 C E Osgood, S, Saporte and J C Nunnally, 'Evaluative Assestion Analysis", Litera, III, 1956, 'The Representational Model' in I Pool, ed, Trends in Content Analysis, Urbana, Ill, University of Illionions Press, 1959

10 Bernard S Philips, Social Research–Strategy and Tactics, New-York, Macmillan, 1966, pp 121-23

11 Young, op cit, p 245, मनुष्य के व्यक्तित्व को जानने की अनेक प्राचीन या शास्त्रीय विद्याएँ पायी जाती हैं, जैसे, कपालविद्या (Phenology), आकृतिविद्या (Physiognomy), आलेखीय विद्या (Graphology), हस्तरेखा विद्या (Palmistry) आदि।

12 श्यामलाल वर्मा, समकालीन राजनीतिक चिन्तन एव विश्लेषण, दिल्ली, मैकमिलन, 1976, अध्याय–10

13 श्यामलाल वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धांत, द्वितीय सस्करण, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1977

14 Anne Anostasi, Psychological Testing, New York, Macmillan, 1957, p 598

15 Young op cit, p 299

16 Clifford R Shaw, Case Study Method, Publications of the American Sociological Society, XXI (1927), p 149

17. Gerhard Lenski, The Religious Factors, rev ed, Garden City, N Y Doubleday, Anchor Books, 1963.

18 Florian Znaniecki, The Method of Sociology, New York, Holt, Rinehart and Winston, 1934

19 विस्तार के लिए Hurbert M Blalock, Jr, **Causal Interences in Non-experimental Research**, Chapal Hill, N. C, University of North Carolina Press, 1964.

अध्याय 13

गहन-शोध : पैनल, क्षेत्रीय एवं तुलनात्मक अध्ययन पद्धतियाँ

[Depth-Research : Panel, Area and Comparative Study Methods]

राजनीतिक शोध के क्षेत्र में गहन-अध्ययन-पद्धतियों के समान ही परिवर्तन-शोध-पद्धतियाँ (Change Research Methods) भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। वस्तुतः राजनीति में परिवर्तन एक प्राण तत्त्व है। उसके स्वरूप, विस्तार, कारकों, प्रभावों, गति एवं मात्रा को जानना बहुत आवश्यक है। इसे 'समय-पार परिवर्तन का विश्लेषण' (Analysis of Change Through Time) कहा गया है। परिवर्तन का विशेष अध्ययन पैनल-प्रणाली विश्लेषण, परिवर्तन के विस्तार का क्षेत्रीय अध्ययन से तथा परिवर्तनों का सापेक्षिक अध्ययन तुलनात्मक-पद्धति से किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति वांछनीय भावी समाज तथा उसको साकार करने के बारे में सोचता है। वह यह भी जानना चाहता है कि वर्तमान समाज इस प्रकार की अवस्था में किस प्रकार आया ? इसी प्रकार, राजविज्ञानी परिवर्तन सम्बन्धी कारकात्मक अन्तर्सम्बन्धों तथा नियमितताओं की खोज करना चाहता है।[1] परिवर्तन सम्बन्धी शोध करने के लिए लजारसफेल्ड एवं रोजनबर्ग ने तीन प्रकार के अध्ययन बताए हैं—(i) प्रवृत्ति अध्ययन (Trend studies analysis), (ii) पैनल अध्ययन (Panel Studies) तथा (iii) पूर्वकथनीय अध्ययन (Prediction Studies)। इनमें पैनल अध्ययन का विवेचन किया जायेगा।

(1) पैनल अध्ययन (Panel Studies)

राजनैतिक परिवर्तनों के सम्बन्ध में गवेषणा करने के लिए पैनल अध्ययन या पैनल प्रविधि को पिछले 30—40 वर्षों से काम में लाया जा रहा है। यह प्रविधि अन्य प्रविधियों से यह विशेषता रखती है कि इसमें हम एक अवधि के भीतर होने वाले परिवर्तनों तथा उनके कारकों का अध्ययन करते हैं, जबकि अन्य प्रविधियों में केवल एक समय-विशेष से सम्बन्धित परिस्थितियों, व्यक्तियों, घटनाओं या तथ्यों का ही अध्ययन किया जाता है। राजनीतिविज्ञान में यह प्रविधि प्रयोगशाला या नियन्त्रित प्रयोग अथवा अवलोकन का स्थानापन्न (Alternative) मानी जा सकती है। उसमें एक कालावधि के भीतर होने वाले परिवर्तन का स्वरूप, मात्रा आदि को जानना आवश्यक होता है। इसीलिए इस प्रविधि को 'राजनैतिक परिवर्तनों का मापक यन्त्र, (Barometer of political change) भी कहा जाता है। इसके प्रयोग द्वारा राजनैतिक के अलावा अन्य सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों को भी ज्ञात किया जा सकता है।

पैनल अध्ययन : व्याख्या (Panel studies : explanation)

अपने सरलतम रूप में, पैनल अध्ययन दो विभिन्न काल-बिन्दुओं पर होने वाले परिवर्तनों को एक से सूचनादाताओं के उत्तरों के आधार पर जानने की प्रक्रिया है। सैनफोर्ड लेबोविट्ज के अनुसार, यह 'एक समय के बाद किसी एक निदर्शन का बार-बार अवलोकन' है। ग्लोक के शब्दों में, पैनल-पद्धति में 'अध्ययन किये जाने वाले समग्र का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के निदर्शन का विचाराधीन समस्या के विषय में विभिन्न समयों पर दो या अधिक बार साक्षात्कार किया जाता है।[2] मूलाउ, एल्डर्सवेल्ड एवं जेनोविट्ज के अनुसार इस पद्धति से राजनैतिक संगठन के प्रभाव का अधिक सन्तोषप्रद विश्लेषण करना सम्भव हो जाता है।[2] एल्फ्रेड जे० कान्ह ने लिखा है कि एक ऐसे समूह का अध्ययन करने के लिए जो उपचार लगातार प्रभावों या परिपक्वता के अन्तर्गत है, शोधक लगातार कई बार उन्हीं लोगों का साक्षात्कार, परीक्षण या अवलोकन करना पसन्द कर सकता है। उत्तरदाताओं या सूचनादाताओं की सूची को पैनल (Panel) या सूचनादाता-सूची कहते हैं। इस प्रविधि में 'पैनल' अर्थात् सूचनादाताओं के चयन पर सबसे अधिक जोर दिया जाता है, क्योंकि उन्हीं का बार-बार साक्षात्कार किया जाता है।

इस प्रकार, 'पैनल' अध्ययन में (1) साक्षात्कारों को कम से कम दो बार दोहराया जाता है, (2) इसमें सूचनादाता वही रहते हैं जिनका पहली बार साक्षात्कार किया गया था, (3) साक्षात्कारों का उद्देश्य किसी समस्या का विश्लेषण करना, व्यक्तियों के दृष्टिकोणों, भावनाओं, विचारों, रुझानों आदि में परिवर्तन जानना तथा परिवर्तन के कारणों का पता लगाना होता है, (4) यह तथ्यों को वस्तुपरक ढंग से जानना सम्भव बना देता है, (5) इसमें ग्लोक के अनुसार तीन प्रश्न अन्तर्ग्रस्त होते हैं, (6) परिवर्तन लाने वाले प्रेरक (Stimulus) तथा उसके प्रभाव की जानकारी, (ख) परिवर्तन की पृष्ठभूमि एवं दशाएँ (Conditions), तथा (ग) मनोवृत्तियों तथा परिवर्तन में घटित होने वाली अन्तःक्रिया।

पैनल अध्ययन की प्रक्रिया एवं प्रविधियाँ
(Process and Techniques of panel studies)

पैनल अध्ययन में परिवर्तन के प्रभाव को जानने के लिए 100 से लेकर 500 व्यक्तियों का साक्षात्कार किया जाता है। इनसे मौखिक प्रश्न पूछे जाते हैं तथा जो सूचनाएँ मिलती हैं, उनका संकलन किया जाता है। दूसरी या तीसरी बार साक्षात्कार के लिए नयी प्रश्नावली बनायी जाती है तथा परिवर्तन के कारकों, परिस्थितियों, परिवर्तन की मात्रा आदि की जानकारी की जाती है। इसके पश्चात् पहली स्थिति तथा बाद की स्थिति के मध्य अन्तर का विश्लेषण करके कारकों का विश्लेषण किया जाता है। पैनल अध्ययन में विभिन्न साधनों तथा प्रविधियों का उपयोग किया जाता है, जैसे, प्रत्यक्ष अवलोकन, साक्षात्कार, असहभागी अवलोकन आदि। कभी-कभी प्रेरक (Stimulus) के रूप में सिनेमा, टेलीविजन आदि का प्रयोग किया जाता है, अर्थात् उनको माध्यम बनाकर समग्र की आदतों, रुचियों, विचारों आदि में आने वाले परिवर्तनों को जानने का प्रयास किया जाता है।

राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा चौथे और पाँचवें आम चुनावों के अध्ययन में पैनल-प्रणाली का प्रयोग किया गया था। चौथे आम चुनावों में एक विशिष्ट निदर्शन (Sample)

तैयार किया तथा उसमे निर्धारित उत्तरदाताओ का तीन बार साक्षात्कार किया गया। यह कार्य एक शोध-समूह (Team of researchers) द्वारा किया गया। पहला साक्षात्कार उम्मीदवारो की घोषणा के समय, दूसरा चुनाव प्रचार के समय तथा तीसरा मतदान के दस दिन बाद किया गया। इस अवधि के दौरान मतदाताओ के बदलते हुए राजनैतिक विचारो का अध्ययन किया गया। तीनो प्रकार की अनुसूचियो मे कुछ प्रश्न समान थे तथा अन्य प्रश्नो को आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया गया। पाँचवें आम चुनाव के दौरान केवल दो बार साक्षात्कार करने की योजना बनायी गयी। पहला साक्षात्कार मतदान के सात दिन पहले तथा दूसरा दस दिन बाद मे किया गया। इनके महत्त्वपूर्ण निष्कर्षों को प्रकाशित कर दिया गया है।[4]

पैनल अध्ययन की उपयोगिता

पैनल-अध्ययन राजनैतिक परिवर्तनो—विचारो, रुझानो, विश्वासो, भावनाओ आदि को जानने की सर्वश्रेष्ठ, विश्वसनीय तथा प्रामाणिक प्रणाली है। इससे राजनैतिक गतिशीलता का अध्ययन सूक्ष्मता, व्यापकता तथा गहनता के साथ किया जा सकता है। इसमे सीमित आधार पर किये गये प्रयोगो के प्रभाव का पता लग जाता है। उदाहरण के लिए, परिवार-नियोजन या शराबबन्दी के प्रचार के वास्तविक प्रभाव को जानने के लिए उक्त प्रणाली का सहारा लिया जा सकता है। साथ ही, किस क्षेत्र मे कौनसे प्रेरक (Stimulus) का अधिक प्रभाव रहता है ? उस प्रेरक के अधिक प्रभावी होने के क्या कारण हैं ? आदि प्रश्नो का भी समाधान हो सकता है। इससे परिवर्तन की मात्रा को भी ज्ञात करना सम्भव है। जैसे, काम के बदले अनाज योजना या अन्त्योदय कार्यक्रम से राजस्थान की ग्रामीण जनता के दृष्टिकोण मे कितनी मात्रा मे और कैसे परिवर्तन हुआ ? इसे पैनल अध्ययन की समस्या बनाया जा सकता है। या दल-बदल के विषय मे लोगो के विचार जाने जा सकते हैं। यह प्रविधि परिवर्तन की प्रक्रिया को भी कारको सहित स्पष्ट कर देती है।

सीमाएं एवं समस्याएं (Limitations and Problems)

पैनल अध्ययन की अनेक सीमाएँ हैं। सबसे पहले, पहला निदर्शन तैयार करने मे कठिनाई आती है। उसमे ऐसे कौनसे लोगो को शामिल किया जाये जो बार-बार साक्षात्कार लिये जाने से न तो नाराज होते हैं और न गलत सूचनाएँ देते हैं ? प्रायः यह देखा गया है कि जितनी बार साक्षात्कारो को दोहराया जाता है उतनी ही बार क्रमशः साक्षात्कारो की संख्या कम होती जाती है। यदि वे प्रारम्भ मे 500 है, जो बाद के साक्षात्कारो मे 400, 300, 200 या 100 ही रह जाते हैं। एक बार साक्षात्कार करा चुकने के बाद सूचनादाता अधिक चालाक और सजग बन जाता है। बाद में अपनी सही प्रतिक्रियाएँ बताने के बजाय उन्हें छिपाने लगता है। ऐसे मे सारा अध्ययन ही निष्फल हो जाता है। या तो साक्षात्कर्ता या सूचनादाता खीज उठते हैं या अनमने भाव से उत्तर देते हैं। उनकी सूचनाओं का सत्यापन नहीं हो पाता और वे विश्वसनीय नहीं रह जाती।

लजारसफेल्ड एवं साथियो ने पैनल अध्ययन मे यह आवश्यक माना है कि उसे विभिन्न राजनैतिक परिस्थितियों मे कार्यान्वित करके देखा जाना चाहिए। अध्ययन में व्यक्तियो की सामाजिक पृष्ठभूमि तथा व्यक्तियो के बारे मे और भी अधिक जानने का

प्रयास किया जाना चाहिए कि उनमे से 'बदल जाने वाले' (Shifters) तथा 'यथावत्' (Constants) कौनमे हैं ? पैनल अध्ययन के अन्तर्गत आने वाले प्रभावो के अतिरिक्त अन्य प्रभावो की ओर भी शोधकर्त्ता की दृष्टि टिकी रहनी चाहिए। कई बार अध्ययन की सीमा से बाहर प्रभावो का भी जैसे अभिमत नेताओ के परिवर्तन मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। अनेक बार मूल्यों की भूमिका पर भी ध्यान नही दिया जाता।[5] ग्लॉक ने पैनल अध्ययन मे सूचनादाता के उपयुक्त सहयोग के अभाव को एक कठिन समस्या के रूप मे पाया है। उसके अनुसार सूचनादाता पर भी लगातार साक्षात्कारो का प्रभाव पडता है।[6]

(2) क्षेत्रीय अध्ययन (Area Studies)

'क्षेत्रीय अध्ययन' प्रणाली का प्रारम्भ सयुक्त राज्य अमेरिका मे सन् 1945 के बाद प्रारम्भ हुआ। द्वितीय महायुद्ध के तुरन्त बाद में एक साथ ही अनेक देश स्वतन्त्र हुए तथा शीत-युद्ध का श्रीगणेश हुआ। रूस और अमेरिका इन दो महाशक्तियो मे अपना प्रभाव-क्षेत्र बढाने की होड-सी लग गयी। सयुक्त राज्य अमेरिका के विश्वविद्यालयो मे नये देशो तथा क्षेत्रों की छान बीन करने के लिए अनेकों अनुसन्धान-वृत्तियो (Research Scholarships) बाँटी गयी। इन देशो म शोध-कार्य करने के लिए अनेक नवीन सस्थाओ की स्थापना भी की गयी। प्रारम्भ मे ऐसे अध्ययना को 'क्षेत्रीय अध्ययन' कहा गया। किन्तु 'क्षेत्र' शब्द का अर्थ स्पष्ट नही किया गया। कुछ समय तक 'क्षेत्र' शब्द मे भोगोलिक दृष्टि से समीप राज्यो या राज्य-समूह को ही शामिल किया गया। धीरे-धीरे 'क्षेत्रीय अध्ययनों' की अवधारणा, प्रविधियो तथा उपयोगिता म विकास हुआ। ये किसी देश विशेष के सैनिक या विदेश-नीति का उपकरण मात्र न रहकर स्वतन्त्र शोध विषय के रूप में स्वीकार किये जाने लगे।

क्षेत्रीय अध्ययन : व्याख्या (Area Studies : Explanation)

किसी आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक आधार पर सीमाबद्ध की जा सकने वाली इकाई के सर्वागीण अध्ययन को 'क्षेत्रीय अध्ययन' (Area Studies) कहते हैं। मैक्रीडीस के अनुसार 'क्षेत्र' से तात्पर्य कतिपय देशो के उस समुदाय या पु ज (Cluster) से है जो नीति सम्बन्धी कारको, भौगोलिक सामीप्य या सामान्य समस्याओ और सैद्धान्तिक रुचियों के कारण एक इकाई के रूप मे हो। इन इकाइयो के अध्ययन को 'क्षेत्रीय अध्ययन' कहते हैं।[7] इन क्षेत्रो का अध्ययन एक साथ राजनैतिक अथवा आर्थिक व्यवस्थाओ, भाषा, इतिहास सस्कृति और मनोविज्ञान की दृष्टि मे किया जाता है। अलग-अलग अनुशासन या रुचि से सम्बन्धित विश्लेषकों के 'क्षेत्र' के निर्धारण के आयाम (Dimensions) भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। मानव समाजशास्त्री या 'क्षेत्र' अर्थशास्त्री के 'क्षेत्र' से भिन्न हो सकता है। राजविज्ञानी या राजशोधक या 'क्षेत्र' इन दोनो से भिन्न हो सकता है। इस विषय में मतैक्य की स्थापना एक अन्तर्अनुशासनात्मक अथवा समाजविज्ञानों की एकता सम्बन्धी समस्या है। स्वय राजविज्ञानी भी विचारवाद (Ideology), राजसस्कृति (Political-culture), शासन व्यवस्था, स्तर आदि के आधार पर विभिन्न क्षेत्रो से सम्बधित हो सकते हैं। क्षेत्रीय अध्ययनों की मूल आवश्यकता यह है कि इन विभिन्न दृष्टिकोणों में सामजस्य लाया जाये। क्षेत्र निर्धारण के पाँच परिचालनात्मक या काम चलाऊ आधार हो सकते हैं :[8]

(1) विचारों एव मूल्यों की अन्तःक्रिया या समर्थन के लिए सास्कृतिक आधार,

(2) भौतिक सामीप्य,

(3) आर्थिक सम्बन्ध,

(4) शक्ति-समूहो और शक्ति-सम्बन्धो की राजनैतिक अन्तर्क्रिया, तथा

(5) व्यूह रचनात्मक सोच-विचार।

इन आधारो मे कुछ और मानदण्ड, जैसे, समस्याओ की समानता, भाषा, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की समानता आदि भी जोडे जा सकते हैं। सामान्यत क्षेत्रीय अध्ययन विकासशील देशों या समस्याग्रस्त क्षेत्रो के विषय मे किये जाते हैं। किन्तु इसका कोई कारण नही है कि विकसित देशो को विश्लेषण की दृष्टि से 'क्षेत्र' न माना जाये।[2] 'क्षेत्रीय अध्ययनो के योग्य कुछ क्षेत्र इस प्रकार हो सकते हैं.

(क) पूर्वी एशिया, (ख) दक्षिण-पूर्वी एशिया,
(ग) दक्षिण एशिया, (घ) पश्चिमी एशिया,
(ङ) केन्द्रीय एशिया (च) पश्चिमी अफ्रीका,
(छ) दक्षिण अफ्रीका, (ज) पूर्वी यूरोप,
(झ) पश्चिमी यूरोप, (ञ) लेटिन अमेरिका,
(ट) मध्य अमेरिका।

इसमे उत्तरी अमेरिका, आयरलैण्ड, ग्रेटब्रिटेन, आस्ट्रेलिया क्षेत्र आदि को भी जोडा जा सकता है।

इन क्षेत्रो के आधार अथवा संख्या के बारे मे कोई मतंक्य नही है। यह संख्या शोधकर्त्ता के परिप्रेक्ष्य के साथ ही बदलती रहती है। राजवैज्ञानिक दृष्टि से क्षेत्र-निर्धारण का आधार 'राजनैतिक समानता' होना चाहिए। किन्तु उसका निर्धारण करते समय ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक समानता की भी अवहेलना नही की जा सकती। मानव-शास्त्री उनमे 'प्रजाति' (Race) का तत्त्व भी शामिल करने का आग्रह करेंगे। प्रबील आमर, एस एच बीर, हैरी एक्स्टीन आदि 'राजनैतिक संस्कृति' को क्षेत्र निर्धारण का आधार बनाना पसन्द करते हैं। वस्तुत वैज्ञानिक आधार पर क्षेत्रो का निर्धारण करने के लिए पर्याप्त आधार-सामग्री (Data) एकत्रित करने की आवश्यकता होती है। किन्तु विकासशील देशो मे, पिछड़ेपन संचार साधनो के अभाव, धार्मिक कट्टरता, विदेशियों के प्रति घृणाभाव आदि कारणो से, सही तथ्य एकत्रित करना सरल नहीं है। पश्चिमी परिप्रेक्ष्य एव मानदण्ड विकासमान देशो मे लागू नही हो पाते।

क्षेत्रीय अध्ययन की विशेषताएँ (Characteristics of area study)

क्षेत्रीय अध्ययन तुलनात्मक अध्ययन के लिए अत्यावश्यक माना जाता है। आधुनिक युग चुनौतियो, प्रतियोगिता, विकास एव प्रगति का युग है। प्रत्येक देश यह जानना चाहता है कि अन्य देश कहाँ तक प्रगति कर चुके हैं तथा विकास की कौनसी अवस्था पर है। उसे अपनी स्थिति जानने की भी उत्सुकता रहती है। ऐसे अध्ययनो मे स्वय शोधकर्ता घटनास्थल पर जाकर समस्या का गहरा अध्ययन करता है। वह लगभग सभी उपकरणो, पद्धतियो तथा प्रविधियों का उपयोग करता है। उसे उस क्षेत्र की भाषा, संस्कृति, राजनैतिक एवं कानूनी स्थिति, सामाजिक आर्थिक परिवेश, परम्पराओ तथा रीति रिवाजो का पूरा ध्यान रखना पड़ता है। यह कार्य वह अकेला नही कर पाता और उसे कई शोध-सहयोगियों की सहायता लेनी पड़ती है।

क्षेत्रीय अध्ययन मे सफलता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि शोधकर्त्ता

उस क्षेत्र विशेष मे स्वय कुछ समय तक निवास करे तथा जन-जीवन से घुलमिल जाये। उससे उसे सभी स्रोतो से सूचनाएँ प्राप्त करने मे आसानी होगी। उसे क्षेत्रीय भाषा का व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए ताकि उसे वहाँ के निवासियों की भावनाओ, इच्छाओं आदि की प्रत्यक्ष जानकारी हो सके। किन्तु उसे अपनी पक्षपातपूर्ण धारणाओ पर नियन्त्रण रखना चाहिए। उसे किसी भी दशा मे किसी सैनिक या गुप्तचर सस्थान के लिए कार्य नही करना चाहिए।

क्षेत्रीय अध्ययन विशेषज्ञ प्रायः अनेक क्षेत्र का यथातथ्य वर्णन करने मे विश्वास रखते हैं तथा समनुरूपवादी स्थिति (Configurative position) ग्रहण करते हैं। उनका कहना यह है कि (i) राजनीति को अन्य सामाजिक एव सास्कृतिक तथ्यो से पृथक् नही किया जा सकता तथा (ii) शाश्वत प्रारूप (Models) या सिद्धान्तो का निर्माण उनके मध्य वर्तमान ऐतिहासिक-सास्कृतिक अन्तरो को छिपा देता है। विश्वभर मे लागू हो सकने वाले सस्कृति-पार (Cross-cultural) सामान्यीकरण वास्तविकता को तोड-मरोड देते हैं। यह मानवीय अनुभवो की प्रचुरता एव विविधता को नष्ट कर देता है।

सामग्री के स्रोत एवं प्रविधियां (Sources or data and Techniques)

विकसित देशो की अपेक्षा विकासशील देशो मे अध्ययन-सामग्री बहुत सीमित मात्रा मे प्राप्त होती है। यहा नियमित अभिलेख, प्रतिवेदन, सूचनाएँ, आकडे आदि नही रखे जाते। सरकारी तथा गैर-सरकारी क्षेत्रो मे उपयुक्त सूचनाएँ रखने तथा तैयार करने के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति नही मिलते। ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्रो मे कुछ अधिक सुविधा होती है तथा शहरी लोग शोधकर्त्ता से सहयोग भी अधिक करते हैं। किन्तु शहरी जीवन कृत्रिमता तथा दिखावे से परिपूर्ण होता है तथा ग्रामीण जीवन सरल, स्वाभाविक तथा अवलोकनीय होता है।

क्षेत्रीय-अध्ययनो मे लगभग सभी पद्धतियो एव प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इसमे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि सभी पहलुओं का अध्ययन शामिल हो जाता है। यह वर्तमान विकास का अध्ययन होता है, इसलिए उस क्षेत्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे जाना भी आवश्यक हो जाता है। इसमे सर्वेक्षण पद्धति का तथा उसके साथ-साथ प्रत्यक्ष अवलोकन, सहभागी अवलोकन, प्रश्नावली, अनुसूचियो, पैनल प्रणाली आदि सभी का प्रयोग हो जाता है। इस अध्ययन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि शोधकर्त्ता अपनी रुचि एव क्षमता के अनुसार अध्ययन क्षेत्र का चयन करे। इससे वह लगन और रुचि के अनुसार कार्य कर सकेगा। उसे अपने क्षेत्र का पूरा ज्ञान होना चाहिए तभी वह वहाँ पहुँचकर उपयुक्त सूचनाएँ एकत्रित कर सकेगा। उसकी समस्या, आकार एव साधनो मे एक सन्तुलन होना चाहिए ताकि उसे साधनो के अभाव मे अपना अध्ययन अधूरा ही न छोड देना पडे। यदि उसस सभी पक्षों का अध्ययन नही किया जा सके, तो उसे किसी एक या दो पक्ष तक सीमित कर देना चाहिए। जैसे, यदि पश्चिमी एशिया का क्षेत्र सभी दृष्टियो से अध्ययन करना सम्भव नहीं हो तो केवल धर्म या प्रजाति का आधार लेकर सीमित अध्ययन किया जा सकता है। शोधक को अपने साधनों के सन्दर्भ मे उस क्षेत्र की जनसख्या, स्थान की दूरी तथा भौगोलिक जानकारी का पूरा उपयोग करना चाहिए। उस क्षेत्र की राजनैतिक सस्कृति—शहरी और ग्रामीण, उपसस्कृतियो आदि का गहन परिचय होना चाहिए।

उपयोगिता और सीमाएं (Utility and Limitations)

आधुनिक युग मे प्रत्येक राष्ट्र दूसरे देशो की सहयोग प्राप्त करने के लिए लालायित रहता है। उसके लिए यह आवश्यक है कि वह यह जाने कि उन देशो मे विचारो और विकास की क्या स्थिति है ? उनकी आवश्यकताएँ एवं शिकायतें क्या हैं ? यह कार्य उन क्षेत्रो मे, जिनमे किसी देश की रुचि है, समष्टि-अध्ययन (Micro study) करके ही किया जा सकता है। ऐसे अध्ययन स्थानीय स्वशासन, लोकतन्त्र, प्रशासन आदि की दृष्टियो से किए जा सकते है। इनके द्वारा उन क्षेत्रो की समस्याओ का पता लगाया जा सकता है तथा समुचित समाधान सुझाए जा सकते हैं। कई बार नये तथ्य, इन देशो मे किए जाने वाले नए प्रयोग तथा परियोजनाएँ सामने आती हैं। इनमे व्यापक स्तर पर सभी पहलुओ का अध्ययन करने के कारण सामान्यीकरणो के परीक्षण तथा सशोधन का अवसर मिल जाता है। सभी को उन व्यवस्थाओ की सम्पूर्ण जानकारी हो जाती है जो नये अनुसधान-कार्य करने की आधारभूमि बन जाती है। शोधकर्त्ताओ के लिए ये शिक्षा, प्रशिक्षण तथा ज्ञान के साधन बन जाते हैं। सबसे बढकर उनमे विशेषीकरण (Specialisation) विकसित हो जाता है। इसके आधार पर वे सरकार, अधिकारियो तथा जनता को उन विषयो मे लेखो आदि के माध्यम से महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं। जैसे, दक्षिण पूर्वी एशिया की समस्याओ के विषय में उस क्षेत्र के विशेषज्ञ उपयुक्त विदेश नीति को अपनाने में सरकार को योगदान कर सकते हैं। इनके द्वारा दी गई सूचनाएँ आवश्यक रूप से अधिक विश्वसनीय एवं उपयोगी होती हैं।

किन्तु इन अध्ययनों की बहुत-सी दुर्बलताएँ एवं सीमाएं भी हैं। ये प्राय. बाहर के लोगो द्वारा किए जाते हैं। इन्हे उस क्षेत्र की भाषा, सस्कृति, रीति-रिवाजो आदि का ज्ञान नहीं होता। ये उस क्षेत्र के लोगो द्वारा शका की निगाह से देखे जाते हैं। उनके साथ कोई सच्चे हृदय से सहयोग नही करता। प्राय सरकारें विदेशी शोधकर्ताओ को सही तथ्य इकट्ठे करने की अनुमति नही देती। इन देशो मे आवागमन, सचार साधनो, शिक्षा आदि की कमी होती है। इसलिए शोधकर्ता की सही सूचनादाताओ तक पहुँच ही नहीं हो पाती। वहाँ के निवासियों मे शोध जागरूकता का अभाव पाया जाता है। कई बार शोधकर्ता स्वय सर्वेक्षण-कला मे पारगत नही होते। उनके पास धन, समय तथा अन्य साधनो की कमी होती है। क्षेत्र अध्ययन बहुत ही जटिल एव खर्चीली प्रणाली है। इसे समय और साधनों की सीमा मे बाँधना बहुत कठिन हो जाता है।

फिर भी क्षेत्र अध्ययन प्रत्येक देश, सस्था तथा सरकार की आवश्यकता होती है। उपयुक्त विदेश नीति के निर्माण मे इन्हें एक प्रमुख उपकरण माना गया है। राजनीति-विज्ञान मे क्षेत्रीय अध्ययन व्यापक व्यवस्था सिद्धान्त निर्माण की दिशा मे निर्णायक मोड माने जाते हैं। क्षेत्रीय अध्ययनो मे प्राय तुलनात्मक राजनीति के परिप्रेक्ष्यो अथवा उपागमो को अपनाया जाता है। तुलनात्मक राजनीति का मूल 'तुलनात्मक पद्धति' (Comparative method) है। इसका विवेचन किया जा रहा है। किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि क्षेत्रीय-अध्ययनवादी (Area Specialists) तुलनात्मक अध्ययनकर्ताओ की शाश्वत सामान्यताएँ या सिद्धान्त ढूँढने की प्रवृत्ति के विरुद्ध हैं। क्षेत्रवादी समनुरूपात्मक (Configurative) अध्ययन अथवा यथावत् चित्रण के पक्षपाती हैं।[10]

(3) तुलनात्मक पद्धति (Comparative Method)

तुलनात्मक पद्धति (Comparative method) राजनीतिक विश्लेषण (Political analysis) की अनेक पद्धतियो म से एक है। राजनीतिक विश्लेषण मे अनेक परिप्रेक्ष्यो (Perspectives) उपागमो (Approaches), पद्धतियों (Methods) तथा प्रविधियो (Techniques) का प्रयोग किया जाता है।[11] राजनीति के विश्लेषण का अर्थ है—राजनैतिक विषय वस्तु के अग उपागो, प्रक्रिया आदि का क्रमिक अध्ययन तथा उनके मध्य सम्बन्धो एव अर्थों का निर्धारण। यह विश्लेषण अनेक प्रकार और पद्धतियो के प्रयोग द्वारा किया जाता है, यथा दार्शनिक विश्लेषण, ऐतिहासिक विश्लेषण, व्यवस्था विश्लेषण, वैज्ञानिक विश्लेषण आदि। इनमे तुलनात्मक विश्लेषण भी एक प्रकार है जिसका अर्थ है कि विश्लेषण तुलना करते हुए किया जाये। तुलनात्मक विश्लेषण, तुलनात्मक पद्धति से कुछ भिन्न होता है। तुलनात्मक विश्लेषण मे तुलनात्मक पद्धति से काम लिया जाता है। किन्तु इसका उद्देश्य विश्लेषण करना मात्र रहता है। विश्लेषण कला और विज्ञान दोनों ही है किन्तु उसे अधिक स अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। साथ ही, विश्लेषण अपने आप मे एक सीमित उद्देश्य वाली गतिविधि है, जिसका लक्ष्य विषय वस्तु को उसकी इकाइयो, उप इकाइयो, घटकों आदि को खुलासा करते हुए अच्छी तरह से समझना है। विश्लेषण का उद्देश्य किसी भी समस्या या विषय को और अधिक अच्छी तरह से जानना होता है। तुलनात्मक पद्धति अनेक पद्धतियों की तरह से एक पद्धति है तथा उसका उपयोग तुलनात्मक विश्लेषण के अलावा अन्य विश्लेषणो म या स्वतन्त्र रूप से भी किया जा सकता है। तुलनात्मक पद्धति तुलनात्मक विश्लेषण की अपेक्षा सीमित क्षेत्र वाली है। वह केवल दो या अधिक घटनाओ अथवा तथ्य-समूहो के मध्य तुलना करने के काम आती है। तुलनात्मक पद्धति म स्वत कोई लक्ष्य निहित नहीं होता। चाहे सिद्धान्त निर्माण किया जाये अथवा नहीं किया जाय, उसका उद्देश्य समस्या से सम्बद्ध तथ्यो को आमने-सामने रखना होता है। यहाँ हम राजविज्ञान म तुलनात्मक विश्लेषण म प्रयुक्त तुलनात्मक-पद्धति का विवेचन करेंगे।

तुलनात्मक राजनीति एवं तुलनात्मक विश्लेषण
(Comparative Politics and Comparative Analysis)

राजविज्ञान म तुलनात्मक अध्ययन ने अनेक करवटें बदली हैं। पहले वह कतिपय मूल्यों के इर्द-गिर्द किया जाने वाला राज्यो का अध्ययन था।[12] आधुनिक काल मे ही वह आनुभविक एव तुलनात्मक बन पाया है। पहले इसके अन्तर्गत केवल विदेशी-सरकारों का तथा बाद में तुलनात्मक सरकारों का अध्ययन किया गया। यह परम्परा हर्मन फाइनर तथा कार्ल जे फ्रीडरिक तक लगभग आकर समाप्त हो गई। द्वितीय महायुद्ध के बाद परम्परावाद पर डेविड ईस्टन तथा रॉय मैक्रीडिस द्वारा तीखे आक्रमण किए गए।[13] उसके परिणाम-स्वरूप सरकारो के बजाय राजनीतिक व्यवस्थाओं का अध्ययन किया जाने लगा। उसके बाद अनेकानेक परिप्रेक्ष्यो, दृष्टिकोणों एव पद्धतियों का विकास हुआ और तुलनात्मक अध्ययन 'तुलनात्मक राजनीति' का अध्ययन बन गया।[14] वर्तमान समय मे तुलनात्मक राजनीति विश्लेषण की तीन धाराएँ पाई जाती हैं—

(1) दार्शनिक परम्परावाद—यह तुलनात्मक राजनीति के अध्ययन को वैज्ञानिक बनाने के सर्वथा विरुद्ध है।

(ii) प्रारूप निर्माण—ये राजनीति के तुलनात्मक अध्ययन को प्रारूप या माडल के रूप में प्रस्तुत करते हैं। इनमें आमण्ड एप्टर, ईस्टन, स्पिरो आदि प्रमुख हैं।

(iii) परिमाणवाद—इसके अन्तर्गत तुलनात्मक राजनीति का सख्या, आँकडो अथवा सूत्रों के माध्यम से अध्ययन किया जाता है। ग्रान्ड डब्ल्यू डॉयश कर्टराइट आदि ने इसी प्रकार के मात्रात्मक अध्ययन किये हैं।

इन तीनों धाराओ में तुलनात्मक पद्धति सामान्य रूप से पायी जाती है। अतएव तुलनात्मक पद्धति को अच्छी तरह से समझ लिया जाना चाहिए।

तुलनात्मक पद्धति : व्याख्या (Comparative Method Explanation)

तुलनात्मक पद्धति राजनीति विज्ञान की प्राचीनतम पद्धतियों में से एक है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग अरस्तू ने अपने समकालीन 158 देशों के संविधानों का अध्ययन करने में किया था। आधुनिक युग में इसका प्रयोग माण्टेस्क्यू सर हेनरी मेन डी टाकविले, ब्राइस आदि ने किया है। *व्यवहारवादी क्रान्ति के पश्चात् इसका प्रयोग एप्टर, आमण्ड कोलमैन,* स्पिरो आदि ने किया है। गार्नर के अनुसार तुलनात्मक पद्धति मृतकालीन तथा आधुनिक राज्यों का अध्ययन करके निश्चित तथ्यों का संग्रह करती है जिनका चयन, तुलना तथा छाँट करके शोधकर्त्ता राजनीतिक इतिहास के आदर्श प्रकारों तथा प्रगतिशील शक्तियों की खोज करता है।' गार्नर के युग के पश्चात् तुलनात्मक पद्धति और भी अधिक वैज्ञानिक बना दी गई है। उसमें प्रयोगात्मक, पर्यवेक्षणात्मक, वैज्ञानिक, सांख्यिकीय तथा ऐतिहासिक पद्धतियों का समावेश हो गया है। अब वह तुलनात्मक राजनीति एवं तुलनात्मक राजनीतिक विश्लेषण का मूल आधार बन गई है। वस्तुत यह तथ्य संकलन की एक प्रविधि मात्र न होकर, *अध्ययन की प्रणाली एवं पद्धति है। अब इसे मशीनी ढग की तुलनात्मक प्रक्रिया न मान* कर सामान्यीकरण, सिद्धान्त आदि का सृजन कर सकने वाली सृजनात्मक (Creative) अध्ययन-पद्धति माना जाता है। एरेन्ड लिज्फार्ट (Arend Lijphart) के शब्दों में 'अन्य समस्त चरों को निरन्तर बनाये रखते हुए, तुलनात्मक पद्धति, दो या अधिक चरों के मध्य आनुभविक सम्बन्धों की खोज या स्थापना करने वाली पद्धति है।'* इन सम्बन्धों की खोज दो भिन्न इकाइयों, घटकों या प्रक्रियाओं के मध्य तुलना करके की जाती है।

किन्तु तुलनात्मक पद्धति एक स्वतन्त्र पद्धति है अथवा अन्य किसी पद्धति, जैसे, वैज्ञानिक पद्धति का भाग है? इस प्रश्न पर दो विचारधाराएँ देखने को मिलती हैं। प्रथम विचारधारा के अन्तर्गत हेरोल्ड डी लासवेल तुलनात्मक पद्धति का स्वतन्त्र अस्तित्व ही नहीं मानता। पहली बार प्रकट होने के बाद, उसके अनुसार, इसके दुबारा दर्शन ही नहीं होंगे।[15] वैज्ञानिक पद्धति को अच्छी तरह से समझ लेने के बाद तुलनात्मक पद्धति को स्वतन्त्र और पृथक् मानना निरर्थक हो जाता है। वैज्ञानिक पद्धति अनिवार्य रूप से तुलनात्मक (Unavoidably comparative) होती है।

दूसरी ओर, एरेन्ड लिज्फार्ट के अनुसार तुलनात्मक पद्धति स्वतन्त्र अस्तित्व रखती है तथा *सामान्यीकरणों के विकास एवं सिद्धान्त निर्माण की दृष्टि से बहुत अधिक महत्वपूर्ण* है। यह दूसरी तीन पद्धतियों—प्रयोगात्मक, सांख्यिकीय तथा व्यतिवृत्त की सामान्य

---

* Comparative Method is a method of discovering or *establishing* empirical relationships between two or more variables while keeping all other variables constant —Arend Lijphart

आनुभविक प्रस्तावनाएँ प्राप्त करने के लिए आधारभूत है। राजविज्ञान में इसका विशिष्ट अर्थ, भूमिका एवं उपयोगिता है।[16]

आर्थर एल. कालबर्ग ने इसे अस्पष्ट रूप से शोध रुचि का विषय मात्र बताया है।[17] सैम्युअल आइजन्स्टैड भी इसे कोई विशेष पद्धति नहीं मानता। उसके अनुसार यह केवल समाज-पार (Cross-societal), संस्थात्मक अथवा समाज के व्यापक पक्षों तथा सामाजिक विश्लेषण पर अधिक ध्यान देती है।

तुलनात्मक विश्लेषण अथवा तुलनात्मक अध्ययनों को तीन विचारधाराओं में विभाजित किया गया है। प्रत्येक विचारधारा ने तुलनात्मक-पद्धति के विषय में अपने-अपने दृष्टिकोण बताए हैं।

(1) **दार्शनिक परम्परावाद**—यह विचारधारा राजनीति के अध्ययन को 'विज्ञान' बनाने वालों के विरोधियों से सम्बन्ध रखती है। हैक्शर ने इस विचारधारा को 'दार्शनिक-विज्ञान-विरोधवाद' (Phisolophic anti-science school) कहा है।[18] उनके अनुसार तुलनात्मक अध्ययन कभी भी वस्तुपरक या मूल्य-निरपेक्ष नहीं हो सकता। स्वयं समस्या का चयन, उपागमों, प्रविधियों, इकाइयों, विश्लेषण का स्तर आदि विषयों का निर्धारण व्यक्तिनिष्ट (Subjective) या आत्मपरक होता है। हैक्शर ने तुलनात्मक राजनीति को एक शाश्वत विज्ञान बनाने वालों की तीखी आलोचना करते हुए बताया है कि वे संसार के पृथक् राष्ट्रों एवं क्षेत्रों की निजी ऐतिहासिक-सांस्कृतिक वास्तविकताओं की अनदेखी कर देते हैं। ल्युसिअन पाई ने इस दृष्टिकोण के समर्थन में बताया है कि पश्चिमी एवं अपश्चिमी देशों में मौलिक अन्तर पाये जाते हैं और उनका अध्ययन एक समान अवधारणात्मक विचार-योजनाओं से नहीं किया जा सकता। थोड़ी बहुत तुलना कर लेने से कोई विषय वैज्ञानिक नहीं बन जाता। उसके आधार पर घटनाओं का पूर्वकथन एवं स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। अलग अलग देशों के भिन्न परिवेशों के तथ्य लेकर परिमाणन (Quantification) करना, हैक्शर के शब्दों में 'सेव और नारंगियों' को मिलाना है। ये लोग बौद्धिक राष्ट्रवादी हैं और यह मानते हैं कि अपने देश की सीमाओं से परे जाकर प्रकल्पना निर्माण करना 'खयाली पुलाव' मात्र है, क्योंकि दूसरे देशों से प्रामाणिक सूचनाएँ प्राप्त नहीं हो सकती। दूसरे अनुशासनों से शब्दावली, अवधारणाएँ आदि उधार लेकर घर भरने से राजविज्ञान अधिक शुद्ध होने के बजाय 'मजार का पात्र' बनकर रह गया है। किन्तु इन विचारकों के तर्क अतिशयोक्तियों से बोझिल हैं तथा तथ्यों पर आधारित नहीं हैं। उनसे तुलनात्मक अध्ययन को और भी अधिक वैज्ञानिक बनाने की प्रेरणा मिलती है।

(2) **प्रारूप निर्माणवाद**—इस दृष्टिकोण को लेकर तुलनात्मक राजनीति का अध्ययन विभिन्न विश्लेषण योजनाओं, उपागमों आदि को लेकर किया गया है और उनकी परिणति 'प्रारूपों' या 'मॉडलों' (Models) में हुई है। ये प्रारूप-निर्माता, जैसे, एप्टर, आमण्ड, रिग्ज आदि, यथार्थ जगत के सन्दर्भों पर आधारित शाश्वत अवधारणाओं की खोज में रहते हैं। इनका लक्ष्य व्यापक सत्यापनीय या जाँच करने योग्य सामान्यीकरण या सिद्धान्त विकसित करना है। ईस्टन ने राजनीतिक गतिविधि के पर्यावरणात्मक सन्दर्भ (Environmental context) पर ध्यान केन्द्रित किया है तो एप्टर ने पारसन्स की क्रिया-उन्मुख (Action-oriented) अवधारणाओं पर अपने प्रारूप का ढाँचा खड़ा किया है। रिग्ज का ध्यान राजव्यवस्था के तत्त्वों तथा प्रकार्यात्मक अपेक्षाओं की ओर तथा आमण्ड-कोलमैन का संरचनात्मक-प्रकार्यवाद की दिशा में गया है। मैक्रीडिस द्वारा अपनाई गई

समूह धारणा भी कुछ इसी प्रकार की है। ये सभी प्ररूप व्यापक सिद्धान्त के निर्माण की दिशा मे प्रयत्नशील हैं। किन्तु इनकी अवधारणाओ को आनुभविक, परिचालनात्मक (Operational) तथा कुछ सीमित बनाने की आवश्यकता है।

(3) परिमाणवाद—इस अध्ययनधारा के अन्तर्गत तुलना का मूलाधार मापन, परिमाणन तथा सख्याकरण को बनाया जाता है। राजनीतिविज्ञान का धीरे-धीरे गणितीकरण (Mathematization) हो रहा है। यद्यपि इस आगमन का कडा विरोध भी किया जा रहा है, किन्तु इससे गणितीकरण के प्रवाह मे कोई विशेष अन्तर नही आया है। गुट्जकोव ने राजनीति के अध्ययन मे गणित के योगदान का विवेचन किया है।[19] गणितीय प्ररूप निर्माण करने वालो मे उल्लेखनीय नाम कार्ल डब्ल्यू डॉयश, सेम्युअर एम. लिप्सेट तथा कटॅराइट हैं। यद्यपि गणितीय मॉडलो की अपनी सीमाएँ है तथा बोध-सम्बन्धी कठिनाइयाँ भी हैं, फिर उनकी उपयोगिता के विषय मे अब अधिक सन्देह नही रह गया है।

सक्षेप मे, उपर्युक्त तीनो अध्ययन-धाराएँ तुलनात्मक राजनीति एव तुलनात्मक पद्धतियो को अपने-अपने ढग से समृद्ध बना रही हैं।

तुलनात्मक पद्धति की सामान्य विशेषताएं

(General characteristics of Comparative Method)

शोधविज्ञान की दृष्टि से 'तुलनात्मक पद्धति' (Comparative Method) शब्द एक बीच की अधूरी अध्ययन प्रक्रिया को बताता है। केवल 'तुलना' से कोई न तो आरम्भ होता है और न समाप्त होता है। तुलना प्रारम्भ करने से पहले बहुत कुछ कार्य करने पडते हैं तथा उसके बाद व्याख्या, निष्कर्षण, सामान्यीकरण आदि करने पडते हैं। तुलना प्राय: भूत और वर्तमान की व्यापक व्यवस्थाओ (Macro systems), सरचनाओं (Structures), प्रकार्यों (Functions), प्रक्रियाओ एव कार्य-विधियो (Proceses and procedures) तथा अन्य व्यष्टि या लघु (micro) इकाइयो के मध्य होती है। उसमे कम से कम दो अध्ययन एक साथ चलते हैं।

कुछ लोग एक से अधिक वैज्ञानिक पद्धतियो मे विश्वास रखते है और तुलनात्मक-पद्धति को अनुभवपरक होने के कारण उनमे से एक मानते है। उनका कहना है कि वैज्ञानिक पद्धति एक पद्धति या प्रविधि मात्र न होकर अध्ययन का सामान्य एव व्यापक दृष्टिकोण है। किन्तु आधुनिकतम दृष्टिकोण के अनुसार, वैज्ञानिक पद्धति (Scientific Method) निश्चित एव एक ही है। तुलनापद्धति 'वैज्ञानिक' इस अर्थ मे है कि उसकी एक निश्चित योजना एव प्रक्रिया है। इसे आवश्यकता पडने पर वैज्ञानिक पद्धति के अन्तर्गत अथवा स्वतन्त्र रूप से प्रयोग किया जा सकता है। गैब्रील आमण्ड का यह विचार उपयुक्त नही है कि यह वैज्ञानिक पद्धति के समान है। लासवैल की यह मान्यता भी ठीक नही है। कि वैज्ञानिक पद्धति स्वय तुलनात्मक है इसलिये उसका स्वतन्त्र अस्तित्व मानना निरर्थक है।

तुलनात्मक पद्धति चरो के मध्य आनुभविक या इन्द्रियो द्वारा पहचान किये जाने योग्य सम्बन्धो की खोज करने की पद्धति है। दो घटको मे से किसी एक मे एक चर होने मे तथा अन्य सभी मामलों मे बराबर होने पर, उनके मध्य अन्तर या कार्य-कारण सम्बन्ध अथवा सहसम्बन्ध ज्ञात किये जा सकते हैं। उस चर के स्वरूप, मात्रा और प्रभाव का

निर्धारण किया जा सकता है। कालबर्ग एवं सारटोरी (Arthur L. Kalleberg and Giovanni Sartori) ने तुलना का अर्थ ही 'चरों का मापन' बताया है। इससे पता चल जाता है कि किस घटक में क्या वस्तु कितनी अधिक या कम है। किन्तु लिफार्ट दो कारणों से तुलना को 'चरों का मापन' नहीं मानता—(1) चरों का मापन तुलना से पहले किया जाता है तथा (2) चरों का मापन चरों के मध्य सम्बन्ध खोजने से पूर्व होता है। वास्तव में, तुलना की सम्पूर्ण प्रक्रिया में इन्हें भी शामिल कर लिया जाना चाहिए।

तुलनात्मक पद्धति का स्वरूप व्यापक एवं सामान्य होता जा रहा है। अब यह एक राजविज्ञान का उपक्षेत्र या क्षेत्र (Field) मात्र न होकर स्वयं एक अनुशासन (Discipline) बनने का प्रयास कर रहा है। दूसरे शब्दों में, यह एक अध्ययन प्रविधि, या तुलना की कार्यविधि (Procedure) मात्र न होकर एक उपागम (Approach) बन चुकी है। गुद्यार हैवशर तथा गोल्डशिमिट तुलनात्मक पद्धति, तुलनात्मक उपागम तथा तुलनात्मक कार्यविधि में कोई अन्तर नहीं मानते। किन्तु उसे एक पद्धति (Method) मानना चाहिए, न कि उपागम। उपागम में तीन बातें--एक अवधारणात्मक विचारबन्ध, अध्ययन-पद्धति तथा अनुसन्धान–प्रविधि होती है। तुलनात्मक पद्धति में तुलना के आधार, तुलना की इकाइयाँ आदि पहले निश्चित कर ली जाती हैं। तुलनात्मक प्रक्रिया या कार्यविधि का इनसे कोई सीधा सम्बन्ध नहीं होता।

यह पद्धति एक आधारभूत अनुसन्धान नीति भी बन जाती है। राजनैतिक वास्तविकता को समझने के लिए तुलनात्मक परिप्रेक्ष्य अनिवार्य बन जाता है। अरस्तू के वर्गीकरण में उसके मूल उद्देश्य स्थायित्व एवं जनहित की धारणा को देखा जा सकता है। तुलना पर ही वास्तविकता को जानना निर्भर हो जाता है।

तुलनात्मक पद्धति की कार्यविधि

(Procedure of Comparative Method)

राजवैज्ञानिक शोध में तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग करने के लिये निम्नलिखित गतिविधियाँ करनी पड़ती हैं .

1. अवधारणात्मक विचारबन्ध (Conceptual framework) का निर्धारण तथा उसके अनुसार इकाइयों का चयन,
2. उन इकाइयों का वर्गीकरण,
3. उनके विषय में प्रस्तावनाओं का निर्माण,
4. उन प्रस्तावनाओं का परीक्षण अथवा जाँच,
5. परीक्षण के दौरान प्रस्तावनाओं का पुष्टिकर, सुधार या परित्याग,
6. कार्यकर प्रकल्पना, सामान्यीकरण अथवा सिद्धान्त का निर्माण।

सर्वप्रथम मूल्यों, आदर्शों या विचारवाद के सन्दर्भ में एक अवधारणात्मक विचारबन्ध, परिप्रेक्ष्य सिद्धान्त या उपागम निर्धारित किया जाता है। यह ईस्टन के व्यवस्था सिद्धान्त (Systems theory) या आमण्ड के संरचनात्मक-प्रकार्यवाद (Structural-functionalism) की तरह कोई भी हो सकता है।[20] इसे तुलनात्मक राजनीति के किसी उप-क्षेत्र (Sub-field) से भी ग्रहण किया जा सकता है। उप-क्षेत्रों के अनेक उदाहरण हैं, जैसे, राजनैतिक संस्कृति, राजनैतिक दल तथा दलीय व्यवस्थाएँ, तुलनात्मक लोक प्रशासन आदि। यह दृष्टव्य है कि तुलनात्मक पद्धति सदा और सर्वत्र काम नहीं देती। अवधारणात्मक

विचारबन्ध का निर्धारण करने के बाद दूसरा चरण समस्या का निर्धारण तथा समान अवधारणात्मक इकाइयों का चयन किया जाता है। जैसे यदि संविधान संशोधन प्रणाली या व्यवस्थापिकाओं का अध्ययन किया जाता है तो इनके स्वरूप तथा उनकी उप इकाइयों का निर्धारण करना होगा। ये वैचारिक दृष्टि से समान तथा आनुभविक होनी चाहिए। यदि लोकतन्त्र के अर्थ के विषय में मतैक्य नहीं है तो विभिन्न लोकतन्त्रों की तुलना करना सम्भव नहीं होगा। प्राय तुलना में राजव्यवस्थाओं के पक्षों या अंगों पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। सम्पूर्ण व्यवस्थाओं की तुलना स्वाभाविक तौर पर सिद्धान्त निर्माण की दिशा में बढ़ जाती है। किन्तु बहुत छोटी इकाइयों या व्यष्टिस्तर पर तुलना अधिक लाभ नहीं देती। किन्हीं दो मोहल्लों की मतदान स्थितियों या गुटों में झगड़े की तुलना अधिक उपयोगी नहीं मानी जा सकती। यद्यपि तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग सभी स्तरों पर हो सकता है।

तीसरे चरण में यह निर्धारण कर लेना चाहिए कि अध्ययन का विषय तथा उसकी इकाइयां 'तुलना-योग्य' (Comparable) हों। विभिन्न अवधारणाओं वस्तुओं, शब्दों आदि की परिभाषाएँ निर्धारित एवं स्पष्ट होनी चाहिए। अध्ययन विषय निश्चित होना चाहिए। तुलना करने के लिए कम से कम दो इकाइयां होनी चाहिए। केवल कांग्रेस दल (अर्स) या दिल्ली विश्वविद्यालय का अध्ययन तुलनात्मक नहीं हो सकता। किसी एक देश की विदेशनीति का विश्लेषण भी तुलनात्मक नहीं हो सकता। किन्तु कई देशों की न्याय-व्यवस्थाएँ किसी अवधारणात्मक विचारबन्ध के अन्तर्गत तुलनात्मक पद्धति के माध्यम से अध्ययन की जा सकती हैं। उन इकाइयों का समुचित वर्गीकरण करके तुलना योग्य स्थिति उत्पन्न की जाती है। तुलना और वर्गीकरण (Classification) साथ साथ चलते हैं। वर्गीकरण का कोई न कोई मापदण्ड (Criterion) होता है। वर्गीकरण के साथ ही मापन भी जुड़ा होता है। यह मापन इकाई तथा उसकी विशेषता के अनुसार कई प्रकार से किया जा सकता है। वर्गीकरण तुलनात्मक सरकारों एवं राजनीति के अध्ययन के साथ जुड़ा हुआ है क्योंकि उसमें प्रत्येक वर्ग के विषय में सामान्य विशेषताओं को जानने का लक्ष्य रहता है।[21]

चौथे चरण में, प्रकल्पना निर्धारण तथा परीक्षण आता है। प्रकल्पनाएँ सामान्य सिद्धान्त से जुड़ी हुई रहती हैं। इनका तुलनात्मक अध्ययन के दौरान परीक्षण हो जाता है। इस दृष्टि से तुलनात्मक पद्धति राजनीति विज्ञान के लिए प्रयोगात्मक पद्धति बन जाती है। राजनीति विज्ञान में बहुत कम मात्रा में प्रयोग करना सम्भव होता है किन्तु इस दृष्टि से 'प्रयोग' के अभाव की पूर्ति हो जाती है। प्रकल्पनाएँ कुछ भी हो सकती हैं जैसे, प्रत्येक विधायक की राजनैतिक भूमिका (Role) बनी रहती है चाहे संसदीय प्रणाली हो या 'अध्यक्षात्मक'। इस पद्धति में तीन पद्धतियां– प्रयोगात्मक (Experimental), सांख्यिकीय तथा तुलनात्मक--प्राय घुली मिली रहती हैं। जहां, एक ओर प्रयोगात्मक पद्धति को सांख्यिकीय पद्धति का एक विशेष प्रकार कहा गया है वहीं नागेल ने बताया है तुलनात्मक पद्धति की तार्किक भूमि प्रयोगात्मक पद्धति जैसी ही होती है। अन्तर केवल संख्या का ही होता है। सांख्यिकीय पद्धति में इकाइयों की संख्या बहुत अधिक होती है, किन्तु तुलनात्मक पद्धति में बहुत कम। जोड़-तोड़ (Manipulation) लगभग समान होते हैं। इसमें केवल परख व नियन्त्रण की दृष्टि से ही अन्तर होता है। व्यवहार-

वादी क्रान्ति के आगमन के पश्चात् यह निकटता और भी अधिक स्पष्ट हो गई है। सूक्ष्म परिमाणात्मक अध्ययन करने के लिए तुलनात्मक पद्धति और भी अधिक आवश्यक हो जाती है। उदाहरण के लिए, नरोल ने तुलनात्मक पद्धति को सह-सम्बन्ध विश्लेषण (Correlational analysis) तथा सह-परिवर्तन (Co-variation) प्रविधियों का प्रयोग कहा है। नरोल की तथ्य गुण-नियन्त्रण प्रविधि मूल रूप से तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है।[22] अन्य मापन प्रविधियाँ तुलनात्मक पद्धति पर ही टिकी हुई हैं। सांख्यिकी को तुलनात्मक विश्लेषण का अत्यधिक एवं उच्चस्तरीय व्यवस्थित रूप कहा जा सकता है। एकर्नेट (Ackerknecht) ने तो इसे समाज विज्ञानों में नियन्त्रित-प्रयोग के अभाव की पूर्ति माना है। 'तुलनात्मक पद्धति के अनेक लाभों में से एक यह है कि ऐसे क्षेत्र में जहाँ नियन्त्रित प्रयोग असम्भव है वहाँ यह कम से कम कुछ न कुछ नियन्त्रण प्रदान करता है।'[23] विभिन्न तुलना योग्य स्थितियाँ परीक्षण जैसी अवस्था पैदा कर देती हैं। तुलनात्मक पद्धति के विषय में जो थोड़ी बहुत शंकाएँ थीं, उन्हें 'तुलनात्मक राजनीति पर समाज विज्ञान अनुसन्धान परिषद् की समिति' के प्रयासों ने लगभग समाप्त कर दिया है।

तुलनात्मक पद्धति और वैज्ञानिक पद्धति में अन्तर यह है कि पहली के प्रयोग में किसी न किसी अवधारणात्मक योजना को लेकर अध्ययन आरम्भ किया जाता है। उसके लिए कम से कम दो इकाइयाँ अवश्य होनी चाहिए। तभी तुलना सम्भव हो सकती है। किन्तु वैज्ञानिक पद्धति में किसी वैचारिक परिप्रेक्ष्य का होना आवश्यक नहीं है। उसमें किसी एक इकाई से वस्तुपरक अध्ययन आरम्भ किया जा सकता है। यह एक पूर्ण पद्धति है, जबकि वह आंशिक है।

पाँचवें चरण में विश्लेषण किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। *यदि उनसे प्रकल्पनाओं की पुष्टि नहीं हुई है तो उनमें सुधार और संशोधन किया* जाता है।

क्षेत्र एवं उपयोगिता (Scope and Utility)

तुलनात्मक पद्धति का कार्यक्षेत्र काफी व्यापक है। कोई भी वैज्ञानिक समस्या क्यों न हो, उसमें कुछ न कुछ तुलना अवश्यमेव की जाती है। इसे व्यष्टि (Micro) तथा समष्टि (Macro) दोनों स्तरों पर प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु यह पद्धति अन्य पद्धतियों की तुलना में अधिक समय, धन तथा साधनों की माँग करती है। इनके उपलब्ध होने पर ही इसका प्रयोग किया जाना चाहिए। वस्तुतः पाँच बातें स्पष्ट हो जानी चाहिए–(i) तुलना के लक्ष्य, (ii) शोधक के मानवश्रम, धन तथा सामग्री सम्बन्धी साधन, (iii) समय की सीमा, (iv) अध्ययन-विषय की प्रकृति, तथा (v) अन्य पद्धतियों का स्वरूप।

इनके स्पष्ट हो जाने पर यह पद्धति अन्य पद्धतियों के साथ सहायक या मुख्य पद्धति के रूप में, सिद्धान्त-निर्माण या परीक्षण के लिए, मूल्यांकन हेतु तथा प्रकल्पनाओं के विकास के लिए उपयोग की जा सकती है। इसे राजनीतिक विश्लेषण का एक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक उपकरण (Tool) माना जा सकता है। एक ओर यह राजनीतिक व्यवहार की गहनता और व्यापकता से समझने में सहायता देती है, तो दूसरी ओर यह वैज्ञानिक-पद्धति को और भी अधिक 'वैज्ञानिक' बना देती है। राजनीति विज्ञान में इसे सिद्धान्त के निर्माण तथा पुष्टिकरण, दोनों के लिए, काम में लिया जाता है।

तुलनात्मक पद्धति एवं व्यक्तिवृत्त पद्धति
(Comparative Method and Case-Study Method)

व्यक्तिवृत्त पद्धति में एक ही अध्ययन विषय लिया जाता है। इसे अधिक विश्वसनीय एवं प्रामाणिक बनाने के लिए तुलनात्मक बनाया जा सकता है। एक गहन अध्ययन प्रणाली है तो दूसरी गहन एवं व्यापक दोनों ही है। व्यक्तिवृत्त पद्धति अपेक्षाकृत अस्पष्ट, अल्प विश्वसनीय तथा सीमित रहती है। तुलनात्मक पद्धति अधिक स्पष्ट, विश्वसनीय तथा सामान्य होती है।

समस्याएं एवं सीमाएं (Problems and Limitations)

तुलनात्मक-पद्धति की समस्या तुलना-योग्य इकाइयों का निर्धारण करने से सम्बन्धित होती है। प्रायः शोधकर्त्ता समय, धन और मानव साधनों के अभाव से ग्रसित रहता है। इकाइयों का स्वरूप अस्पष्ट होने के कारण वह सांख्यिकीय विश्लेषण नहीं कर पाता। जोहन गाल्टुंग ने सचेत किया है कि तुलनात्मक अध्ययन में निषेधात्मक उपलब्धियों से घबराना नहीं चाहिए। प्रकल्पना को पुष्ट करने वाले तथ्य लेने और अपुष्ट करने वाले तथ्यों को त्याग देने से कोई लाभ नहीं होता। सभी प्रकार के तथ्य समानता के साथ रखे जाने चाहिए। लिज्फार्ट के अनुसार तुलनात्मक पद्धति की दो समस्याएँ हैं (i) अधिक संख्या में चरों का होना, तथा (ii) व्यक्तिवृत्तों (Cases) की संख्या कम होना। यद्यपि यह समस्या लगभग सभी पद्धतियों के प्रयोग के समय शोधक के सामने आती है, फिर भी तुलनात्मक पद्धति के निष्कर्षों को विश्वसनीय एवं प्रामाणिक बनाने की दृष्टि से इसका अधिक महत्त्व है। इसके लिए व्यक्तिवृत्तों या तुलना-योग्य इकाइयों की संख्या बढ़ायी जा सकती है तथा केवल उनके महत्त्वपूर्ण चरों की ओर ध्यान केन्द्रित किया जा सकता है। एक उपाय विश्लेषण में 'गुण स्थान' (Property-space) को घटाकर किया जा सकता है। लेविस ने इन अध्ययनों में गुणात्मक तथा गणनात्मक तुलना पद्धतियों को विकसित करने की आवश्यकता पर बल दिया है।[24]

राजविज्ञान में प्रयोगात्मक पद्धति
(Experimental Method in Political Science)

वास्तविक राजनीति के क्षेत्र में जाने-अनजाने अनेक प्रयोग किये जाते हैं। ये प्रयोग राजनेताओं और राजनीतिज्ञों के द्वारा सहमति, दबाव, कानून आदि के माध्यम से किये जाते हैं। इस दृष्टि से लोकतन्त्र, विकेन्द्रीकरण, मतदान, शराबबंदी आदि प्रयोग ही हैं। किन्तु ये प्रयोग गैर-राजविज्ञानियों द्वारा किये जाते हैं। राजविज्ञान में राजविज्ञानियों द्वारा प्रयोग करके अध्ययन करना एक नवीन पद्धति मानी जाती है। अभी तक इसका सीमित मात्रा में ही उपयोग किया गया है (Experimentation) का अर्थ एक ऐसी शोध-प्रक्रिया से है जिसमें एक या अधिक चरों को नियन्त्रित करके दूसरे चरों के प्रभाव को देखने के लिए तथ्यों का संकलन किया जाता है। प्रयोग में शोधक के द्वारा कम से कम एक स्वतन्त्र चर का नियन्त्रण करके अध्ययन करना आवश्यक होता है।[25]

अन्य पद्धतियों एवं प्रविधियों में खुली अप्रयोग वाली परिस्थितियों में राजनीति का अध्ययन किया जाता है। प्रयोगात्मक पद्धति में कृत्रिम ढंग से चरों पर कुछ न कुछ मात्रा में नियन्त्रण करके पर अध्ययन किया जाता है। इसमें स्वतन्त्र और आश्रित चर के मध्य सम्बन्ध स्थापित करके मापन का प्रयास किया जाता है। प्रयोग के द्वारा ही कार्य-कारण

सम्बन्धों को जाना जा सकता है। इसमें शोधक एक कृत्रिम परिस्थिति उत्पन्न करता है तथा उपयोगी तथ्यों को प्राप्त करके मापन करता है। ऐसा करके किसी प्रकल्पना को प्रामाणिक आधार पर खण्डित या पुष्ट किया जा सकता है।

यदि 'प्रयोग' को कठोर तरीके से परिभाषा की जाये तो मानव व्यवहार के साथ प्रयोग करने की बात करना ही नैतिक एवं मानवीय दृष्टि से निरर्थक होगा। किन्तु यदि उसमें कुछ उदारता से काम लिया जाय तो स्पष्ट तो हो जायेगा कि राजविज्ञान में यह सर्वथा असम्भव नहीं है। एक सीमा तक अर्ध नियन्त्रित गवेषणाओं को प्रयोग माना जा सकता है। इसी का एक मिलता-जुलता रूप अनुरूपण (Simulation) है, जिसका परिचय आगे दिया जायेगा।[24] प्रयोग करने की आवश्यकता उस समय पड़ती है जब सम्भावित परिस्थितियों में कतिपय अन्य पद्धतियों से प्राप्त न हो सकने वाले चरों का पारस्परिक सम्बन्ध या स्वरूप पूर्ण परिशुद्ध, मापनीय तथा निश्चित मात्रा में प्राप्त करना हो। ऐसी परिस्थितियाँ या चर शीत युद्ध के कारणों का पता लगाने या मन्त्रिमण्डल के किसी विषय पर विश्लेषण करने से सम्बन्धित हो सकती हैं। स्पष्ट है कि केवल विशेष और महत्त्वपूर्ण विषयों के लिए ही प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग किया जायेगा।

प्रयोगात्मक अभिकल्पों के प्रकार (Kinds of Experimental Designs)

राजविज्ञान के प्रयोगात्मक अभिकल्प अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यह उनके प्रयोजन, कार्य विधि तथा आकार पर निर्भर करता है कि उन्हें किस वर्ग में रखा जाये। उनके सामान्य तीन रूप—(i) व्याख्यात्मक (Explanatory) (ii) वर्णनात्मक (Descriptive), तथा (iii) नियन्त्रित (Controlled) पाये जाते हैं। प्रथम, व्याख्यात्मक या अन्वेषणात्मक अभिकल्प वास्तविक तथ्यों या घटनाओं के स्वरूप की जानकारी के लिए तैयार किये जाते हैं। दूसरे प्रकार के वर्णनात्मक अभिकल्प सूचना मात्र प्रदान करते हैं। वास्तव में देखा जाये तो इन दो प्रकारों को 'प्रयोगात्मक' नहीं कहा जा सकता। ये किसी भी अभिकल्प का भाग बन सकते हैं। तीसरा प्रकार ही वास्तव में 'प्रयोगात्मक' अभिकल्प है।

इन प्रयोगों में मुख्य बात चरों के सम्बन्धों को जानने के लिए परिस्थितियों को उत्पन्न करना होता है। अतएव सबसे पहले समस्या का निर्धारण पूरी तरह स्पष्ट रूप से किया जाना चाहिए। उसमें स्वतन्त्र, आश्रित एवं हस्तक्षेपी चरों का उल्लेख किया जाना चाहिए। इनमें सम्बन्धित प्रकल्पना को सामने लाया जाना चाहिए। इसके बाद उन परिस्थितियों, गतिविधियों या क्रियाओं का उल्लेख किया जा सकता है जो उन चरों का सम्बन्ध बताती हों। सम्बन्धों का मापन करने के लिए प्रमाप (Scale) पहले से ही निर्मित कर लिया जाना चाहिए। अन्य हस्तक्षेपी (Intervening) चरों के प्रभाव को रोकने की व्यवस्था कर देनी चाहिए। जैसे, किसी कुशल प्रबन्ध की प्रभावशीलता का मापन करने के लिए लगभग समान आकार के तीन संगठनों—आधुनिक परम्परागत तथा संक्रान्तिकालीन (Transitional) को लिया जा सकता है। किसी क्षेत्र में प्रयोग करने, जैसे, नसबन्दी प्रचार या प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के पहले तथा बाद की स्थितियों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। प्रयोग में कार्यक्रम या चरों के समूह को 'उपचार' (Treatment) कहा जाता है।

ऐसे प्रयोगो मे कार्य-कारणो, सम्बन्धो को जानने के लिए निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी पड़ती है[29] :

(i) जनसख्या—इकाइयो का चयन दैव-निदर्शन द्वारा किया जाये,
(ii) प्रयोगात्मक (Experimental) तथा नियन्त्रण समूहो मे व्यक्तियो या इकाइयो का दैव निदर्शन द्वारा चयन किया जाये,
(iii) स्वेच्छा से निदर्शनो (Samples) का चयन नही किया जाये,
(iv) अनुपयुक्त निदर्शनो तथा उपचारो से बचा जाये,
(v) प्रयोग के फलस्वरूप होने वाले प्रभावो का मापन न कर सकने वाले प्रमापों या मापको (Measures) को त्याग दिया जाये,
(vi) ऐसा न हो कि स्वय मापन या मापक ही चरो मे परिवर्तन ला दें,
(vii) दूसरे स्रोतो से कई बार पूर्वाग्रह प्रवेश कर जाते हैं, उनसे बचने का उपाय कर लिया जाये,
(viii) जहाँ तक हो सके समरस (Homogeneous) प्रकृति की जनसख्या (Population) का चयन किया जाये,
(ix) 'प्रयोगात्मक' तथा 'नियन्त्रण' समूहो को पृथक् रखा जाये और उनका एक-दूसरे पर प्रभाव नही पड़ने दिया जाये, तथा
(x) अध्ययन की इकाइयो का, अधिक नियन्त्रण बनाए रखने की दृष्टि से, वर्गीकरण किया जाये।

गेराल्ड डी हर्ष तथा उसके साथियो ने पूर्वी 'नाइजीरिया मे सचारण' का अध्ययन करके पता लगाया था कि उसने वहाँ परिवर्तन लाने मे कितना योगदान दिया है?

प्रयोगात्मक शोध के प्रकार (Kinds of Experimental Research)

प्रयोगात्मक शोध के चार प्रमुख प्रकार पाये जाते हैं :

(i) पश्चात् प्रयोग (*After Experiment*),
(ii) पूर्व-पश्चात् प्रयोग (Before-After Experiment),
(iii) कार्यान्तर प्रयोग (Ex-post Facto Experiment), तथा
(iv) अनुरूपण (Simulation)।

इनमे से, प्रथम प्रयोग मे समान विशेषताओ वाले दो समूहो को चुन लिया जाता है। इनमे से एक नियन्त्रित समूह (Controlled group) तथा दूसरा प्रयोगात्मक समूह (Experimental group) कहलाता है। प्रयोगात्मक समूह में किसी एक चर, कारक, स्थिति, शक्ति, व्यक्तित्व आदि का प्रवेश कराया जाता है। उसके परिणामस्वरूप आने वाले परिवर्तन का अध्ययन, विश्लेषण तथा मापन किया जाता है। जैसे, दूसरे प्रयोगात्मक समूह मे टी वी सेट देकर, किसी विदेशी को सदस्य बनाकर या धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध करके नवीन चर का प्रभाव देखा जा सकता है। दूसरे, पूर्व-पश्चात् प्रयोग मे एक ही समूह का चयन किया जाता है। उसमे उपचार से पूर्व तथा पश्चात् परिवर्तन का अवलोकन किया जाता है। जैसे, मतदान, चुनाव प्रचार आदि मे भाग लेने से पूर्व तथा पश्चात् किसी जन-जाति का अध्ययन। उक्त दोनो प्रयोगो की अपनी सीमाएँ हैं। प्रथम में समान समूहो का मिलना ही कठिन होता है, तो दूसरे मे परिवर्तन अन्य किसी और कारण की वजह से भी

हो सकता है। तीसरा कार्यान्तर-प्रयोग किसी बीती हुई ऐतिहासिक घटना के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए किया जाता है। ऐतिहासिक घटना तो दुबारा घटित नहीं हो सकती किन्तु ऐसे दो वर्गों या समूहों को लिया जा सकता है, जहां एक में वह घटना, जैसे, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा चलाया गया सविनय-अवज्ञा आन्दोलन, घट चुका हो तथा दूसरे मे ऐसी घटना, जैसे, किसी दक्षिणी देशी रियासत मे, नहीं घटी हो। उक्त प्रयोग के अनेक मिश्रित प्रकार भी हो सकते हैं। जैसे चार समूह—दो प्रयोगात्मक तथा दो नियन्त्रण-समूह, लेकर छ. अध्ययन अभिकल्प बनाकर परिणामो का अवलोकन किया जा सकता है। कार्यान्तर अभिकल्पो के द्वारा प्रचार साधनों के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।

अनुरूपण (Simulation)

राजविज्ञान मे प्रत्यक्ष करने के अतिरिक्त अनुरूपण को भी 'प्रयोग' की तरह माना गया है। इन पर रिचर्ड स्नाइडर (Richard Snyder) ने विस्तारपूर्वक विचार किया है। इन सभी को मिलाकर प्रयोगो का तीन वर्गों मे विभाजन किया जा सकता है

(1) अर्ध-प्रयोग (Quasi-Experiments)—इनमे प्रयोगशाला की तुलना मे शोधक या प्रयोगकर्त्ता को नियन्त्रण का अपेक्षाकृत कम अवसर मिलता है, किन्तु स्वाभाविक प्राकृतिक परिवेश मे बदलती हुई परिस्थितियो का बार बार अवलोकन करने का अवसर मिल जाता है। गोस्नैल (Getting Out the Vote : An Experiment in the Stimulation of Voting, 1927), शैरिफ तथा अन्य ने (The Robber's Cave Fxperiment, 1961) एसे प्रयोग किए हैं।

(2) कृत्रिम प्रयोगात्मक परिस्थितियां (Artificial Experimental Situations)—ये दो प्रकार की होती हैं। एक मे कम्प्यूटर या सगणकों (Computors) का प्रयोग किया जाता है तथा दूसरे मे, मनुष्यो के साथ प्रयोग किया जाता है। पूल, मैक्फी, बेन्सन आदि ने राजनैतिक अभियानों, निर्वाचनो, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो आदि को पूरी तरह कम्प्यूटर पर उतार कर प्रयोग किए हैं। मनुष्यो के साथ प्रयोग के, वास्तव में अनुरूपण के पुन तीन प्रकार हैं—

(क) मुख-प्रतिमुख लघु समूह—वर्बा ने (Small groups and political behaviour A study of leadership, 1961) छोटे समूहों मे नेतृत्व सम्बन्धी तथा गोलम्बोस्की ने (Organization and Behaviour, 1962) सगठन मे व्यवहार सम्बन्धी प्रयोग किए हैं।

(ख) बड़े सगठनों, सस्थाओ तथा प्रक्रियाओं का अनुरूपण—छोटी राजनैतिक इकाइयों के छोटे समूहो म ही राजनीतिक प्रयोग नहीं किए गए हैं, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था, बड़े सगठन आदि को भी किसी प्रयोगशाला जैसे स्थान पर छोटे समूहो मे अनुरूपित (Simulate) किया गया है। इनसे महत्त्वपूर्ण परिणाम प्राप्त किए गए हैं।

(ग) लेन-देन एव मध्यस्थता सम्बन्धी प्रयोग—इनकी प्रेरणा अर्थशास्त्रियो से ग्रहण की गई है। क्रीडा-सिद्धान्त इसी दृष्टिकोण का क्रियान्वित रूप है। इस क्षेत्र में टॉमस शैलिंग (The strategy of conflict, 1960) का योगदान अधिक प्रसिद्ध है।

मूल्यांकन (Evaluation)

प्रयोग एव अनुरूपण के विपक्ष मे बहुत जोरदार तर्क प्रस्तुत किए गए हैं। प्रयोगों मे सैद्धान्तिक आधार का अभाव पाया जाता है। बिना किसी सिद्धान्त के विकास के प्रयोग

करने का कोई खास परिणाम नहीं निकलता। प्रयोग करने की आर्थिक, सामाजिक तथा मानवीय कीमत भी बहुत अधिक है। समय का तत्त्व भी एक गम्भीर बाधा है। प्रयोगो मे, जैसे, हार्थोर्न प्रयोगो मे लगने वाला समय असहनीयता होता है। प्रयोग करते समय अनेक प्रशासनिक एव मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी उठ खडी होती हैं। अनुरूपण के विषय मे भी भारी आक्षेप लगाए गए हैं। यह कहा गया है कि राजनीति की वास्तविकता (Reality) प्रयोगशाला की पहुँच के बाहर है। छोटे छोटे समूहो मे अनुरूपण करने से वास्तविक रूप से बड़े सगठनो मे होने वाली गतिविधियो का ठीक से पता नही चलता। यह भी बताया गया है कि वास्तविक जगत् मे घटने वाले किसी अनुभव का प्रयोगशाला म परीक्षण नही किया जा सकता। वास्तविक जगत् मे राजनैतिक गतिविधियों के प्रेरणास्रोत, राष्ट्रपति या प्रधानमन्त्री बनने की लालसा या युद्ध म विजयी होने का गौरव, किसी भी प्रकार से अनुरूपण नही किया जा सकता। अनुरूपण द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को अन्यत्र दूसरे समूहो पर लागू करना भी कठिन होता है।

इतना होने पर भी प्रयोगात्मक पद्धति का उपयोग बढता जा रहा है। इसका मूल कारण यह है कि केवल इसी पद्धति के द्वारा वास्तविक रूप मे कार्य-कारण सम्बन्धो को मालूम किया जा सकता है। यद्यपि ये सभी कृत्रिम परिस्थितियो को उत्पन्न करके ज्ञात किए जाते हैं, किन्तु इनसे स्वतत्र और आश्रित चरो के अन्तर्सम्बन्धो का पता चल जाता है। प्रयोग निजी एव सरकारी स्तरो पर अधिकाधिक मात्रा मे किए जाने लगे हैं। वास्बी ने अनुरूपण प्रयोगों के विरुद्ध लगाए उत्तरो का विस्तारपूर्वक उत्तर दिया है।[28] उसने बताया है कि अनुरूपण मे मुख्य चरो का परीक्षण किया जाता है जो सिद्धान्तत. सही है। कम्प्यूटरो के द्वारा जटिल से जटिल परिस्थिति का अनुरूपण करने मे भी कोई कठिनाई उत्पन्न नहीं होती। न केवल यह एक शिक्षण का तरीका है अपितु इसके आधार पर वास्तविक अन्तक्रियाओ को जाना जा सकता है तथा उपचारात्मक कदम उठाए जा सकते है। कृत्रिम स्थितियाँ उत्पन्न करके वास्तविकताओ को जानने मे कोई हानि नहीं है। ऐसा करके अनक समस्याओ का समाधान किया गया है। टर्नर ने (The child within the group An exprıment in self-government, 1957) बालकों पर अर्ध-प्रयोग करके यह पता लगाया है कि राजनैतिक शिक्षण की क्या पूर्व-दशाएँ एव प्रभाव होते है? अनेक समूह पहल करके किसी अर्ध-प्रयोग के लिए तैयार हो जाते हैं। समस्या इतनी ही है कि प्रयोगकर्ता अपनी विषयवस्तु तथा प्रयोग की तकनीक का पूरी तरह से समझते हो और उस प्रयोग मे भाग लेन वाले व्यक्ति पूरी गम्भीरता के साथ सहयोग करें। वास्तविकता की खोज मे सबका दृष्टिकोण एकरूप होना आवश्यक है।

राजविज्ञान म तथ्यो को विविध पद्धतियो एव प्रविधियो से प्राप्त कर लेने के पश्चात् उनको और भी अधिक मापनीय, तुलनात्मक तथा विश्लेषण के योग्य बनाने की आवश्यकता पडती है। यह कार्य राजनीतिक तथ्यो के मापन एव परिमाणन (Measurement and Quantification) के द्वारा किया जाता है। इन कार्यों के लिए तरह-तरह के प्रमाप (Scales) विकसित किए गए हैं। इनका विवेचन अगले अध्याय मे किया गया है।

सन्दर्भ

1. Paul F Lazarsfeld and Morris Rosenberg, eds, The Language of

Social Research—A Reader in the Methodology of Social Research, Glencoe, Illinois, Free Press, p 203.

2. Charles Y. Glock, 'Some Applications of the Panel Method to the Study of Change', in Lagarfeld and Rosenberg, eds , The Language of Social Research, op cit , p 242.
3. Heinz Eulau, Samuel J. Elderveld and Morris Janovitz, Political Behaviour--A Reader in Theory and Research, New Delhi, Amerind Publishing Co , 1956, p 45.
4. भारत मे चुनावो के अध्ययन के विषय में देखिए—Iqbal Narain, K. C Pande, M. L Sharma and Hansa Rajpal, Election Studies in India, Bombay, Allied Publishers 1978.
5. Paul F. Lazarsfeld op cit.
6. Glock. op cit., pp 250.
7. Roy C Macridis and Richard Cox, 'Area Study and Comparative Politics', in Macridis and Brown, 3rd ed , Comparative Politics, Homewood, Illinois, Dorsey Press, 1968, pp 97–98, The Study of Comparative Government, Garden City, New York, 1955.
8 S. P Verma, Area Studies : Concept, Methods and Approach, Jaipur, South Asia Studies Centre, University of Rajasthan, Vol. 2, No 1 (January, 1967), p 3
9. श्यामलाल वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, द्वितीय सस्करण, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन, 1977, पृ 391
10. Gunnar Heckscher, The Study of Comparative Government and Politics, London, 1957.
11. श्यामलाल वर्मा, समकालीन राजनीतिक चिन्तन एव विश्लेषण, दिल्ली, मैकमिलन, 1976, पृ. 363–64.
12. श्यामलाल वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, वही, पृ 382–83.
13. David Easton, The Political System, 1953, op cit,, Roy C. Macridis, The Study of Comparative Government, New York, Garden City, 1955
14 Harry Eckstein and David E Apter eds , Comparative Politics : A Reader, New York, Free Press, 1963.
15. Harold D Lasswell, 'The Future of Comparative Method', Comparative Politics, Vol 1, No 1, 3–18
16 Arend Lijphart, 'Comparative Politics and Comparative Method', American Political Science Review, Vol XIV, 3 (Sept. 1971).
17. Arthur L Kalleberg, 'The Logic of Comparison . A Methodological Note on tax Comparative Study of Political Systems', World Politics, XIX (1966), 69–82.

18 Gunnar Heckscher, General Methodological Problems', in Harry Eckstein and David E Apter, eds, Comparative Politics A Reader, New York, Free Press of Glencoe, 1963, pp 35–42
19 Harold Guetzkow Some Uses of Mathematics in Simulation of International Relations' in John M Claunch ed, Mathematical Applications in Political Science Dallas Arnold Foundation, Southern Methodist University, 1965, P 25
20 Stephen L Wasby, Political Science—The Discipline and its Demensions, Indian ed, Calcutta Scientific Book Agency, 1970, pp 499–508
21 Ibid pp 494–99
22 Raoul Naroll, Data Quality Control New York, Free Press of Glencoe 1961
23 E, H Ackerknecht, 'On the Comparative Method in Anthropology', in Robert F Spencer, ed Method and Prospective in Anthropology, Minneapolis, University of Minnesota Praess, 1964, P 4
24 Oscar Lewis 'Comparisions in Cultural Anthropology', in Frank W Moore, ed, Readings in Cross–Cultural Methodology, New Haven, Conn, Human Relations Area Files 1961, pp 55–58
25 Stephen L Wasby, Political Science—The Discipline and its Dimensions, op, cit, p 182
26 वर्मा, आधुनिक राजनीतिक सिद्धान्त, अध्याय-दस।
27 Hursh–Cesar and Roy eds, op cit, pp 142–48
28 Wasby, op cit, pp 188–91.

□□□

अध्याय 14

राजनीतिक तथ्यों का परिमाणन : अनुमापन प्रविधियाँ एवं राजमिति

[Quantification of Political Data : Scaling Techniques & Politicometry]

राजनीति विज्ञान में तथ्यों का परिमापन (Quantification) करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। राजनीतिक तथ्यों का सही माप करने की क्षमता ही इस बात का परिचायक होती है कि राजनीति विज्ञान अन्य विषयों की तुलना में कितनी प्रगति कर चुका है। राजविज्ञान में यह कार्य बहुत कठिन माना जाता है क्योंकि अधिकांश राजनीतिक घटनाएँ (Phenomena) एवं वस्तुएँ जटिल, सूक्ष्म, अमूर्त, परिवर्तनशील एवं गुणात्मक हैं। उनकी प्रकृति गुणात्मक एवं अमूर्त होने के कारण उनका वैषयिक (Objective) एवं गणनात्मक मापन कठिन समस्या बन जाता है। गणना या परिमाणन के कार्य पर अमूर्त विषयवस्तु के अलावा स्वयं अनुसंधानकर्ता तथा अन्य व्यक्तियों की अपनी दृष्टि का भी प्रभाव पड़ता है। फिर भी, प्रमापन या अनुमापन प्रत्येक विज्ञान की प्रमुख आवश्यकता है। गुड एवं हैट ने कहा है कि, 'सभी विज्ञानों की प्रवृत्ति अधिकाधिक यथार्थता की दिशा में अग्रसर होने की होती है। इस यथार्थता के कई रूप हैं किन्तु उसका आधारभूत रूप है क्रमबद्ध श्रेणियों का माप।'[1]

प्रमापन वैज्ञानिक प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण चरण है।* इसके बिना घटनाओं के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्धों का परीक्षण नहीं किया जा सकता। यह अनुसंधानकर्ता को सिद्धान्तों तथा प्रस्तावनाओं का परीक्षण करने योग्य बनाता है। इससे यह पता चलता है कि किस व्यक्ति का किस वस्तु—समाज, राज्य, दल, संगठन, परिवार, पक्ष आदि के साथ कितना लगाव है? इसी तरीके से दो व्यक्ति अपने-अपने गुणात्मक मूल्यांकनों की तुलना कर सकते हैं। राजनीति विज्ञान में राजनीति का अध्ययन करने के लिए और भी अधिक आवश्यक है। दो व्यक्तियों या दो दलों के प्रभाव का आकलन विश्वसनीय प्रविधियों से करने की आवश्यकता होती है। जन-सेवकों तथा राजनेताओं के प्रभाव का सतत

---

* Measurement is the process that permits the social scientists to move from the realm of abstract indirectly observable concepts and theories into the world of sense experience

—McGraw and Watson

Measurement is the assignment of numerals to properties of objects according to rules. —McGraw and Watson

(Indicator) किसी राजनीतिक बैरोमीटर पर आम जनता को मालूम रहना चाहिए ताकि सत्तारूढ दल, एक ओर, चाहे तो जनमत के अनुकूल नीतियों का निर्माण करे तथा उसको शिथिल करने का प्रयास करे, दूसरी ओर, राजनैतिक दल एवं जनता जनमत-विरोधी सत्तारूढ़ दल को हटाने का प्रयत्न करें। किसी को जन प्रतिनिधि, जनसेवक या राजनेता मानने से पूर्व कतिपय शर्तों का पूरा किया जाना आवश्यक होता है तथा उन शर्तों का निरन्तर बने रहना जरूरी होता है। ये शर्तें जनतन्त्र में निष्ठा, ईमानदारी, देशभक्ति, अनुशासन, एकता भाव आदि हो सकती है। इनके अस्तित्व, मात्रा, स्वरूप आदि को मापने के यन्त्र होने चाहिए, अन्यथा एक ओर लोकसेवक या लोकनेता चुपचाप लखपति और करोड़पति बनकर भाई भतीजावाद फैलाने के साथ साथ सार्वजनिक महत्त्व के अनेक पदों को भी धारण किए रहता है। ऐसी मापन प्रविधियों के अभाव में यह जानना कठिन होता है कि सब कुछ होने पर भी एक धनाढ्य एवं धूर्त नेता तथा तस्कर या डाकू में कैसे अन्तर किया जाये ? इसके अतिरिक्त अनेक दलों तथा एक ही दल के व्यक्तियों के दृष्टिकोणों, भावनाओं एवं निष्ठाओं में क्या और कितना अन्तर है ? यह जानना भी आवश्यक होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है राजनेताओं, उच्च पदाधिकारियों तथा राजनीतिकों पर ऐसी मापन प्रविधियों का प्रयोग करना अत्यन्त कठिन होगा तथा उनको विकसित करने में अभी बहुत समय लगेगा। किन्तु उनको विकसित करना एक शैक्षिक दायित्व है जिसे राजविज्ञानियों तथा राजनीति अभियन्ताओं को वहन करना ही होगा। कम से कम इसका समारम्भ तो कर ही दिया जाना चाहिए।

राजनीति विज्ञान में परिमाणन : व्याख्या
(Quantification in Political Science · Explanation)

परिमाणन, अनुमापन आदि राजनीति विज्ञान में बढ़ते हुए गणितीकरण के परस्पर मिलते-जुलते स्वरूप हैं। इन सबका उद्देश्य राजनीतिक तथ्यों का मापन या प्रमापन (Measurement) करना है। मापन में अवलोकनों (Observations) या अवलोकित तथ्यों को मात्रात्मक प्रतीक या संख्या प्रदान की जाती है। किन्तु सभी प्रकार का मापन संख्यात्मक या परिमाणात्मक (Quantitative) नहीं होता। मापन संख्यात्मक या गुणात्मक हो सकता है। संख्यात्मक परिमाणन को मापन का अधिक परिष्कृत या शुद्ध रूप माना जाता है। किन्तु गणितीकरण आवश्यक रूप से संख्या प्रदान करना ही नहीं है। राजनीति के अनेक अमूर्त तथ्यों को संख्या में व्यक्त नहीं किया जा सकता, फिर भी गणितीकरण के अन्तर्गत उनका परिमापन करना पड़ता है। परिमाणन गणितीकरण का माध्यम एवं परिणाम है। अनुमापन (Scaling) अमूर्त तथ्यों का परिमापन है।

गणितीकरण, अपने व्यापक रूप में, आनुभविक तथ्यों तथा उनके संकेतकों के मध्य-सम्बन्धों का औपचारीकरण (Formalization) है। गणितीकरण इन सम्बन्धों को अपने तरीके से स्थापित करता है। गणितीकरण की प्रक्रिया इन सम्बन्धों की तर्कपूर्ण व्याख्या तथा विस्तारण (Elaboration) करती है। गणित एक विकसित तर्कशास्त्र है। इस दृष्टि से सारे वैज्ञानिक सिद्धान्त गणितीय होते हैं क्योंकि जब एक विज्ञानी किसी तथ्य को सूक्ष्म, शुद्ध और निश्चित ढंग से जानना चाहता है, उस समय वह गणित का ही अभ्यास कर रहा होता है। राजविज्ञान में गणित के आगमन पर भयंकर विवाद भी हुआ है और हो रहा है।[2] किन्तु गणित राजविज्ञान में परिशुद्धता (Precision) का दूत बनकर

आयी है। राजविज्ञान की परम्परागत भाषा अनेकार्थक, मूल्य भारित तथा वैज्ञानिक सिद्धांत निर्माण करने में असमर्थ है। उसके शब्द न केवल भावनाओं को उद्वेलित करते हैं अपितु भिन्न भिन्न दर्शकों में भिन्न भिन्न अर्थों को आमन्त्रित करते हैं। वे सूक्ष्म तथ्यों के वर्णन के अयोग्य तथा बहुसंख्या वाले चरों से सम्बद्ध घटनाओं का उल्लेख करने में अक्षम हैं। उच्चस्तर पर, गणितीय परिशुद्धता सिद्धान्त, सिद्धान्त निर्माण का हृदय बन जाती है। गुड्ज्कॉव ने राजविज्ञान को गणित के योगदान के विषय में बताया है कि (1) इसने मौखिक अवधारणाओं को कार्य-कौशलात्मक (Manipulable) प्रतीक दिए हैं, (2) उसके द्वारा गुणात्मक अवधारणाओं को गणनात्मक बनाया जा सकता है, तथा (3) इसने बहुसंख्यक चरों वाली सश्लिष्ट घटनाओं का विश्लेषण करने के साधन दिये हैं।[3] वस्तुतः व्यापक राज-व्यवस्थाओं से सम्बन्धित लम्बे-चौड़े आँकड़ों का गणितीय प्रविधियों के द्वारा ही उपयोग किया जा सकता है। राष्ट्र राज्य स्तर पर तुलना करने के लिए भारी मात्रा में आँकड़ों की आवश्यकता पड़ती है। इसी तरह, राजनीतिक परिवर्तन को समझने के लिए भी विविध प्रकार की परिमाणात्मक सामग्री उपलब्ध होनी चाहिए। इनका उपयोग करने में गणितीय विधियाँ ही उपयुक्त हैं।

इस गणितीकरण का पर्याप्त मात्रा में विरोध भी किया जाता है। अधिक 'ठोस' (Harder) विज्ञानों से गणितीय कार्यविधियाँ उधार लेकर राजविज्ञान में घुसेड़ना बौद्धिक क्रीड़ा मात्र है। यह उच्चस्तर बौद्धिक प्रस्थिति (Status) को प्राप्त करने का विलास है। वास्तव में देखा जाय तो, परम्परावादियों के अनुसार, गणितीय प्रतीकों के प्रयोग के बाद तथ्यों से राजनीतिक तत्त्व ही निकल जाता है और उनमें राजनीति की कोमलता, लचीलापन आकर्षण आदि सभी समाप्त हो जाता है। हैकर ने बताया है कि गणितीय विधियों द्वारा राजनीतिक सत्य खोजना भी अन्तर्प्रज्ञात्मक अथवा व्यक्तिपरक होता है।[4] परिमाणन का स्वयं तथ्यों पर भी प्रभाव पड़ता है। तथ्य गणितीय परिधान पहनने के बाद पुलिस या मिलिट्री के सैनिकों की तरह एक से दिखायी देने लगते हैं। इसका अर्थ यह है कि राजविज्ञानी नष्टभ्रष्ट, विद्रूप या अद्भुत तथ्यों के आधार पर विश्लेषण करने लग जाते हैं। किन्तु बहुत कम लोगों ने गणित का सीमित एवं उपयुक्त मात्रा में उपयोग करने से निषेध या विरोध किया है। सामान्य जीवन में भी गणनात्मक तथ्यों-जन्म दर, मृत्यु-दर, राष्ट्रीय आय, विकास दर आदि— का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। अमूर्त विषयों में भी सांख्यिकी और मापन किया जा रहा है। अनेक आशार्थियों या व्यक्तियों में से छाँटकर शांति पुरस्कार, नोबल पुरस्कार आदि दिये जाते हैं तथा सुन्दरता जैसी अमूर्त विशेषता का निर्णय करके 'विश्व-सुन्दरी भारत सुन्दरी', 'अरावली-कुमारी' आदि उपाधियाँ दी जाती हैं।

सांख्यिकी मापन एवं अनुमापन (Statistics Measurement and Scaling)

सांख्यिकी (*Statistics*) एक व्यापक विषय एवं अवधारणा है। मापन (Measurement) अपेक्षाकृत सीमित और संकुचित अवधारणा है। सांख्यिकी को उसके वर्णनात्मक या आगमनात्मक कार्यों की दृष्टि से परिभाषित किया जाता है। वर्णनात्मक सांख्यिकी (Descriptive statistics) किसी समग्र के विषय में सूचना को संक्षेप में रखती है। आगमनात्मक सांख्यिकी एक समग्र में से निदर्शन लेकर सामान्यीकरण करती है। वर्णनात्मक सांख्यिकी का खोज या प्रकल्पना के पुष्टिकरण अथवा मिथ्याकरण के लिए उपयोग किया जाता है। आगमनात्मक सांख्यिकी (Inductive statistics) गणित के

सम्भाव्यता सिद्धान्त (Probability theory) पर आधारित है। इसका कार्य प्रकल्पनाओं का परीक्षण करने के लिए साक्ष्य की मान्यता का निर्णय करना है। ये प्रकल्पनाएँ, उदाहरण के लिए, निदर्शन एवं समग्र से सम्बन्धित हो सकती हैं।

मापन 'विशिष्ट नियमों के अनुसार 'वस्तुओं' तथा 'घटनाओं' (Events) को संख्या प्रदान करने की प्रक्रिया को कहते हैं।'[3] ये नियम बदलते रहते हैं, इस कारण मापन प्रविधियाँ भी बदलती रहती हैं। मापन में राजनीतिक एवं सामाजिक वस्तुओं, घटनाओं एवं तथ्यों को गणनात्मक ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाता है। इसका अर्थ यह है कि उनके विभिन्न लक्षणों (Attributes) को एक निश्चित निरन्तरता या अनुक्रम (Continunm) पर मापित किया जाये ताकि उनके विशेष लक्षणों में अन्तर बताया जा सके। मापन का अर्थ है अनुमापन (Scaling)। मापन कतिपय अनुमापन प्रविधियों के द्वारा किया जाता है।[+] यह मापन कार्य कतिपय निश्चित, स्पष्ट, और उपयुक्त नियमों के आधार पर किया जाता है। नियम एक मार्ग निर्देशक पद्धति या आदेश है कि क्या और कैसे करना है। अच्छे नियम अच्छा मापन करते हैं। मापन वस्तुओं के मध्य एक सम्बन्ध, सम्बन्ध-स्थापना का कार्य तथा सदृशता (Correspondence) है।

अनुमापन प्रविधियाँ गुणात्मक तथ्यों को गणनात्मक तथ्यों में परिवर्तित करने की पद्धतियों को कहते हैं। गुणात्मक तथ्यों को 'लक्षण' (Attributes) तथा गणनात्मक तथ्यों को 'चर' या 'परिवर्त्य' (Variable) कहा जाता है। लक्षण' जो प्राय गुणात्मक होता है, मापन की जाने वाली घटना, कारक या विशेषता को कहते हैं। चर लक्षण के मापित या अनुमापित लक्षण को कहते हैं। चर का सरलतापूर्वक मापन किया जा सकता है तथा गणनात्मक होता है। निरन्तरता एक तर्कपूर्ण अनुमाप या प्रमाप (Scale) होता है जिस पर विभिन्न लक्षणों को सापेक्ष स्थिति जानने के लिए रखा जाता है। निरन्तरता का प्रखर तर्कणा, अवधारणात्मक विश्लेषण तथा आनुभविक परीक्षण के बाद चयन किया जाता है। इस निरन्तरता से सम्बद्ध मदों का ही प्रमाप पर अनुमापन किया जा सकता है। जैसे, जवाहरलाल नेहरू की महानता और गंगा नदी की लम्बाई के लिए अनुमापन हेतु कोई निरन्तरता निर्धारित नहीं की जा सकती। प्रमाप (Scale) एक युक्ति (Device) है जिससे घटनाएँ, वस्तुएँ, दशाएँ आदि अनुमापी जाती हैं। अनुमापन मापन को कहते हैं।

कैलिंगर ने लिखा है कि विशिष्ट अर्थों में 'एक प्रमाप (Scale) प्रतीकों अथवा अंकों का एक समूह रहा है, जिसे इस प्रकार बनाया जाता है कि इन प्रतीकों अथवा अंकों को नियमानुसार उन व्यक्तियों (अथवा उनके व्यवहार) के हेतु निर्धारित किया जा सके, जिन पर यह प्रमाप प्रयोग किया जा रहा है।'* प्रमाप समाजविज्ञानों में प्रयोग किया जाने वाला एक ऐसा शब्द-समूह है जिसके प्रति प्रत्येक व्यक्ति प्रत्युत्तर के रूप में अपनी

---

*All sciences, move in the direction of greater precision This takes many forms, but one fundamental form is measuring gradations
—Goode and Hatt

They are methods of tur ning a series of qualitative facts (reffered to as attributes) into a quantitative series (reffered to as variable)
—Goode and Hatt

स्वीकृति अथवा अस्वीकृति की मात्रा को प्रकट करता है। वह शब्दों के अलावा अन्य किसी रूप में भी अपने मत की मात्रा को प्रकट करता है। प्रमाप में कुछ निश्चित वैकल्पिक विषय होते हैं जिनके उत्तर सूचनादाता उस प्रमाप के किसी बिन्दु पर अवस्थित करता है। सैलिज, राइटमेन एवं कुक ने लिखा है कि 'एक प्रमाप किसी प्रकार का अनुमापन उपकरण हो सकता है, जिसमें एक या अधिक मदें हो सकती हैं। इन मदों में आपस में एक दूसरे के साथ किसी न किसी प्रकार का तार्किक या आनुभविक सम्बन्ध होता है। मूलतः एक प्रमाप का प्रयोग दो प्रकार से किया जा सकता है—(क) एक प्रमापन उपकरण को प्रकट करने के लिए तथा (ख) मापक-उपकरण के व्यवस्थित अंकों को प्रकट करने के लिए।

बर्नार्ड एस फिलिप्स ने प्रमापन प्रविधियों को परिभाषित करते हुए लिखा है कि 'प्रमापन प्रविधि वस्तुओं की विशेषता को शब्द अथवा अंक (अथवा कोई अन्य प्रतीक) निर्धारित करने का तरीका है। यह इसलिए किया जाता है कि अध्ययन की जाने वाली विशेषता को अंकों की कुछ विशेषताएँ प्रदान की जा सकें।' जैसे, थर्मामीटर के अंक तथा उनके आधार पर ताप का मापन। इन प्रविधियों के द्वारा वस्तुओं घटनाओं अथवा व्यक्तियों की विशेषताओं को मापने का यत्न किया जाता है। कुछ प्रमापों में अंकों का प्रयोग न किया जाकर कुछ प्रतीकों या शब्दों का प्रयोग किया जाता है, यथा, आधा, चौथाई, नेता, नौकरशाह, विधायक आदि।

यद्यपि विभिन्न विशेषताओं का मापन करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रमाप पाये जाते हैं। किन्तु सभी विशेषताएँ अनुमापनीय (Scalable) नहीं होतीं। बहुत से राजनैतिक तथ्य अनुमापनीय नहीं होते। यह ऊपर बताया जा चुका है केवल चर (Variable) ही मापनीय होते हैं। चर वे तथ्य होते हैं जिन्हें प्रत्यक्षतः अनुमापन किया जा सकता है, अथवा जिनके लिए मान्य प्रमाप विकसित किया जा चुका है। जैसे मतों की संख्या, नागरिकता का निर्णय, राज्य का क्षेत्रफल, सैनिकों की संख्या आदि। किन्तु अनेक तथ्यों का मापन नहीं किया जा सकता, यथा, किसी नेता का प्रतिष्ठा-स्तर, जीवन स्तर, व्यक्तित्व, मनोवृत्ति आदि।

किसी भी वस्तु, घटना, या व्यक्ति की विशेषताओं या गुणात्मक लक्षणों (Attributes) को चर बनाने के लिए उन्हें गणनात्मक (Quantitative) बनाने के लिए संकेतकों (Indicators) का सहारा लिया जाता है। लिंगभेद, आयु, आय आदि लक्षणों या संकेतकों का निर्णय करना सरल है। किन्तु दलीय निष्ठा, प्रतिबद्धता या भ्रष्टाचार जैसी स्थितियों के संकेतक निर्धारित करना बहुत कठिन होता है। सम्भवतः 'धार्मिक प्रतिबद्धता' के संकेतक चर्च की सदस्यता, चर्च में उपस्थिति, परलोक में विश्वास, चन्दा या दान देना आदि हो सकते हैं। ये संकेतक 'परिचालनात्मक परिभाषा' की तरह निर्धारित किये जाते हैं। किसी एक अवधारणा की परिभाषा करने के लिए आनुभविक संकेतक निर्धारित किये जाते हैं। इन संकेतकों के निर्धारण का सम्बन्ध तथ्यों की उपलब्धता, सैद्धान्तिक मान्यताओं तथा *राजनैतिक वास्तविकता की प्रकृति से होता है। वे संकेतक प्राथमिक या द्वैतीयक स्रोतों से* प्राप्त तथ्यों के आधार पर तय किये जा सकते हैं। औद्योगीकरण या शहरीकरण के संकेतक द्वैतीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर निर्धारित किये जाते हैं। किन्तु किसी बड़े संगठन की 'प्रभावपूर्णता' (Effectiveness) के संकेतक तय करना सरल नहीं है क्योंकि कोई संगठन के लक्ष्यों को, कोई अपनी भावनाओं का तो कोई राष्ट्रीय या विश्व-सन्दर्भ को संकेतक तय करने का आधार बनायेगा। सैनिक शक्ति का मूल्यांकन करने के लिए संकेतक निर्धारित करने में भी ऐसी ही कठिनाई उत्पन्न होगी।[7]

व्यवहार मे हम कहते है कि हम वस्तुओ, व्यक्तियो या घटनाओ का मापन कर रहे हैं। किन्तु यह बात सही नही है। हम इन वस्तुओ या घटनाओ की विशेषताओ या लक्षणो का मापन करते हैं। परन्तु यह भी आशिक रूप से सही है, क्योकि हम वास्तव मे उस वस्तु या व्यक्ति के लक्षणो के सूचको या सकेतको का मापन करते है। बहुत सी वस्तुओ या व्यक्तियो के लक्षण प्रत्यक्षत दिख जात हैं, किन्तु चारित्र्य, बुद्धि, नेतृत्व प्रभाव आदि वस्तुओ के लक्षण सकेतको से उनके अस्तित्व अथवा मात्रा का पता चलता है। सकेतक उस सकेत का नाम है जो किसी दूसरे की ओर सकेत करता है। जैसे, सफेद टोपी और खादी के कपड़े किसी व्यक्ति के गाँधीवादी या कांग्रेसी होने की ओर सकेत करते है। ये सकेतक भौतिक वस्तुओ मे निश्चित तथा सर्वत्र पाये जाते हैं, जबकि मनोवैज्ञानिक वस्तुओ मे ऐसा नही होता। इन सकेतको के आधार पर वस्तुओ अवधारणाओ, विरचनाओ (Constructs) आदि की परिचालनात्मक परिभाषाएँ तैयार की जाती हैं। लक्षणो को चरो मे इन्ही के सहारे बदला और बनाया जाता है। वास्तविक रूप से पाये जाने वाले 'लक्षणो' को समझने के लिए एक कृत्रिम शब्द 'विरचना (Constructs) का आविष्कार किया गया है। ऐसे लक्षणो से बनायी गयी विरचनाएँ—तानाशाही, नेतागिरी महानता आदि हैं। यदि वे गणनात्मक सकेतको के आधार पर बनाये जाते हैं तो उन्हे 'चर' कहा जाता है।

मापन की प्रक्रिया या राजनीतिक तथ्यो के सांख्यिकीय विश्लेषण करने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के चरो को समझा जाये। 'चर' की धारणा (Concept) को व्यापक अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है और उसमे 'लक्षण' (Attribute) की धारणा का भी समावेश कर लिया जाता है। चरो को कई वर्गों मे रखा जाता है। जैसे, सतत (Continuous) चर असतत (Discrete) चर। सतत चर लगातार चलने वाली प्रकृति के होते हैं, यथा, जनसख्या-वृद्धि आयु, आय आदि। असतत (Discrete) चर स्थिर प्रकृति का होता है, यथा, पद ग्रहण, लिंग आदि। किन्तु विश ने उन्हे चार वर्गों मे रखा है.

(1) व्याख्यात्मक (Explaratory) चर—ये प्रयोगात्मक चर भी कहलाते है। ये शोध की वस्तुएँ या वस्तुएँ होती हैं। शोधक इनके पारस्परिक सम्बन्धो की खोज करता है, कि वे 'स्वतन्त्र' (Independent) चर हैं, या 'आश्रित' (Dependent) चर हैं। कुछ चर 'हस्तक्षेपी', 'अन्तवर्ती' या 'मध्यवर्ती' (Intervening) चर भी होते हैं। जैसे, जनता-पार्टी का शासन स्वतन्त्र चर, कानून और व्यवस्था मे ढीलापन आश्रित चर तथा उसका टूटना या दल-बदल हस्तक्षेपी चर माना जा सकता है। आश्रित चरो को 'पूर्वकथन' (Predictand) तथा स्वतन्त्र चरो को 'पूर्वकथन' (Predictor) चर भी कहते हैं।

(2) नियन्त्रित (Controlled) चर—ये बाह्य (Extraneous) चर होते हैं। शोध म इन्हें चयन या मूल्यांकन के समय नियन्त्रित किया जाता है ताकि निष्कर्ष तक पहुँचा जा सके।

(3) अनियन्त्रित (Uncontrolled) चर—ये शोध मे स्थित रहते हैं। ये व्याख्यात्मक चरो मे ही शामिल हैं।

(4) बाह्य अनियन्त्रित चर—ये बाह्य किन्तु पता न लगने वाले भीतरी या शोध-विषय मे शामिल चर हैं। उन्हें यादृच्छिक (Randomized error) त्रुटियाँ कहा जाता है। इनका 'आदर्श' शोध म अनुमान लगाया जाता है।

अनुमापन की आवश्यकता एवं उपयोगिता (Need and utility of scaling)

मापन की आवश्यकता ही अनुमापन की आवश्यकता को बताती है। राजविज्ञान के तथ्य गुणात्मक (Qualitative), अमूर्त, और जटिल होते है तथा उनका प्रत्यक्ष मापन नहीं किया जा सकता। किन्तु एक वास्तविक विज्ञान के लिए आवश्यक है कि वह उनका गणनात्मक तथा वस्तुपरक मापन करे। गुणात्मक विशेषताएँ प्रत्येक व्यक्ति के साथ बदलती रहती हैं। इसी कारण उन्हे व्यक्तिनिष्ठ (Subjective) कहा जाता है। उनसे यथातथ्य (Exact) स्थिति, जैसे, अनुशासनहीनता भ्रष्टाचार आदि का पता नही चलता। इनके वास्तविक स्वरूप का पता गणनात्मक बनाये जाने पर ही लग सकता है। गणनात्मक बनाने पर इनका गणितीय या सांख्यिकीय विधियों से और भी विश्लेषण किया जा सकता है। ज्यों ज्यो राजविज्ञान विकसित होता जाता है, वह अपने गुणात्मक तथ्यो को 'गणनात्मक' बनाने मे सक्षम होता जाता है। यदि वर्तमान अवस्था मे प्रत्यक्ष मापन सम्भव नही है तो संकेतकों के द्वारा अप्रत्यक्ष मापन शुरू किया जा सकता है।

प्राय यह समझा जाता है कि राजनैतिक तथ्य स्वाभाविक रूप से 'गुणात्मक' (Qualitative ही होते हैं तथा उन्हें उनको 'गणनात्मक' (Quantitative) बनाना अनुचित, मिथ्या तथा विद्रूप करना है। वास्तव म देखा जाये तो कोई भी घटना या तथ्य आवश्यक रूप से 'गुणात्मक' नही होता। उसे गुणात्मक मानना हमारे अपने अज्ञान का ही परिणाम है कि हम उसे अच्छी तरह से नही जानते। राजनैतिक एव सामाजिक तथ्य का पूरी तरह ज्ञान न होने के कारण ही हमे वे जटिल एवं अमूर्त लगते है। हम सहज रूप मे ही मान लेते हैं कि वे सख्यात्मक या गणनात्मक अभिव्यक्ति स परे है। ज्यो ज्यो विज्ञान का विकास होता है और तथ्यो के विषय मे हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यो त्यो उनका मापन, श्रेणीबद्धकरण, वर्गीकरण आदि सम्भव होता जाता है।

अनुमापन राजविज्ञान को परिपक्वता की ओर ले जाता है। अनुमापन की विकसित प्रविधियाँ उसकी सफलता का प्रतीक बन जाती हैं। गुड एव हैट ने लिखा है कि 'सभी विज्ञान अधिकाधिक परिशुद्धता की दिशा म अग्रसर होते हैं, किन्तु उनका एक मूलभूत रूप क्रमबद्ध मापन है।'[8] राजविज्ञान मे अनुमापन घटनाओ, तथ्यो आदि मे अध्ययन मे वस्तुनिष्ठता (Objectivity) लाने के लिए आवश्यक है। ऐसा न होने पर उनका अलग-अलग अर्थ लगाया जाता है। लोक कल्याण, समाजवाद, शांति आदि ऐसे ही तथ्य हैं। भौतिक-विज्ञान की परिशुद्धता का कारण उसकी सख्यात्मक मापन की प्रविधियो का विकसित होना है। राजविज्ञान को अपना मूल स्वरूप बनाये रखते हुए उसी दिशा म आगे बढ़ना है।

अनुमापन की सामान्य समस्याएं

(General problems of scaling techniques)

राजनैतिक तथ्यो या घटनाओ के लिए प्रमाप, अनुमाप या पैमाना (Scale) तैयार करना सरल कार्य नही है। अभी बहुत कम पैमाने या प्रमाप तैयार किये गये हैं तथा उन्हें भी मीटर या थर्मामीटर के प्रमाणो की तरह सर्वत्र स्वीकार नही किया गया है। भौतिक घटनाएँ या वस्तुएँ मूर्त, परिमाणात्मक, इन्द्रियगोचर, प्रत्यक्ष तथा सार्वभौम होती हैं और उनके मापन के लिए सर्वस्वीकृत प्रमाप मौजूद हैं। इसके विपरीत राजनैतिक घटनाएँ प्राय

अमूर्त, जटिल एवं परिवर्तनशील होती हैं। उनका अवलोकन व्यक्ति-विशेष के अनुसार बदलता रहता है। फिर भी राजविज्ञान के विकास के लिए प्रमापों का निर्माण किया जाता है। किन्तु प्रमाप निर्माण के विषय में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं। उनमें से कुछ प्रमुख कठिनाइयाँ एवं समस्याएँ इस प्रकार हैं

(1) अनुक्रम की समस्या
(2) प्रमाप की विश्वसनीयता की समस्या
(3) प्रमाप की प्रामाणिकता की समस्या
(4) मदों के भारण की समस्या
(5) मदों की प्रकृति की समस्या
(6) इकाइयों की समानता की समस्या

(I) अनुक्रम की समस्या (Problem of continuum)--अनुक्रम या निरन्तरता किसी गुण, विशेषता या लक्षण के सापेक्ष क्रम को कहते हैं जिसके द्वारा किसी वस्तु, घटना या व्यक्ति में वैसी विशेषता की मात्रा को परिमाणात्मक या संख्यात्मक ढंग से बताया जा सके। इस अनुक्रम या निरन्तरता (Continuum) का स्वरूप एवं मात्रात्मक लम्बाई या फैलाव निर्धारित करने के लिए यह आवश्यक है कि उस विशेषता या गुण के विस्तार का ज्ञान हो। यह गुण का विस्तार उस गुण वाली वस्तुओं, घटनाओं आदि का अवलोकन करने के बाद ही पता चल सकता है। यदि ये वस्तुएँ, घटनाएँ आदि किसी एक ही विशेषता से सम्बन्धित नहीं हैं तो उनका मापन करने के लिए उस विशेषता पर आधारित प्रमाप काम में नहीं लाया जा सकता। इसलिए यह निश्चित् करना आवश्यक है कि हम जिस घटना का अनुमापन करना चाहते हैं वह मापन योग्य भी है अथवा नहीं। हम उन्हीं चीजों का मापन कर सकते हैं जिनको प्रमाप में विशेषता के आधार पर फिट (Fit) किया जा सके। दूसरे शब्दों में, उन चीजों या घटनाओं की मदें प्रमाप के लिए सुसगत या तर्क-सगत होनी चाहिए। वस्तुओं, व्यक्तियों आदि की विशेषताओं का प्रमाप बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उनके विषय में पूरी जानकारी उपलब्ध हो। यह जानकारी अवलोकन, अध्ययन तथा विशेषज्ञों से साक्षात्कार करके प्राप्त की जा सकती है। हमें वस्तुओं या घटनाओं में निहित उन विशेषताओं को खोज निकालना होगा, जिनके अनुमापन के लिए हम प्रमाण (scale) तैयार करना चाहते हैं।

अनुक्रम तैयार करने के बाद पैमाना या प्रमाप बन सकता है। इस प्रमाप का उपयोग घटनाओं, वस्तुओं या व्यक्तियों की विशेषताओं का अनुमापन करने के लिए किया जाता है। अमूर्त राजनैतिक विचारों, मनोवृत्तियों, अनुक्रियाओं (Responses) आदि को प्रतीकों या संकेतकों के माध्यम से जाना जाता है। अनुमापन या मापन में मापन योग्य वस्तुओं या तथ्यों को प्रतीक (Symbols) प्रदान किये जाते हैं। नाम या संख्या भी एक प्रतीक (Symbol) ही है। वस्तुओं के गुणों, विचारों आदि को प्रतीक एवं नियम के अंतर्गत अनुक्रम (Continuum) के सन्दर्भ में दिये जाते हैं। यह अनुक्रम गणनात्मक होता है। उसके ऊपर स्थित करने के बाद गुणात्मक तथ्य गणनात्मक ढंग से बताये जा सकते हैं।

संकेतकों से व्यक्ति-विशेष के भावों को तो बताया जा सकता है, किन्तु उसकी मात्रा को नहीं। जैसे यदि यह ज्ञात हो जाये कि चार समूहों में भारत के प्रति निष्ठा

भाव है, किन्तु यह निष्ठा भाव कितना है ? यह ज्ञात करने के लिए निष्ठा का एक अनुक्रम तथा प्रमाप तैयार करना पड़ेगा। भारत के प्रति निष्ठा का व्यापक ढंग से अध्ययन करके एक अनुक्रम (Scale) बनाया जा सकता है, जिस पर उनकी अनुक्रिया (Responses) को रख कर उनकी सापेक्ष स्थिति का मापन किया जा सकता है। यह अनुक्रम हो सकता है—अत्यधिक निष्ठा / अधिक निष्ठा / सामान्य निष्ठा / निष्ठा / निष्ठा नहीं। इसके द्वारा समूह के सदस्यों की व्यक्तिगत तथा सम्पूर्ण समूह की सापेक्ष निष्ठा का पता लगाया जा सकता है। इस अनुक्रम के विषय में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि हम जिस समग्र का मापन करना हो, उसकी प्रकृति या विशेषताओं को दृष्टिगत रखना चाहिए। मनोवृत्ति का एक अनुक्रम जो किसी भारतीय समग्र के लिए बनाया गया है, वह रूस या ग्रेट-ब्रिटेन के समूहों के लिए लागू नहीं होता। भारत में दलगत या धर्म के प्रति निष्ठा देश के प्रति निष्ठा से ऊपर हो सकती है जबकि रूस में शायद ऐसा नहीं हो।

(2) प्रमाप की विश्वसनीयता (Reliability of scale)—एक प्रमाप तभी विश्वसनीय माना जाता है जबकि वह एक ही निदर्शन (Sample) पर बार-बार प्रयोग किये जाने पर भी एक से परिणाम को बताये। अनुमापन के परिणाम शंकर को कुछ और तथा मोहन को कुछ और दिखायी नहीं देने चाहिए। गुड एवं हैट ने लिखा है कि 'एक प्रमाप या पैमाना तभी विश्वसनीय होगा जबकि उसे एक ही निदशन पर बार-बार प्रयोग किये जाने पर भी प्रत्येक बार समान परिणाम प्रकट करे।' सेलिज तथा सहयोगियों ने अनुमापक की विश्वसनीयता के विषय में बताया है कि 'यह उपकरण की वह योग्यता है कि वह उस घटना को एकरूपता को बनाये रखते हुए माप सके, जिस घटना के माप के लिए उसे बनाया गया है।' विश्वसनीयता के दो रूप होते हैं—(क) स्थायित्व, तथा (ख) आन्तरिक संगति। यदि दो शोधक एक ही प्रमापन विधि का उपयोग करते हैं, तो समान वस्तुओं के प्रमापन-परिणाम समान आने चाहिए। प्रमाप में प्रयोग की गयी मदें (Items) वैसी ही सभी मदों के समग्र का ही निदर्शन समझा जाना चाहिए अर्थात् उसमें वैसी मदों के अनुमापन की क्षमता होनी चाहिए। ऐसे अनुमापनों में थोड़ी बहुत गलतियों को जिन्हें 'यादृच्छिक' (Randomized or variable) त्रुटियाँ कहा जाता है, सहन किया जाता है।

प्रमाप की विश्वसनीयता की जाँच करने के लिए तीन विधियाँ बतायी गयी हैं

(क) परीक्षा पुनर्परीक्षा विधि (Sest-Retest Method)—इस विधि में एक ही समग्र पर एक प्रमाण (Scale) को दो बार भिन्न-भिन्न समय लागू किया जाता है। ऐसा करके प्राप्त परिणामों की पर पर तुलना की जाती है। यदि दोनों में बहुत कुछ समानता पायी जाती है तो प्रमाण को विश्वसनीय (Reliable) माना जा सकता है। इस विधि का प्रयोग करते समय दो बातों का ध्यान रखना चाहिए (1) जिस व्यक्ति पर परीक्षण किया गया है वह स्वयं दूसरी बार के परीक्षण को प्रभावित कर सकता है, वैसे के वैसे उत्तर देकर, भूल कर अथवा सुधार कर, तथा (2) स्वयं मानवीय गुणों तथा घटनाओं में निरन्तर परिवर्तन होता रहता है। हो सकता है कि दोनों परीक्षणों के बीच में कुछ परिवर्तन आ गये हैं। इसका पता लगाने के लिए हमें मूल समग्र को दैव रूप में (Randomly) दो भागों में विभाजित करके उन दोनों पर नियन्त्रण-समूह प्रणाली (Control group procedure) का प्रयोग किया जा सकता है। कई बार दुबारा परीक्षण करने पर व्यक्ति सशंकित हो जाता है।

(ख) विविध अथवा समानान्तर रूप विधि (Multiple or Parallel Forms-Method) उपर्युक्त विधि में निहित कमियों को दूर करने का उपाय ऊपर बताया गया है। इस विधि में एक ही प्रमाप के दो रूप (Forms) तैयार किये जाते हैं। इन्हे एक-दूसरे के समानान्तर माना जाता है। प्रमाप के इन दोनों रूपों को समग्र के व्यक्तियों या वस्तुओं पर क्रम से प्रयोग किया जाता है। तत्पश्चात् दोनों रूपों से प्राप्त परिणामों की तुलना करके प्रमाप की विश्वसनीयता आँकी जाती है। यदि उनमें पर्याप्त समानता मिलती है, तो पैमाने को विश्वसनीय माना जाता है। किन्तु इस विधि की कुछ अपनी समस्याएँ हैं। यह कैसे ज्ञात किया जाये कि पैमाने या प्रमाप के दोनों रूप वास्तव में समान हैं। यह विधि भी परीक्षा पुनर्परीक्षा विधि में उत्पन्न बाधाओं को दूर नहीं कर पाती।

(ग) आधी बाँट विधि (Split Half Method)--यह द्वितीय विधि का संशोधित रूप है। इसमें प्रमाप को दैव रूप में दो भागों में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक भाग को एक पूरा प्रमाप मानकर समग्र पर लागू कर दिया जाता है। दोनों भागों से प्राप्त परिणामों में पर्याप्त सहसम्बन्ध होने पर प्रमाप को विश्वसनीय मान लिया जाता है। इस विधि की मान्यता है कि पूरा प्रमाप इस प्रकार का बनाया जाये कि उसका प्रत्येक आधा भाग सम्पूर्ण प्रमाप का प्रतिनिधित्व कर सके।

(3) प्रमाप की प्रामाणिकता (Validity of Scale) विश्वसनीयता के अतिरिक्त प्रमाप का दूसरा गुण वैधता अथवा प्रामाणिकता (Validity) का माना जाता है।+ राजनीतिक तथ्यों का अनुमापन अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है, इस कारण शोधक के लिए यह देखना आवश्यक हो जाता है कि क्या वह उन्हीं गुणों एवं विशेषताओं का मापन कर रहा है जिन्हें वह मापना चाहता है इसके लिए उन साक्ष्यों (Evidences) को एकत्रित करना आवश्यक होता है जो यह बता सकें कि शोधक जिस प्रमाप का प्रयोग कर रहा है वह वस्तुओं की उन्हीं विशेषताओं का मापन कर रहा है जिनका उसे मापन करना है। गुड एवं हैट के अनुसार 'एक प्रमाप में प्रामाणिकता मानी जायेगी, जबकि वह वास्तव में वही मापता है, जो कि उसको मापना है।' जैसे यदि राजनैतिक अलगाव (Alienation) को मापना है तो प्रमाप ऐसा होना चाहिए कि वही वह साम्प्रदायिक भावना का अनुमापन न करने लग जाये। यदि कोई प्रमाप प्रामाणिक सिद्ध हो चुका है तो वह विश्वसनीय भी होगा। किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि यदि प्रमाप विश्वसनीय है तो प्रामाणिक भी होगा। 'एक प्रमाप उस अवस्था में प्रामाणिकता रखता है जबकि वह वास्तव में वही मापता है जिसे मापने का वह दावा करता है।'[9] प्रामाणिकता की जाँच की जा सकती है, इसके लिए चार तरीके बनाये गये हैं—

(अ) तार्किक वैधता (Logical Validity)—यद्यपि यह विधि सबसे कम सन्तोषजनक है किन्तु राजविज्ञानी साधारणतः इसी का प्रयोग करते हैं। इस विधि के अनुसार

+ A scale is reliable when it will consistently produce the same results when applied to the same sample

--Goode and Hatt

9. A scale possesses validity when it actually measures what it claims to measure. —Goode and Hatt

प्रमाप को प्रामाणिक मान लिया जाता है, यदि वह प्रमाप शोधक को ठीक दिखायी पड़ता है। इसमें शोधक का निर्णय ही सर्वोच्च होता है। यह विधि शोधकर्त्ता के तर्क एवं अनुभव पर आधारित होती है। किन्तु शोधकर्त्ता का निर्णय व्यक्ति रक तथा अन्य शोधकर्त्ताओं से भिन्न हो सकता है।

(ब) पंच-मत (Jury Opinion)—यह तार्किक वैधता विधि का संशोधित स्वरूप है। इसमें शोधकर्त्ता के बजाय कतिपय विशेषज्ञों एवं पंचों के निर्णय को महत्त्व दिया जाता है। उस निर्णय के अनुकूल होने पर उस प्रमाप द्वारा परिणामों को उस विषय के विशेष विशेषज्ञों के सम्मुख रखा जाता है। अधिकांश विशेषज्ञों की अनुकूल राय होने पर प्रमाप को उपयुक्त मान लिया जाता है। किन्तु ऐसी राय भी दोषपूर्ण हो सकती है।

(स) परिचित समूह (Known Groups)—इस विधि में ऐसे समूहों को चुना जाता है जिनकी विशेषताओं से शोधक पहले से ही परिचित है। जैसे, यदि कोई प्रमाप 'धार्मिकता' का अनुमापन करने के लिए बनाया जाता है तो इसकी प्रामाणिकता को आंकने के लिए वह ऐसे दो या अधिक समूहों को लेगा जिनकी धार्मिक प्रवृत्ति के सम्बन्ध में उसे पूर्व ज्ञान है। एक समूह अति-धार्मिक तथा दूसरा धार्मिक प्रवृत्ति के विपरीत होगा। तब धार्मिकता के मापन के लिए प्रमाप तैयार किया जायेगा तथा उस पर विभिन्न धार्मिक समूहों की धार्मिक प्रवृत्ति का मापन किया जायेगा। अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर वह परिणामों का मूल्यांकन कर लेगा कि प्रमाप कहाँ तक प्रामाणिक है?

(द) स्वतन्त्र मापदण्ड (Independent Criteria)—इसके अनुसार प्रमाप को किसी सम्पूर्ण घटना पर एक साथ प्रयोग न करके उसके विभिन्न अंगों पर अलग-अलग तौर पर प्रयोग किया जायेगा। यदि सभी के परिणाम एक समान आते हैं तो प्रमाप को प्रामाणिक माना जाता है। जैसे, सामाजिक प्रस्थिति का मापन करने के कई मापदण्ड हो सकते हैं, यथा, शिक्षा, सत्ता आदि। इन सबका प्रयोग करके यह देखा जाता है कि क्या सभी परिणाम न्यूनाधिक रूप से समान होते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि सभी मानदण्डों का महत्त्व एक समान नहीं होता।

(4) मदों का भारण (Weighting of Items)—मदों के भारण की समस्या प्रामाणिकता के साथ ही जुड़ी हुई है। यदि मदों को उनकी विशेषता के आधार पर उचित भार दिया जा सके तो यह प्रमाप की प्रामाणिकता और भी अधिक बढ़ जाती है।

(5) मदों की प्रकृति (Nature of Items) इसमें प्रमाप की मदों की प्रकृति के सम्बन्ध में विचार किया जाता है। सूचनादाता के उत्तर उनकी भावनाओं के अनुरूप हों, इसके लिए कतिपय प्रक्षेपण प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का प्रयोग अधिकतर मनोविज्ञानियों द्वारा किया जाता है।

(6) इकाइयों की समानता (Equality of Items)—इसमें विभिन्न इकाइयों की असमानता या ऊँचाई का निर्धारण करना होता है। कौनसी इकाई दूसरी इकाई से कितनी उच्च है? इसको निश्चित करके अनुक्रम पर इकाइयों को व्यवस्थित किया जाता है।

एक अच्छे प्रमाप में अनेक विशेषताएँ होती हैं। वह विश्वसनीय (Reliable) एवं प्रामाणिक (Valid) होना चाहिए। उसको इस तरह निर्मित किया जाना चाहिए कि इसका उपयोग सरलतापूर्वक किया जा सके तथा ज्यों-ज्यों इसका प्रयोग किया जावे, प्रमाप

अधिकाधिक मात्रा में परिष्कृत होता जाये। उसमें व्यापकता होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि उसका विभिन्न क्षेत्रों, संस्कृतियों तथा देशों में प्रयोग किया जा सके। लिकर्ट का प्रमाप कुछ इसी प्रकार का है। प्रमाप व्यावहारिक तथा क्रियात्मक होना चाहिए अर्थात् प्रमाप निर्माण के लिए जिन तथ्यों की आवश्यकता हो, वे उपलब्ध रहें। अत्यन्त अमूर्त तथ्यों को लेकर प्रमाप का निर्माण नहीं किया जा सकता। उसमें जिन विषयों को शामिल किया जाये वे स्वीकृत मानदण्डों एवं जनादर्शों के अनुरूप हों। यदि उसमें तथ्यों के समुचित मापन की व्यवस्था होगी तो प्रमाप प्रामाणिक माना जायेगा।

अनुमापन में कठिनाइयाँ (Difficulties in Scaling)

राजनीतिक तथ्यों का अनुमापन करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। राजनैतिक घटनाएँ, तथ्य एवं विचार बड़े जटिल संश्लिष्ट एवं अमूर्त होते हैं। प्रत्येक घटना के पीछे अनेक अन्तर्निर्भर कारक वर्तमान रहते हैं। राजनीतिक घटनाएँ अमूर्त तथा गुणात्मक होती हैं। कई बार उनको गणनात्मक बनाना अत्यन्त कठिन होता है। ये घटनाएँ प्रायः असमान (Heterogenous) होती हैं। उन पर व्यक्ति की संस्कृति, प्रकृति, परम्परा, विचारधारा, आदर्श, मूल्य, भाषा, धर्म आदि का प्रभाव पड़ता है। स्वयं मानवीय व्यवहार, व्यक्तिगत एवं सामूहिक परिवर्तनशील होता है। राजनीतिक विचार, क्षमता, परिप्रेक्ष्य आदि सभी कुछ बदलते रहते हैं। फिर, इनका अनुमापन करने के लिए कोई सार्वभौमिक प्रमाप नहीं है। न ही राजविज्ञान में नैतिक एवं व्यावहारिक कारणों से प्रयोगशाला विधि को लागू किया जा सकता है।

अनुमापन प्रक्रिया (Scaling Procedure)

मापन में वस्तुओं, व्यक्तियों या घटनाओं के लक्षणों के व्यवहारात्मक सूचकों (Indicants) या संकेतकों को प्रतीक या संख्या प्रदान की जाती है। उन सूचकों का अवलोकन करके उनके स्थान पर संख्या दे दी जाती है। इन संख्याओं का सांख्यिकी ढंग से विश्लेषण किया जाता है। सांख्यिकीय विश्लेषण में सर्वप्रथम समस्या या घटना का अध्ययन हेतु चयन किया जाता है। उसके पश्चात् तथ्यों का संग्रह अनुसूची, प्रश्नावली आदि के माध्यम से किया जाता है। तीसरे चरण में संग्रहीत तथ्यों को आँकड़ों या आधार-सामग्री (Data) में बदला जाता है। चतुर्थ चरण में आँकड़ों का वर्गीकरण, सम्पादन तथा सारणीयन किया जाता है। पाँचवें चरण तक सभी सामग्री सामने आ जाती है और सांख्यिकीय विश्लेषण प्रारम्भ हो जाता है। छठे चरण में परिणामों का प्रस्तुतिकरण किया जाता है तथा अन्तिम चरण में, निष्कर्षों या परिणामों का विवेचन किया जाता है।

इस प्रकार, अनुमापन में अमूर्त सामाजिक एवं राजनैतिक घटनाओं का आनुभविक या गणनात्मक रूप में वर्णन किया जा सकता है। इससे वर्गीकरण में सहायता मिलती है। अनुमापन तथ्यों को सांख्यिकीय प्रविधियों के द्वारा अध्ययन करने योग्य बना देता है। ये तथ्य साक्षात्कार, अवलोकन, प्रश्नावली आदि प्रविधियों द्वारा प्राप्त होते हैं। इनसे प्राप्त सूचनाओं को अंक या गणितीय प्रतीक प्रदान किये जाते हैं। इसके बाद, प्रकल्पना एवं सिद्धान्त-निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। अनुमापन विभिन्न तथ्यों एवं इकाइयों के मध्य तुलना करने एवं अन्तर बताने में सहायक होता है।

मापन के स्तर (Levels of Measurement)

मापन के सामान्यत चार स्तर होते हैं

(1) शाब्दिक मापन (Nominal Measurement)—यह निम्नतम स्तर का मापन होता है। इसम वस्तुओं को सख्या दे दी जाती है। यह सख्या केवल नामकरण की तरह होती है। जैसे टलीफोन नम्बर, स्त्री, पुरुष, नास्तिक आदि। कुछ लोग इसे मापन नहीं मानते, किन्तु ऐसी बात नही है। सख्या या नाम दने का आधार एक समुच्चय (Set) की सदस्यता होती है। इसकी इकाइयाँ लगभग समान होती हैं।[10]

(2) क्रमबद्ध मापन (Ordinal Measurement)—इसम परिचालनात्मक रूप स परिभाषित विशेषता के श्रेणीबद्ध क्रम म वस्तुओं या तथ्यों को रखा जाता है। जैसे, अ ज्यादा बड़ा है ब स, ब ज्यादा बड़ा है स स। इसे इस तरह लिखा जायेगा, 'अ > ब > स > > n किसी विशेषता पर'। (प्रतीक > का अर्थ है अपेक्षाकृत अधिक बड़ा तथा अपेक्षाकृत छोटे के लिए < प्रतीक है।) कोई अन्य प्रतीक भी काम मे लाय जा सकते हैं। ये अ, ब केवल मूल्य क्रम (Value Rank) को बताते हैं। य शुरू और अन्त की मात्रा नहीं बताते। इससे यह भी नहीं माना जा सकता कि इनके बीच की दूरी समान है। ये समान अन्तराल प्रमाप (*Equal Interval Scales*) नहीं हैं। इनका प्रतिष्ठा, कुशलता आदि का मापन करने के लिए प्रयोग किया जाता है। गटमैन प्रमाप क्रमबद्ध मापन का उदाहरण है।

(3) अन्तराल मापन (Interval Measurement)—अन्तराल प्रमाप शाब्दिक एव क्रमबद्ध मापनों की विशेषताओं को लिए हुए होते हैं तथा क्रम का अनुक्रम (Rank-order) बताते हैं। फैरनहीट तथा सेंटिग्रेड तापमापकों की तरह यह दो स्थितियों या वर्गों के मध्य समान दूरियों को बताते हैं। थर्स्टन का मनोवृत्ति मापक इसी तरह का कार्य करता है।[11] इसको बनाते समय हम विस्तार स नियम बनाने तथा विभिन्न उत्तरो के लिए अक निर्धारित करने पडते हैं। लेकिन इसम गुणों की गहनता या सघनता का मापन नही किया जाता।

(4) अनुपात मापन (Ratio Measurement)—यह मापन का सर्वोच्च स्तर माना जाता है। राजविज्ञानी का लक्ष्य 'अनुपात मापन' तैयार करना होता है। यह शून्य से प्रारम्भ होता है तथा इसम अन्तराल मापन की विशेषताएँ भी होती हैं। आय, आयु, शिक्षा, बुद्धि आदि का मापन करने के लिए यह उपयोगी है। शून्य से प्रारम्भ होने के लिए इसमें गणितीय विधियों और सूत्रों का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रमापों के प्रकार (Types of Scales)

प्रमाप के अनेक प्रकार होते हैं। उन्हें चार वर्गों म रखा जा सकता है

(1) अक प्रमाप (Point Scales)

(2) सामाजिक दूरी प्रमाप (Social Distance Scales)

(3) तीव्रता मापन प्रमाप (Intensity Scales)

(4) श्रेणी सूचक प्रमाप (Ranking Scales)

मनोवृत्तियों का अनुमापन

इन प्रमापों से मनोवृत्तियों का अनुमापन किया जाता है। किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति अनुकूल या प्रतिकूल भावों को मनोवृत्ति कहा जाता है। ऑलपोर्ट के मतानुसार

मनोवृत्ति 'मानसिक' तथा स्नायुविक तत्परता की वह स्थिति है, जो अनुभव द्वारा निश्चित् होती है, तथा वह हमारी अनुक्रियाओं (Responses) को, मनोवृत्ति से सम्बन्धित समस्त वस्तुओं और परिस्थितियों की ओर प्रेरित या निर्देशित करती है।' मनोवृत्ति प्रेरणात्मक, सवेगात्मक, प्रत्यक्षणात्मक तथा ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का संगठन होता है। इसके आधार पर व्यक्ति अपने वातावरण का प्रत्यक्षण करता है। उसे देखकर उसके मन में कोई न कोई अनुकूल या प्रतिकूल अनुक्रिया उत्पन्न होती है। अकोलकर के अनुसार, 'किसी वस्तु या व्यक्ति के विषय में सोचने अथवा अनुभव करने तथा उसके प्रति एक विशेष ढंग से कार्य करने की तत्परता की दशा को मनोवृत्ति कहा जाता है।'[12] मनोवृत्ति, वस्तुतः मानसिक प्रतिक्रिया होती है जो किसी व्यक्ति को अन्य वस्तु या व्यक्तियों के प्रति विशेष ढंग से सोचने, विचारने तथा क्रिया करने को प्रेरित करती है। मनोवृत्तियाँ, क्रियाओं तथा अनुक्रियाओं को निर्धारित करती हैं। इसलिए उनका जानना आवश्यक होता है। किन्तु मनोवृत्तियों का सही अनुमापन अत्यन्त कठिन होता है।

उनमें विभिन्नताएँ बहुत होती हैं। एक ही प्रकार की प्रतिक्रिया में तीव्रता, सघटना, विरलता आदि के कारण भेद हो जाते हैं। उनका स्वरूप अमूर्त, जटिल तथा संश्लिष्ट होता है। उनका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से करता है। इस कारण, सही, सामान्य, प्रामाणिक तथा विश्वसनीय प्रमाप बनाना कठिन हो जाता है। मनोवृत्ति-मापन के लिए अनेक प्रमाप विकसित किये गये हैं। उनका उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत विवेचन किया जायेगा।

(1) अंक प्रमाप (Point Scale)

इसमें विभिन्न प्रकार के शब्द अथवा परिस्थितियों का ब्यौरेवार वर्णन किया तथा प्रत्येक को एक अंक प्रदान किया जाता है। सूचनादाता से यह कहा जाता है कि उन शब्दों या परिस्थितियों के प्रति यदि उसके मन में प्रतिकूल भाव उत्पन्न हो तो उनके सामने क्रास (×) का निशान लगा दें। जिनका सूचनादाता ने नहीं काटा है, उनको गिनकर मनोवृत्ति का पता लगाया जाता है। जैसे, अच्छे नागरिक की मनोवृत्ति का पता लगाने के लिए विभिन्न गतिविधियों की सूची बनाकर निशान लगवाये जा सकते हैं किन्तु उन सभी शब्दों या परिस्थितियों का आकलन करना कठिन हो जाता है, जिसके आधार पर मनोवृत्ति का पता लगाया जा सके।

(2) सामाजिक दूरी मापक प्रमाप (Social Distance Scale)

इसमें विभिन्न व्यक्तियों और वर्गों के मध्य पाये जाने वाले अन्तरों का पता लगाया जाता है। इसके दो प्रकार हैं. (i) बोगार्डस का सामाजिक दूरी का प्रमाप तथा (ii) समाजमिति या राजमिति प्रमाप। समाजमिति का विवेचन आगे किया गया है।

बोगार्डस का प्रमाप—ई. एस. बोगार्डस के सामाजिक दूरी मापने के प्रमाप में कुछ ऐसी परिस्थितियों, स्थितियों या दशाओं का चयन किया जाता है, जिससे सामाजिक दूरी का पता चलता हो। इनको दूरी की तीव्रता के आधार पर एक क्रम से जमा किया जाता है। जिनके मध्य दूरी का पता लगाना हो उन पर इसे लागू किया जाता है। जिस परिस्थिति के पक्ष में जो राय देता है, उसे अंकित कर लिया जाता है। सभी सूचनादाताओं की राय को जानने के बाद सांख्यिकीय तरीके से सामाजिक दूरी का अनुमान लगा लिया जाता है। बोगार्डस ने अपने प्रमाप में सात परिस्थितियों को रखा तथा 1725

व्यक्तियों से अपनी प्रारम्भिक प्रतिक्रिया बताने को कहा। उनका 100 के बराबर मानकर उनके उत्तरों का प्रतिशत निकाला गया। उनके उत्तरों से पता चला कि कितने-कितने अमरिकन लोग कितनी-कितनी मात्रा में काले लोगों को बराबरी का स्थान देने के लिए तैयार हैं।

(3) तीव्रता मापक प्रमाप (Rating or Intensity Scales)

इनके द्वारा व्यक्तियों के विचारों, मनोभावों आदि की तीव्रता का मापन किया जाता है। इनके उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि किसी विषय पर केवल दो ही विरोधी या विलोम विचार न होकर अन्य अनेक विकल्प भी हों। जैसे, बहुत अच्छा, अच्छा/सामान्य बुरा बहुत बुरा। इस तीव्रता को तीन या पांच खण्डों में विभक्त कर दिया जाता है। जैसे, तीन खण्ड– हमेशा/कभी-कभी/कभी नहीं या बड़ा/समान/छोटा। पांच खण्ड का उदाहरण दिया जा चुका है।

(4) श्रेणी सूचना प्रमाप (Ranking Scales)

इसमें तथ्यों अथवा परिस्थितियों को कुछ श्रेणियों में प्रस्तुत किया जाता है। उन्हें ऐसे क्रम से रखा जाता है कि यह पता चल जाये कि एक की तुलना में लोग किसी दूसरे को अधिक पसन्द करते हैं। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में उस व्यक्ति या वस्तु का क्या स्थान है? जैसे सूचनादाताओं (विद्यार्थियों) से व्यवसायों के बारे में या मतदाताओं से राजनैतिक दलों आदि के विषय में जानकारी ली जा सकती है कि वे किस क्या स्थान देते हैं। होरोविज प्रविधि (Horowitz Technique) या थर्स्टन का समविस्तार प्रमाप (*Thurston's Equal Appearing Intervals Scale*) इसी के विविध रूप हैं।

अन्य प्रमाप

अन्य प्रमापों में मत मापक प्रमाप (Opinion Scale) अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमें क्रम में ऐसे कथन रखे जाते हैं जिनके विषय में व्यक्ति को अपनी स्वीकृति या अस्वीकृति देनी होती है। इसमें किसी चरम स्थिति से मापना आरम्भ किया जाता है तथा धीरे-धीरे विपरीत दशा में –अर्थात् तटस्थ से होता हुआ अथवा अनुकूल से प्रतिकूल दिशा में जाना होता है। जैसे क्या आप हरिजनों से घृणा करते हैं? क्या आप हरिजनों के प्रति उदासीन हैं? क्या आप हरिजनों के प्रति कुछ-कुछ स्नेह रखते हैं?/क्या आपको हरिजन प्रिय लगते हैं? क्या आप हरिजनों से घनिष्ठता रखना चाहते हैं?

इस विषय में दो प्रमाप अधिक प्रसिद्ध हैं—(i) थर्स्टन प्रमाप तथा (ii) लिकर्ट प्रमाप। लिकर्ट प्रमाप पद्धति (Likert Method of Scale) अधिक सरल एवं उपयोगी माना जाता है। इसकी सहायता से विभिन्न समूहों की साम्राज्यवाद, अन्तर्राष्ट्रीयतावाद तथा नीग्रो लोगों के प्रति मनोवृत्तियाँ जानने का प्रयास किया गया। इसमें किसी वस्तु या विषय से सम्बन्धित अनेक कथनों का एकत्रीकरण किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति को, जिसकी मनोवृत्ति का अध्ययन करना है, कहा जाता है कि इन कथनों में से प्रत्येक को अपनी मनोवृत्ति की मात्रा (Degree of Attitude) पांच भिन्न-भिन्न श्रेणियों में से किसी एक में दर्ज करें। यानि उन कथनों के प्रति वह अपनी दृढ़ सहमति, सहमति, अनिश्चितता, असहमति दृढ़ असहमति (Strongly approve/approve/und-

ecided/disapprove/strongly disappove) बताये । इन श्रेणियों को क्रमश 5, 4, 3, 2, 1 अक प्रदान कर दिया जाता है । जिस कथन को अधिक अक मिलता है उसे उसी मनोवृत्ति का द्योतक माना जाता है ।

राजमिति (Politicometry)

वस्तुत राजमिति समाजमिति (Sociometry)* को ही राजनीति विज्ञान मे दिया गया नाम है । समाजमिति का विकास जे. एल मोरीनो (J L Moreno) द्वारा 'हू शैल सर्वाइव' (Who Shall Survive) मन् 1934 मे किया गया । राजनीतिक एव सामाजिक तत्त्व अधिकाशत गुणात्मक होते हैं । घटनाओं की जटिलता, अमूर्तता, परिवर्तनशीलता तथा असधारणीयता, उनका विश्लेषण मापन आदि करने म कठिनाइयाँ उत्पन्न कर देती है । राजनीतिक तथ्य सार्वभौम यानि सर्वत्र एक से नही होते तथा न ही उन्हे प्रयोगशालाओं मे बन्द करके अध्ययन किया जा सकता है । फिर भी, समाज वैज्ञानिकों ने इनका पता लगाने के लिए अनेक मापक उपकरणों युक्तियो आदि का निर्माण एव विकास किया है । हैलन एच जेनिंग्स (Hallen H Jennings) ने इसका विकास करने मे बहुत योगदान किया है ।

राजमिति : व्याख्या (Polit cometry · Explanation)

हैलन जैनिंग्स ने समाजमिति को लेखाचित्रीय पद्धति (Sociometry Method) बताते हुए कहा है कि 'यह प्रदिष्ट (G ven) समूह के सदस्यों के मध्य कि ी प्रदिष्ट समय मे विद्यमान सम्बन्धो के सम्पूर्ण ढाँचे को सरल एव रेखाचित्रों के सहारे प्रस्तुत करने का तरीका है ।[13] यूरी ब्रोमफेन ब्रेनर के शब्दो म, 'समाजमिति समूहो म व्यक्तियो के मध्य पायी जाने वाली स्वीकृति या अस्वीकृति की सीमा का मापन करते हुए सामाजिक प्रस्थिति, सरचना तथा विकास को खोजने, वर्णन एव मूल्याकन करने की पद्धति है ।' जे जी फ्रान्ज के अनुसार, 'एक समूह म व्यक्तियो के मध्य पाय जान वाले आकर्षण तथा विकर्षण का मापन करके सामाजिक सम्पो (Configurations) को खोजने तथा उपयोग करने की पद्धति' को समाजमिति कहा जाता है । या ने समाजमिति म 'समाजमितिक परीक्षण' (Sociometric Test) को आधार बनाया है । इसम प्रत्येक व्यक्ति को यह कहा जाता है कि वह उस समूह के सदस्यो म से उन लोगो को बताये जिनके साथ वह विशिष्ट परिस्थितियो म रहना पसन्द करेगा । इससे उसके एकतरफा, दुतरफा या बहुपक्षीय सम्बन्धा का पता चल जायेगा । साथ ही, इससे सारे समूह मे विद्यमान गुटबाजी, सर्वप्रिय नता

Sociometry is "a method used for the discovery and manipulation of social configurations by measuring the attra t ons nd repulsions between individuals in a group"
J G. Franz

The major lines of communication, cr the patterns of attraction and rejection in its full scope, are made readily comprehensive at a glance
—Helen N Jennings

(Choice Star), द्वितीय स्तर के नेता, सर्वथा पृथक् व्यक्ति तथा अन्य सम्बन्धों का भी ज्ञान हो जायेगा।

इस प्रविधि का समूह की बनावट सामाजिक प्रस्थिति (Status) तथा व्यक्तित्व के गुणों का पता लगाने में किया जा सकता है। राजविज्ञान इसका उपयोग नेतृत्व नैतिकता, सामाजिक अनुकूलन अथवा अलगाव (Alienation) प्रजातीयता, गुटबाजी, जनमत आदि को जानने के लिए किया जाता है। कभी-कभी इसके परिणामों या निष्कर्षों को व्यक्तिगत साक्षात्कारों सहभागी अवलोकन आदि के द्वारा पुष्ट किया जाता है। इस प्रविधि का उपयोग 'नेतृत्व के अध्ययन में चाल्स एल हॉविल 'चारित्र्य' के लिए एल डी जनमी 'प्रजातीय सम्बन्धों के विषय में जान एच क्रिस्वेल ने राजनैतिक मतभेद' के लिए चार्ल्स पी लूमिस जनमत-गणना में स्टुअर्ट सी डाड आदि ने किया है। चिकित्सा, मनोविज्ञान समाजविज्ञान आदि क्षेत्रों में इस पद्धति का प्रयोग बढ़ता जा रहा है।

निर्माण की कार्यविधि (Procedure of Construction)

राजनीति विज्ञान में समाजमिति का प्रयोग करने की क्रिया पाँच चरणों में सम्पादित की जाती है

प्रथम, ऐसे समूह सगठन या दल का निर्माण किया जाता है जो राजनैतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हो तथा जिसके आन्तरिक स्वरूप की रचना का ज्ञान अन्य पद्धतियों द्वारा करना कठिन हो। यह स्पष्ट एवं निश्चित कर लिया जाना चाहिए कि उक्त गवेषणा का लक्ष्य क्या है तथा किस प्रकार के सम्बन्धों का कितनी सीमा तक ज्ञात किया जाता है।

द्वितीय, विषय के निश्चित हो जाने के बाद उन विशेष पक्षों या पहलुओं को स्पष्ट कर लिया जाना चाहिए जिनका अध्ययन किया जाना है।

तृतीय, इसके बाद उन आधारभूत मापदण्डों को निश्चित किया जाना चाहिए, जिनके चारों ओर समूह की गतिविधियाँ घटित होती हैं। इनको निश्चित करने के लिए एक लम्बे समय तक समूह का अवलोकन करना आवश्यक होता है।

चतुर्थ इन आधारों को परिमाणात्मक संकेत या प्रतीक प्रदान किया जाना चाहिए ताकि गुणात्मक सम्बन्धों को गणनात्मक ढंग से व्यक्त किया जा सके।

पंचम निदर्शन या इकाइयों का चुनाव बहुत ही सावधानी से किया जाना चाहिए अन्यथा सम्पूर्ण प्रयोग निरर्थक एवं भ्रामक सिद्ध हो सकता है।

उपयोगिता एवं मूल्यांकन (Utility and Evaluation)

समाजमितीय प्रमाप को सावधानी के साथ प्रयोग करने पर राजनैतिक अनुसंधान के लिए भी काम में लाया जा सकता है। उच्च स्तरों पर इसका प्रयोग करने के लिए शोधकर्ता का बहुत ही कुशल होना आवश्यक है। जो भी प्रमाप बनाया जाय उससे समान दशाओं में उन विशेष मानदण्डों के आधार पर समान मापन प्राप्त होना चाहिए। उसमें विश्वसनीयता (Reliability) तथा प्रामाणिकता (Validity) दोनों गुणों का समावेश होना चाहिए। साथ ही वह सरल तथा सन्देहरहित होना चाहिए। शोधकर्ता को यह विश्वास उत्पन्न कर देना चाहिए कि वह सूचनादाताओं द्वारा दिये गये उत्तरों को कभी भी अन्य सूचनादाताओं के सामने नहीं बतायेगा। उसका प्रमाप ऐसा क्रियात्मक तथा व्यावहारिक होना चाहिए कि उसका प्रयोग प्रत्येक साधक या साधक कर सके। जहाँ तक हो सके, उसे व्यापक तथा स्वीकार्य मानदण्डों पर स्थित करके बनाया जाय।[11]

ऐसा राजमितीय प्रमाप प्राप्त होना या उसका बनाया जाना सरल नही है। उसे उच्च स्तरीय विशेषित सत्ता प्राप्त राजनेताओ पर लागू करना कठिन होता है। किन्तु यदि सावधानी से काम किया जाये तो दल सगठन तथा समूहो के भीतर उसका सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है। यह निरन्तर ध्यान रखा जाना चाहिए कि सूचनादाता गलत उत्तर दे सकता है तथा उत्तर देने के बाद उसके सम्बन्धो म वास्तविक परिवर्तन आ सकता है। कई बातें स्वय शोधक के व्यक्तित्व, पैमाने की बनावट, प्रश्नो की रचना आदि पर भी निर्भर रहती हैं। वस्तुत इस दिशा म बहुत कुछ किया जाना शेष है।

अध्याय आठ से लकर चौदह तक जो भी तथ्य प्राप्त हुए हैं उनकी व्याख्या एव विश्लेषण किया जाता है। किन्तु ऐसा करने से पूर्व उनको व्यवस्थित, वर्गीकृत तथा तालिकाबद्ध किया जाता है। य कार्य गुण-स्थान (Property-space) की धारणा तथा सकेतीकरण (Coding) के माध्यम स किया जाता है। अगले अध्याय म इन्ही समस्याओ का विवेचन किया गया है।

सदर्भ

1 Goode and Hatt, op cit , p 232
2 Fred Massarik, Magic Models Man and the Culture of Mathematics', in Massarik and Philburn Ratoosh, eds , Mathematical Explanations in Behavioural Science, Homewood, Ill , Dorsey Press, 195(, pp 7–8
3. Harold Guetzkow 'Some Uses of Mathematics in Simulation of International Ralations, ' in Johan M Claunch, ed , Mathematical Applications in Political Science, Dallas, Arnold Foundation—Southern Methodist University, 1965, p 25.
4 Andrew Hacker, Mathematics and Political Science', in James C. Charlesworth, ed , Mathematics and the Social Science, Philadelphia, American Academy of Political and Social Science, 1965, p 75
5 S S Stevens, Mathematics, Measurement and Psychophysics', in S. S Stevens, ed , Handbook of Experimental Psychology, New York, Wiley, 1951, Chap 1
6 Fred N Kerlinger, Foundations of Behavioural Research, 2nd ed , Surjeet Publications, 1978, p, 492
7 Charles J Hitch and Ronald N McKean, The Economics of Defense in the Nuclear Age, Cambridge, Mass , Harvard, 1960, pp 160–61
8 Goode and Hatt, op cit , p 232
9 Ibid, p 237, William Herzog, David Stanfield and Gerald Hursh-

Cesar. 'Problems of Measurement', in Third World Survey, op cit, pp 259-281.

10. Virgin a L Senders, Measurement and Statistics, Fair Lawn, N J, Oxford, 1958 p 52

11 See, Allen L Edwards Techn ques of Attitude Scale Construction, New York, Appleton-Century-Crofts, 1957, Chap 4

12 V V, Akolkar, Social Psychology, Bombay, Asia Publishing House, 1963, p 231

13. Hallen Hall Jennings, Sociometry in Group Relations p 11.

14 Young, op cit, p 454

अध्याय 15

गुण-स्थान, संकेतन एवं सारणीयन

[Property-Space, Coding and Tabulation]

प्रत्येक विज्ञान अपने विषय से सम्बन्धित वस्तुओ की विशेषताओ को पूरी तरह से जानने की कोशिश करता है। किन्तु वह कितना ही प्रयास क्यो न करे, वह उन वस्तुओ की सम्पूर्ण विशेषताओ को सम्पूर्णता एव पूर्णता से नही जान पाता। वह केवल उन विशेषताओ मे से कुछ को चुन लेता है तथा उनके आपसी सम्बन्धो को स्थापित करने एव समझने का प्रयत्न करता है। राजनीति एव समाज विज्ञानो मे इन विशेषताओ, गुणो या लक्षणों (Properties, attributes or variables) को एक-एक करके अध्ययन हेतु छाँटना ही कठिन हो जाता है। इन विशेषताओ को ही गुण, लक्षण या गणितीय भाषा मे 'चर' या परिवर्त्य (Variable) कहा जाता है। इन गुणो या चरो का वर्णन, वर्गीकरण अथवा मापन करने का प्रयास किया जाता है। मूल बात इन गुणो की प्रकृति को समझना है। इन गुणो को वैज्ञानिक ढग से समझने के लिए, आनुभविक सकेतो (Empirical indices) मे अनूदन या विस्तरण (Exemplification) किया जाता है। आनुभविक सकेतो के आधार पर वैज्ञानिक अध्ययन को आगे बढाया जाता है।

ऐसा करने से पूर्व अवधारणा (Concept) का निर्माण किया जाता है। यह अवधारणा उस वस्तु या वस्तुओ के विषय मे किसी विचारयोजना या सिद्धान्त मे सम्बन्धित होती है। जैसे, 'राजनेता' की धारणा एक विशेष विचारयोजना से जुडी हुई है। अवधारणा मे कोई एक सरल अवलोकनीय तथ्य या घटना न होकर, अनेक तथ्यो, घटनाओ या गुणो का पुञ्ज या मिश्रण होता है। उस पर शोध करते समय, कतिपय अपने विषय से सम्बन्धित, उस अवधारणा को मूर्त रूप से समझने के लिए सकेतको (Indicators) को निर्धारित करना पडता है। ये सकेतक, किसी व्यक्ति को पहचानने के लिए बताये गए चिह्नो की तरह, अवधारणा तथा वस्तु के मध्य ज्ञानात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इन सकेतको के अवलोकन के आधार पर सूचकाक (Index) का निर्माण किया जाता है। इन विशेषताओ या सकेतको का सूचकाक बनाने मे 'गुण-स्थान' की धारणा बडी सहायक होती है। 'गुण-स्थान' से तात्पर्य उस वस्तु के गुणों का स्थान निश्चित करना है। शोधक का उस वस्तु के सम्पूर्ण गुणों से सम्बन्ध न होकर, केवल सकेतक (Indicator) से सम्बद्ध गुणों से ही होता है। सकेतक किसी विशिष्ट अवलोकन को बताता है। किन्तु जब किसी एक मापन (Measurement) में कई सकेतकों (Indicators) को यथास्थान रखा जाता है, तो उसे सूचकांक (Index) कहा जाता है। गुणस्थान की धारणा सूचकांक निर्माण के सिद्धान्त का मूल आधार होती है।[1]

'गुण-स्थान' की अवधारणा : व्याख्या एवं महत्व
(Concept of Property-Space Explanation and Importance)

वस्तुओं या व्यक्तियों की विशेषताओं या गुणों का स्थान निर्धारित करने की प्रक्रिया को 'गुण स्थान' कहा जाता है। इससे अमूर्त गुणों को मूर्त रूप दिया जाता है। यह कार्य किसी खाली नक्शे पर बम्बई शहर की स्थिति को अक्षांश एवं देशान्तर रेखाओं की सहायता से बताने के समान है। इसमें हम विषुवत् तथा ग्रीनविच रेखाओं को आधार बनाकर स्थिति का निर्धारण करते हैं। राजविज्ञान में 'गुण स्थान' बनाने का कार्य किसी विश्लेषण-योजना के भीतर निर्देशांकों (Coordinates) की सहायता से किया जाता है। ऐसा करने के लिए कम से कम दो भुजाएँ या आयाम होने चाहिए—जो एक नीचे से ऊपर तथा दूसरी बायें से दायें जाती हो। इस तरह विशेषता की रेखाओं या निर्देशांकों का आयत (Rectangle) बन जाता है। जैसे, आर्थिक स्थिति तथा राजनैतिक प्रभाव की रेखाओं से बने आयत पर किसी भी व्यक्ति या राजनेता को स्थित किया जा सकता है। किसी शहर या क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का पता बताना तो सरल है, किन्तु समाजविज्ञानों में यह कार्य व्यक्तियों से प्रश्न पूछकर या उनकी कार्य-क्षमता को देखकर किया जाता है।

जिन आयामों, विमाओं या विशेषताओं के आधार पर हम गुण-स्थान निर्धारित करते हैं, वे कई प्रकार के होते हैं। वे सतत चर (Continuous variables) हो सकते हैं, भले ही वे समान अन्तराल (Equal interval) वाले न हों, या शून्य से प्रारम्भ न होते हों। कई बार वे सापेक्ष (Relative) स्थिति को ही बता पाते हैं। आयु, आय, समुदाय का आकार आदि से सम्बन्धित गुण-स्थान निर्धारण में अन्तराल एवं शून्य से प्रारम्भ होना, दोनों ही बातें होती हैं। राजविज्ञान में आयाम प्रायः गुणात्मक ही होते हैं।

ये आयाम (Dimensions) दो प्रकार के होते हैं—(1) सतत चर (Continuous variable), तथा (2) गुणात्मक मान से सम्बन्धित। सतत चर, आय, आयु आदि हो सकते हैं। कई बार ये, समान अन्तराल तथा शून्य से शुरुआत न बता सकने के कारण, केवल सापेक्ष स्थिति ही बता पाते हैं। लेकिन गुणात्मक विशेषता वाले आयाम, सैनिक पद, (Military rank) की तरह सब कुछ स्पष्ट कर देते हैं कि वह व्यक्ति नायक है या सेनापति। गुणात्मक मान या विशेषता पूरी तरह से स्पष्ट होती है, जैसे, विश्वविद्यालय के परिवेश में किसी क्लर्क या व्याख्याता को गुण-स्थान की दृष्टि से स्थापित करके बताया जा सकता है।

गुण-स्थानों के प्रकार Kinds of Property Spaces)

गुण-स्थान के कतिपय प्रचलित प्रकारों का संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है :

(1) **द्विघात्मक गुणस्थान** (Dichotomous Property Space)—यह गुण-स्थान प्रकारों में से सरलतम प्रकार है। इसमें दो विलोम या विरोधी गुणों में वस्तुओं या व्यक्तियों को विभक्त कर दिया जाता है, यथा, मतदाता / अमतदाता, श्वेत/अश्वेत, शासक दल/विरोधी दल आदि। एक ही गुण के अन्तर्गत अनेक श्रेणियों या वर्गों को रखकर जटिल गुण-स्थान वर्गीकरण को सरल बनाया जा सकता है।

(2) **द्विघात्मक एवं श्रेणीगत गुण स्थान** (Dichotomous and Ranked Property-Space)—इसमें गुणों के आयामों (Dimensions) को दो या तीन अन्तरालों में

विभाजित कर दिया जाता है। ऐसा करने पर गुण-स्थान का प्रदर्शन कोरा आयत या एक सतत समतल (Continuous plane) न होकर अनेक कोष्ठकों (Array of cells) में विभक्त हो जाता है। जैसे, दल के प्रति लगाव तथा राजनैतिक अभिरुचि की मात्रा से बने आयत को क्रमश तीन-तीन अन्तरालो मे विभक्त कर दिया गया है। 'दल के प्रति लगाव' को जनता, कांग्रेस (ई) तथा अन्य तथा राजनैतिक अभिरुचि की मात्रा को उच्च, मध्यम एव निम्न अन्तरालो (Intervals) मे बांट दिया गया है, (देखिए, चित्र सख्या-1)। इन नौ कोष्ठको मे से किसी एक कोष्ठक मे रखकर किसी व्यक्ति के गुण स्थान को बताया जा सकता है।

द्विधात्मक एवं श्रेणीगत गुण-स्थान
(Dichotomous and Ranked Property-Space)

चित्र-1

(3) बहु आयामीय गुण स्थान (Multi-Dimensional Property-Space)— किसी भी वस्तु या व्यक्ति की अनेकों विशेषताओं के गुण-स्थानो को बताया जा सकता है। एक राजनेता सम्पत्तिशाली, शिक्षित, मन्त्री पदधारी तथा पहलवान भी हो सकता है। इन विशेषताओ को आधार बनाने पर उन्हें निर्देशांक (Coordinates) कहा जाता है। ये निर्देशांक या आयाम दो के बजाय तीन चार, या पांच भी हो सकते हैं। दो से अधिक आयाम वाले गुण स्थानो को 'बहु आयामीय' श्रेणी मे रखा गया है। इनके उतने ही कोष्ठक बना लिए जाएंगे। चार निर्देशांकों (Coordinates) के होने पर गुण स्थान चार आयामीय (Four dimensional) हो जायेगा। उसमे एक व्यक्ति की स्थितियां चार विशेषताओ की दृष्टि से ज्ञात हो जाये गी। किन्तु साथ ही सारे कोष्ठकों की सख्या बढ़ती जायेगी। एलन एच. बार्टन के द्वारा दिए गए दृष्टान्त मे पहले तीन आयामीय गुण-स्थान का चित्रण किया गया है। पहले दो आयामो को—पुत्र का (1) व्यवसाय हाथ से या मशीन से (Manual or non manual), तथा (2) राजनैतिक अभिरुचि—उसमा या

गैर-जनता लिया गया है। इसमे तीसरा आयाम पिता का व्यवसाय—हाथ से या मशीन से और जोड़ दिया गया। ऐसा करने से चार खण्डों मे विभक्त दो खण्ड हो गए। इन्हें चित्र संख्या 2 मे दिखाया गया है। यदि पिता की राजनैतिक अभिरुचि' का आयाम और

चित्र-2

जोड दिया जाये तो गुण स्थान खण्ड दो के बजाय चार हो जायेंगे। इन्हें चित्र मे स्थित करने के बजाय चिह्नों (+ या −) के द्वारा भी दिखाया जा सकता है। इसमे प्रमुख आयाम को आयत के भीतर तथा पृष्ठभूमिगत आयामों के बाहर दिखाया जा सकता है।[2] कम्प्यूटर के आई. बी. एम. कार्डों पर यह कार्य और भी अधिक विविध एवं व्यापक स्तर पर किया जा सकता है। उसमे 80 खाने या कोष्ठक लम्बाई की तरफ तथा 12 कोष्ठक चौड़ाई या ऊँचाई की तरफ होते हैं। उससे गुण स्थान का निर्धारण तुरन्त हो जाता है और कोई गलती भी नहीं होती।

गुण-स्थान का न्यूनीकरण (Reduction of Property-Space)

प्रत्येक वस्तु या व्यक्ति में अनेकानेक विशेषताएँ होती हैं। उन विशेषताओं या गुणों के भी अनेक अन्तराल या स्तर होते हैं। यदि इनका व्यापक तथा विविध स्तर पर प्रदर्शन किया जा चुका है तो उन्हें कम करके भी दिखाया जा सकता है। जैसे, चार आयामों को दो आयामों के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इस गुण स्थान को कम या संकुचित करने की क्रिया को संकोचन या न्यूनीकरण (Reduction) कहा जाता है। न्यूनीकरण का अर्थ है

कोष्ठको को बडो श्रेणियो या वर्गों म रखकर कम करना । शोध-कार्य मे ऐसा करना आवश्यक हो जाता है । किसी विशेष तथ्य का अध्ययन करते समय हो सकता है कि विस्तृत गुण स्थान विश्लेषण का उपयोग नही हो । गुण-स्थान का न्यूनीकरण या सकोचन करने की अनेक विधियाँ है

(1) आयामों के सरलीकरण के द्वारा न्यूनीकरण (Reduction Through Simplification of the Dimensions)--इसमे एक आयाम मे प्रयुक्त अन्तरालो (Intervals) को सकुचित करके दो या तीन श्रेणियो मे कम करते या सरल परिवर्तित लक्षणो को श्रेणी-अन्तरालो मे विभक्त करके सकुचित किया जाता है । सलग्न चित्र स० 3 मे दल-लगाव वाले आयाम के चार अन्तरालो—जनता, कांग्रेस (आई), लोकदल तथा

आयामो के सरलीकरण द्वारा न्यूनीकरण की प्रक्रिया

(Reduction Process through Simplification of Dimensions)

चित्र-3

साम्यवादी को, साम्यवादी तथा गैर साम्यवादी अन्तरालो म कम कर दिया गया है । इसी प्रकार, 'राजनैतिक अभिरुचि' के तीन अन्तरालो को दो अन्तरालों—सक्रिय राजनैतिक कार्यकर्ताओ तथा उदासीन मे विभाजित कर दिया गया है । इस प्रकार, गुण-स्थान-आयत नो के बजाय चार कोष्ठको मे विभाजित हो गया है ।

(2) सख्यात्मक सूचकांक तथा लक्षणात्मक गुण-स्थान का 'न्यूनीकरण'--(Numerical Indices and the Reduction of Qualitative Property-Space)--कई बार अलग-अलग आयामो पर प्रदर्शित लक्षण, जैसे, समाचार रेडियो सुनना चित्रपट या दूरदर्शन देखना आदि अलग अलग दिखाए जाते है । किन्तु य सब भी दिशा या प्रवृत्ति को बताते हैं । समान लक्षण या दिशा से सम्बन्धित होते व धारण किए गये 'निर्देशक' है, भले ही उनकी विशालता या मात्रा (Degree) भिन्न भिन्न हो एक ही लक्षण के

अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। इनको रुचि के अंश के अनुसार भारित (Weightage) किया जा सकता है। सख्या प्रदान करके उनका कुल जोड भी निकला जा सकता है।

(3) **सख्यात्मक सूचकांक तथा सतत गुण स्थान न्यूनीकरण** (Numerical Indices and the Reduction of Continuous Property Space)--सतत चर से सम्बन्धित गुण स्थान का न्यूनीकरण करने के लिए भी सख्यात्मक सूचकांक (Numerical indices) का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे, आय और आयु को द्वि आयामीय मे सतत चर मान कर प्रदर्शित किया जाये तथा दोनो के प्रभाव को समान मान लिया जाये, तो उनका अलग-अलग प्रदर्शन करने की आवश्यकता नही रहेगी। सलग्न चित्र सख्या 4 मे गुण-स्थान x = आयु पर खडे आयाम y = आय के विभाजित अन्तरालो को जोड देने पर वे परस्पर सम्बद्ध

सख्यात्मक सूचकांक एव सतत गुण-स्थान का न्यूनीकरण
(Numerical Indices and Reduction of Continuous Property-Space)
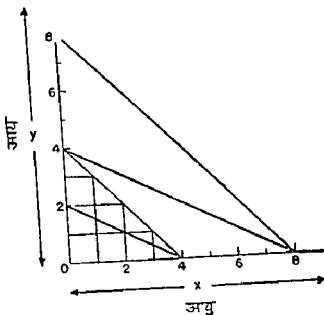
चित्र–4

हो जाते हैं। अर्थात् 4,4 से तथा 8 8 से जुड जाता है। सतत चर होने के कारण इनका अलग अलग उल्लेख करने के बजाय एक ही अंक 4, 6 या 8 से काम चलाया जा सकता है। इस तरह आय स्थिति अंक एक ही सख्या द्वारा बनाया जा सकता है। यदि सम्बन्ध समान न होकर किसी अनुपात म निरन्तर चलता है तो भी एक ही अक स, जैसे, 2M, 4M से काम चलाया जा सकता है। सलग्न चित्र सख्या 5 मे आयामों का सम्बन्ध दुगुना दिखाया गया है।

(4) गुण स्थान का व्यावहारिक न्यूनीकरण (Pragmatic Reductions of Property Space)– अनेक बार भारित सूचकांक (Weighted indicators) के सही

मूल्यांकन देने पर भी वे या तो बहुत कठोर हो जाते हैं या मनमाने हो जाते हैं। पैनल अध्ययन के न्यूनीकरण मे दो आयाम, (1) मतदान से पूर्व सकल्प तथा (2) मतदान के दिन दिया गया मत, होते हैं। मतदान से पूर्व सकल्प मे तीन अन्तराल, जनता, अनिश्चित, जनता-विरोधी हैं। मतदान के दिन दिए गए मत सम्बन्धी अन्तराल भी तीन हैं, यथा, जनता-दल, मतदान से अनुपस्थित तथा विरोध पक्ष मे मतदान। चित्र सख्या 5 मे नव-कोष्ठकीय गुण स्थान रेखाकन मे दिखाया गया है कि एक वर्ण डाल कर इन्हें दो वर्गों मे, गुण-स्थान को न्यून करके रखा जा सकता है।

गुण-स्थान का व्यावहारिक न्यूनीकरण
(Pragmatic Reduction of Property-Space)

चित्र–5

यदि इन श्रेणियों या कोष्ठकों को ज्यों का त्यों रहने दिया जाये और प्रत्येक अन्तराल को उच्च, मध्यम तथा निम्न उपवर्गों में बाँट दिया जाये तो कोष्ठकों की सख्या बहुत अधिक बढ़ जायेगी। ऐसा हो जाने पर अगणित निदर्शनों एव साक्षात्कारों की आवश्यकता पड़ेगी। अतएव यह आवश्यक है कि व्यावहारिक आधार पर गुण-स्थान का सशोधन किया जाये।

(5) गुण स्थान का कार्यात्मक न्यूनीकरण (Functional Reductions of Property Space)—इसमें आयामों (Dimensions) के अन्तरालों की सख्या को कम करके इस प्रकार पुनर्विभाजित किया जाता है कि कोष्ठकों की सख्या कम हो जाये। इससे कोष्ठकों के भीतर आने वाले मामलों (Cases) की सख्या भी काफी कम हो जायेगी। शेष बचे हुए मामलों या इकाइयों का, जो नयी वर्गीकरण-स्थिति मे सख्या मे यथाधिक होंगे, सरलता से वर्गीकरण किया जा सकता है। सलग्न चित्र सख्या 6 मे दलीय नेताओं के अनुशासन तथा सदस्यों की दल के प्रति निष्ठा के दो आयाम हैं तथा उनको क्रमश. अधिक सामान्य एव नगण्य तथा उत्तम, मध्यम एव निम्न अन्तरालों मे विभाजित

किया गया है। जब हम देखते हैं कि अधिकाश मामले अधिक, उत्तम तथा मध्यम कोष्ठकों में आ रहे हैं, तो 'पूर्ण नियंत्रण' के सम्मिलित कोष्ठक के अन्तराल उन सभी को रखा जा सकता है। इसी तरह, निम्न एवं सामान्य को छोड़कर उन्हें 'विद्रोह' शीर्षक के अन्तर्गत रख देने से वर्गीकरण अधिक उपयुक्त हो जायेगा। नगण्य में केवल एक कोष्ठक से सम्बद्ध मामलों से ही का चलाया जा सकता है।

गुण-स्थान का कार्यात्मक न्यूनीकरण

(Functional Reduction of Property-Space)

चित्र–6

इस प्रकार, 'गुण-स्थान' की अवधारणा अमूर्त लक्षणों एवं मूल्यांकनों को मूर्त रूप देने का कार्य करती है। लजार्सफेल्ड, रोजनबर्ग एवं बार्टन ने बताया है, गुण-स्थान की धारणा के आधार पर ही सूचकांक-निर्माण (Index-formation) किया जाता है। हम 'गुण-स्थान' की व्यापकता एवं विविधता का थोड़े से आयामों या विमाओं के भीतर संकोचन या न्यूनीकरण भी कर सकते हैं। इससे अनेक प्रकारणाओं अथवा बड़े वर्गों (जिनके भीतर कई उपवर्ग हों) का निर्माण किया जा सकता है। यहाँ तक कि केवल एक आयामीय (One-dimensional) गुण-स्थान बनाने में भी सफलता मिल सकती है। वस्तुतः 'गुण-स्थान की धारणा के आधार पर व्यक्ति या वस्तुओं की योग्यता मापन के लिए अनेक प्रकार के प्रमाप (*Scales*) बनाए जा सकते हैं। न्यूनीकरण-प्रक्रिया के द्वारा जटिल वर्गीकरणों को सरल बनाया जा सकता है।

मूलावतरण की प्रक्रिया (Process of Substruction)

'गुण-स्थान' के संकोचन या न्यूनीकरण से मिलती-जुलती प्रक्रिया 'मूलावतरण' (Substruction) कहलाती है। इसका सरल अर्थ है मूल तक पहुँचना या अन्तिम छोर

तक जाकर सोचना। यह मूलावतरण की प्रक्रिया किसी प्रकारणा के गुण-स्थान से सम्बन्धित होती है। इनके द्वारा प्रकारणाओं का स्पष्टीकरण किया जाता है। वास्तव में देखा जाये तो ज्ञात होगा कि न्यूनीकरण, मूलावतरण तथा रूपान्तरण (Transformation) प्रकारणाओं के निर्माण से सम्बन्धित प्रक्रियाओं का नाम है। मूलावतरण में गुण-स्थान के मूल-स्थान तक जाने के कारण, फैलाव तथा विस्तार होता है इस कारण यह प्रक्रिया 'गुण-स्थान के व्यावहारिक न्यूनीकरण' से उल्टी होती है।

राजनिज्ञान में व्यक्तियों स्थितियों आदि को प्रकारों' अथवा 'प्रकारणाओं' में रखा जाता है। यह क्रिया वर्गीकरण से कुछ उच्च स्तर की प्रक्रिया है। किसी को 'शहरी' कहा जाता है तो किसी को 'ग्रामीण'। राष्ट्रीय नेता' और स्थानीय नेता भी ऐसी ही प्रकारणा है। वास्तव में देखा जाये तो इन प्रकारणाओं का आधार एक-दो विशेषता न होकर, अनेक लक्षणों का 'पुन्ज' होता है। उदाहरण के लिए, 'राष्ट्रीय' या 'स्थानीय नेता के वर्गीकरण का आधार भौगोलिक गतिशीलता, शिक्षा, नेता चयन की प्रक्रिया का स्वरूप, रुचियाँ, अभिव्यक्ति, प्रभाव आदि होता है। ये लक्षण और भी अनेक या विस्तृत हो सकते है। एक दृष्टि से, ये 'प्रकार' व्यापक एवं जटिल गुण-स्थान के वर्गों में से कुछ वर्गों या लक्षणों का चयन है। यह एक प्रकार से न्यूनीकरण की प्रक्रिया है।

किन्तु प्रकारणाओं या प्रकारों को और भी अधिक अच्छी तरह से समझा जा सकता है यदि उनके सारे गुण-स्थान को पूरी तरह से दिखाया जाये तथा यह बताया जाये कि उसकी शुरुआत कहाँ से हुई है? मूलावतरण (Substruction) में देखा जाता है कि प्रकारणा कौनसे गुण-स्थान में स्थित है तथा उसके बनाने में किस प्रकार न्यूनीकरण का प्रयोग किया गया है। मूलावतरण किसी प्रकारणा-व्यवस्था की गुण-स्थान के साथ तुलना करने तथा तार्किक रूप से उसके उद्गम तक ले जाने में, जहाँ से उसका न्यूनीकरण किया गया है, निहित होता है। ऐसा करने से प्रकारणा-व्यवस्था की त्रुटियों और भूलों को समझने में सहायता मिलती है। इससे प्रकारणाओं को और भी अधिक व्यावहारिक बनाया जा सकता है। इसका उद्देश्य प्रकारणाओं को समझने तथा उनका उपयोग करने में सहायता देना है। ये प्रकारणाएँ उसके निर्माता की फलदायक अन्तर्दृष्टि से निर्मित होती हैं। यदि प्रकारणा सम्बद्ध चरों के जाल को समझने में सहायता देती है तो मूलावतरण उसके प्रत्येक अंग को अलग-अलग करके यह देखने में मदद करता है कि प्रत्येक अंग की भूमिका क्या है? इससे प्रकारणा का निर्माण करने वाले लक्षणों के साथ ही यह भी पता चल जाता है कि किन लक्षणों या उनके पुन्जों को छोड़ दिया गया है, अथवा उनके पारस्परिक अन्तरों को भुला दिया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि मूलावतरण प्रकारणाओं के निर्माण को दिशा बताता है, अथवा उनके अंगों के मध्य सम्बन्ध बताने का कार्य करता है। इसका उद्देश्य प्रकारणा-निर्माता की वास्तविक मानसिक प्रक्रियाओं का वर्णन करना भी नहीं है। मूलावतरण का लक्ष्य प्रकारणाओं को अपने मौलिक स्वरूप में समझना है।

प्रकारणा के गुण-स्थान या लक्षण-स्थान से सम्बन्धित मूलावतरण ईरिक फ्रोम के अध्ययन से लिया जा सकता है।[1] इसमें उसने जर्मन परिवारों में सत्ता की संरचना का अध्ययन करके प्रश्नावली के आधार पर सत्ता सम्बन्धों के चार प्रकार बनाये हैं--(1) पूर्ण सत्ता, (2) साधारण सत्ता, (3) सत्ता का अभाव तथा (4) विद्रोह। इसमें प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर व्यापक प्रकारणा बनाई गई तथा बाद में सत्ता-सम्बन्धों का मूलावतरण किया गया। ऐसा करने से एक पूरी शोध-कार्यविधि का पता चला तथा फ्रोम के प्रकारों को

आखिर तक समझा जा सका।

जब प्रकारणाओ मे "यूनीकरण" का प्रयोग किया जाता है या कुछ कोष्ठको को या लक्षणो को छोड दिया जाता है तो मूलावतरण खोज का उपकरण (Tool of discovery) भी बन जाता है कि ऐसा क्यो हुआ ? जैसे फ्रोम की प्रकारणा मे कि क्या ऐसे बच्चे होते हैं जो अपने ऊपर ऐसी सत्ता चाहते है जिसका प्रयोग नही किया जाये। इससे प्रकारणा के भीतर विद्यमान विरोधाभासो का भी पता चल जाता है।

राजविज्ञान मे प्रयुक्त वर्तमान प्रकारणाए प्राय अस्पष्ट पाई जाती हैं। उनको स्पष्ट करने के लिए मूलावतरण प्रक्रिया का सहारा लिया जा सकता है। उनका मूलावतरण एक से अधिक प्रकार का हो सकता है। इस तरह एक गुण स्थान को दूसरे मे बदला या रूपातरित (Transform) किया जा सकता है। रूपातरण करने के तार्किक एव सांख्यिकीय नियम होते हैं। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि यूनीकरण मूलावतरण तथा रूपान्तरण प्रकारणाओ मे सम्बन्धित प्रक्रियाएँ हैं। वस्तुत किसी प्रकारणा का कोई एक गुण-स्थान स्वरूप या विशेष रूप से सम्बद्ध यूनीकरण नही होता। इसलिए उसका कोई एक मूलावतरण भी नही हो सकता।

आवश्यकता इस बात की है कि उक्त प्रक्रियाओ का उपयुक्त प्रकारणाओ का निर्माण, आनुभविक शोध तथा शोध के गुणात्मक सुधार करने मे उपयोग किया जाये। किन्तु गुण स्थान धारणा की सीमाओ को भी समझा जाना चाहिए। मानव व्यवहार को गुण-स्थान के आयामो मे रखकर समझने मे त्रुटि हो सकती है। उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को अंतिम नही मान लेना चाहिए।

सूचकाक निर्माण (Index Construction)

इनका उपयोग जटिल राजनीतिक सम्बन्धो के स्वरूप को जानने तथा उनका मापन करने के लिए किया जाता है। यग के अनुसार जटिल सामाजिक दशाओ का मापन करने के लिए विविध प्रकार के सूचकाको का प्रयोग किया जाता है।[4] उसके अनुसार सूचकाक एक साधारण अवलोकनीय घटना (Phenomenon) है जिसके द्वारा अपेक्षाकृत जटिल तथा सरलतापूर्वक अवलोकन न किए जाने वाली घटनाओ को बताया जाता है। सूचकाक किसी विषय से सम्बन्धित उस मात्रा गुण या विशेषता का गणितीय ढग से बताते हैं जो किसी क्षेत्र मे सम्बद्ध क्षेत्र या व्यक्तियो मे विद्यमान हो। जैसे महगाई या कृषि उत्पादकता का समूचकाक।

श्मिड (Schmid) के मतानुसार सूचकाक वस्तुपरक (Objective) तथा गणनात्मक होना चाहिए। उसके स्वरूप का निश्चित एव स्पष्ट रूप से बताया जाना चाहिए। इसके आधारभूत मापदण्ड स्पष्ट होने चाहिए तथा वह विश्वसनीय एव प्रामाणिक (Valid) होना चाहिए। यदि एक से अधिक सूचकाक उपलब्ध हैं तो उसके गुणावगुणो को पूरी तरह से तौला जाना चाहिए। मापन का विश्लेषण करने के लिए सूचकाक का निर्माण करना अत्यावश्यक होता है।[5]

दैनिक व्यवहार मे जो मापदण्ड या अनुमान कहे-सुने जाते हैं वे प्राय अस्पष्ट, अपर्याप्त तथा बहुअर्थक होते हैं। राजविज्ञान मे सामाजिक एव राजनैतिक जीवन के मूलभूत पक्षो का मापन किया जाता है। किन्तु सूचकाको की उपयोगिता के बारे मे विभिन्न मत पाए जाते है। डगलस भाइ हेलेनबर आदि सूचकाको को आवश्यक मानते हैं। उनके

बिना किसी संस्था या संगठन की सफलता या असफलता के बारे में भविष्यवाणी करना मुश्किल है। सामाजिक आर्थिक स्तर अथवा उत्पादकता आदि का मापन बनाने के लिए सूचकांकों का प्रयोग किया जाता है। किन्तु सभी लोग सूचकांकों पर निर्भर रहने के पक्ष में नहीं हैं। कुछ समस्याएँ इतनी व्यापक, गहन एवं जटिल होती है कि एक ही प्रकार के सूचकांक (Single index) से काम नहीं चलता। उनसे सम्बन्धित बहुत से सूचकांक बनाये तथा काम में लिए जाते हैं। सूचकांकों का निर्माण गणितीय एवं सांख्यिकीय ढंग से किया जाता है। कतिपय प्रमुख सूचकांकों के नाम इस प्रकार हैं

(1) अन्तर्क्रिया सूचकांक (Index of Interaction)—इसमें समाजमिति की भाँति व्यक्तियों के मध्य आकर्षण-विकर्षण का मापन किया जाता है। यह मापन गणितीय रूप में किया जाता है।

(2) सामाजिक स्थिरता सूचकांक (Social Stability Index)—हार्ट शोर्न ने समूहों में सदस्यों के आने जाने का मापन करने के लिए इसे बनाया है।

(3) सामाजिक प्रस्थिति सूचकांक (Social Status Index)—इसका विकास जेनेनी ने व्यक्ति का समाज में स्तर जानने के लिए किया था। इससे व्यक्ति की अपने समाज में प्रस्थिति का पता चल जाता है।

(4) सामाजिकता का सूचकांक (Socialization Index)—इसे भी जेनेनी ने व्यक्ति की अन्य व्यक्तियों के प्रति पसंदगी, नापसंदगी या तटस्थता जानने के लिए विकसित किया है।

(5) सम्बद्धता सूचकांक (Cohesion Index)—एल फील्ड ने इसे समूह के मध्य सम्बद्धता का मापन करने के लिए विकसित किया है।

इन सूचकांकों के अलावा भी अन्य अनेक सूचकांकों का विकास किया गया है। इनसे लोकतन्त्र के प्रति लोगों के झुकाव, जनमत, राजनैतिक गतिविधियों आदि का पता लगाया जा सकता है।[6]

संकेतन (Coding)

वस्तुओं, व्यक्तियों एवं स्थानों को पहचानने के लिए सदा से काम लिया जाता रहा है। मानचित्रों में भौगोलिक विशेषताओं को बताने के लिए संकेतों से काम लिया जाता है। संकेतों का प्रयोग करने से समय की बचत होती है तथा कुशलता और शुद्धता आती है। गुड एवं हैट के अनुसार, 'संकेतन एक ऐसी प्रविधि है जिसके द्वारा तथ्यों को वर्गों में संगठित किया जाता है और प्रत्येक मद का जो जिस वर्ग में आता है, एक संख्या या प्रतीक प्रदान किया जाता है। इस प्रकार, प्रतीकों का गिनकर हम बता सकते हैं कि किसी दिए हुए वर्ग में मदों की संख्या कितनी है। वास्तव में, यह आधारभूत वर्गीकरण की ही है।' सेल्टिज, जहोदा, डायश एवं कुक के मत में "संकेतन तकनीकी प्रणाली है जिसके द्वारा तथ्यों को श्रेणीबद्ध किया जाता है। संकेतन के द्वारा कोरे तथ्यों को संकेतों में बदला जाता है तथा सारणीयन किया और गिना जाता है।"* यंग के मतानुसार, 'संकेतन तथ्यों

---

* Just as coding is thought of as the technical procedure for the castegorization of data, so tabulation may be considered as a part Contd

को प्रस्तुत करने मे प्रयुक्त वर्गों या सवर्गों को स्थापित करने तथा पूर्व-नियोजित वर्ग मे आने वाले प्रत्येक उत्तर को सामान्यत सख्यात्मक प्रतीक देने मे निहित है।' इस प्रकार, *सकेतन मे तथ्यो को वर्गों मे सगठित करने की प्रक्रिया है तथा इसमे प्रत्येक मद को वर्ग के अनुकूल सकेत प्रदान किया जाता है।* इससे कच्चे तथ्यों को सकेतो मे बदल कर उनका सारणीयन किया जाता है। मूलत. सकेतन वर्गीकरण प्रक्रिया है।[7]

संकेतन-प्रक्रिया एवं उपयोगिता (Coding Proc ss and Utility)

सकेतन राजनीतिक शोध के प्रत्येक स्तर पर किया जा सकता है। इसके लिए मूल *आँकड़ो का अध्ययन करना चाहिए। सकेतन के समय प्राय. तीन बातो को देखा जाता है:* [1] उत्तरदाताओं की सख्या या तथ्य-सामग्री के स्रोत, [2] पूछे गये प्रश्नो की सख्या तथा [3] *अध्ययन के लिए नियोजित साख्यिकीय प्रक्रियाओ की सख्या और जटिलता। इनके सन्दर्भ मे किया गया सकेतन शुद्धता* को प्रोत्साहन देता है तथा इसमे समय, स्थान और श्रम की बचत होती है।

सकेतन प्रक्रिया की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि तथ्य-सामग्री को एकत्र करने के तुरन्त बाद उसकी जाँच की जाये। उन तथ्यो को सही ढग से सम्पादित (Edit) किया तथा त्रुटियो को निकाला जाना चाहिए। जाँच मे पाँच बातें देखी जाती हैं : [1] सभी मदो को भर कर पूर्णता लायी जाये, [2] *साक्षात्कारक या अवलोकनकर्ता का लेख सुपठनीय* (Legible) हो, [3] उसके लेखन मे बोधगम्यता (Comprehesibility) हो, [4] उत्तरो में सुसगति (Consistency) देखी जाय, तथा [5] सभी साक्षात्कर्त्ताओं अथवा अवलोकन-कर्त्ताओं को निर्देश दिये जायें ताकि वे एकरूप कार्यविधि को अपनायें। सकेतन करने के बाद ठीक ढग से वर्गीकरण करने की योजना बनायी जानी चाहिये। तथ्य अपने आप कुछ नहीं कहते। उनका अध्ययन करने के लिए उपयुक्त ढग से वर्गीकरण तथा सारणीयन किया जाना चाहिए।

वर्गीकरण (Classification)

तथ्यो मे पायी जाने वाली समानता या विभिन्नता के आधार पर उनको व्यवस्थित रूप से विभिन्न श्रेणियों मे विभाजित करने को वर्गीकरण कहा जाता है। तुलना, विश्लेषण या व्याख्या करने के लिए सामग्री का सक्षिप्त रूप मे प्रस्तुत होना आवश्यक है। अतएव समान लक्षण वाले तथ्यो को एक समूह के अन्तर्गत रखा जाता है। एलहास के अनुसार, "सादृश्यताओं एव समानताओं के अनुसार तथ्यों को समूह एव वर्गों मे व्यवस्थित करने की तकनीकी प्रक्रिया वर्गीकरण (Classification) कहलाती है।"* कानोर के शब्दो मे, "*वर्गीकरण तथ्यो का उनकी समानता और निकटता के आधार पर समूहो तथा वर्गों को*

Contd

of the technical process in the statistical analysis of data.

—Jahoda, Duetsch and Cook

The process of arranging data in groups or classes according to resemblances and similarities is technically called classification

—D N. Elhance

स्पष्ट करने तथा व्यक्तियों में पाई जाने वाली विभिन्नता में विद्यमान एकता को अभिव्यक्ति देने वाली प्रक्रिया है।" इसमें समानता के आधार पर तथ्य संक्षिप्त, स्पष्ट तथा सरल ढंग से रखे जाते हैं। किन्तु वर्गीकरण तभी सम्भव होता है जबकि तथ्य विभिन्नता लिए हुए हों तथा काफी मात्रा में उपलब्ध हों। वर्गीकरण उन इकाइयों की समस्त विशेषताओं को नहीं बताता। उससे केवल उसी विशेषता ही प्रकट होती है, जिसको आधार मानकर वर्गीकरण किया गया है। धर्म के आधार पर व्यक्तियों के वर्गीकरण से उनके धनी या निर्धन होने का पता नहीं चल सकता।[3]

वर्गीकरण के उद्देश्य एवं गुण

(Object of Classification and Characteristics)

वर्गीकरण के अनेक उद्देश्य होते हैं। इससे जटिल, बिखरे हुए तथा परस्पर असम्बद्ध तथ्यों को बोधगम्य तथा तर्कसंगत समूह में (Brief and tangible grouping) रखा जाता है। तथ्यों के मध्य समानताएँ तथा विभिन्नताएँ स्पष्ट हो जाती हैं। वर्गीकरण तुलनात्मक अध्ययन (Comparative study) में सहायक होता है। इससे दो समूहों की विशेषताओं की तुलना करके उनके विकास का पता लगाया जा सकता है। एक से तथ्य जब अनेक वर्गों में विभाजित किए जाते हैं तो उनकी अनेक नयी विशेषताओं का पता लगता है। सांख्यिकीय विवेचना करने--माध्य मूल्य, विचलन, सहसम्बन्ध आदि निकालने में वर्गीकरण अत्यन्त आवश्यक होता है। इसके बिना तथ्यों का विश्लेषण तथा स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। वर्गीकरण परिशुद्ध निष्कर्ष निकालने में बड़ा सहायक होता है।

किन्तु वर्गीकरण उपयुक्त ढंग से किया जाना चाहिए। उसमें निश्चितता एवं स्पष्टता (Clear and unambiguous) होनी चाहिए। जिन्हें उच्च, मध्य या निम्न कहा गया है, उनको पहले परिभाषित कर लिया जाना चाहिए। वर्गीकरण अध्ययन के उद्देश्य के अनुसार स्थायी (Stable) तथा परिवर्तनशील (Flexible) होना चाहिए। उसमें नवीन परिस्थितियों के साथ अपने आप को बदलने की क्षमता होनी चाहिए। प्रत्येक वर्गीकरण शोध के लक्ष्यों के अनुकूल बनाया जाये। जैसे, मतदान सम्बन्धी आँकड़े प्राप्त करते समय मतदाताओं की आय का कोई महत्त्व नहीं होता। तथ्यों को वर्गों में रखते समय पूरी सावधानी रखनी चाहिए। वर्ग न तो बहुत बड़े हों और न बहुत छोटे।

वर्गीकरण के आधार एवं प्रकार (Bases and Kinds of Classification)

वैसे तो वर्गीकरण शोध के उद्देश्यों के अनुसार ही किया जाता है। फिर भी वर्गीकरण के बहु-प्रचलित आधार पाए जाते हैं :

(1) गुणात्मक आधार (Qualitative Base)--इसमें तथ्यों को अंकों में प्रकट नहीं किया जाता। यह वर्गीकरण गुणों तथा लक्षणों के आधार पर किया जाता है। सामान्य गुणों या लक्षणों वाले तथ्यों को एक ही वर्ग में रख दिया जाता है, जैसे, साक्षर व्यक्तियों को साक्षरता के वर्ग में रख दिया जायेगा।

(2) गणनात्मक आधार (Quantitative Base)--इस पर आधारित वर्गीकरण में तथ्य संख्याओं में, जैसे, आयु, आय आदि व्यक्त किए जाते हैं।

(3) सामयिक आधार (Periodical Base)--इसमें समय वर्गीकरण का आधार

बन जाता है, जैसे, प्रति पाच वर्ष बाद प्राप्त मतदान के आँकडो से सम्बंधित वर्गीकरण।

(4) भौगोलिक आधार (Geographical Base)--इसमें तथ्यो का क्षेत्र स्थान या देश के अनुसार वर्गीकरण किया जाता है।

(i) गुणात्मक वर्गीकरण दो प्रकार का होता है--[क] सरल या विभेदात्मक वर्गीकरण (Simple or Dichotomous Classification)--इसमे विपरीत या विलोम गुण जैसे, देशी, विदेशी शिक्षित अशिक्षित आदि, वर्गीकरण के आधार होते हैं। [ख] बहुल गुणी वर्गीकरण (Multifold Classification)--यह दो से अधिक गुणो के आधार पर निर्मित होता है जसे, धर्म के आधार पर, हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान आदि।

(ii) गणनात्मक वर्गीकरण भी दो प्रकार का होता है--[क] खडित श्रेणी के अनुसार वर्गीकरण (According to discrete series)--इसमें किसी खडित श्रेणी (1, 2 ~, 4, 5) के सामने, तथ्यो के बार बार आने या प्रकट होने की सख्या या आवृत्ति (Frequency) का रख कर वर्गीकरण किया जाता है। बार बार आने वाली सख्याओ की सूची को आवृत्ति सारणी (Fr quency table) कहते हैं। जैसे, यदि 10 परिवारो म वयस्को की सख्या 5,3 4,2,6 7 2,1,8 और 3 है, तो खडित श्रेणियो के अनुसार आवृत्ति वितरण के आधार पर वर्गीकरण इस प्रकार होगा

वयस्को की सख्या	परिवारो की सख्या
1	2
2	1
3	3
4	2
5	2
कुल योग	10

(ख) अखण्डित श्रेणिया या अन्तराल के अनुसार वर्गीकरण (According to continuous series of class intervals)- तथ्यो की कुल सख्या बहुत अधिक होने पर तथा सबसे बड़े तथा सबसे छोटे पद मे अधिक अन्तर होने पर तथ्यो का एक एक समूह के रूप म लिया जाता है। ऐसा होने पर तथ्यो की सीमाएँ या पुञ्ज शोधक की अपनी इच्छा से निश्चित कर दिये जाते है। उन्हा पुञ्जो या सीमाओ म सम्बन्धित तथ्यो का विभाजित कर दिया जाता है। जैसे, यदि आय के सम्बन्ध म सबसे कम आय 100 रुपए तथा सबसे अधिक आय 1000 रुपए हैं तो हम इस निम्नतम तथा उच्चतम सीमा के मध्य कुछ आय समूह (Income groups) निर्धारित कर सकते हैं जैसे, 100 रुपए, से 200 रुपये, 200 से 300 रुपए जान वाले समूह आदि। इन आय समूहो की सीमाओ के मध्य अन्तर को वर्गान्तर या वर्ग अन्तराल (Class interval) कहा जाता है। इस वर्गान्तर या वर्ग अन्तराल

के आधार पर भी मदों या तथ्यों का वर्गीकरण किया जाता है। उदाहरणार्थ, 200 से 299 रुपये के मध्य आय पाने वालों को इस वर्ग के अन्दर रखा जा सकता है।

(iii) सामयिक वर्गीकरण—इस वर्गीकरण का आधार समय या (Period) होता है, अवधि दिन माह, वर्ष आदि में हो सकती है। जैसे, स्थानान्तरण का अध्ययन करने वाले शोधक उच्च अधिकारियों (I A S) के महत्त्वपूर्ण पदों पर टिके रहने की अवधि को 6 माह, 12 माह, 1½ वर्ष, 2 वर्ष, 3 वर्ष, तथा 3 वर्ष से ऊपर आदि समय वर्गों के अन्तर्गत रख सकते हैं। इसी प्रकार, विधायकों की सदस्यता का भी वर्गीकरण किया जा सकता है।

(iv) स्थानानुसार वर्गीकरण—इसमें भौगोलिक क्षेत्र के अनुसार, जैसे, जिला, राज्य, राष्ट्र या देशवार वर्गीकरण किया जा सकता है। विश्व उत्पादन के आँकड़े प्रायः देशवार दिखाए जाते हैं।

सारणीयन (Tabulation)

वर्गीकृत तथ्यों को एक तालिका या सारणी के रूप में कुछ स्तम्भों तथा पंक्तियों में व्यवस्थित करने को सारणीयन (Tabulation) कहा जाता है। सारणीयन विश्लेषण एवं व्याख्या करने की दिशा में वर्गीकरण का अगला कदम है। जहोदा एवं साथियों के अनुसार, "जिस प्रकार संकेतन को, तथ्यों का वर्गीकरण करने की प्राविधिक कार्यविधि माना जाता है, उसी तरह सारणीयन को तथ्यों के सांख्यिकीय विश्लेषण की प्राविधिक प्रक्रिया का भाग माना जाता है।"[10] ब्लायर अर्थो म, एल्हास के अनुसार, 'सारणीयन तथ्यों की स्तम्भों तथा पंक्तियों में क्रम से जमायी गयी व्यवस्था है।* यह एक ओर तथ्यों के संकलन तथा दूसरी ओर, उनके अन्तिम विश्लेषण के मध्य की प्रक्रिया है।"[11] सारणीयन द्वारा मात्रात्मक तथ्यों को इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि विचाराधीन समस्या बिल्कुल स्पष्ट हो जाये। इस कार्यविधि के अन्तर्गत तथ्यों को वर्गीकृत करने के बाद स्तम्भों तथा पंक्तियों (Columns and rows) में इस ढंग से जमा दिया जाता है कि उनकी विशेषताएँ तथा तुलनात्मक महत्त्व और अधिक स्पष्ट हो जाती हैं।[12]

सारणीयन का मूल उद्देश्य तथ्यों को इस तरह प्रस्तुत करना होता है कि वे सरलता से समझ में आ जायें। इससे वे स्पष्ट एवं बोधगम्य हो जाते हैं। स्तम्भों (Columns) तथा पंक्तियों (Rows) में तथ्यों को जमा देने से उनकी विशेषताएँ साफ-साफ दिखाई देने लगती हैं। अनन्त तथ्यों का ढेर संक्षिप्त रूप में सामने आ जाता है तथा वे तुलना एव विश्लेषण के योग्य बन जाते हैं। यही कारण है कि सांख्यिकीय सारणी को 'सांख्यिकी की आशुलिपि' (Shorthand) कहा है। किन्तु सभी सारणियाँ अच्छी नहीं होतीं। एक अच्छी सारणी उद्देश्य के अनुकूल एवं वैज्ञानिक होनी चाहिए। यदि उसमें 'दल बदल' की समस्या से सम्बन्धित तथ्यों का वर्गीकरण किया गया है तो सभी दल बदलुओं के दल, समय-क्रम, बारम्बारता या आवृत्ति तथा अवधि का प्रदर्शन होना चाहिए। विभिन्न राज्यों के दल-बदलुओं को अलग-अलग बता कर उन्हें तुलना के योग्य बनाया जा सकता है। उनका आधार उपयुक्त

---

* In the broadest sense, tabulation is an orderly arrangement of data in columns It is a process between the collection of data on the one hand and its final analysis on other. —D N Elhance

होना चाहिए। उसे इतना स्पष्ट एवं सरल बनाया जाना चाहिए कि सामान्य व्यक्ति भी उसे अच्छी तरह से शीघ्र ही समझ सके। वह प्रदर्शनीय अर्थात् आकर्षक भी होना चाहिए।

सारणी का निर्माण : प्रक्रिया (Preparation of Tables : Procedure)

सारणी का निर्माण एक कठिन कार्य है और इसे एक अनुभवी, कार्यकुशल तथा प्रतिभासम्पन्न शोधकर्ता ही कर पाता है। वर्गीकरण के पश्चात् जब तथ्य सामने आ जाते हैं तो सबसे पहले सारणी का शीर्षक (Heading) प्रदान किया जाता है। यह मोटे अक्षरों में लिखा जाता है तथा इसमें तथ्यों या विषय देखते ही समझ में आ जाता है। दूसरे क्रम में उसके अन्तर्गत विभिन्न स्तम्भों (Columns) की स्थिति को देखा जाता है कि वे अनावश्यक रूप से न बड़े हों और न छोटे। तीसरे चरण में, प्रत्येक स्तम्भ को एक अनुशीर्षक (Caption) दिया जाता है ताकि यह पता चल सके कि वह स्तम्भ आँकड़ों के विषय में क्या अतिरिक्त या विशेष जानकारी देता है, जैसे, जनसंख्या के शीर्षक के अन्तर्गत आने वाले स्तम्भों में ऊपर 'स्त्री' तथा 'पुरुष' लिखा जायेगा। यदि 'स्त्री' वर्ग के अन्दर भी स्तम्भ हों तो उनके अनुशीर्षक 'शिक्षित' या 'अशिक्षित' हो सकते हैं। चतुर्थ चरण में, पंक्तियाँ (Raws) सूचनाओं से भरी जाती हैं। उन्हें वर्णमाला, समय, स्थान आदि के अनुसार लिखा जा सकता है। पाँचवें चरण में, स्तम्भों का क्रम (Sequence of Columns) निर्धारित किया जाता है। पहले स्तम्भों में आगे आने वाली संख्याओं या तथ्यों का परिचय देने वाली बातें लिखी जाती हैं। उसके बाद अधिक महत्त्वपूर्ण सूचना बायें स्तम्भों में भरी जाती हैं। तुलना से सम्बन्धित स्तम्भ पास-पास में रखे जाते हैं। माध्य या अनुपात बताने वाले स्तम्भ उनके समीप ही लिखे जाते हैं। छठे चरण में आँकड़ों का उपविभाजन करने के लिए मुख्य स्तम्भ के उप-स्तम्भ बनाये जाते हैं। उपवर्ग उप-स्तम्भ बन जाते हैं। ये पतली रेखाओं के भीतर दिखाये जाते हैं। सातवें चरण में, यदि स्तम्भ अनेक उपवर्गों या उप-स्तम्भों में बाँट दिया गया है तो उनका योग साथ ही दे दिया जाता है। अन्त में, यदि कोई विशेष बात बतानी हो तो उसे टिप्पणी (Remarks) के स्तम्भ के अन्तर्गत लिख दिया जाता है। किसी मद में आँकड़े न मिलने पर का उल्लेख इसी प्रकार किया जाता है।

सारणीयन करने की उपर्युक्त क्रियाएँ दोनों पद्धतियों में की जाती हैं, चाहे वह हाथ से किया जाय या मशीन से। हाथ से किये गये सारणीयन को हस्त सारणीयन (Hand Tabulation) कहा जाता है। इसमें 'टैली शीट' (Tally Sheet) का प्रयोग किया जाता है। सबसे पहले, उन समूहों, वर्गों या वर्ग-अन्तरालों (Class Intervals) को निश्चित किया जाता है, जिनके अन्तर्गत तथ्यों को रखना है। जैसे, यदि 100 मतदाताओं की आय का सारणीयन करना है, तो आय समूहों का 100–200, 200–300, 300–400 आदि का निर्धारण किया जायगा। इन आय समूहों में आने वाले एक-एक मतदाता की आय को लेकर उस वर्ग के अन्तर्गत एक खड़ी रेखा (Stroke) खींच दी जायेगी। उस वर्ग में ऐसी चार खड़ी रेखाएँ हो जाने के बाद एक काटती हुई पाँचवी रेखा खींच दी जायेगी। बाद में उनका योग लगा दिया जायगा, जैसे,

टैली-शीट
(Telly-Sheet)

विषय ...... अंकक (Scorer)
कक्षा ... जाँचकर्ता (Checker)

आय समूह	व्यक्तियों की संख्या	योग
100 - 200 रु	𝍸 𝍸 𝍷𝍷𝍷	13
200 - 300 रु.	𝍸 𝍸	10
योग		23

यान्त्रिक सारणीयन– बहुत अधिक मात्रा में आँकड़े उपलब्ध होने पर किया जाता है। मशीनें भी दो प्रकार की होती हैं--हाथ से चलने वाली तथा बिजली से चलने वाली। मशीनों से सारणीयन करने पर अनेक पूर्व-क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। (1) सबसे पहले प्रत्येक उत्तर या सूचना को मशीन द्वारा ग्राह्य प्रतीकों या संकेतों में बदल दिया जाता है। इसे संकेतन कहा जाता है। जैसे, बेकार व्यक्ति, मतदाता, गैर-मतदाता, तटस्थ आदि को क्रमश 0, 1, 2 3 आदि कोड संख्या दी जा सकती है। (2) उसके पश्चात् कोड संख्या को सारणीयन कार्डों में दर्ज किया जाता है। सारणीयन कार्ड को छेद (Punch) कर दिया जाता है और सारी सूचना संख्या में बदल दी जाती है। प्रत्येक सूचनादाता का एक कार्ड बन जाता है। कार्ड पर संकेत को अंकों में सूचना लिखी जाती है। (3) उसके बाद कार्ड पर छेद करने की क्रिया की पुन जाँच की जाती है तथा कार्डों को छाँटा (Sorting) जाता है। यह छाँटने का काम सारणीयन कार्डों की विशेषताओं के अनुसार किया जाता है। इस कार्य को मशीन स्वयं कर देती है। (4) उसके पश्चात् मशीन कार्डों को अलग-अलग निकालकर भिन्न वर्गों में आने वाली संख्या को दर्ज कर देती है। इसके साथ ही सारणीयन का कार्य पूरा हो जाता है।

सांख्यिकीय सारणियों के प्रकार

सारणियों को दो आधारों पर विभाजित किया जा सकता है, प्रथम, उद्देश्य के

आधार पर, द्वितीय, आकार के आधार पर। उद्देश्य के आधार पर दो प्रकार की, सामान्य उद्देश्यीय तथा विशिष्ट उद्देश्यीय या सक्षिप्त सारणी होती है। आकार के आधार पर, सरल एव जटिल सारणियाँ होती हैं। इनका सक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है

(1) सामान्य उद्देश्यीय सारणी (General Purpose Table)—इसे ग्रॉक्सटन एव काउडेन ने सन्दर्भ सारणी कहा है। ऐसी सारणियो से केवल कुछ विषयो के सन्दर्भ का ज्ञान होता है। 'सन्दर्भ सारणी का प्राथमिक एव एकमात्र उद्देश्य तथ्यो को इस तरह प्रस्तुत करना है कि व्यक्तिगत मदो को पाठक तुरन्त ढूँढ सकें।' इस प्रकार की सारणियो को प्रकाशित प्रतिवेदनो के अन्त म लगा दिया जाता है ताकि सम्बद्ध विषय का सन्दर्भ ढूँढने मे सरलता हो। इसम तथ्यो को तुलनात्मक ढग स नही रखा जाता।

(2) सक्षिप्त सारणी (Summary Table)—सक्षिप्त सारणी आकार प्रकार मे छोटी होती है तथा किसी एक निष्कर्ष से सम्बन्धित तथ्यों को प्रभावशाली ढग से रखने के लिए तैयार की जाती है। यह सामान्य उद्देश्यीय सारणी का लघु सस्करण होती है।

(3) सरल सारणी (Simple Table)—इस एक गुणीय सारणी भी कहा जाता है। ऐसी सारणी म एक या अनेक स्वतन्त्र प्रश्नो का उत्तर आँकडो के रूप मे दिया जाता है। जैसे, किसी सारणी म मतदाताओ की आयु मात्र ही दी हुई हो।

(4) जटिल सारणी (Complex Table)—जटिल सारणियाँ तथ्यो से सम्बन्धित एक साथ कई गुणो को प्रदर्शित करती हैं। गुणों की सख्या के आधार पर इन्हें द्विगुणीय, तृगुणीय एव बहुगुणीय कहा जाता है।

(1) द्विगुणीय सारणी (Two way Table)—इस म दो गुणो को व्यक्त किया जाता है। जैसे कोई सारणी स्त्री और पुरुष, दोनों प्रकार के मतदाताओं की आयु बता सकती है।

(2) त्रिगुणीय सारणी (Three-Way Table)—तीन गुणो का प्रदर्शन करने के कारण इसे त्रिगुणीय सारणी कहा जाता है। उदाहरण के लिए, स्त्री पुरुष मतदाताओ के अलावा यदि सारणी उनके ग्रामीण या शहरी होने की सूचना भी दे, तो वह त्रिगुणीय सारणी कहलायेगी।

(3) बहुगुणीय सारणी (Multifold or Higher Order Table)—इसम तथ्य या घटना के तीन से अधिक गुणो का, जो प्राय परस्पर सम्बद्ध होते हैं, प्रदर्शन किया जाता है। यह सबसे अधिक जटिल होती है। राजवैज्ञानिक एव सामाजिक शोध म ऐसी ही सारणियो का प्रयोग किया जाता है। जैस, उक्त उदाहरण म मतदाताओ को स्त्री, पुरुष शहरी ग्रामीण आदि के अलावा शिक्षा, धर्म तथा जाति को भी शामिल किया जा सकता है।

(4 आवृत्ति सारणीयन (Frequency Table)—ये सारणियाँ भी दो प्रकार की होती हैं—(1) आवृत्ति सारणी (Frequency Table), तथा (2) सचयी आवृत्ति सारणी (Cumulative Frequency Table)।

(1) आवृत्ति सारणी (Frequency Table)—इसम खण्डित तथा अखण्डित श्रेणियो की आवृत्तियाँ (Frequencies) को प्रदर्शित किया जाता है।

(2) सचयी आवृत्ति सारणी (Cumulative Frequency Table)—इसमे

प्रत्येक समूह या वर्ग की आवत्तियों को अलग अलग नही दिखाया जाता। इसमे पिछले वर्गों की आवृत्तियो को जोडा जाता है। यदि प्रथम वर्ग की आवृत्ति 5, दूसरे वर्ग की 6 तथा तीसरे वर्ग की 3 है, तो प्रथम वर्ग के सामने 5, दूसरे के सामने 6 + 5 = 11 तथा तीसरे वर्ग के सामने 6 + 5 + 3=14 लिखा जायेगा। अन्तिम वर्ग की आवृत्ति कुल तथ्यो की सख्या के बराबर होती है।

सारणीयन उपयोगिता एव मूल्याङ्कन
(Tabulation Utility and Evaluation)

सारणीयन के द्वारा तथ्य तर्कपूर्ण एव आकर्षक ढग से रखे जाते है तथा उनका विश्लेषण करना सरल हो जाता है। इसस साख्यिकीय माध्य, विचलन आदि निकाले जा सकते हैं। आंकडो को सारणी म रखने स समय, स्थान तथा श्रम की बचत होती है। सारे तथ्य एक ही स्थान पर आ जाते हैं तथा उनकी तुलना सम्भव हो जाती है। उसमे तथ्यो से सम्बन्धित सारी विशेषताएँ सामने आ जाती हैं।

किन्तु सारणीयन का कार्य अपने आप म सीमित होता है। उसम केवल सरचनात्मक तथ्यो का ही प्रदर्शन किया जा सकता है। गुणात्मक तथ्य सारणीयन द्वारा व्यक्त नही किये जा सकते। साधारण व्यक्ति सारणियो को नही समझ सकते। वे केवल 'अकों का झमेला' होती हैं। इसमे सभी मदें महत्त्व की दृष्टि से बराबर मानी जाती हैं, जबकि वास्तविकता यह है कि बहुत सी मदें न्यूनाधिक महत्त्व की होती है।

जब तथ्यो का गुण-स्थान की धारणा के आधार पर समुचित वर्गीकरण तथा सारणीकरण कर लिया जाता है तो अगला कार्य उनका विश्लेषण करना होता है। विश्लेषण एव व्याख्या की प्रक्रिया निष्कर्षों, सामान्यीकरणो अथवा सिद्धान्त-निर्माण की ओर ले जाती है। शोध का यही गन्तव्य स्थल होता है। इसके पश्चात् शोध प्रतिवेदन या प्रबन्ध तैयार किया जाता है। अगले अध्याय मे इनका सक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

सन्दर्भ

1 Paul F Lazasfeld and Morris Rosenberg, ed, The Language of Social Research, Glencoe, Illinois, Free Press, p 16
2 विस्तार के लिए देखिये—*Allen, H Barton, "The Concept of Property—Space in Social Research"*, in the Language of Social Research, op cit, pp 41–44.
3 Ibid, P 52, quoted
4 Ibid
5 Philip E Jacob, "A Multi Dimensional Classification of Atrocity Stories", in The Language of Research", op cit, pp 54–57
6 Robert C Angell, 'The Computation of Indexes of Moral Integration', in "The Language of Research", op cit, pp 58–62

7 John K Hemphill and Charles M Westile."The Measurement of Group Dynamics', op cit, pp 323-34.

8 Kenneth Janda, Data—Processing Application to Political Research, Evanston, Ill, North Westen University Press, 1969

9 Ibid

10 Jahoda Duetsch and W Cook, Research Methods in Social Relations, op cit, p 270

11 D, N Elhance, Fundamentals of Statistics, op cit, P 65

अध्याय 16

विश्लेषण, व्याख्या एवं सिद्धान्त-निर्माण

[Analysis, Explanation and Theory-Building]

राजनीति विश्लेषण : विज्ञान अथवा कला ?
(Political Analysis : Science or Art ?)

मोर्टन व्हाइट ने बीसवी शताब्दी को 'विश्लेषण का युग' कहा है।[1] विश्लेषण करना राजविज्ञानियो का एक प्रमुख कार्य बन गया है। इस युग मे राजविज्ञानी एव शोध-कर्त्ता इस बात को जानने मे अधिक रुचि रखते है कि राजनैतिक जगत मे क्या-क्या परिवर्तन हो रहे हैं ? ये परिवर्तन क्यो हो रहे हैं ? इन परिवर्तनो के लिए कौन-कौन से तत्त्व उत्तरदायी हैं ? इन परिवर्तनो का क्या प्रभाव पड रहा है ? अथवा, ये परिवर्तन राजनीतिक व्यवस्था (Political system) के लिए अनुकूल हैं या प्रतिकूल ? आदि। इन सब घटनाओ का ज्ञान राजनीतिक विश्लेषण के द्वारा किया जाता है। समसामयिक राजनीति-विश्लेषक, राजनैतिक व्यवहार तथा राजनीति के अध्ययन मे वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करने तथा तथ्यो के नये अर्थ ज्ञात करने मे लगे हुए हैं।[2]

रॉबर्ट ए. डहल के अनुसार, राजनीतिक विश्लेषण करना कोई सर्वथा आधुनिक कार्य नही है। राजनीति मानव का अनादिकालीन शाश्वत अनुभव है। राजनीतिक विश्लेषण का प्रयोग भी सभी सभ्यताओ द्वारा हजारो वर्षों से एक कला और विज्ञान के रूप मे किया जाता रहा है। पच्चीस सौ वर्ष पूर्व ही सुकरात, प्लेटो और अरस्तू के नेतृत्व मे राजनीतिक विश्लेषण को उच्चता को प्राप्त किया जा चुका था।[3] किन्तु राजनीतिक विश्लेषण को विज्ञान कहा जाय या कला ? इस विषय मे हॉर्नेल हार्ट के अनुसार, "बडा विवाद चल रहा है। यह विवाद कभी-कभी इतना बढ जाता है कि समर्थक तथा आलोचक अपनी सुध-बुध खो बैठते हैं और व्यक्तिगत वैमनस्य को ही स्थान एव प्रोत्साहन देते है।" किन्तु डहल के मतानुसार राजनीतिक विश्लेषण कला के साथ-साथ विज्ञान भी है। प्राय: राजनीतिक विश्लेषण का कला के रूप मे ही प्रयोग किया जाता है। एक 'कला' (Art) के रूप मे उसे राजनीतिक विश्लेषण मे सिद्धहस्त व्यक्ति की देखरेख मे प्रशिक्षण और अभ्यास द्वारा प्राप्त किया जाता है। जब उसम सूक्ष्म अवलोकन, तथ्यो के वर्गीकरण, मापन, परीक्षण आदि शोध-प्रविधियो का प्रयोग तथा सामान्यीकरण एव सिद्धान्त प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है, तो वह 'विज्ञान' बन जाता है। ऐसा करने पर जितनी अधिक मात्रा मे व्यापक एव परीक्षित प्रस्थापनाएँ या परिकल्पनाएँ प्राप्त होगी, राजनीतिक विश्लेषण के परिणाम उतनी ही अधिक मात्रा मे वैज्ञानिक माने जायेंगे।

किन्तु राजनीति मे कुशलता अथवा राजनीतिज्ञता तथा राजनीतिक विश्लेषण मे दक्षता से दो अलग-अलग बातें हैं। जेम्स मैडिसन की तरह कोई व्यक्ति कुशल विश्लेषक

मात्र हो सकता है, अथवा फ्रैंकलिन रूजवेल्ट की तरह वह केवल प्रभावशाली राजनेता मात्र हो सकता है। बहुत कम लोग वुडरो विल्सन की तरह दोनों कुशलताएँ रखते हैं। कुछ भी हो, आधुनिक जगत् की बढ़ती हुई जटिलताओं के साथ-साथ उच्चस्तरीय राजनीतिक विश्लेषण करना भी आवश्यक होता जाता है। ऐसा करके ही व्यक्ति अपने परिवेश (Environment) को अधिक अच्छी तरह समझ तथा उस पर नियन्त्रण कर सकता है। विश्लेषण के द्वारा व्यक्ति या समूह विभिन्न विकल्पों में से अपने लिए उपयुक्त मार्ग का चयन कर सकता है तथा छोटे बड़े परिवर्तनों को प्रभावित करने में सफल हो सकता है। राजनीतिक विश्लेषण के द्वारा ही घटनाओं की वैज्ञानिक व्याख्याएँ करना तथा राजनीति विज्ञान का विकास करना सम्भव होता है।

तथ्यों का विश्लेषण (Analysis of Data)

तथ्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण के पीछे यह मान्यता है कि एकत्रित तथ्यों के ढेर के पीछे कहीं कुछ और अधिक महत्त्वपूर्ण तथा रहस्य बताने वाली कुछ और बात भी है। सुव्यवस्थित तथ्यों को समस्त अध्ययन से सम्बंधित करने पर उनका महत्त्वपूर्ण-सा मान्य अर्थ प्रकट हो जाता है। इसके आधार पर घटना का सप्रमाण निर्वचन (Interpretation) किया जा सकता है। *कोरे तथ्य जमा लेने या उनके वर्गीकरण एवं सारणीयन करने मात्र से ही शोध* पूरा नहीं हो जाता। तथ्यों का विश्लेषण करना सारणीयन के बाद का अगला महत्त्वपूर्ण कदम है। इसके बिना शोध कार्य अधूरा माना जाता है। यंग ने तथ्यों के वैज्ञानिक विश्लेषण को 'शोध का सृजनात्मक पक्ष' (The Creative Aspect of Research) कहा है। राजनीतिक शोधक संकलित तथ्यों के प्रकाश में चलता है। वह प्रचलित आदर्शों दार्शनिक मूल्यों आदि *को समसामयिक मानता है। उसके लिए तथ्य ही मार्गदर्शक होते हैं। वह उनकी सावधानी* से जाँच करके उनके आपसी सम्बन्धों तथा घटना के साथ सम्बन्धों का विश्लेषण करता है। ऐसा करते समय अनेक बार उसे अपनी पुरानी धारणाओं में जाँच, सुधार और परिवर्तन करना पड़ता है। कई बार उसे विश्लेषण करते समय नयी अन्तर्दृष्टि (Insight) प्राप्त हो जाती है। इससे नवीन तथ्यों की व्याख्या करने के लिए ठोस आधार प्राप्त हो जाता है। तथ्यों के उपयुक्त विश्लेषण के बिना शोध विषय या घटना की वास्तविक व्याख्या सम्भव नहीं होती। तथ्ययुक्त व्याख्या के बिना कोई भी शोध कार्य सफल नहीं हो सकता।

विश्लेषण व्याख्या की पूर्व प्रक्रिया या गतिविधि है। इसमें तथ्यों के उचित स्थान, स्वरूप और सम्बन्धों पर विचार किया जाता है। तथ्य स्वयं कुछ नहीं कहते वे मूक होते हैं। उनको क्रमबद्ध विश्लेषण के द्वारा मुखरित बनाया जाता है। विश्लेषण के द्वारा ही घटना और तथ्यों के मध्य कार्य कारण सम्बन्धों को ज्ञात किया जाता है। कार्य-कारण सम्बन्धों या सहसम्बन्धों की स्थापना को 'व्याख्या' (Explanation) कहा जाता है। व्याख्या से ही ज्ञान विज्ञान की उन्नति होती है तथा वैज्ञानिक नियमों को स्थापित किया *जाता है। विश्लेषण एवं व्याख्या एक दूसरे से जुड़ी हुई प्रक्रियाएँ हैं जो एक घटना से तथ्यों* की ओर जाती है तो दूसरी तथ्यों से घटना तथा घटना के बाहर की ओर जाती है।*

---

* An essential prerequisite to the analytical process is the cultivation of a critical and disciplined imagination which can construct a

Contd

विश्लेषण की पूर्व शर्तें तथा प्रारम्भिक कार्य विधि
(Pre requisites and Preliminary procedure of Analysis)

विश्लेषण कार्य की सफलता शोधक की क्षमता, व्यक्तित्व तथा आन्तरिक विशेषताओं पर आधारित होती है। विश्लेषण मूलत शोधकर्ता के ज्ञान अनुभव, साहस, ईमानदारी तथा अभिव्यक्ति पर निर्भर होता है। उसमें एक आलोचनात्मक कल्पना शक्ति होनी चाहिए ताकि वह तथ्यों के मध्य अन्तर्सम्बन्धों को समझ सके। कल्पना का उद्देश्य किसी आदर्श-लोक (Utopia) का निर्माण करना न होकर वास्तविकता की खोज होना है। विश्लेषण को वैज्ञानिक एवं वस्तुपरक बनाने के लिए यह आवश्यक है कि शोधक पूर्वाग्रहों, मिथ्या झुकावों तथा पक्षपातों से दूर रहे। ऐसा न होने पर शोधक का समस्त विश्लेषण निरर्थक एवं भ्रमपूर्ण हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि किसी विशेष विचारधारा या मूल्य व्यवस्था से प्रतिबद्ध व्यक्ति निष्पक्ष एवं वस्तुनिष्ठ विश्लेषण नहीं कर सकता। उसका विश्लेषण प्रचार या समर्थन हो सकता है सत्य की खोज नहीं।

तथ्य विश्लेषण की आवश्यक कार्य विधि यह है कि सबसे पहले तथ्यों का सही तरीके से सम्पादन (Editing) किया जाय। सम्पादन में त्रुटियों अपूर्णताओं तथा भ्रमों को दूर किया जाता है। इसमें मूलत तीन बातें देखी जाती हैं (i) सभी निर्धारित स्रोतों से तथ्य-सामग्री प्राप्त कर ली जाय तथा उसे क्रमानुसार जमा दिया जाय, (ii) प्राप्त उत्तरों की जाँच कर ली जाय। इसमें अशुद्धियों को दूर करना भी शामिल है, तथा (iii) अनावश्यक सामग्री को अलग कर दिया जाय ताकि भ्रान्ति पैदा नहीं हो। दूसरे चरण में, द्वितीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों की जाँच की जाती है। उनमें यह देखा जाता है कि वे विश्वसनीय (Reliable) उद्देश्य के अनुकूल या उपयुक्त (Suitable) तथा पर्याप्त (Edequate) है कि नहीं। यह कार्य पर्याप्त अनुभव एवं ज्ञान अर्जित कर चुकने के बाद ही सम्भव होता है। तीसरे चरण में, तथ्यों के वर्गीकरण का परीक्षण किया जाता है कि वह व्यवस्थित, क्रमबद्ध तथा वैज्ञानिक हो।

चौथे चरण में संकेतन (Coding) की जाँच की जाती है। संख्यात्मक विश्लेषण करने के लिए उत्तरों को संकेत या प्रतीक प्रदान किये जाते हैं। संकेत प्रदान करने का काम प्रारम्भिक अवस्था में प्रश्नावली या अनुसूचियों को भरते समय भी किया जा सकता है। अन्तिम चरण में, तथ्यों के सारणीयन को देखा जाता है कि वह ठीक तरह से किया गया है अथवा नहीं। उपयुक्त ढंग से किया गया सारणीयन विश्लेषण में बहुत सहायक होता है।

विश्लेषण की प्रारम्भिक कार्य विधि में मूलत जब तक किये गये शोध-सम्बन्धी कार्य की ठीक तरह से जाँच की जाती है। विश्लेषण का अगला कदम व्याख्या (Explanation) या निर्वचन होता है।

---

scientific edifice out of the actual facts, which can appreciate the whole range of facts and their inter relationships and subject them to rigid tests of criticism

—Young

विश्लेषण एवं व्याख्या की प्रक्रिया (Process of Analysis and Explanation)

यंग ने विश्लेषण एवं व्याख्या की प्रक्रिया को विस्तारपूर्वक समझाया है।[5] उसके अनुसार व्याख्या के निम्नलिखित सोपान हैं :

1 तथ्यों का तौल (Weighting the Data)—सर्वप्रथम तथ्यों की फिर से दुबारा जांच की जाती है। इस जांच में यह देखा जाता है कि तथ्य पर्याप्त रूप से वस्तुपरक तथा परिस्थिति के यथार्थ प्रतिनिधि हों, उनकी वस्तुपरक ढंग से पुनःपरीक्षा सम्भव हो सके, उनका मापन किया जा सके, वे वास्तव में क्रमबद्ध सिद्धान्त का विकास करने के लिए महत्त्वपूर्ण हों, तथा उनमें सामान्य निष्कर्ष प्राप्त करना सम्भव हो। तथ्य स्वतन्त्र एवं एक दूसरे के समान नहीं होते। उनके महत्त्व को कम या अधिक होने पर तौलना पड़ता है। जिन तथ्यों का समस्या के सन्दर्भ में जितना महत्त्व है, उनको उतना ही स्थान दिया जाना चाहिए। जो भी तथ्य विश्लेषण के लिए छांटे जायें, वे अपने समूह या वर्ग का उचित प्रतिनिधित्व करने वाले होने चाहिए। यदि तथ्यों का सकलन अधिक व्यक्तियों के द्वारा किया गया है, तो उनमें एकरूपता की पूरी व्यवस्था कर ली जानी चाहिए।

2 रूपरेखा का निर्माण (Preparation of an Outline)—उपलब्ध तथ्यों का सही उपयोग करने तथा निष्कर्ष निकालने के लिए एक मार्गदर्शक रूपरेखा का निर्माण कर लिया जाना चाहिए। यह महत्त्वपूर्ण तथ्यों को पहचानने में शोधक की बहुत मदद करती है। इसकी सहायता से अनेक बातों की जानकारी मिलती है, जैसे, तथ्यों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण परिस्थितियाँ कौन सी हैं, तथ्यों में कौन-कौनसी भिन्नताएँ एवं समानताएँ हैं, घटना या परिणाम के साथ तथ्यों का क्या सम्बन्ध है ? आदि। रूपरेखा बनाने में सावधानी से काम लिया जाना चाहिए। यदि वह सही ढग से बनी हुई है तो अपने आप उस दिशा की ओर ले जायेगी, जिधर तथ्यों का झुकाव है। वे तथ्य अपने समस्त या सम्पूर्ण विषय के साथ सम्बन्ध बनाने लग जायेंगे। रूपरेखा का निर्माण करने में दो प्रकार के लोगों की मदद ली जानी चाहिए - प्रथम, विषय से सम्बद्ध गहरी जानकारी रखने वाले ईमानदार, स्पष्टवादी तथा निर्भीक लोग होंगे, तथा द्वितीय, उस विषय से अनभिज्ञ लोग होंगे। एक सही रूपरेखा को बनाने या सुधारने में योगदान करेंगे, तो दूसरे उसे समझने योग्य बनाने की दृष्टि से सहायता करेंगे।

(3) तथ्यों का व्यवस्थित वर्गीकरण (Systematic Classification of Data)—तथ्यों के क्रमबद्ध तथा सुव्यवस्थित वर्गीकरण के विषय में पीछे बताया जा चुका है। राजविज्ञान के शोध में वर्गीकरण का अत्यधिक महत्त्व होता है क्योंकि एक घटना या परिस्थिति के अनेक कारक होते हैं। ये कारक विविध प्रकृति के होते हैं। वर्गीकरण के द्वारा ही इनके सापेक्ष प्रभाव का पता चलता है।

(4) अवधारणाओं का निर्माण (Formulation of Concepts)—सैद्धान्तिक विचार-योजना समस्या तथा अवधारणाओं के प्रकाश में तथ्यों का संग्रह किया जाता है। किन्तु जब समस्त तथ्य सकलित कर लिये जाते हैं तो उनके अन्तर्सम्बन्धों एवं विरोधों को व्यक्त करने के लिए नवीन अवधारणाओं की आवश्यकता पड़ती है। जैसे, एक समाज में भौतिक आर्थिक संस्कृति के विकसित होने तथा अभौतिक संस्कृति (मूल्य, विचार, आदर्श आदि) के पीछे रहने की स्थिति में सम्बन्धित अवधारणा को 'सांस्कृतिक विलम्बना' (Cultural Lag) कहा जाता है। अवधारणा इन्द्रियजन्य ज्ञान से सम्बद्ध होनी चाहिए।

अवधारणा अनेक तथ्यों या उनके मध्य अन्तर्सम्बन्धों को बताने वाली 'संक्षिप्त शब्द' के समान होती है। किन्तु अवधारणा का निर्माण वस्तुपरक ढंग से किया जाना चाहिए। उससे यथार्थ तथा सुस्पष्ट अर्थ की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यह निश्चित् अर्थ को बताने वाला, बोधगम्य तथा यथासम्भव सामान्य होना चाहिए। अवधारणा सदैव एकार्थक होनी चाहिए।

(5) तुलना एवं व्याख्या (Comparison and Interpretation) – वर्गीकरण, सारणीयन तथा अवधारणा-निर्माण के बाद तथ्यों या अन्तर्सम्बन्धों के कतिपय प्रतिमान (Pattern) सामने प्रकट होने लगते हैं। इन प्रतिमानों की तुलना एवं व्याख्या की जाती है। व्याख्या में कार्य-कारण सम्बन्ध बताये जाते हैं। विश्लेषण एवं तुलना के आधार पर कतिपय निष्कर्ष निकाले जाते हैं। तथ्यों से विश्लेषण के द्वारा निष्कर्ष निकालने तथा उनकी प्रामाणिकता बताने की क्रिया को व्याख्या या निर्वचन (Interpretation) कहा जाता है। कार्य-कारण सहित व्याख्या करना ही विज्ञान का लक्षण माना जाता है। व्याख्या आनुभविक तथ्यों के आधार पर सम्पन्न होती है। उसमें शोधक को लगातार वैज्ञानिक तटस्थता का रुख अपनाये रहना चाहिए।

(6) सिद्धान्तों का निर्माण (Formulation of Theories)--घटनाओं एवं तथ्यों की वैज्ञानिक व्याख्या नये सिद्धान्तों का निर्माण करती है। ये सिद्धान्त संकलित तथ्यों के जटिल, अमूर्त तथा अस्पष्ट सम्बन्धों को निश्चित् एवं संक्षिप्त शब्दावली में व्यक्त कर देते हैं। सिद्धान्त शोध की सारवस्तु होते हैं। यदि सिद्धान्त को व्यापक मान्यता मिल जाती है तो वह धीरे-धीरे एक सामाजिक या राजनीतिक नियम (Social or Political Law) बन जाता है। यह आवश्यक नहीं है कि सिद्धान्त सर्वथा नवीन ही हो। कई बार वह पुराने सिद्धान्त में केवल संशोधन मात्र करता है।

सिद्धान्त के आयाम (Dimensions of Theory)

एक वैज्ञानिक सिद्धान्त का निर्माण करना राजनीतिक अनुसन्धान का परम लक्ष्य होता है। एक अच्छे वैज्ञानिक सिद्धान्त में अनेक विशेषताएँ होनी चाहिए। प्रथम, उसमें आन्तरिक एवं बाह्य निगम्यता (Deducibility) होनी चाहिए। यदि उस सिद्धान्त की भीतरी प्रस्तावनाएँ निगमनात्मक रूप से परस्पर सम्बद्ध हैं, तो यह कहा जायेगा कि उसमें आन्तरिक निगम्यता है। यदि वह सिद्धान्त किसी दूसरे सिद्धान्त से निगम्य (Deducible) है तो यह कहा जायेगा कि उसमें बाह्य निगम्यता है। बाह्य निगम्यता से सिद्धान्त को सैद्धान्तिक सहारा मिलता है। द्वितीय, उस सिद्धान्त में व्याख्या करने की शक्ति (Explanatory Power) होनी चाहिए। वह सिद्धान्त सर्वाधिक अच्छा माना जाता है, जिसमें अधिकतम मात्रा में तथ्यों की व्याख्या कर सकने की शक्ति हो। तृतीय, उसमें पूर्वकथनीयता (Predictive power) होनी चाहिए। वह अपने क्षेत्र में आने वाले तथ्यों के विषय में वैज्ञानिक भविष्यवाणी कर सके। चतुर्थ, उसका व्यापक (Wide scope) होना चाहिए। केवल एकाध तथ्य को बताने वाला सिद्धान्त निकृष्ट माना जाता है। सिद्धान्त जब विविध प्रकार के तथ्यों की व्याख्या एवं पूर्वकथन करता है तो उसे व्यापक क्षेत्र वाला सिद्धान्त कहा जाता है।

परिशुद्धता एक वैज्ञानिक सिद्धान्त की पाँचवीं विशेषता है। इसका अर्थ यह है कि विस्तारपूर्वक तथ्यों की व्याख्या एवं पूर्वकथन करे। उस निकलने वाले विवरण जितने अधिक

परिशुद्ध (Precise) होंगे, उतनी ही अधिक मात्रा में सिद्धान्त की विश्वसनीयता बढ़ जायगी। पुष्टिकरण सिद्धान्त की छठी विशेषता है। यदि वह अनेक कठोर परीक्षणों के दौर से गुजर चुका है, जो उसे पुष्ट माना जायेगा तथा उससे निकलने वाली प्रकल्पनाएँ उपयोगी मानी जायेंगी। सरलता (Simplicity) सिद्धान्त की सातवीं विशेषता है। पारसन्स के द्वारा बनाये गये सिद्धान्त जटिल एवं दुरूह होने के कारण अधिक उपयोगी नहीं माने जाते। अन्तिम विशेषता के अनुसार, सिद्धान्त को उपयोगी एवं फलप्रद (Fruitful) होना चाहिए। उसमें उच्चस्तरीय प्रकल्पना विकास की क्षमता होनी चाहिए।

जब इन आठ आयामों के आधार पर राजविज्ञान में उपलब्ध सिद्धान्तों का मूल्यांकन किया जाता है तो शीघ्र ही स्पष्ट हो जाता है कि उसमें ऐसे सिद्धान्त बहुत कम हैं। अब तक जो भी सिद्धान्त उपलब्ध हैं उन्हें पूर्व-सैद्धान्तिक रचनाएँ (Pre Theoretical Formulation) कहा गया है।[7] वास्तव में देखा जाये तो वैज्ञानिक सिद्धान्त के अभाव में ही इन पूर्व-सैद्धान्तिक रचनाओं को 'सिद्धान्त' कह दिया जाता है। ये सर्वथा निरर्थक नहीं हैं। इनसे भी 'वैज्ञानिक सिद्धान्त' के विकास में सहायता मिलती है। वैज्ञानिक सिद्धान्त के विकास की पूर्व अवस्थाएँ इस प्रकार हैं :[8]

(1) एकल विवरण (Singular Statements)—ये व्यक्तिवाचक संज्ञा या नाम होते हैं तथा विशिष्ट तथ्यों को बताते हैं। यथा, जापान ने 7 दिसम्बर, 1941 को पर्ल हार्बर पर आक्रमण किया। एकल विवरणों की दोहरी भूमिका होती है। प्रथम, नियम, प्रकल्पनाएँ, सामान्यीकरण आदि अनेक एकल विवरणों के अवलोकन के पश्चात् ही विकसित होते हैं, तथा द्वितीय व्याख्याओं तथा पूर्वकथनों का पूर्व दशाओं का विवेचन करने के लिए एकल विवरणों की ही आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि ये वैज्ञानिक सिद्धान्त नहीं होती, किन्तु वैज्ञानिक सिद्धान्त के निर्माण में काफी योगदान करती हैं।

(2) अवधारणाएँ (Concepts)—इनके विषय में अध्याय-पाँच में बहुत कुछ बताया जा चुका है। ये वस्तुओं के लक्षणों के नाम (Labels) हैं। अनेक विशेष दृष्टान्तों (Instances) का अवलोकन करने के पश्चात् समान विशेषताओं को दिये गये नामों (Names) को अवधारणा कहा जाता है। जैसे, जापान, जर्मनी, इटली, पाकिस्तान, चीन आदि देशों की विशेष परिस्थितियों में किये गये व्यवहार को देखकर 'आक्रान्ता राष्ट्र' की अवधारणा का नाम दिया गया है। इस अवधारणा को अन्य अवधारणा के साथ जोड़ा जा सकता है तथा ऐसा करके उच्चतर स्तर पर अधिक अमूर्त अवधारणा का निर्माण किया जा सकता है। अवधारणाएं प्रकल्पना रूपी भवन के हिस्से होते हैं। प्रकल्पनाएँ सिद्धान्त की सरचना होती हैं। यद्यपि अवधारणाएँ सिद्धान्त के निर्माण में प्रत्यक्ष योगदान करती हैं, फिर भी उन्हें 'सिद्धान्त' समझने की भूल नहीं की जानी चाहिए।

(3) अवधारणात्मक उपागम (Conceptual Approaches)—ये अवधारणाओं के समूह या 'सैट' (Set) होते हैं। ये परस्पर अव्यवस्थित ढंग से जुड़े होकर भी एक ही विषय-वस्तु से सम्बन्धित होते हैं। जैसे, व्यवस्था सिद्धान्त, संरचनात्मक प्रकार्यवाद, विनिश्चयन सिद्धांत आदि। ये विशेष प्रकार के अवलोकनों के बारे में विचार तथा वर्गीकरण करने में सहायता देने के लिए मूल अवधारणाओं (Key Concepts) का समुच्चय प्रदान करते हैं। इन उपागमों की मान्यता है कि उनकी मूल अवधारणाएँ, महत्त्वपूर्ण प्रकल्पनाओं तथा अन्ततोगत्वा सिद्धान्त निर्माण की दिशा में ले जाने वाली हैं। किन्तु बहुत कम अवधारणात्मक

उपागम परीक्षणीय प्रकल्पनाएँ रखते हैं। उसमें निगमनात्मक (Deductively) रूप से सम्बद्ध आनुभविक प्रकल्पनाएँ भी नहीं होगी।

(4) सामान्यीकरण (Generalizations)—ये सामान्य तथ्यों को बताने वाले तथा अवधारणाओं को जोड़ने वाले वाक्य होते हैं। सिद्धान्त-निर्माण का प्रारम्भिक बिन्दु कोई न कोई सामान्यीकरण, कल्पना या प्रकल्पना ही होती है। सामान्यीकरण प्राय अकेले तथा परस्पर असम्बद्ध होते हैं। इस कारण, उन्हें भी सिद्धान्त नहीं कहा जा सकता।

(5) प्रस्तावना सूची (Propositional Inventories)—ये अव्यवस्थित ढंग से सबद्ध सामान्यीकरणों का समूह होती हैं, किन्तु इन सबकी मूल विषय सामग्री एक ही होती है। जैसे, ऐसी प्रस्तावनाएँ युद्ध की पूर्व तथा पश्चात् दशाओं से सम्बद्ध हो सकती हैं। ये सामान्यीकरणों का सारगर्भित सारांश होती है, जिनसे राजवैज्ञानिक एवं शोधकर्त्ता-कभी-कभी प्रकल्पनाएँ ग्रहण करते हैं तथा उन्हें स्वयंसिद्ध मान बैठते है। यद्यपि इन्हें सिद्धान्तों की प्रस्थिति (Status) दे दी जाती है, किन्तु इनमें प्रकल्पनाओं को निगमनात्मक ढंग से सम्बद्ध करने की क्षमता नहीं होती।

(6) सिद्धान्त (Theories)—ये निगमनात्मक या व्यवस्थित रूप से सम्बद्ध आनुभविक सामान्यीकरणों का सेट' (Set) होते हैं। सामान्यीकरणों के मध्य व्यवस्थित सम्बद्ध प्राप्त करना सिद्धान्त का आदर्श होता है। कुछ हेर-फेर के साथ इन्हें निगमनिक तर्क (Syllogism) में बदला जा सकता है। यह उनका औपचारिक स्वरूप होता है। औपचारिक रूप से, इन्हें गणितीय सूत्र में भी बदला जा सकता है। किन्तु राजविज्ञान के सिद्धान्तों के साथ वर्तमान अवस्था में अधिक क्रियाकौशल (Manipulation) सम्भव नहीं है। न ही यह आवश्यक है कि सिद्धान्त का विकास उपरिलिखित मार्ग या अवस्थाओं को पार करके ही सम्भव हो। वैज्ञानिक सिद्धान्त का निर्माण अनेक दिशाओं एवं मार्गों से किया जाना सम्भव है।

व्याख्या की पर्याप्तता (Adequacy of Explanation)

किसी सिद्धान्त के विषय में तथ्यों, घटनाओं, विचारों आदि की व्याख्या करने का मापदण्ड किस प्रकार निर्धारित किया जाये ? यह कैसे माना जाये कि सिद्धान्त अपने लक्ष्य में सफल हो गया है ? आदि प्रश्न सिद्धान्त की विश्वसनीयता एवं प्रामाणिकता की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। सिद्धान्त की सफलता की मुख्य कसौटी उसकी व्याख्यात्मकता या व्याख्या-शक्ति (Explanatory Power) है। उसकी व्याख्या-शक्ति का मूल्यांकन करने के विषय में दो विचारधाराएँ हैं : प्रथम, वैज्ञानिक पूर्वकथन, तथा द्वितीय, सम्बोध। इनका संक्षिप्त विवेचन करना आवश्यक है।

(1) वैज्ञानिक पूर्वकथन (Scientific Prediction)—एक सिद्धान्त अपने आप में पूर्ण या सफल है यदि वह आने वाले समय में घटनाओं अथवा तथ्यों का पूर्वकथन (Prediction) कर सकता है। यह विचारधारा प्रत्यक्षवादी (Positivist) परम्परा से सम्बन्ध रखती है। कार्ल जी. हैम्पल इस विचार-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है।[2] इस विचारधारा के अनुसार यह माना जाता है कि प्रकल्पनाओं या सिद्धान्त से सम्बन्धित तथ्यों की पर्याप्तता (Adequacy) इस क्षेत्र में पूर्वकथन कर सकने से जुड़ी हुई है। हैम्पल के अनुसार समस्त सिद्धान्तों का उनकी पूर्वकथन-शक्ति के आधार पर मूल्यांकन किया जाना

चाहिए । उसके दृष्टिकोण को तर्क-निगमनात्मक उपागम (Logico-Deductive Approach) कहा गया है ।

व्याख्या और पूर्वकथन को मिला देने वाले अनेक समाजविज्ञानी तथा विज्ञान-दार्शनिक (Philosophers of Science) राजविज्ञान एवं समाजशास्त्र की समस्याओं को समझने में असमर्थ रहे हैं । प्राकृतिक विज्ञानों में, प्रयोगशाला में विषयवस्तु पर नियन्त्रण रख सकने के कारण, इन दोनों को मिला देना सम्भव है । किन्तु समाजविज्ञानों में सामान्यीकरण एवं उनकी पूर्वदशाओं तथा पूर्वकथन के मध्य काफी दूरी पायी जाती है । शोफ्लर, टर्नर आदि ने व्याख्या और पूर्वकथन के मध्य संरचनात्मक तादात्म्य या एकता (Structural Identity) स्थापित करने का विरोध किया है ।[10] पूर्वकथन वैज्ञानिक तभी हो सकता है जबकि ज्ञान की आवश्यक तथा पर्याप्त दशाओं (साधारण शब्दों में 'कारणात्मक' कारणों (Causative Factors) का ज्ञान हो जाय । ऐसा घटनाओं के, प्रयोगशाला में अथवा अन्य तरीके से, नियन्त्रण तथा अवलोकन द्वारा ही किया जा सकता है ऐसा न कर सकने के कारण ही समाजविज्ञानी पूर्वकथन कर सकने में अत्यन्त सीमित सफलता प्राप्त कर पाये हैं । मानवीय घटनाओं के नियन्त्रण की बात तो और भी अधिक दूर है । तब तक उन्हें व्याख्याओं तथा पूर्वदशाओं के विवरण से ही काम चलाना पड़ेगा ।

(2) सम्बोध (Understanding or Verstehen)—उपर्युक्त विचारधारा के विपरीत 'सम्बोध' (Understanding) सम्बन्धी विचारधारा है । डिल्थे, विन्डलबैंड, वेबर आदि इसी से सम्बन्धित विचारक हैं । इनका प्रत्यक्षवादियों की तर्कना और तकनीक में बहुत कम विश्वास है । ये सामाजिक वास्तविकता के विषय में तार्किक अनुभववादियों से बिल्कुल पृथक् विचार रखते हैं । वे मशीनी शब्दावली में मानवीय क्रियाओं का पूर्वकथन करने की धारणा का समूल खण्डन करते हैं । ये मनुष्य के अपने परिवेश को बदल सकने की सक्रिय भूमिका पर जोर देते हैं तथा सिद्धान्त का लक्ष्य 'सम्बोध' या समझना मानते हैं । सम्बोध व्याख्या की उपयुक्तता का आधार है । अनेक विचारक सम्बोध और वैज्ञानिक व्याख्या को एक ही मानते हैं । उनमें से कुछ तार्किक अनुभववादियों का खण्डन करते हुए भी मानवीय क्रिया का पूर्वकथन करने में रुचि रखते हैं । कुछ विचारक 'सम्बोध' को व्याख्या का मूल मानदण्ड मानते हैं तथा सिद्धान्त की आन्तरिक सुसंगति (Internal-Consistency) से सम्बन्ध रखते हैं । उनके लिए तथ्यों का विश्लेषण गौण हो जाता है । तथ्यों का काम सिद्धान्त का समर्थन मात्र करना है । ऐसे लोग अपनी 'अनुशासित अन्तर्दृष्टि' के आधार पर एक सिद्धान्त का निर्माण करते हैं जो समाज की संरचना या विचारधारा से मेल खाता हो । ऐसे शोध-अध्ययनों में ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है । समाजविज्ञानी ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का स्थान अनौपचारिक एवं अस्पष्ट (Sub-Rosa) आदर्शों एवं मानकों (Norms) को दे देते हैं । अपने अध्ययन में ये यह बताते हैं कि उन आदर्शों एवं मानकों से समस्या कहाँ तक मेल खाती है । रीसमैन, गोल्डमैन आदि ने ऐसे अध्ययन किये हैं ।[11]

लेकिन इस तरह की सम्बोध सम्बन्धी मान्यताएँ कट्टर इतिहासवादिता (Historicism) का रूप धारण कर लेती हैं । वे अपनी राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक विरासत की कैदी बन जाती हैं । इसका एकमात्र उपाय यह है कि ऐसे अध्ययन विभिन्न संस्कृतियों के सन्दर्भ में (Cross-Cultural) किये जायें ।

एक तरह से, तार्किक अनुभववादी अपने वैज्ञानिक सिद्धान्तो का मूल्याकन करने मे 'सम्बोध' के दृष्टिकोण का भी उपयोग करते है। इन सिद्धान्तो को वे समाज से सम्बन्धित तथा उसके लिए उपयोगी बताते हैं। यद्यपि वे मानते है कि पूर्वकथन करने मे उन्हे बहुत कम सफलता मिली है, फिर भी उनका उद्यम समाज के लिए बहुत उपयोगी तथा समाज के समर्थन-योग्य है। इन वैज्ञानिक प्रयासो पर आधारित आदर्शलोक मे भी वे विश्वास करते दिखायी पडते हैं।[12]

उपयुक्तता की धारणा मे कठिनाइयां
(Difficulties in the Concept of Adequacy)

सिद्धान्तो की व्याख्यात्मकता की उपयुक्तता के सम्बन्ध मे उपर्युक्त दोनो दृष्टिकोण अपनी सीमाओ से ग्रस्त हैं। एक ओर समाजविज्ञान पूर्वकथन की ऊँचाई तक नही उठ पाये हैं, तो दूसरी ओर सम्बोध बहुत अधिक व्यक्तिपरक हो गया है। वास्तव मे देखा जाये तो समाजविज्ञानो मे तथ्यो, घटनाओ आदि के 'कारणो (Causation) की धारणा ही बडी विवादास्पद है। स्वय तार्किक अनुभववादी यह मानते है कि 'कारणात्मक विश्लेषण' अधूरे प्रकार की व्याख्या है।[13] कारण पर विचार करने वाले 'अन्तिम' या 'परम' (Ultimate) कारण पर विचार करने के लिए विवश हो जाता है। डेविड ह्यूम ने 'कारण की इतनी धज्जियाँ उडा दी हैं कि कारण 'सहसम्बन्धो (X और Y के साथ बने रहने की दशाओ) मे बदल गया है। 'कारण' का आधुनिक सन्दर्भ ज्ञात नही होने के कारण विश्लेषण रहस्यात्मक हो जाता है। इसके अलावा, 'कारण' की धारणा सोद्देश्यवाद (Teleology) मे बदल जाती है।

फिर भी, समाजविज्ञानियो ने 'कारण' या 'कारणत्व' की धारणा को छोडा नही है। वे मूल कारक, पर्याप्त दशा आदि के रूप मे उसे अपनाये हुए हैं। कोई चक्राकार (Circular) कारणत्व को लिए हुए हैं, तो कोई द्वन्द्वात्मक (Dialectic) कारणत्व की दिशा मे खोज रहा है। हैम्पल और पॉपर जैसे पद्धति-वैज्ञानिक व्यक्तिवादी व्यक्ति को अपना केन्द्र बिन्दु (Focus) बनाये हुए हैं, किन्तु व्यक्ति भी तो समूह के मूल्यो और मानको का पुतला है। इस कारण, पूर्वकथन या तार्किक-अनुभववादियो की धाराएँ भी किसी न किसी तरह सम्बोध-विचारधारा मे समा जाती है। यह सम्बोध समाज एव सामाजिक दलो के साथ बदलता रहता है। राजनैतिक एव नैतिक कारको के साथ ही मूल्यांकन के उपकरण और आधार भी बदलने लगते हैं। इस कारण, पूर्वकथन और भी अधिक कठिन हो जाता है। समाजवैज्ञानिक क्षेत्र मे, मानवीय घटनाओ से सम्बन्धित होने के कारण, पूर्वकथन झूठे साबित होने लगते हैं, क्योकि मनुष्य उन पूर्वकथनो को असत्य सिद्ध करने मे जुट जाता है। जैसे, मार्क्स की भविष्यवाणी कि सारे विश्व मे, विशेषत पूँजीवादी औद्योगिक देशो मे साम्यवाद स्थापित हो जायेगा, इस कारण सिद्ध नही हो पायी कि उसको रोकने के लिए प्रभावशाली कदम उठाये गये। दूसरी ओर, ख्रुश्चेव सरकार की ओर से मार्क्स की भविष्यवाणी को सही सिद्ध करने के लिए तैयारियाँ की गयी। भविष्यवाणी एक ओर आत्मघाती (Self-Defeating) बन गयी, तो दूसरी ओर आत्मपूरक (Self Fulfilling) हो गयी। राजवैज्ञानिक एव समाजशास्त्रीय अध्ययनो म मनुष्य तथा उसका परिवेश स्वय एक चर (Variable) है। स्वचालित यन्त्रो एव प्रचार-माध्यमो ने उनके प्रभाव को और अधिक बढा दिया है। उपर्युक्त विचार-विमर्श का यह अर्थ नही है कि राजवैज्ञानिक अपने

अध्ययनों में अधिक पूर्वकथनीयता लाने का प्रयत्न न करें, अथवा पूर्वकथनीयता के लिए प्रयास करना निरर्थक है, किन्तु वर्तमान अवस्था में उन्हें उपलब्ध सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दशाओं का विश्लेषण करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए।

शोध-प्रतिवेदन (Research Report)

शोध एवं सर्वेक्षण का कार्य समाप्त हो चुकने के बाद, शोधकर्ता के पास अपने विषय या समस्या से सम्बन्धित कतिपय निष्कर्ष सामान्यीकरण अथवा सिद्धान्त आ जाते हैं। राजविज्ञान के विकास एवं प्रसार की दृष्टि से यह आवश्यक है कि उक्त उपलब्धियों का शीघ्र एवं व्यापक संचार किया जाय। यह कार्य शोध या सर्वेक्षण का प्रतिवेदन (Report) तैयार करके तथा उसे प्रकाशित (Publish) करके किया जाता है। प्रकाशन का काम साइक्लोस्टाइल करा कर अथवा छपाकर किया जा सकता है। शोध-कार्य को छपाना स्वयं एक प्रमुख पद्धतिवैज्ञानिक समस्या (Methodological Problem) है।

शोध-प्रकाशन के लक्ष्य एवं उद्देश्य
(Aims and Objectives of the Publication of Research)

शोध के प्रकाशन के अनेक लक्ष्य एवं उद्देश्य होते हैं। सबसे प्रमुख लक्ष्य यह होता है कि समाज एवं वैज्ञानिक समुदाय को ज्ञान का प्रलेख (Document of Knowledge) प्रदान किया जाये ताकि वे उसका उपयोग कर सकें। यह 'सरस्वती की पूजा' या 'सत्य की खोज' की दिशा में एक सक्रिय कदम है। यह 'सत्य' (Truth) और 'वास्तविकता' के दर्शन की एक झलक है जिसे मानव-समाज तक पहुँचाया जाता है। इससे ज्ञान का विस्तार (Extension of Knowledge) है। प्रकाशित शोध को पढ़कर विषय या समस्या और भी अधिक विस्तृत एवं गहन अध्ययन किया जा सकता है। ऐसे शोध-अध्ययन पाठकों को अनेक नयी समस्याओं, प्रश्नों, कठिनाइयों एवं चुनौतियों की ओर संकेत करते हैं। किसी अच्छे शोध-कार्य को देखकर नवीन शोधकों के मन में शोध-कार्य करने का उत्साह उमड़ता है।

शोध के प्रकाशन के द्वारा शोध के परिणामों को व्यापक जन समुदाय तक पहुँचाया जाता है। वर्तमान विश्व की प्रगति अनन्त शोध कार्यों तथा उनके परिणामों के उपयोग का फल है। जो राष्ट्र जितना अधिक शोध कार्य करता है, उसकी उतनी ही तेजी से प्रगति होती जाती है।[14] उपयोगी शोध-कार्यों को देखकर ही समाज शोधकर्ताओं को नैतिक, आर्थिक तथा भौतिक समर्थन देता है। अनेक सरकारी, स्वशासी एवं असरकारी संस्थाएँ शोध-कार्य कराती हैं या शोध-प्रतिवेदनों को प्राप्त करने के पश्चात् ही कार्य करती हैं। जिन लोगों से शोध कार्य में सहायता ली गयी है वे भी शोध परिणामों को जानने के लिए बेताब या उत्सुक रहते हैं। अनेक शोधकों को शोध प्रतिवेदनों के पश्चात् उपाधि, पद, नौकरी आदि प्राप्त होती है। शोध कार्य की समाप्ति एवं प्रकाशन स्वयं शोधक के लिए आत्म सन्तोष तथा आत्म-गौरव का स्रोत होता है।

शोध-कार्य के प्रकाशन का उद्देश्य विषय के विभिन्न पक्षों तथा वास्तविकताओं को स्पष्ट करना होता है ताकि सभी लोग उन्हें समझ सकें। इससे पता चल जाता है कि शोध निष्कर्ष प्रामाणिक प्रयोगसिद्ध अथवा विश्वसनीय है कि नहीं। यदि किसी जिज्ञासु को सन्देह या अविश्वास हो तो वह उनकी पुनः परीक्षा (Retest) करके या जाँच करके

देख ले। यह कार्य शोध-प्रतिवेदन के प्रकाशन के बाद ही हो सकता है। शोध-प्रतिवेदन में सभी कुछ उद्देश्य, क्षेत्र, प्रयुक्त पद्धतियां एवं प्रविधियां, विश्लेषण, व्याख्या आदि रहता है। उनकी दुबारा जांच की जा सकती है। अप्रकाशित शोध-कार्यों का कोई महत्त्व नहीं होता।

किन्तु यह मानना अपने आप में पर्याप्त नहीं है कि अच्छे एवं वैज्ञानिक विचार स्वतः बुरे या अवैज्ञानिक विचारों पर विजयी हो जाते हैं। कभी-कभी इसका उल्टा होता है। वैज्ञानिक विचारों एवं उपलब्धियों को विजयी तथा स्वीकार्य बनाने की दिशा में बहुत कम सोचा गया है। वैज्ञानिक ज्ञान को प्रसारित करने के मानदण्ड, प्रविधियां, साधन आदि स्पष्ट एवं निर्धारित नहीं हैं। उन पर संक्षिप्त में विचार करने की पर्याप्त आवश्यकता है। शोध सम्बन्धी ज्ञान का प्रकाशन मौखिक रूप में परिसंवादों, संगोष्ठियों, सम्मेलनों आदि में प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु यह तरीका अधिक उपयोगी, व्यापक तथा स्थायी नहीं है। यही कारण है कि पुस्तक आदि के रूप में शोध के प्रकाशन को ही अधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी माना गया है। किन्तु इस कार्य में भी अनेकानेक समस्याएं सामने आती हैं। इनके विषय में विचार किया जाना चाहिए।

प्रतिवेदन के प्रकाशन से सम्बन्धित समस्याएं
(Problems relating to the Publication of Research-Report)

शोध-प्रतिवेदन के प्रकाशन से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना स्वयं प्रतिवेदन को तैयार करने से पहले आवश्यक है। कई बार इन समस्याओं को ध्यान में रखकर प्रतिवेदन करना जरूरी हो जाता है। यदि इनका ध्यान नहीं रखा गया तो प्रतिवेदन को दुबारा नये सिरे से लिखना पड़ सकता है। यदि प्रतिवेदन को प्रकाशित नहीं करना है तो कोई विशेष समस्या सामने नहीं आती। उसे शोधकर्ता स्वेच्छानुसार एक विशेष क्रम से लिख कर अपने या किसी दूसरे के पास रख सकता है। प्रकाशन की दृष्टि से प्रतिवेदन के पांच पक्ष होते हैं : (1) उद्देश्य (2) प्रकाशन का व्यय, (3) पाठक अथवा श्रोता, (4) प्रकाशक, तथा, (5) परिवेश। इस पर क्रम से विचार किया जायेगा।

(1) उद्देश्य एवं लक्ष्य की समस्याएं

शोध-प्रतिवेदन के प्रकाशन के उद्देश्य एवं लक्ष्यों के विषय में ऊपर विचार किया जा चुका है। फिर भी, शोधकर्ता का उद्देश्य एक निर्णायक तत्त्व होता है। उसका उद्देश्य सत्य की खोज, सत्य का प्रकाशन, असत्य का खण्डन, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवेश को बदलना आदि हो सकता है। उसका लक्ष्य कोरी उपाधि या नौकरी प्राप्त करना या स्वीकृत शोध-राशि को खर्च करना मात्र हो सकता है। किन्तु उसका लक्ष्य अपने नियोजक की सहायता करना भी हो सकता है। यदि शोधकर्ता स्वयं अपनी ओर से प्रकाशन का व्यय जुटाता है तो प्रकाशक को कोई अधिक कठिनाई नहीं आती। किन्तु यदि प्रकाशक अपनी ओर से उसे छापता है, तो वह उसका विक्रय की दृष्टि से अन्य बातों का विचार करता है तथा प्रतिवेदन में परिवर्तन, सुधार आदि करने के लिए आग्रह करता है। कई बार अनेक संस्थाएं, जैसे भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसंधान परिषद, (ICSSR), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (VGC) तथा अन्य सरकारी और निजी निकाय प्रकाशन-राशि देने के लिए तैयार हो जाते हैं। उस अवस्था में, शोधक एवं प्रकाशक को प्रतिवेदन में कई फेर-बदल करने पड़ते हैं।

(2) पाठक एवं श्रोता

शोधकर्त्ता को इस बात का बड़ा ध्यान रखना पड़ता है कि उसके सम्भावित श्रोता (Prospective audience) कौन होंगे ? यदि उसका श्रोता समुदाय सभी समाजविज्ञानी अथवा केवल राजविज्ञानी होंगे, तो उसे अपना प्रतिवेदन उसी प्रकार लिखना पड़ेगा। यदि वैज्ञानिकों के अलावा व्यापक जन समाज के लिए प्रतिवेदन लिखा जायेगा, तो उसके स्वरूप, शैली और अभिव्यक्ति में परिवर्तन आ जायेगा। जन-समाज के लिए लिखने वाला व्यक्ति अपने श्रोताओं की भावनाओं को चोट पहुंचा सकने वाले तथ्यों को रखने से कतरायेगा तथा उनको प्रभावित करने के लिए अपनी उपलब्धियों एवं निष्कर्षों को पसन्द आने वाले सरल ढंग से पेश करेगा। साधारण व्यक्ति तथ्यों और आंकड़ों के ढेर में विचरण करने के बजाय अपनी समस्याओं के समाधान ढूंढने में रुचि रखता है। एम प्रकाशन कीमत तथा बिकने वाली प्रतियों की संख्या पर टिके हुए होते हैं। कई शोधकर्त्ता अपने प्रतिवेदनों को दो रूपों में छपवाना पसन्द करते हैं—एक, अपने वैज्ञानिक समुदाय तथा दूसरा, सामान्य जन-समुदाय के लिए। दोनों का अपना अपना योगदान है। कुछ लोग अपने प्रकाशन में सन्तुलन बनाये रखना पसंद करते हैं। इस दिशा में योफमैन, रीसमैन आदि सम्प्रेषवादी अधिक सफल होते हैं। ऐसे लोग विशेषज्ञ तथा सामान्यज्ञ के मध्य खायी को पाटने में सहायक होते हैं। रुथ बेनेडिक्ट, मार्गरेट मीड आदि ने इस दिशा में काफी कार्य किया है।[15]

भारत में यह समस्या और भी अधिक गहरी है। यहाँ शिक्षित लोगों का प्रतिशत बहुत कम है। उनमें भी शिक्षित लोग अनेक क्षेत्रीय भाषाओं में बँटे हुए हैं। अधिकांश शोध कार्य अंग्रेजी भाषा में लिखे जाते हैं। इनको भी यदि तकनीकी भाषा में लिखा गया तो उसका जन सामान्य के लिए कोई उपयोग नहीं रह जाता।

(3) भाषा एवं शैली

यदि भाषा को बहुत अधिक सरल बना दिया जाता है तो उससे प्रतिवेदन का स्तर गिर जाता है। यदि उसे तकनीकी और क्लिष्ट भाषा में लिखा जाता है तो उसका उपयोग बहुत ही कम लोग कर पाते हैं। राजविज्ञान में भाषा जनसाधारण के निकट रहनी चाहिए। पारिभाषिक (Technical) शब्दों को देते हुए भी उसको सरल और बोलचाल के शब्दों को स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए। समाजविज्ञानों विशेषतः राजनीति विज्ञान में, निश्चित, स्पष्ट तथा परिभाषित साथ ही लोकप्रिय शब्दावली का विकास इसी प्रकार किया जा सकता है। उसमें नवीन राजनैतिक तथ्यों, अन्तसम्बन्धों तथा अन्तर्क्रियाओं का यथार्थ वर्णन करने के लिए आनुभविक अवधारणाओं (Concepts) का निर्माण किया जाना चाहिए।

अलग-अलग अनुशासनों (Disciplines) ने प्रतिवेदन लिखने के अपने-अपने मापदण्ड बना रखे हैं। ये मापदण्ड बदलते रहते हैं। लेकिन अनुभववादी शोधकर्त्ताओं की शैली अलग होती है। उनके प्रतिवेदनों में प्रकल्पनाओं, उनके परीक्षण, सांख्यिकीय आंकड़ों आदि का प्रमुख स्थान दिया जाता है। उनको प्रभावशाली शैली अपनाने की स्वतन्त्रता नहीं होती। गोफमैन जैसे सम्प्रेषवादी प्रभावशाली शैली अपनाने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। वे विस्तार के बजाय सम्पूर्ण रचना के प्रभाव पर अधिक ध्यान देते हैं। कई बार शोधकों को अपनी शैलियाँ बदलने के लिए विवश हो जाना पड़ता है।

(4) सत्य की अभिव्यक्ति एवं वस्तुनिष्ठता

राजविज्ञान में शोध करने से भी अधिक बढ़कर समस्या शोध के निष्कर्षों को प्रकट करना है। राजनीति के निष्कर्ष शक्ति, सत्ता और प्रभाव से सम्बन्धित व्यक्तियों के विषय में होते हैं। इनके विषय में शोध किसी के गुप्त-रहस्यों (Trade Secrets) का भेद खोलने के समान है। प्रतिवेदन किसी न किसी के पक्ष, हित या सम्मान को चोट पहुँचाने वाला हो सकता है। प्रशासन के विषय में की गयी शोध उस संगठन तथा उसके अधिकारियों के क्रियाकलापों का विवेचन करेगी। यह स्थिति अनेक कारणों से कोई भी उच्चाधिकारी पसन्द नहीं करता। यदि उस शोध में सहायता देने वाले व्यक्तियों का किसी तरह से पता लग जाये तो सरकार उनके विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही कर सकती है। यदि शोधकर्त्ता स्वयं सरकारी कर्मचारी अथवा विश्वविद्यालय में शिक्षक है तो उसकी स्वीकृत राशि बन्द की जा सकती है।[15] कई बार निष्कर्ष हानि पर स्वयं सरकार के यहाँ से जाँच-रिपोर्ट गायब करदी जाती है। सरकारी कागज पत्र इधर उधर कर दिये जाते हैं। वस्तुतः सत्य को जानना और प्रकट करना दोनों ही कार्य खतरनाक है। स्वयं शोधकर्त्ता पर विदेशी शक्तियों का गुप्तचर होने तथा भीतरी भेद बाहर पहुँचाने का आरोप लगाकर पीड़ित किया जा सकता है।

स्वतन्त्र देशों के बजाय साम्यवादी देशों में स्थिति अधिक कष्टदायक पायी जाती है। शोधकर्त्ता को नहीं चाहते हुए भी व्यापक सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्था के समक्ष झुकना पड़ता है। राजविज्ञान की अधिकांश शब्दावली मूल्यभारित है। उसमें तटस्थ होकर लिखना अत्यन्त कठिन कार्य हो जाता है। संयुक्त राज्य में मेकार्थी युग में समाजवाद, मार्क्स आदि शब्दों का प्रयोग करना ही घातक माना जाता था। इससे बचने के लिए कुछ लोग तकनीकी भाषा, सांख्यिकीय आंकड़ों का प्रयोग आदि करने की सलाह देते हैं। परन्तु इससे भी कुछ विशेष काम बनता नहीं है। शोधक स्वयं अपने समाज की एक इकाई होता है। वह जिस विषय या समस्या का अध्ययन करता है, उसके विषय में उसके भी अपने विचार, आदर्श, मूल्य, दृष्टिकोण आदि होते हैं। अतएव न चाहने पर भी अनेक बार उसका विश्लेषण, व्याख्या आदि उसके व्यक्तित्व से प्रभावित हो जाती है। इससे तथ्यों का स्वरूप विकृत हो जाता है। प्रतिवेदन में भी उसका प्रभाव आ जाता है।

(5) परिवेश

परिवेश में राजनैतिक व्यवस्था, सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश, अर्थ-व्यवस्था आदि को शामिल किया जा सकता है। इनके विपरीत होने पर शोध कार्यों के निष्कर्षों को प्रकाशित करना जोखिम भरा (Risky) होता है। कई बार स्वयं वैज्ञानिक समुदाय की प्रचलित मान्यताओं के विपरीत जाना कठिन हो जाता है। संयुक्त राज्य में अनेक व्यवहारवादी राजनीति विज्ञान के विभागों से परम्परावादियों को निकाल दिया गया। कोई भी राष्ट्रीय राजनीतिक व्यवस्था अपने दृष्टिकोण के विरुद्ध शोध निष्कर्षों का सार्वजनिक प्रकाशन सहन नहीं करती। इस दिशा में पश्चिमी देश साम्यवादी देशों से पीछे नहीं है। राष्ट्रीय हित, गोपनीयता, अपमान, देशद्रोह आदि से सम्बन्धित कानूनों की आड़ में वैज्ञानिक शोध के प्रकाशनों पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। सरकारी और निजी संगठनों में ये सीमाएँ और भी कड़ाई के साथ लागू की जाती हैं।

सरकारी और कानूनी दृष्टिकोण के अलावा भी, सामाजिक मान्यताएँ एव मानक भी विशेष प्रकार के शोधकर्यों के लिए बाधा-स्वरूप हो जाते हैं। कई बार उनकी धार्मिक भावनाएँ, सास्कृतिक मान्यताएँ तथा निजी गोपनीयता (Privacy) के दृष्टिकोण बाधा बन जाते हैं।

(6) शोध प्रतिवेदन के मानक

स्वय शोध सम्बन्धी प्रतिवेदन तैयार करने के अपने आयाम होते है। उनका उल्लघन करना दोषपूर्ण माना जाता है। शोधकों का अपने सूचनादाताओं के प्रति बडा उत्तरदायित्व होता है कि वे उनके नाम न बतायें। इन सूचनादाताओं का सकेत देते हुए भी वे सकट में पड सकते हैं तथा भविष्य मे शोधकार्य करने मे रुकावट आ सकती है। पिछडे, अशिक्षित और आदिम समाजो में शोध कार्य करने म अधिक कठिनाई नही आती, क्योकि शोध-निष्कर्षों के विषय मे सूचनादाताओं का कुछ भी पता नही लगता। फिर भी कई बार मुख्य सूचनादाताओ को गुमनाम (Anonymous) रखना कठिन हो जाता है। ऐसी अवस्था मे शोधकों को विस्तारपूर्वक अपनी सामग्री बनाने तथा सूचनादाताओ की पूरी तरह से रक्षा करने के मध्य एक समझौता करना पडता है। फरायड हन्टर की तरह उनको दूसरे नाम देकर बचा जा सकता है।[1] सही नाम बताने पर सूचनादाता अपनी सूचनाओ और वक्तव्यो से ही इन्कार कर सकते हैं। कई बार, वैज्ञानिक समाज के ज्ञान का प्रसार करने तथा व्यापक जन-समाज के व्यक्ति तथा उसकी एकान्तता (Privacy) की रक्षा के मानकों के मध्य द्वन्द्व उठ खडा होता है। अनेक अवसरो पर अविकसित तथा विकासमान मित्र देशो से सम्बन्धित सूचनाओ को उस देश पर पड सकने वाले सम्भावित प्रभाव की दृष्टि से रोकना पडता है। जार्ज सी मार्शल ने अपने सवाददाताओ तथा शोधकर्त्ताओ से निवेदन किया था कि दी गयी सूचनाएँ उसके जीवन म प्रकाशित नही की जायें।[18] इसी प्रकार प्रतिवेदन मे उन स्रोतो, व्यक्तियो, सस्थाओ आदि का भी पादटिप्पणियों मे उल्लेख करना पडता है जिनसे सहायता-सामग्री प्राप्त की गयी है। किन्तु इस व्याधि का कोई उपचार नहीं है कि कुछ महत्त्वपूर्ण व्यक्ति अपने नाम से शोधकार्य करवाते हैं अथवा दूसरे के शोध-कार्यों को चुरा लेते हैं। कई बार स्वय शोधकर्त्ताओ को यह पता नही चलता कि उसकी मेहनत स प्राप्त निष्कर्षों को चुरा लिया गया है अथवा विद्रूप कर दिया है। अनेक अवसरो पर, वह जानता हुआ भी चुप रहता है। शैक्षिक समुदाय इन दुराचरणो की रोकथाम करने का कोई उपाय नही कर पाया है।

शोध प्रतिवेदन की विषयवस्तु
(Contents of Research Report)

शोध समस्या प्रबन्ध या प्रतिवेदन अनेक प्रकार से लिखा जाता है। विभिन्न विषयों मे इनके अलग अलग स्वरूप एव शैलियाँ पायी जाती हैं। राजविज्ञान से सम्बन्धित प्रतिवेदन मे निम्नलिखित प्रकरणो का होना आवश्यक है

(1) प्रस्तावना (Introduction)

प्रस्तावना शोध समस्या एव कार्यक्रम का प्रारम्भिक परिचय होती है। इसमे शोध-समस्या के उद्गम, योजना, उपयोगिता आदि पर विचार किया जाता है। इसमें बताया जाता है कि शोध और सर्वेक्षण किस सस्था या विभाग की ओर से किया जा रहा है?

उसके क्या उद्देश्य एवं लक्ष्य है तथा उसके लिए कितनी अवधि निर्धारित की गयी है ? इसी में प्रयुक्त प्रविधियों, मार्ग में आने वाली कठिनाइयों तथा सहायता देने वाली संस्थाओं एवं व्यक्तियों का उल्लेख किया जाता है।

प्रस्तावना के तुरन्त बाद या अलग से समस्या का परिचय, पृष्ठभूमि, अनुसंधान की आवश्यकता बतायी जाती है। इसमें समस्या के चयन के आधार, सम्भावित सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक लाभ की आशा, अन्य अध्ययन आदि का भी विवेचन किया जाता है।

(2) उद्देश्य एवं क्षेत्र (Aims and Scope)

प्रतिवेदन में शोध के उद्देश्य—ज्ञान का विस्तार तथा किसी समस्या का क्रियात्मक समाधान—बताया जाता है। उसका उद्देश्य सर्वथा नवीन ज्ञान प्राप्त करना या विद्यमान ज्ञान में सुधार-संशोधन करना हो सकता है। यदि उसे किसी संस्था, सरकार आदि के द्वारा कराया जा रहा है तो उसके उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया जाना चाहिए। इसी से उसकी सीमाओं एवं कार्यक्षेत्र का भी पता चल जाता है। कार्यक्षेत्र में भौगोलिक क्षेत्र, सामाजिक वर्ग, निर्धारित इकाइयाँ आदि, जिनमें शोध-कार्य किया जाना है, आता है। अध्ययन-क्षेत्र में ही राजनैतिक पक्षों, सम्बन्धों आदि का निर्धारण कर दिया जाता है। इसमें उन कारणों और दृष्टिकोणों का उल्लेख किया जाता है जिनके आधार पर अध्ययन को सीमित तथा विस्तृत बनाया जाता है।

(3) पद्धति वैज्ञानिक विवेचन (Methodological Explanation)

प्रत्येक प्रतिवेदन में यह बताना आवश्यक होता है कि उसकी विषयवस्तु किस प्रकार की पद्धतियों से अध्ययन किए जाने योग्य है ? उसमें तथ्य संकलन की प्रविधियाँ, प्राथमिक तथा द्वैतीयक स्रोत, साक्षात्कार निर्देशिका आदि का उल्लेख किया जाता है। यदि उसकी सामग्री गणनात्मक है, तो मापन प्रविधियों एवं प्रमापों का भी वर्णन किया जाता है। पद्धतियों के साथ निदर्शन प्रणाली का भी उल्लेख किया जाता है कि निदर्शन-इकाइयाँ कहाँ से और क्या ली गई हैं ? उसमें यह बताना होता है कि निदर्शन प्रतिनिधित्वपूर्ण है।

यदि शोध-कार्य या सर्वेक्षण में एक से अधिक व्यक्तियों से सहयोग लिया गया है, तो शोध-संगठन का विवेचन करना भी आवश्यक होता है। विभिन्न स्थलों का चुनाव, कार्यकर्ताओं का प्रशिक्षण, निरीक्षण का प्रबन्ध, सम्पादन, संकेतीकरण आदि किस प्रकार किया गया ? किसने, कितना काम किया ? किसे कितना पारिश्रमिक देना पड़ा ? आदि सभी संगठनात्मक मामलों का लेखा बनाया जाता है। शोध सम्बन्धी खर्च का पूरा हिसाब रखा जाता है।

(4) प्रकरण विभाजन, विश्लेषण एवं व्याख्या

(Chapterization, Analysis and Explanation)

शोध कार्य को गद्य और अध्यायों में बाँटकर शोध का प्रारम्भ, मध्य और समापन बताया जाता है। प्रारम्भिक अध्याय तथ्यों के एकत्रीकरण, योजना निर्माण आदि से सम्बन्धित होते हैं। मध्य भाग वर्गीकरण, सारणीयन, विश्लेषण तथा क्षेत्र-कार्य से सम्बद्ध होता है। अन्तिम भाग में व्याख्या की जाती है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर सारणियाँ, मानचित्र, रेखाचित्र आदि तैयार किए जाते हैं। विश्लेषण कार्य में संदैव

सकलित तथ्यों एवं तर्कों का सहारा लिया जाता है। यथास्थान पादटिप्पणियाँ (Footnotes), सन्दर्भ आदि दिए जाते हैं। व्याख्या के परिणामस्वरूप कतिपय सामान्यीकरण, सिद्धान्त आदि सामने आ जाते हैं।

(5) सुझाव एवं समाधान (Suggestions and Solutions)

अनेक राजनीतिज्ञ सुझाव एवं समाधान देने को वैज्ञानिक प्रतिवेदन का आवश्यक अंग नहीं मानते। किन्तु जब शोध किसी संस्था की ओर से किए जाते हैं तथा उनमें कोई न कोई समस्या अन्तर्ग्रस्त होती है। उस समय शोधकर्ताओं के लिए अपने सुझाव एवं समाधान देना आवश्यक हो जाता है। उसमें यह बताया जाता है कि किस प्रकार के उपाय करने से स्थिति में सुधार हो सकता है। जैसे, यदि दल-बदल का अध्ययन किया गया है तो अनुसन्धानकर्ता अपने शोध-निष्कर्षों के आधार पर अवश्यमेव कुछ सुझाव भी देना चाहेगा। प्रशासनिक सुधार आयोग (1966) ने समस्त भारतीय प्रशासन का अध्ययन करके सुधार हेतु सिफारिशें भारत सरकार को दी थी।

(6) संलग्न-पत्र (Appendices)

प्रायः प्रतिवेदन के मूल भाग से सम्बन्ध रखने वाली सूचियाँ, प्रलेख, प्रश्नावलियाँ, चार्ट, विवरण आदि अलग से अन्त में रखे जाते हैं। इन्हीं में सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची (Bibliography), सारणियों आदि को रखा जाता है।

एक उपयोगी एवं अच्छी रिपोर्ट विषय से सम्बन्धित मौलिक ज्ञान प्रदान करती है। उसमें वैज्ञानिक के साथ ही साथ जन समुदाय का भी पूरा ध्यान रखा जाता है। देखने में वह सुन्दर, स्वच्छ, आकर्षक तथा ठीक आकार की होनी चाहिए। उसमें सब कुछ तथ्यों के आधार पर निष्कर्षों को रखा जाना चाहिए। प्रविधियों एवं कठिनाइयों का इतना विस्तारपूर्वक उल्लेख होना चाहिए कि कोई शोधक उसका सहारा लेकर दुबारा जाँच कर सके। प्रत्येक वैज्ञानिक प्रतिवेदन नवीन अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों का निर्माण करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। प्रतिवेदन का महत्व इसी बात में है कि वह नवीन ज्ञान का स्रोत बन जाता है। उसमें अनेक नवीन प्रस्तावनाओं, पद्धतियों एवं प्रविधियों की जानकारी तथा समस्याओं के समाधान की दिशा मिलती है।

(7) प्रकाशक की भूमिका (Role of Publishers)

शोधकर्ता की ओर से प्रतिवेदन तैयार करने के बाद प्रकाशक की भूमिका प्रारम्भ होती है। बहुधा प्रकाशक शोध-प्रतिवेदनों एवं प्रबन्धों को छापने के लिए तैयार नहीं होते। उनकी बिक्री कम होती है। कीमत अधिक रखने के कारण वे प्रायः संस्थाओं एवं बड़े पुस्तकालयों द्वारा ही खरीदी जाती हैं। यदि उन पर भारतीय सामाजिक विज्ञान अनुसन्धान परिषद्, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग आदि से प्रकाशन-अनुदान मिल जाता है तो प्रकाशक शोध-प्रतिवेदनों को छापने के लिए तैयार हो जाते हैं। शोध लेखों को शोध पत्रिकाओं में छपवाया जाता है। इन सभी की सम्पादक मंडल के विशेषज्ञों द्वारा जाँच की जाती है। प्रायः बहुत से शोध-लेख, पुस्तकें, प्रबन्ध आदि रद्द कर दिए जाते हैं। अनेक शोध-कार्य छपने से रह जाते हैं। शोध ज्ञान के प्रसार में, इस प्रकार, सम्पादक एवं सम्पादक मण्डल की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वे चाहें तो एक सीमा तक अपनी विचारधारा वाले

पत्रो और लेखो को ही वरीयता दें। उनका निजी ज्ञान तथा उसकी सीमा भी बहुत महत्त्व पूर्ण भूमिका अदा करती है। कई बार वे शोध-कर्त्ता को अपने प्रतिवेदन मे फेर-बदल करने को कहते हैं।

प्रतिवर्ष हजारो शोध ग्रन्थ छपते हैं तथा इतने ही छपने से वंचित रह जाते है। वास्तव मे इन दोनो के प्रभावो एव परिणामो का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाना चाहिए। राजनीतिक शोध सम्बन्धी ग्रन्थ छपते ही, यदि वह किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर है, तो लेखक या शोधक का दायित्व बढ जाता है। उसे अनेक समक्षेत्रीय शोधको तथा अन्य पाठको के प्रश्नो का सामना करना तथा उत्तर प्रत्युत्तर देना पडता है। हो सकता है कि उस पर सत्तारूढ दल के व्यक्तियो, सरकारी अधिकारियो तथा विरोधी राजनीतिज्ञो के दबाव का सामना करना पडे। कई शोधकर्त्ताओ को अपने शोध कार्य के लिए जेल की हवा भी खानी पडी है। शोधको को अपने शोध-कार्य के विषय म उन्मुक्तियाँ (Immunities) प्राप्त नही है। राजनीति के शोधक का व्यक्तित्व, कई बार, सुकरात की तरह बलि चढा दिया जाता है। जब तक समाज, सरकार तथा राजनैतिक दल उदार नही हो जाते, ऐसी स्थिति निरन्तर बने रहने की सम्भावना है।

समस्या (Problem)

राजविज्ञान सम्बन्धी प्रकाशनो के विषय म एक समस्या यह है कि प्रतिवर्ष हजारो प्रकाशन निकलते रहते हैं। एक जागरूक पाठक के लिए यह सम्भव नही होता कि वह इन सभी का अध्ययन करे। प्राय इनम निजी विचारो, अनुमानो, साहित्यिक-शैलियो आदि का प्रकाशन अधिक होता है। एक बार थोडी प्रसिद्धि पा लेने पर या किसी प्रकाशक से निकट सम्पर्क हो जाने पर गिने चुने लेखक कुछ न कुछ लिखते रहते हैं। ऐसे लेखको के सामने शोधकर्त्ता की भूमिका छिप जाती है। पुस्तकालयो म अपनी पुस्तको का स्थान ऐसी चमक-दमक वाली किन्तु निम्न स्तरीय पुस्तकें लेती जाती हैं। वास्तव म पुस्तक प्रकाशन व्यवसाय ज्ञान के स्थान पर सभी साधनो से धन कमाने का व्यवसाय बन चुका है। वास्तव म देखा जाये तो इस स्थिति ने शोध कार्यो पर बहुत विपरीत प्रभाव डाला है। राजनीतिक शोध का लक्ष्य शासको, राजनीतिज्ञो, राजवेत्ताओ, निर्णायको, नागरिको आदि को वास्तविक ज्ञान प्रदान करना होता है, किन्तु ये उन तक विभिन्न कारणो से पहुँच ही नही पाते। प्रकाशनो की भरमार के कारण उनके पास 'किसे पढें' और 'किसे नही पढें' का कोई माप-दण्ड नही होता। राजवैज्ञानिक समाज को इस दिशा म सक्रिय प्रयास करना चाहिए। एक भ्रांत धारणा सभी जगह फैली हुई है कि शोध कार्य केवल अंग्रेजी भाषा म ही होते हैं। अन्य भाषा म किए गए शोध कार्यों को प्राय निकृष्ट और हेय माना जाता है। इसका अर्थ यह है कि शोध का व्यापक जन-समाज से कोई सम्बन्ध ही नही है। राजनीतिक शोध राजविज्ञान तथा राजनीतिज्ञ के लिए इससे बढकर और क्या प्राणघातक स्थिति हो सकती है ?" *

---

* It seems clear that a report could be simple to write, since it is merely an exposition of the qu stion asked, the technique, used to answer it, and the answers which were finally developed Actually, it is rarely so

—Goode and Hatt

सन्दर्भ

1. Morton White, The Age of Analysis, New York, New American Library, 196?, Preface
2. Robert A. Dahl and Deane E Neubauer, eds, Readings in Modern Political Analysis, Englewood, Cliffs, New Jersey, Prentice-Hall, 1969, p 1
3 Robert A Dahl, Modern Political Analysis, Indian edition, Englewood, Cliffs, New Jersey, Prentice-Hall, 1963, pp 2-3, विस्तार के लिए, श्यामलाल वर्मा, समकालीन राजनीतिक चिन्तन एवं विश्लेषण, दिल्ली, मैकमिलन 1976, पृ 363-64
4. Pauline V. Young, op cit, p 509
5. अर्नेस्ट नगेल ने व्याख्या के चार प्रकार बताये हैं (i) निगमनात्मक (deductive), (ii) सम्भावनात्मक (Probabilistic), (iii) कार्यात्मक या सोद्देश्यीय (Functional or teleological, तथा (iv) जैविक (Genetic) । लेकिन उसने व्याख्या मे सिद्धान्त, पूर्वमान्यताएँ, तार्किक संरचना आदि सभी को शामिल कर दिया है। Ernest Nagel, The Structure of Science, New York, Harcourt, Brace and World, 1961, pp 20-26
5. Ibid, pp 511-23.
6. सिद्धान्त-निर्माण के विषय मे देखिए पीछे अध्याय छ ।
7. Hurbert Blalock, Theory Construction, Englewood Cliffs, N J, Prentice-Hall, 1969, pp 10-26
8. Dickinson McGraw and George Watson, Political and Social Inquiry, New York, John Wiley & Sons, Inc, 1976, p 197.
9 Carl G Hempel, Aspects of Scientific Explanation, New York, Free Press, 1965
10 Israel Scheffler, The Anatomy of Inquiry, Cambridge, Mass, Harvard, 1963, and, Merle B Turner, Philosophy and the Science of Behaviour, New York, Appleton—Century—Crofts, 1967.
11 David Riesman, The Lonely Crowd, New Haven, Yale, 1950, and Erving Goffman, The Presentation of Self in Everyday Life, Garden City, N Y, Doubleday, Anchor Books 1959
12. Robert Boguslaw, The New Utopions, Englewood, Cliffs, N. J, Prentice-Hall, 1965
13 Herbert Feigl and May Brodbeck, eds, Readings in the Philosophy of Science, New York, Appleton-Century-Crofts, 1953; and also, Rudolf Carnap, Philosophical Foundations of Physics, New York, Basic Books, 1966, Chap 19

14 विभिन्न देशो मे शोध-कार्यों के लिए किए गए व्यय के बारे मे, देखिए, Wasby, op cit, pp 242–51
15 Ruth Benedict, Patterns of Culture, Boston, Houghton Mifflin, 1934, and, Margaret Mead, And Keep Your Powder Dry, New-York, Morrow, 1943
16 Gideon Sjoberg, ed, ETHICS Politics & Social Research, London, Routledge and Kegan Paul 1967, especially chaps 1 and 3.
17 Floyd Hunter, Community Power Structure, Chapel Hill, N C, University of North Carolina press, 1953, p 11
18 John P Sutherland, The Story Gen Marshall Told me", U S News and World Report, 47 (Nov 2, 1959), 50

अध्याय 17

सांख्यिकीय प्रयोग

मानव अपने विवेक तथा इच्छा शक्ति से प्रेरित होने के कारण कतिपय व्यवहार, विशेष अवस्थाओं, सामाजिक व धिक सास्कृतिक परिवेश तथा अमूर्त मूल्यो या भावनाओ से बँधा होता है। इनके बदल जाने पर एव सामान्य रूप से सम्भावित परिणाम का अनुमान लगाकर वह अपने व्यवहार को भी परिवर्तित कर लेता है। इसी प्रकार राजनैतिक घटनाएँ गुणात्मक एव व्यक्तिनिष्ठ होने के कारण असमान रूप से परिवर्तनशील होती हैं। ये गतिशील (Dynamic) प्रकृति की होती हैं तथा इनमे स्थिरता नहीं होती। राजनीति मे निश्चितता एव मात्रात्मकता का अभाव पाया जाता है, किन्तु राजविज्ञान के तेजी से बदल रहे स्वरूप मे तकनीकी विकास एव सगणको के आविर्भाव के साथ ही राजविज्ञान मे पूर्वकथन (Prediction) की सम्भावनायें बढी हैं। इन व्यवस्थाओ ने एक बार फिर राजविज्ञान के अनुसन्धान मे सांख्यकीय विधियो के महत्त्व को चरम-सीमा तक पहुँचा दिया है।

सर्वप्रथम सांख्यिकी का प्रयोग राज्य के एक कार्य या विषय के रूप मे ही किया जाता था। उस समय राज्य जमीन और जनसख्या सम्बन्धी समको या आकडो को एकत्रित करवाते थे जिससे मानव शक्ति एव कर-अनुमान की योजना मे सहायता प्राप्त होती थी। आज राज्य कल्याणकारी राज्यो की विचारधाराओ पर आधारित है। अब आय की विषमताओ को दूर करने एव आर्थिक-सामाजिक राजनैतिक नीति निर्माण करने के लिए सांख्यिकी मुख्य आधार बन गयी है और राजविज्ञान के अनुसधान मे सांख्यिकीय विधियो (जिनमे सारणीयन, वर्गीकरण एव प्रस्तुतिकरण भी शामिल है) के अभाव मे शोध की कल्पना भी नही की जा सकती।

राजनीति विज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग

राजनीति विज्ञान के कुछ क्षेत्र तो ऐसे हैं जिनमे प्रारम्भ से ही सांख्यिकीय विधियो का प्रयोग होता रहा है। मतदान चुनाव व्यवहार, जन्म मृत्यु दर, जनसख्या, विशेष घटनाओं का सकलन तथा अर्थनीति ऐसे ही क्षेत्रो के कुछ उदाहरण हैं। मतदान-प्रक्रिया मे क्रमश वर्गीकरण, सारणीयन, सर्वेक्षण, प्रतिचयन, सांख्यिकीय माध्य आदि विभिन्न विधियो को प्रयुक्त करके ही हम यह घोषणा कर सकते हैं कि बहुमत या बहुलक (Mode) किसके पक्ष म है। वर्गीकरण (Classification) के द्वारा ही 21 वर्ष एव उससे कम आयु के नागरिकों को बाँटा जाता है। इसके पश्चात् समको के सग्रहण (Collection of Data) द्वारा इन्हे सगृहीत किया जाता है। पुन इसका वर्गीकरण कर इन्हे सारणीयन (Tabulation) द्वारा सारणीबद्ध किया जाता है। तब मतदाता प्रतिचयन (Sample

Investigation) द्वारा बहुत से उम्मीदवारों म स एक को चुनता है। उसके पश्चात् इन समको का सम्पादन (Editing) किया जाता है और फिर बहुलक (Mode) के द्वारा बहुमत प्राप्त प्रत्याशी को विजयी घोषित किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि केवल मतदान म ही लगभग 7 8 स ख्यिकीय विधियाँ प्रयुक्त होती हैं।

कुछ क्षेत्र अभी ऐसे हैं जो साख्यिकी की इन सामान्य विधियों से अलग हटकर हैं। राजविज्ञान के इन क्षेत्रों के अध्ययन के लिए हम साख्यिकी की विश्लेषण प्रधान विधियो का कुछ विशेष अनुमाप बनाकर प्रयोग करना होता है। इसका कारण राजनीति म गुणात्मकता, गतिशीलता एव मूल्यवाद है। राजविज्ञान के इन क्षेत्रों म अनुसन्धान एव प्रविधियों के विकास की कमी भी है। कतिपय हठधर्मी राजवत्ता इसको असम्भव मानते हैं तथा विरोध करते हैं।

राजनीति विज्ञान म कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जो अभी सांख्यिकी से बिल्कुल भी नही जुड पाये हैं। मूल्य सापेक्षता बदलती हुई विचारधाराएँ आदि इसके कुछऐसे ही कारण हैं। वस्तुत इनमें साख्यिकी के प्रयोग नही होने का प्रमुख कारण साख्यिकी की सीमाएँ भी है। लेकिन इन विषयों क उपयोग हम राजविज्ञान को विज्ञान मानने म ही कर सकते हैं। राजनीति के ये क्षेत्र उस 'कला' बनाये रख रहे है और इसलिए इन्हें "राजनीतिशास्त्र के क्षेत्र" कहा जाना चाहिये।[2]

व्यवहारवाद और फिर उत्तर-व्यवहारवादी विचारधाराओं के प्रचलन के पश्चात् राजविज्ञान कला से विज्ञान की ओर तेजी से बढा है जिसके परिणामस्वरूप राजविज्ञान के अनुसन्धान म अब परिमाणन (Quantification) एव मापन पर बहुत बल दिया जाने लगा है। अत राजविज्ञान का पद्धति विज्ञान अब तेजी से विकसित हो रहा है और साख्यिकी की विधियों का अध्ययन प्रत्येक राजविज्ञानी एव राजनीति के शोध छात्र के लिए आवश्यक हो गया है। इसके बिना अधिकाश प्रयोग व शोध अधूरे तथा कम विश्वसनीय समझे जाते हैं। इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लार्ड काल्विन (Lord Kalvin) ने कहा है कि, "जिस विषय की चर्चा आप कर रहे हैं, यदि आप उसे सख्याओं म प्रकट नही कर सकते तो यह आपका ज्ञान अल्प है और असन्तोषजनक प्रकृति का है. यह ज्ञान का प्रारम्भ हो सकता है किन्तु आप अपनी विचारधारा मे विज्ञान के स्तर तक प्रगति नही कर पाये हैं।

विशिष्ट साख्यिकीय विधिया

साख्यिकी की कतिपय प्रमुख विधियाँ निम्न हैं। इन्हें राजविज्ञान व दूसरे समाजविज्ञानों के आधार पर दो भागों म बाँटा जा सकता है। पहली मे, समको के सकलन से उनके सारणीयन एव प्रस्तुतिकरण तक की विधियाँ शामिल हैं। दूसरे भाग म हम इसकी विश्लेषणात्मक विधियों को रखते हैं। साख्यिकी की ये प्रमुख विधियाँ इस प्रकार हैं—

1 सामान्य विधियाँ—

(1) समकों का सग्रहण (Collection of Data)

(2) गणना (Census)

(3) प्रनिदर्श अनुसधान (Sample Investigation)

(4) समकों का सम्पादन (Editing of Data)

(5) वर्गीकरण (Classification)
(6) सारणीयन (Tabulation)

2 विश्लेपण प्रधान विधियाँ
(1) साख्यिकीय माध्य (Statistical Averages)
(2) अपकिरण एव विपमता (Dispersion and Skewness)
(3) परिघात एव पृथु शीर्षत्व (Moments and keirtosise)
(4) सह सम्बन्ध (Correlation)
(5) सूचकाक (Index)
(6) गुण साहचर्य (Association of Attributes)
(7) काई वर्ग (Chi Square)
(8) प्रतीपगमन (Regress on)

प्रथम भाग म वर्णित साख्यिकीय विधियाँ आज प्रत्यक अनुसधान का आधार बन चुकी हैं और इनक अभाव म शोध की कल्पना भी सम्भव नहीं है। इन सभी का विस्तारपूर्वक अध्ययन पुस्तक क पिछले अध्यायो म किया जा चुका है। यहाँ विश्लेपण प्रधान विधियों का राजविज्ञान अनुसधान म प्रयोग देखा जा रहा है। राजविज्ञान अनुसधान एव पद्धति की दृष्टि स 1, 4 5 एव 6ठी विधियाँ ही अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

(1) साख्यिकीय माध्य (Statistical Average)

गुणात्मक तथ्यो के विशाल समूह को मानव मस्तिष्क द्वारा समझ पाना असम्भव या बड़ा कठिन होता है। अत किसी भी विषय के अध्ययन, अवलोकन या परिमाणन के लिये हमे अपेक्षाकृत थोड स्थिर ऐसे बिन्दु तक पहुँचना होता है जिसके इद गिद शेष समूह केन्द्रित होता है। इसके लिय हमे विभिन्न प्रकार के साख्यिकीय माध्यो की सहायता लेनी होती है।

राजविज्ञान के लिये इसका विशेष महत्त्व प्रतिनिधित्व, सक्षेपण, तुलनात्मकता, विश्लेपणात्मकता आदि के लिये है।

साख्यिकीय माध्यो के प्रकार

साख्यिकी मे माध्यो का मूलभूत महत्त्व है और इसीलिए बाउले (A. L. Boevley) ने इसे माध्यो का विज्ञान बताया है। साख्यिकीय माध्य तीन प्रकार स विभाजित किये जा सकते हैं। पहले व माध्य हैं जिन्हें गणितीय कहा जा सकता है, दूसरे स्थिति के अनुसार एव तीसर व्यावसायिक माध्य। माध्यो क प्रमुख प्रकार निम्न हैं—

1 गणितीय माध्य (Mathematical Averages)
इनम चार प्रमुख हैं—
(क) समानान्तर माध्य (A M)
(ख) गुणोत्तर माध्य (G M)
(ग) हरात्मक माध्य (H M)
(घ) वर्गकरणी माध्य (Q M)

2 स्थिति अनुसार माध्य (Positional Averages)
स्थिति अनुसार माध्यो म दो प्रमुख हैं—

(क) बहुलक (Mode)
(ख) मध्यका (Median)

3 व्यावसायिक माध्य (Business Averages)
व्यावसायिक माध्य तीन प्रकार के होते हैं ये हैं—
(क) चल माध्य (M A)
(ख) प्रगामी माध्य (P A)
(ग) सम्रथित माध्य (C A)

राजनीति विज्ञान मे विशेषत स्थिति अनुसार माध्यो का सहारा लिया जा सकता है। बहुमत का फैसला अथवा नीति सम्बन्धी निणय इसी आधार पर लिये जाते हैं। स्थिति-अनुसार दोना माध्यो का सक्षिप्त वर्णन करके राजविज्ञान अनुसन्धान मे उनका प्रयोग समझा जा सकता है।

बहुलक (Mode)

एक समक बटन का बहुलक वह मूल्य है जिसके निकट श्रेणी की इकाइयाँ अधिक से अधिक केन्द्रित होती हैं। उसे मूल्यो की श्रेणी का सबसे अधिक प्रतिरूपी माना जा सकता है अर्थात् जब हम यह कहते हैं कि भारत मे काग्रेस पार्टी का बहुमत है तो इसका अर्थ यह है कि यहाँ सर्वाधिक लोग काग्रेस पार्टी को चाहते हैं और यहा उसका बहुलक है। सामान्य शब्दो मे, बहुलक बहुमत का पर्यायवाची है।

बहुलक को सकेताक्षर Z द्वारा व्यक्त किया जाता है। इसकी गणना दो प्रकार से की जाती है। प्रथम, निरीक्षण द्वारा, द्वितीय, समूहन द्वारा। निरीक्षण द्वारा नियमित आवृत्तियो की स्थिति मे बहुलक निकाला जा सकता है। यह निरीक्षण से ही स्पष्ट हो जाता है।

उदाहरणार्थ—एक चुनाव मे विभिन्न दलो को प्राप्त मतो की स्थिति निम्न है—

पार्टी	A	B	C	D	E
मत	20	40	60	10	5

ऐसी स्थिति मे हम कह सकते है कि बहुलक C है और बहुमत C के साथ है।

किन्तु जहाँ स्थिति भिन्न होती है और विवादास्पद होती है, वहाँ समूहन द्वारा बहुलक ज्ञात किया जाता है—

उदाहरण—

एक राज्य के नागरिकों म निम्न विचारधारा वाले लोगो का प्रतिशत दिया गया है। बताइये कि यहाँ का बहुलक किस विचारधारा का समर्थन करता है?

विचाधारा	कट्टर पूँजीवादी	उदार पूँजीवादी	तटस्थ (मध्यमार्गी)	उदार समाजवादी	कट्टर समाजवादी	साम्यवादी
नागरिको का प्रतिशत	10%	20%	15%	20%	20%	15%

ऐसे विवादास्पद विषयों का बहुलक ज्ञात करने के लिए हमें समूहन का सहारा लेना होता है। समूहन के लिये 6 खाने बनाकर एक सारणी बना ली जाती है।

X	1	2	3	4	5	6	7	8
वि	आवृ-	त्तियाँ						

सारणी के प्रथम खाने में आवृत्तियाँ लिखते हैं। दूसरे खाने में दो-दो आवृत्तियों का योग लगाया जाता है। तीसरे खाने में पहली संख्या को छोड़कर शेष दो-दो आवृत्तियाँ जोड़ी जाती हैं। चौथे खाने में तीन-तीन आवृत्तियों का योग लिखा जाता है। पांचवें एवं छठे खाने में क्रमश 1 एवं 2 आवृत्ति छोड़कर तीन-तीन आवृत्तियों का जोड़ लिखा जाता है। सातवें खाने में प्रत्येक आवृत्ति से सम्बन्धित योग जितनी बार अधिकतम आता है। इसकी मिलान रेखाएँ खींची जाती हैं। आठवें खाने में इन रेखाओं का योग लिखा जाता है। जिस आवृत्ति के आगे सर्वाधिक रेखा होती है, वही बहुलक होता है।

ऊपर दिये गये उदाहरण का समूहन इस प्रकार की तालिका बनाकर निम्न प्रकार किया जा सकता है—

X विचारधारा	1 आवृत्ति	2	3	4	5	6	7	8
क पूंजीवादी	10	30					—	0
उ पूंजीवादी	20		35	45			II	2
तटस्थ	15	35					III	3
उ समाजवादी	20		40		55		IIII	6
क समाजवादी	20	35		55		55	IIIII	5
साम्यवादी	15						II	2

सर्वाधिक रेखाएँ उदार समाजवादी विचारधारा के सामने हैं। अर्थात् उस राष्ट्र का बहुलक उदार समाजवादी है।

इस सम्बन्ध में हम जितना गहन शोध करते हैं, राजविज्ञान के लिए बहुलक की उपयोगिता उतनी महत्त्वपूर्ण प्रतीत होने लगती है। किन्तु इस हेतु बहुलक के कुछ और सूत्रों का विस्तारपूर्वक समझना आवश्यक है जो यहाँ देना प्रासंगिक होते हुए भी स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं है।

मध्यका (Median)

स्थिति अनुसार दूसरा माध्य है मध्यका (Mediam)। यह किसी आरोही अथवा अवरोही समंक श्रेणी के मध्य को प्रदर्शित करता है और उस समंक श्रेणी का प्रतिनिधित्व करता है। मध्यका समंक श्रेणी का वह चर मूल्य है जो समूह को दो बराबर भागों में इस प्रकार बांटता है कि एक भाग के सारे मूल्य मध्यका से अधिक और दूसरे भाग के सारे मूल्य उससे कम हो।

राजनैतिक मूल्य, विचारधारा, बौद्धिक-स्तर, स्वास्थ्य, दरिद्रता आदि ऐसे तथ्यों का माध्य ज्ञात करने के लिये मध्यका सर्वोत्तम माना जाता है जो प्रत्यक्ष रूप से मापनीय नहीं हो। इसके अतिरिक्त भी चरम मूल्यों के न्यूनतम प्रभाव, बिन्दु-रेखीय निरूपण व निश्चितता और स्पष्टता के अपने गुणों के कारण मध्यका विशेष महत्व रखता है।

मध्यका परिगणन

मध्यका की गणना निम्न प्रकार की जाती है--

(1) व्यक्तिगत श्रेणी में-(Z) खंडित श्रेणी में मध्यका भिन्न-भिन्न रूप से ज्ञात होती है। व्यक्तिगत श्रेणी में मध्यका निम्न प्रकार ज्ञात की जाती है-

(अ) दिये हुए मूल्यों को आरोही (Ascending) अथवा अवरोही (Descending) क्रम से पुनर्व्यवस्थित किया जाता है।

(ब) पुनर्व्यवस्थित करने के पश्चात् निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

$$M = \text{Size of } \left(\frac{N+1}{2}\right) \text{ th item}$$

यहाँ M = median (मध्यका) एवं

N = Number of items (पदों की संख्या) के लिए प्रयुक्त हुआ है।

उदाहरण--राजनीति विज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों के छात्रों का अध्ययन करने पर यह पाया गया कि प्रत्येक सम्प्रदाय में निम्न प्रतिशतों में मूल्य-सापेक्षता पाई गई--

25, 15, 23, 40, 27, 25, 23, 25, 20

मूल्य-सापेक्षता की मध्यका ज्ञात कीजिये--

हल--इसमें सर्वप्रथम आरोही क्रम में निम्न प्रकार इन मूल्यों का विन्यास किया जायेगा--

क्रम संख्या	पद मूल्य
1	15%
2	20%
3	23%
4	23%
5	25%
6	25%
7	25%
8	27%
9	40%
N=9	

इसके पश्चात् निम्न सूत्र द्वारा मध्यका मूल्य ज्ञात किया जावेगा—

$$M = \text{Size of } \left(\frac{N+1}{2}\right)\text{th item}$$

$$= \text{Size of } \left(\frac{9\times 1}{2}\right)\text{th item}$$

= Size of 5th item

= मध्यका मूल्य-सापेक्षता = 25%.

खण्डित श्रेणी मे मध्यका ज्ञात करने के लिये निम्न क्रियाएँ करनी पडती है—

(1) श्रेणी को सचयी आवृत्तिमाला मे बदल दिया जाता है।

(2) निम्न सूत्र द्वारा मध्यका का क्रम ज्ञात किया जाता है—

$$M = \text{Size of} \left(\frac{N+1}{2}\right)\text{th item}$$

(3) मध्यका की क्रम सख्या का मूल्य सचयी आवृत्ति द्वारा ज्ञात कर लिया जाता है।

उदाहरण—एक राज्य के नागरिको से एक सर्वेक्षण मे यह पूछा गया कि वे ससाधनो का कितना प्रतिशत राष्ट्रीयकरण चाहते हैं ? उत्तर मे निम्न आकडे प्राप्त हुए हैं—

राष्ट्रीयकरण का प्रतिशत--30%, 40%, 50%, 60%, 70%, 80%, 90%

उपर्युक्त प्रतिशत के समर्थक—3, 7, 12, 8, 10, 9, 6

इनका मध्यका मूल्य ज्ञात कीजिये—

हल—सर्वप्रथम निम्न सारणी बनायी जायेगी—

राष्ट्रीयकरण का प्रतिशत	उपर्युक्त प्रतिशत के समर्थक	सचयी समर्थक
30	3	3
40	7	10
50	12	22
60	8	30
70	10	40
80	9	49
90	6	55
	N = 55	

अब मध्यका मूल्य का क्रमाक ज्ञात किया जायेगा—

$$M = \text{Size of} \left(\frac{N+1}{2}\right)\text{th item}$$

$= \text{Size of} \left(\frac{55+1}{2} \right) \text{th item}$

$= \text{Size of} \left(\frac{56}{2} \right) \text{th item.}$

$= \text{Size of 28th item}$

23 से 30वें क्रम तक का मूल्य 60% है अत 28वें क्रमांक का मूल्य भी वही होगा। अत

राष्ट्रीयकरण के प्रतिशत का मध्यका (M) मूल्य = 60%

यदि प्रतिशत या रामक सतत श्रेणी के होते हैं अर्थात् 30 से 40, 40 से 50 आदि तो मध्यका का परिगणन करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है--

$M = L + \frac{i}{f}(m-c)$ एव $\frac{N+1}{2}$ के स्थान पर $\frac{N}{2}$ द्वारा M का मूल्य ज्ञात किया जाता है।

यहाँ--

M=मध्यका, L=वर्ग की निचली सीमा

i = वर्गान्तर

f = आवृत्ति

m = मध्यका मूल्य या क्रम

c = सचयी आवृत्ति होता है।

उदाहरण--पूर्व-वर्णित उदाहरण मे राष्ट्रीयकरण के प्रतिशत को 30-40, 40-50, 50-60, 60-70, 70-80, 80-90 एव 90-100% मानते हुए मध्यका मूल्य का भी परिगणन करें।

यहाँ--

$M = L + \frac{i}{f}(m-c)$

$= 60 + \frac{10}{8}(28-22)$

$= 60 + \left(\frac{10}{8} \times 6 \right)$

= 67 5 अर्थात् मध्यका मूल्य 67.5%

सांख्यिकीय माध्यों के ये प्रकार गणित एव व्यवसाय के लिए महत्वपूर्ण हैं किन्तु राजविज्ञान के अनुसधान क्षेत्र में इनका प्रयोग सीमित रूप में ही किया जा सकता है।

(2) अपकिरण एवं विषमता (Dispersion and skewness)

एक समक श्रेणी में पद मूल्य एक दूसरे से भिन्न होते हैं क्योंकि निरपेक्ष समानता एक काल्पनिक धारणा है जो मानव अनुभव में नहीं पायी जाती। पद-मूल्यों की इस भिन्नता के कारण ही समंक माला का प्रतिनिधित्व करने व निष्कर्ष निकालने के लिए हमें केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप (माध्य) ज्ञात करने होते हैं। किन्तु केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप से हमें यह ज्ञात नहीं होता कि विभिन्न पद मूल्यों में कितना अन्तर है ?

इन पदों के मध्य जो विचरण या अन्तर पाया जाता है, इसका माप अपकिरण कहलाता है, जबकि अंक श्रेणी के सममित (Symmetrical) या असममित स्वरूप का अध्ययन करने के लिए जिस माप का प्रयोग किया जाता है, वह विषमता कहलाती है। वस्तुतः एक केन्द्रीय मूल्य के दोनों ओर पाये जाने वाले चर मूल्यों के विचरण या प्रसार की सीमा ही अपकिरण है। वितरण की सममिति से दूर हटने की प्रक्रिया विषमता कहलाती है।

अपकिरण को निम्न रीतियों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है--

(1) सीमा-रीति (Methods of Limits)
- (i) विस्तार रीति (Range)
- (ii) अन्तर चतुर्थक विस्तार (Interguartile Range)
- (iii) शतमक विस्तार (Percentile Range)

(2) विचलन माध्य रीति (Methods of Averagins Deviations)
- (i) चतुर्थक विचलन (Quartile Deviations)
- (ii) माध्य विचलन (Mean Deviations)
- (iii) प्रमाप विचलन (Standard Deviations)
- (iv) अन्य (Other)

(3) बिन्दु-रेखीय रीति (Graphic Method)

विषमता को ज्ञात करने के लिए निम्न रीतियों द्वारा गणना की जाती है--

(1) विषमता का प्रथम माप (First Measure of Skewness)
(2) विषमता का द्वितीय माप (Second Measure of Skewness)
(3) शतमक या दशमक रीति (Percentile Method)
(4) धन विचलन रीति (Positive Deviation Method)

(3) परिघात एवं पृथुशीर्षत्व (Moments and Keirotosis)

परिघात या आघूर्ण का अभिप्राय घुमाव उत्पन्न करने वाली शक्ति से है, वैसे तो यह शब्द "यान्त्रिक विज्ञान" से लिया गया है। किन्तु यहाँ इसका प्रयोग घुमाव उत्पन्न करने वाली शक्ति को मापने के लिये किया गया है।

राजनीतिक व्यवस्था में यह निम्न दो तथ्यों पर निर्भर है--

(i) राजनैतिक शक्ति की मात्रा
(ii) केन्द्र से उस बिन्दु का अन्तर जिस पर शक्ति का भार पड़ता है।

इसे परिघात अवधारणा के निम्न प्रतिरूप चित्र द्वारा समझा जा सकता है—

परिघात अवधारणा का प्रतिरूप चित्र—
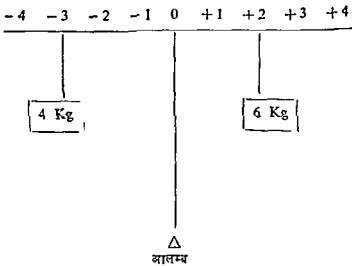
उपर्युक्त चित्र में मूल बिन्दु (Origin) आलम्ब पर स्थित है। यहाँ −3 पर 4 Kg एवं +2 पर 6 Kg प्रभाव दबाव दिखाया गया जो कि सन्तुलित स्थिति है अर्थात् (3 × 4) एवं (6 × 2) दोनों तरफ दबाव समान होने पर सन्तुलन की स्थिति होती है। साख्यिकी में "परिघात" शब्द इसी के लिये प्रयुक्त होता है।

जब आवृत्ति वक्र की प्रसामान्यता का माप किया जाता है तो इसके विश्लेषण के लिए पृथुशीर्षत्व माप निकाला जाता है। प्रसामान्य (Normality) के विपरीत पृथुशीर्षत्व का माप "उस मात्रा को व्यक्त करता है, जिससे एक आवृत्ति बंटन का वक्र नुकीला अथवा चपटा होता है।"

इससे हमें यह ज्ञात होता है कि केन्द्र में आवृत्तियों का जमाव कैसा है ?

(i) यदि आवृत्तियों का जमाव सामान्य है तो वह आवृत्ति वक्र मध्यम शीर्ष वाला होगा।
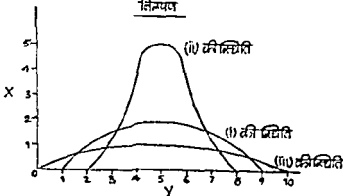
(ii) यदि आवृत्तियों का जमाव केन्द्र में अधिक है तो वह लम्बे या नुकीले शीर्ष वाला होगा, और

(iii) यदि पद की समस्त आवृत्तियाँ समान-सी हैं तो वह चपटे वक्र का होगा।

परियात की गणना निम्न तीन

(i) प्रत्यक्ष रीति (Direct method)

(ii) लघु रीति (Short-cut method)

(iii) पद विचलन रीति (Step Devitition mothod)

रीतियों द्वारा एवं पृथुशीर्षत्व का विश्लेषण परिघात अनुपात द्वारा किया जाता है।

(4) सहसम्बन्ध (Correlation)

राजनीति विज्ञान में ही नहीं अपितु यह प्रकृति का नियम है कि प्रत्येक घटना घटित होने के लिये अनेक दूसरी घटनाएँ जिम्मेदार होती हैं। सह-परिवर्तन या सह-सम्बन्ध दो ऐसे चरों के मध्य अन्योन्याश्रितता है जो एक साथ परिवर्तन की प्रकृति रखते हैं। यह एक ही दिशा में अथवा विपरीत दिशा में भी हो सकती है।

राजनीतिक व्यवस्थाओं के विश्लेषण में इस प्रवृत्ति का अध्ययन करके भविष्य-वाणी की अनिश्चितताओं को कम किया जा सकता है एवं राजविज्ञान के पद्धति विज्ञान में इसे शामिल करके विश्वसनीय और निश्चित परिणाम ज्ञात किये जा सकते हैं।

सह सम्बन्ध गुणांक (Coefficient) द्वारा सह सम्बन्ध का परिमाण ज्ञात किया जाता है। यह +1 से अधिक नहीं होता। सह सम्बन्ध ज्ञात करने की रीतियों का अध्ययन करने से पूर्व यह समझ लेना ठीक होगा कि पूर्ण एवं उच्च या निम्न सह-सम्बन्ध क्या है?

सह-सम्बन्ध का परिमाण

धनात्मक	ऋणात्मक	सह-सम्बन्ध
+1	−1	पूर्ण
+75 > +1 के मध्य	−75 > −1 के मध्य	उच्च
+50 > +75 के मध्य	−50 > −75 के मध्य	उच्च मध्यम
+25 > +50 के मध्य	−25 > −50 के मध्य	निम्न मध्यम
0 > +25 के मध्य	0 > −25 के मध्य	निम्न
0	0	अनुपस्थित

उपर्युक्त तालिका में धनात्मक (+) व ऋणात्मक (−) सह-सम्बन्ध के प्रकार दिखाये गये हैं।

सह-सम्बन्ध ज्ञात करने की रीतियां
(Methods of Determining Correlation)

सह-सम्बन्ध प्रमुखतया निम्न 7 रीतियों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है—

(1) विक्षेप चित्र या बिन्दु चित्र (Scatter Diagram or Dat Diagram)
(2) बिन्दु रेखीय प्रदर्शन (Graphic Method)
(3) कार्ल पियर्सन रीति (Karl Pearsor's Method)
(4) स्पियर मैन की कोटि-अन्तर रीति (Spearman's Ranking Method)
(5) सगामी विचलन रीति (Concurrent Deviation Method)
(6) न्यूनतम वर्ग रीति (Method of Least Squares)
(7) अन्तर रीति द्वारा (Difference Method)

राजविज्ञान की दृष्टि से इनमें से प्रथम चार विधियाँ ही महत्वपूर्ण हैं। इन विधियों द्वारा सह-सम्बन्ध निम्न प्रकार से ज्ञात किया जाता है—

1 विक्षेप चित्र या बिन्दु चित्र विधि--

इस विधि द्वारा सह-सम्बन्ध ज्ञात करने के लिए एक बिन्दु चित्र बनाया जाता है जिसमें स्वतन्त्र चर मूल्यों को O-X पर एवं आश्रित मूल्यों को O-Y पर अंकित कर लिया जाता है।

यह दो श्रेणियों या घटनाओं के मध्य सह सम्बन्ध ज्ञात करने की आसान पद्धति है। इसके आधार पर तैयार किया गया बिन्दु चित्र देखते ही यह बताया जा सकता है कि दोनों के मध्य कितना सह-सम्बन्ध है।

विक्षेप चित्र की प्रवृत्ति विभिन्न प्रकार के सह सम्बन्धों में निम्न प्रकार की होती है—

चित्र सं 1 चित्र सं 2 चित्र सं 3

चित्र सं 4 चित्र सं. 5
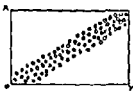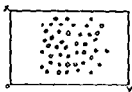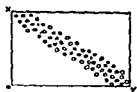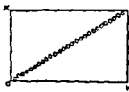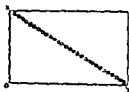
चित्र सं. 1 सीमित धनात्मक सह सम्बन्ध प्रदर्शित करता है।
चित्र सं 2 सह-सम्बन्ध की अनुपस्थिति दर्शाता है।

चित्र सं 3 में सीमित ऋणात्मक सह-सम्बन्ध स्पष्ट हो रहा है।

चित्र सं 4 एवं 5 क्रमश: पूर्ण धनात्मक व ऋणात्मक सह-सम्बन्ध प्रदर्शित कर रहे हैं।

(2) सहसम्बन्ध बिन्दु रेखीय विधि द्वारा—

बिन्दु रेखीय विधि द्वारा सह-सम्बन्ध ज्ञात करने के लिये एक ही चित्र में रेखाएँ अंकित की जाती हैं। इन दोनों रेखाओं के मध्य पायी जाने वाली समानता/असमानता के आधार पर इस तथ्य का अनुमान लगा लिया जाता है कि क्या उन दोनों के मध्य कोई समानता है।

इस विधि को निम्न उदाहरण द्वारा स्पष्ट समझा जा सकता है।

उदाहरण (काल्पनिक)—

राजस्थान एवं मध्यप्रदेश के विधानसभाई चुनावों में कांग्रेस को निम्न मत प्राप्त हुये। क्या दोनों के मध्य कोई सह-सम्बन्ध है?

	I	II	III	IV	V	VI
राजस्थान	35 लाख	52 लाख	63 लाख	9 लाख	80 लाख	20 लाख
मध्य प्रदेश	55 लाख	69 लाख	85 लाख	30 लाख	90 लाख	35 लाख

इस हेतु निम्न रेखाचित्र बनाया जायेगा—

—राजस्थान
-मध्य प्रदेश

प्राप्त मत (लाख में)

विधान सभायी चुनाव
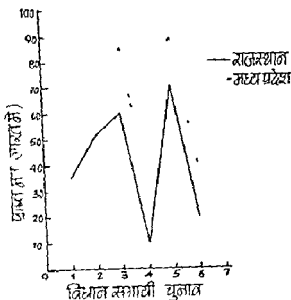
चित्र को देखने से ही यह कहा जा सकता है राजस्थान एवं मध्यप्रदेश में विभिन्न चुनावों में कांग्रेस को प्राप्त मतों में अत्यधिक सह-सम्बन्ध है।

(3) कार्ल पियर्सन की रीति—

पूर्ववर्णित दोनों रीतियों द्वारा हम सह-सम्बन्ध का अनुमान ही लगा सकते हैं। सह-सम्बन्ध का अंकात्मक माप ज्ञात करने के लिये हमें कार्ल पियर्सन पद्धति का प्रयोग करना होता है।

कार्ल पियर्सन का सह-सम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने के लिये सर्वप्रथम सह-विचरण (Co-variance) का माप ज्ञात करके इससे दोनों श्रेणी के प्रमाप विचलनों के गुणनफल से भाग दे दिया जाता है। इस हेतु कार्ल पियर्सन द्वारा निम्न सूत्र का प्रतिपादन किया गया है—

$$\frac{\Sigma dxdy}{N\sigma x \sigma y} \quad \text{अर्थात्} \quad \sqrt{\frac{x \text{ व } y \text{ का सह-विचरण}}{\text{प्रसरण } x \times \text{प्रसरण } y}}$$

इस सूत्र को सरल रूप से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

$$r = \frac{N \times \Sigma dxdy - (\Sigma dx \times \Sigma dy)}{\sqrt{[N \times \Sigma d^2x - (\Sigma dx)^2]\ [N \times \Sigma d^2y - (\Sigma dy)^2]}}$$

उदाहरण—पूर्व में दिये गये उदाहरण के मध्य कार्ल पियर्सन पद्धति द्वारा सह-सम्बन्ध ज्ञात करें—(इसके आधार पर हम इस पद्धति को समझ सकते हैं)

हल—सूत्र में प्रयुक्त किये जाने के लिये हमें विभिन्न संख्याएँ ज्ञात करनी होंगी—

N = पद-युग्मों की संख्या
Σdx = x श्रेणी के पद विचरण का योग
Σdy = y श्रेणी के पद विचरण का योग
$\Sigma dxdy$ = x व y के पद विचलनों के गुणा का योग
Σd^2x = x श्रेणी के विचलन वर्ग का योग
Σd^2y = y श्रेणी के विचलन वर्ग का योग

ये संख्याएँ ज्ञात करने के लिये हमें 8 कालम (खाने) वाली एक सारणी बनानी होगी—

(i) कॉलम में युग्मों का विवरण — N
(ii) कॉलम में राजस्थान में प्राप्त मत — x
(iii) कॉलम में राजस्थान में प्राप्त मतों का विचलन — dx
(iv) कॉलम में कालम (iii) का वर्ग — d^2x
(v) कॉलम में मध्यप्रदेश में प्राप्त मत — y
(vi) कॉलम में (v) का विचलन — dy
(vii) कॉलम में (vi) कालम का वर्ग — d^2y
(viii) कॉलम में x व y के विचलनों का गुणा — $dxdy$

लिखा जायेगा। अन्त में इनके योग (Σ) प्राप्त कर लिये जायेंगे।

सह-सम्बन्ध गुणांक का परिगणन

चुनाव	राजस्थान के मत (लाख)			मध्यप्रदेश के मत (लाख)			X व Y के विचलनों की गुणा
	प्राप्त मत	विचलन	विचलन वर्ग	प्राप्त मत	विचलन	विचलन वर्ग	
N	X	dx	d^2x	y	dy	d^2y	$dxdy$
(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)	(vi)	(vii)	(viii)
1	35	− 28	784	55	0	0	0
2	52	− 11	121	69	+ 14	196	− 154
3	63	0	0	85	+ 30	900	0
4	9	− 54	2916	30	− 25	625	+ 1350
5	80	+ 17	189	90	+ 35	1225	+ 1530
6	20	− 43	1849	36	− 20	400	+ 400
		− 136			+ 79		+ 3280
		+ 17			− 45		− 153
6		− 119	5859	−	+ 34	3246	3126
N		Σdx	Σd²x		Σd²y	Σd y	Σdxdy

सह-सम्बन्ध ज्ञात करने के लिये ऊपर दिये गये सूत्र के आधार पर निम्न समीकरण हल कर सह-सम्बन्ध गुणांक ज्ञात किया जा सकता है—

$$r = \frac{6 \times 3126 - (-119 \times 34)}{\sqrt{[6 \times 5859 - (-119)^2]\ [6 \times 3246 - (34)^2]}}$$

$$r = \frac{18756 - (-4046)}{\sqrt{[35154 - (-14161)]\ [19176 - (1156)]}}$$

$$r = \frac{22802}{\sqrt{49315 \times 18320}}$$

$$r = \frac{22802}{\sqrt{703470800}}$$ (अब वर्गमूल ज्ञात कर $\sqrt{\ }$ चिन्ह हटाने पर)

$$r = \frac{22802}{24691}$$

r = 902 (+·902)

अर्थात् काग्रेस को विभिन्न चुनावो मे राजस्थान एव मध्यप्रदेश मे प्राप्त मतो मे अत्यधिक धनात्मक (902) सह-सम्बन्ध है।

(4) कोटि अन्तर विधि (Rank Difference Method)

जब प्राप्त समक सख्याओ पर आधारित न होकर गुणात्मक तथ्यो पर आधारित होते हैं तो इन घटनाओ या समको के मध्य सम्बन्ध ज्ञात करने के लिये कोटि-अन्तर विधि का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का प्रतिपादन स्पियरमैन द्वारा किया गया।

अपने गुणात्मक स्वरूप के कारण राजविज्ञान व दूसरे समाजविज्ञानो मे यह बहुत उपयोगी सिद्ध होती है। इस पद्धति मे x तथा y के पद-मूल्यो को अलग-अलग कोटिक्रम प्रदान कर दिये जाते हैं और फिर इस आधार पर सह-सम्बन्ध ज्ञात कर लिया जाता है।

निम्न सूत्र द्वारा सह-सम्बन्ध गुणाक ज्ञात किया जाता है—

$$P = 1 - \frac{6\Sigma D^2}{N(N^2 - 1)}$$

यहाँ

P = कोटि अन्तर सह-सम्बन्ध गुणाक

ΣD^2 = क्रमान्तरो के वर्गों का जोड

N = पद युग्मो की सख्या।

उदाहरण—(काल्पनिक) भारत के दो राज्यो मे सत्ता परिवर्तन के कारणो का वरीयता क्रम निम्न है—

प्रथम मे—1 दल-बदल 2 विरोधी केन्द्र सरकार 3. साम्प्रदायिकता
4 क्षेत्रीयता 5 आन्दोलन 6 असन्तोष

द्वितीय मे—1. दल-बदल 2 क्षेत्रीयता 3. विरोधी केन्द्र सरकार
4 आन्दोलन 5. असन्तोष 6. साम्प्रदायिकता

क्या दोनों क्रमों के मध्य कोई सह-सम्बन्ध है ?

इस हेतु सर्वप्रथम एक सारणी बनानी होगी। इस प्रश्न के लिये सारणी म 5 कॉलम रखने होंगे।

(i) कालम एक कारण से सम्बन्धित,

(ii) दूसरे मे प्रथम राज्य के आधार पर क्रम,

(iii) तीसरे में दूसरे राज्य के आधार पर क्रम,
(iv) कोटि अन्तर,
(v) में कोटि अन्तर वर्ग ।

कोटि सह-सम्बन्ध गुणांक का परिगणन

कारण	क्रम x	क्रम y	कोटि अन्तर D	कोटि अन्तर वर्ग
(i)	(ii)	(iii)	(iv)	(v)
दल-बदल	1	1	—	
विरोधी केन्द्र सरकार	2	3	−1	1
साम्प्रदायिकता	3	6	−3	9
क्षेत्रीयता	4	2	+2	4
आन्दोलन	5	4	+1	1
असन्तोष	6	5	+1	1 Σd^2
योग N = 6			0	16

सूत्रानुसार

$$P = 1 - \frac{6 \times 16}{6(6^2 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{96}{6 \times 35}$$

$$= 1 - \frac{96}{210}$$

$$= 1 - 0\,46 = 54$$

अर्थात् दोनों कारणों के मध्य उच्च मध्यम धनात्मक सह-सम्बन्ध (+·54) है ।

(5) सूचकांक (Index Number)

राजव्यवस्था एवं मानव स्वभाव परिवर्तनशील होता है और विकास अथवा पतन की ओर अग्रसर होते रहते हैं। आर्थिक व्यवस्थाओं में ही नहीं अपितु समाज एवं राज-व्यवस्थाओं में भी ये परिवर्तन अनवरत रूप से जारी रहते हैं और भिन्न भिन्न स्वरूप में प्रकट होते हैं। इन घटनाओं का प्रत्यक्ष माप सम्भव नहीं होने के कारण इन परिवर्तनों का सापेक्ष माप ज्ञात किया जाता है। किसी एक मूल्य को आधार मानकर प्रचलित मूल्यों (Values) के अनुपात से इस परिवर्तन को ज्ञात किया जा सकता है। इसे सूचकांक (Index Number) कहते हैं।

प्रायसटन एवं बाउडेन ने कहा कि सूचकांक सम्बन्धित चर मूल्यों के आधार में होने वाले अन्तरों का माप है। वस्तुत सूचकांक एक ऐसा माध्य है जो समय या स्थान के आधार पर होने वाले सापेक्ष परिवर्तनों का मापन करता है।

लाभ तथा सीमाएँ

सूचकांकों की सहायता से जटिल परिवर्तनों का माप सम्भव हो जाता है। इसमे परिवर्तनों का सापेक्ष माप ज्ञात हो जाता है। अत विभिन्न मूल्यों म तुलना आसानी से की जा सकती है। भूतकाल म हुए परिवर्तन के माप के आधार पर वर्तमान स्थिति म भावी परिवर्तन का स्पष्ट अनुमान लगाया जा सकता है। आर्थिक क्षेत्र म तो आज पूरा दारोमदार ही सूचकांकों पर निर्भर है। इसकी कुछ सीमाएँ भी है और यह सापेक्ष परिवर्तन का अनुमान मात्र प्रस्तुत करता है। इसम पूर्ण शुद्धता की स्थिति कभी नही आ सकती।

सूचकांक निर्माण—सूचकांक वस्तुपरक, गणनात्मक, स्पष्ट एवं प्रामाणिक होने चाहिये। सूचकांक का निर्माण करते समय हम अनेक प्रश्नो व समस्याओ का समाधान करना होता है। ये निम्न हैं—

(i) उद्देश्य (Purpose)—सर्वप्रथम सूचकांक का उद्देश्य निश्चित किया जाता है। उद्देश्य के आधार पर ही आगे कार्यवाही प्रारम्भ की जा सकती है और मूल्य आदि का क्षेत्र निश्चित किया जाता है।

(ii) पदों का चुनाव (Selection of Items)—उद्देश्य निर्धारित करने के बाद हमे पदो का चुनाव करना होता है। सर्वप्रथम सरल, लोकप्रिय एवं सजातीय पदो को क्रमबद्ध कर उनकी संख्या निश्चित की जाती है। इसके उपरान्त उसके गुणात्मक स्तर का निर्धारण कर वर्गीकरण किया जाता है।

(iii) मूल्यों का माप (Size of Values)—इसके पश्चात् हम मूल्यो का माप ज्ञात करना होता है। आर्थिक क्षेत्र म थोक, फुटकर, किलो, दर्जन एवं प्राप्ति स्थान के आधार पर माप निर्धारित किया जाता है। समाज विज्ञानो मे साक्षात्कार, सर्वेक्षण अनुसूची के आधार पर एवं उनके स्वरूप के आधार पर मूल्यो का माप निर्धारित किया जाता है।

(iv) आधार का चुनाव (Choice of Base)—उद्देश्य, पदो का चुनाव तथा मूल्यो का माप ज्ञात कर लेने के पश्चात् आधार का निश्चय करना होता है। एक समय के पदो को आधार माना जा सकता है अथवा शृंखला-आधार भी अपनाया जा सकता है। आधार मे परिवर्तन भी किया जा सकता है।

(v) माध्य का चुनाव (Selection of Average)—सूचकांक का आधार ही माध्य है और वह स्वयं माध्यो का माध्य है। अतः सावधानीपूर्वक माध्य का चुनाव किया जाता है। इसके लिए मध्यका, समान्तर माध्य एवं गुणोत्तर माध्य का प्रयोग अधिक किया जाता है।

सूचकांक ज्ञात करने की रीतियाँ—

सूचकांक ज्ञात करने के लिये निम्न रीतियाँ प्रयोग म लाई जाती हैं—

(i) सरल समूही रीति (Simple Aggregative Method)—इस रीति के अन्तर्गत सूचकांक ज्ञात करने वाले वर्ष के मूल्यः को आधार वर्ष के मूल्या के जोड से भाग देकर 100 से गुणा कर दिया जाता है—

$$\text{सूचकांक} = \frac{\text{सूचकांक ज्ञात करने वाले वर्ष का मूल्य}}{\text{आधार वर्ष का मूल्य}} \times 100$$

उदाहरण—एक सर्वेक्षण संगठन द्वारा प्रतिवर्ष किये गये सर्वे में यह निष्कर्ष निकाला गया कि संसदात्मक व्यवस्था के स्थान पर अध्यक्षात्मक व्यवस्था चाहने वालों का प्रतिशत निम्न प्रकार रहा –

1980 – 10%   1981 – 12%   1982 – 11%
1983 – 13%   1984 – 15%   1985 – 16%

1980 को आधार वर्ष मानते हुये अध्यक्षात्मक व्यवस्था चाहने वालों का सूचकांक ज्ञात कीजिये—

हल—

$$1981 = \text{सूचकांक} = \frac{12}{10} \times 100 = 120$$

$$1982 = \text{सूचकांक} = \frac{11}{10} \times 100 = 110$$

$$1983 = \text{सूचकांक} = \frac{13}{10} \quad 100 = 130$$

$$1984 = \text{सूचकांक} = \frac{15}{10} \times 100 = 150$$

$$1985 = \text{सूचकांक} = \frac{16}{10} \times 100 = 160$$

(ii) मूल्यानुपात सरल माध्य रीति (Simple Average of Price Relatives)—इस रीति द्वारा यदि एक से अधिक मूल्य दिये होते हैं तो सर्वप्रथम उन मूल्यों को आधार वर्ष से भाग देकर 100 से गुणा कर मूल्यानुपात ज्ञात कर लिये जाते हैं। मूल्यानुपात को भी 100 मान कर उसका निश्चय किया जाता है।

इसके पश्चात् सभी मूल्यानुपात के योग में (N) नम्बर पदों की संख्या का भाग देकर सूचकांक ज्ञात कर लिया जाता है—

$$\text{Index No} \ \frac{\Sigma R}{N} = \frac{\text{मूल्यानुपातों का योग}}{\text{पदों की संख्या}}$$

6. गुण साहचर्य (Association of Attributes)

अब तक जिन विधियों का अध्ययन किया गया उनमें संख्यात्मक तथ्यों का विश्लेषण किया गया था। तथ्य दो प्रकार के होते हैं। उनमें से यह प्रथम प्रकार था। दूसरे प्रकार के तथ्य गुणात्मक होते हैं, जैसे, साक्षरता, रोजगार, राजनीतिक परिपक्वता आदि। राजविज्ञान अनुसन्धान के लिये यह आवश्यक है कि इन गुणों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों का विश्लेषण किया जा सके। इस प्रकार का विश्लेषण गुण साहचर्य की विधि द्वारा ही सम्भव हो सकता है।

वस्तुत जिस प्रकार सह सम्बन्ध द्वारा हम चर-समकों का आपसी सम्बन्ध ज्ञात कर सकते हैं, उसी प्रकार गुण-साहचर्य द्वारा गुणात्मक समकों का सम्बन्ध ज्ञात किया जा सकता है। गुण-साहचर्य को विस्तारपूर्वक समझने के लिये अध्याय-15 में वर्णित 'गुण स्थान' का अध्ययन करें।

गुण-साहचर्य की जाच

गुण-साहचर्य का परीक्षण निम्न विधियो द्वारा किया जा सकता है-

(i) आवृत्ति रीति (Frequency Method)

(ii) प्रोपोरशन रीति (Proportion Method)

(iii) यूल का साहचर्य गुणाक (Yule's Coefficient of Association)

(iv) फाई गुणाक (Fai Coefficient)

इन सभी रीतियो को निम्न उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है—

उदाहरण—एक राजनीतिक सर्वेक्षण से निम्न आकडे प्राप्त हुये—

ससदात्मक व्यवस्था एव सघवाद के समर्थक — 230

अध्यक्षात्मक व्यवस्था एव सघवाद के समर्थक — 125

ससदात्मक व्यवस्था व एकात्मक शासन के समर्थक — 310

अध्यक्षात्मक व्यवस्था व एकात्मक शासन के समर्थक — 235

बताइये—

(i) कुल कितने लोगो से प्रश्न पूछे गये ? और उनमें कितने ऐसे हैं जो ससदात्मक व्यवस्था पसन्द नही करते ?

(ii) ससदात्मक व्यवस्था व सघवाद के समर्थकों के मध्य क्या कोई सह गुण-सम्बन्ध है ? विभिन्न रीतियो द्वारा स्पष्ट करें।

हल—

किसी भी प्रकार के गुण साहचर्य को ज्ञात करने के लिये हम एक सारणी बनानी पड़ती है। यदि दो गुण ही प्रमुख हैं, तो 9 खाने वाली और तीन गुण होने पर 27 खाने वाली सारणी तैयार की जाती है।

उपर्युक्त उदाहरण म दो गुण ही प्रमुख है। ये हैं, (i) ससदात्मक व्यवस्था (ii) सघवादी व्यवस्था। इन दोनो को A और B अक्षर से व्यक्त किया जायेगा। शेष दोनो गुण इनके विपरीत हैं। अत उन्हे इन गुणो की अनुपस्थिति मानकर क्रमश *a* और *b* अक्षर द्वारा व्यक्त किया जायेगा।

नौ खानों वाली सारणी निम्न प्रकार होगी—

AB	B	B
Ab	ab	b
A	a	N

ज्ञात संख्याएँ इसमे अंकित करने पर शेष स्वत ज्ञात हो जायेंगी–उन्हे पूर्ण करने पर निम्नलिखित प्राप्त होगा--

AB 230	aB 125	B 355
Ab 310	ab 235	b 545
A 540	a 360	900 N

उल्लेखनीय है कि (AB), (aB), (Ab) एव (ab) ज्ञात थी। इन्हे जोडकर B, b, A, a और फिर इनके जोड से N ज्ञात हो जाता है।

प्रश्न (i) का हल तो इसी से ज्ञात हो जाता है। (N) कुल संख्या 900 एव संसदात्मक व्यवस्था पसन्द न करने वालो की संख्या (a) 360 है।

आवृत्ति रीति द्वारा हल--

इस रीति द्वारा गुण साहचर्य का निश्चय निम्न आधार पर किया जाता है–

यदि $AB = \frac{A \times B}{N}$ तो कोई साहचर्य नही

यदि $AB > \frac{A \times B}{N}$ तो धनात्मक साहचर्य एव

यदि $AB > \frac{A \times B}{N}$ तो ऋणात्मक साहचर्य

सूत्रानुसार ज्ञात करने पर

$AB = 230$

$$\frac{A \times B}{N} = \frac{500 \times 355}{900} = \frac{1775}{9} = 197.2$$

अत $AB < \frac{A \times B}{N}$ अर्थात् दोनों म धनात्मक साहचर्य है।

'प्रोपोरशन' रीति द्वारा

इस रीति द्वारा गुण साहचर्य का निश्चय अग्रांकित प्रकार से किया जाता है—

यदि $\frac{AB}{B} = \frac{Ab}{b}$ तो कोई साहचर्य नही

यदि $\frac{AB}{B} > \frac{Ab}{b}$ तो धनात्मक साहचर्य

यदि $\frac{AB}{B} > \frac{Ab}{b}$ तो ऋणात्मक साहचर्य

सूत्रानुसार ज्ञात करने पर

$$\frac{AB}{B} = \frac{230}{355} = 0\ 65$$

$$\frac{Ab}{b} = \frac{310}{545} = 0\ 57$$

अत $\frac{AB}{B} > \frac{Ab}{b}$ अर्थात् दोनो मे धनात्मक साहचर्य है।

यूल के साहचर्य गुणाक द्वारा--

पिछली दोनो पद्धतियो द्वारा साहचर्य का स्पष्ट माप प्राप्त नही होता था। स्पष्ट माप प्राप्त करने के लिए यूल के साहचर्य गुणाक का प्रयोग किया जाता है। इसमे काल-पियर्सन के सह-सम्बन्ध के समान साहचर्य + 1 से − 1 तक होता है।

यूल का साहचर्य गुणाक निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है--

$$Q = \frac{(AB)\ (ab) - (Ab)\ (aB)}{(AB)\ (ab) + (Ab)\ (aB)}$$

प्राप्त मान रखने पर--

$$Q = \frac{(230)\ (235) - (310)\ (125)}{(230)\ (235) + (310)\ (125)}$$

$$= \frac{53050 - 38750}{53050 + 38750}$$

$$= \frac{24300}{91800}$$

$$= 24$$

अर्थात् दोनो के मध्य निम्न धनात्मक गुण-साहचर्य पाया जाता है-

फाई गुणाक द्वारा--

इसी प्रकार अग्राकित सूत्र द्वारा फाई गुणाक विधि से गुण-साहचर्य ज्ञात किया जा सकता है--

$$\phi = \frac{[(AB)(ab)] - [(Ab)(ab)]}{\sqrt{[(AB)+(aB)][(Ab)+(ab)][(AB)+(Ab)][(aB)+(ab)]}}$$

इस सूत्र द्वारा फाई गुणांक ज्ञात किया जा सकता है।

(7) काई वर्ग (Chi Square) परीक्षण

जिस विधि द्वारा बहुगुणी समकों की प्राप्त आवृत्तियों की प्रत्याशित आवृत्तियों से तुलना कर परिकल्पना (Hypothesis) की जाँच की जाती है, उसे काई वर्ग परीक्षण कहते हैं। परिकल्पना की जाँच करने के लिए X^2 की गणना की जाती है। यदि X^2 का मूल्य शून्य आता है तो इसका अर्थ है कि सम्भावित एवं प्राप्त आवृत्तियां समान हैं एवं परिणाम पूर्णतः परिकल्पनानुसार ही प्राप्त हुए हैं। दूसरे शब्दों में, इसके अन्तर्गत हम $X^2 = 0$ का परीक्षण करते हैं।

काई वर्ग को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है—

$$X^2 = \sum \frac{(0-E)^2}{E}$$

यहाँ X^2 = काई वर्ग
Σ = योग
0 = वास्तविक आवृत्ति
E = सम्भावित आवृत्ति

उदाहरण—

एक कक्षा के छात्रों को एक विशेष पद्धति द्वारा राजनीतिविज्ञान की पढ़ाई करायी गयी। यह पाया गया कि उस कक्षा के छात्र 3 5 2 के अनुपात से प्रथम, द्वितीय व तृतीय श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। इन्हीं छात्रों को एक दूसरी पद्धति द्वारा अर्थशास्त्र पढ़ाया गया। 40 छात्र प्रथम श्रेणी, 45 छात्र द्वितीय श्रेणी व 15 छात्र तृतीय श्रेणी से उत्तीर्ण हुए। क्या विभिन्न पद्धतियों के द्वारा कराये गये अध्ययन में कोई अन्तर पड़ा?

इस परिकल्पना का भी परीक्षण कीजिये कि दूसरी विधि द्वारा अच्छे परिणाम प्राप्त हुए।

हल—

इस हेतु सर्वप्रथम X^2 का मूल्य ज्ञात किया जायेगा। X^2 का मूल्य ज्ञात करने के लिए $\sum \frac{(0-E)^2}{E}$ ज्ञात करना होगा जिसे एक सारणी बना कर ज्ञात किया जाता है।

सारणी में संख्याओं की पूर्ति के E (सम्भावित मूल्य) निम्न प्रकार ज्ञात होंगे—

प्रथम श्रेणी : $\frac{3}{3+5+2} \times 100 = 30$ छात्र

द्वितीय श्रेणी : $\frac{5}{3+5+2} \times 100 = 50$ छात्र

तृतीय श्रेणी $\frac{2}{3+5+2} \times 100 = 20$ छात्र

निम्न सारिणी बनाकर X^2 का मूल्य ज्ञात किया जावेगा—

श्रेणी	छात्र संख्या		(0 – E)	$(0 - E)^2$	$\frac{(0-E)^2}{E}$
	0 वास्तविक	E सम्भावित			
प्रथम	40	30	10	100	3 353
द्वितीय	45	50	– 5	25	0 500
तृतीय	15	20	– 5	25	1 250
Σ	100	100	0	0	$X^2 = 5{\cdot}083$

चूँकि 5% मूल्य पर दो गुणो की स्वतन्त्रता की सम्भावना 5 99 है और दोनो पद्धतियो द्वारा अध्ययन के मध्य प्राप्त अन्तर मात्र 5 083 है अर्थात् दोनो पद्धतियो के मध्य प्राप्त परिणामो के अनुसार कोई अन्तर नहीं है और यह परिकल्पना गलत है कि दूसरी पद्धति द्वारा अध्ययन से अच्छे परिणाम प्राप्त हुए हैं।

(9) प्रतीपगमन (Regression)

विभिन्न समक मालाओ के मध्य आपसी सम्बन्धो का अध्ययन करने के लिए कुछ विधियों का पूर्व म वर्णन किया जा चुका है। इन विधियों द्वारा यह ज्ञात होता है कि दो श्रेणियो के मध्य क्या और कितना सम्बन्ध है। किन्तु एक श्रेणी में ऐसा परिवर्तन हो तो दूसरी श्रेणी मे कैसा परिवर्तन होगा। इसका निर्णय प्रतीपगमन द्वारा आसानी से किया जा सकता है।

किन्तु राजनीतिविज्ञान मे अधिकाश समक भावनाओ और विचारधाराओ पर आधारित होते हैं एव उसका पद्धतिविज्ञान इतना विकसित नहीं हुआ है। इन कारणों से प्रतीपगमन का प्रयोग एक विशिष्ट विधि द्वारा राजविज्ञान मे किया जाना एक चुनौती है। यह यद्यपि भविष्यवाणी की शक्ति प्रदान करता है किन्तु राजविज्ञान में इसका प्रयोग साव-धानीपूर्वक होना चाहिये।

प्रतीपगमन विश्लेषण को तीन भागो में विभाजित किया जा सकता है। यह है—

1. सामान्य और गुणोत्तर प्रतीपगमन
2. रेखाकित और अ-रेखाकित प्रतीपगमन
3. पूर्ण एव थोड़ा प्रतीपगमन

प्रतीपगमन को निम्न विधियो द्वारा ज्ञात किया जा सकता है--

1. रेखाचित्रों द्वारा, (Graphic)
   - (i) बिन्दु-रेखीय विधि
   - (ii) रेखाएँ बनाकर
2. गणितीय विधियों द्वारा (Algebric)
   - (i) सामान्य प्रतीपगमन
   - (ii) प्रतीपगमन गुणाक द्वारा
     - (a) प्रत्यक्ष विधि
     - (b) शॉर्ट-कट विधि या लघु विधि ।

उपर्युक्त सांख्यिकीय विधियो का सक्षिप्त वर्णन यह बताता है कि साख्यिकी का राजविज्ञान के शोध एव विश्लेषण में अधिकाधिक प्रयोग किया जा सकता है। इस दिशा में योजनाबद्ध प्रयास किये जाने चाहिएँ ।